मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्य : नारी जीवन मूल्य

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिंदी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध–प्रबंध)

2016

शोधार्थी

जी.मल्लेश्वरी.

04HHPH16

प्रो. आर. एस. सर्राजु
अध्यक्ष
हिंदी विभाग
मानविकी संकाय
हैदराबाद विश्वविद्यालय
तेलंगाना–500046

प्रो. वी. कृष्ण
शोध–निर्देशक
हिंदी विभाग
मानविकी संकाय
हैदराबाद विश्वविद्यालय
तेलंगाना–500046

CERTIFICATE

Department of Hindi
School of Humanities
University of Hyderabad
Hyderabad-500046
Telangana,
INDIA.

This is to certify that the thesis entitled “MAITREYI PUSHPA KA KATHA SAHITYA: NAARY JEEVAN MULYA”, “मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्यः नारी जीवन मूल्य”,submitted by G. MALLESWARI bearing Regd. No. 04HHPH16 in partial fulfillment of the requirements for the award of the degree of Doctor of Philosophy in Hindi is a work carried out under my/our supervision, which is free from plagiarism.

The Thesis has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or institution for the award of any degree or diploma.

Supervisor

(Prof. V Krishna)

(Prof. R. S. Sarraju)
Head,
Department of Hindi
University of Hyderabad

(Prof. Panchanan Mohanty)
Dean,
School of Humanities
University of Hyderabad

DECLERATION

I, G. MALLESWARI hereby declare that this Thesis entitled “MAITREYI PUSHPA KA KATHA SAHITYA: NAARY JEEVAN MULYA”, “मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्य : नारी जीवन मूल्य”, submitted by me under the guidance and supervision of Prof. V. Krishna is a bonafide research work and free from plagiarism. I also declare the Thesis has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my Thesis can be deposited in SHODHGANGA/ INFLIBNET.

Date:

Name: G. MALLESWARI

Signature of the student

Regd. No. 04HHPH16

अनुक्रमणिका

1. समकालीन हिन्दी कथा साहित्य : नारी जीवन मूल्य 14-72

1.1 समकालीन शब्द का अर्थ एवं अवधारणा

1.2 हिन्दी कथा–साहित्य : महिला लेखन

1.3 हिन्दी में स्त्रीवादी साहित्य का प्रवेश

भारतीय अवधारणा; पाश्चात्य अवधारणा

1.4 समकालीन हिन्दी उपन्यास : महिला लेखिकाएँ

1.5 समकालीन हिन्दी कहानी : महिला लेखिकाएँ

1.6 जीवन मूल्य का अर्थ और परिभाषा

1.7 मूल्य परिवर्तन और मानव मूल्य

1.7.1 जीवन मूल्य : भारतीय चिंतन

1.7.2 जीवन मूल्य : पाश्चात्य चिंतन

1.8 सामाजिक जीवन मूल्य

1.9 आर्थिक जीवन मूल्य

1.10 राजनीतिक जीवन मूल्य

1.11 धार्मिक जीवन मूल्य

1.12 सांस्कृतिक जीवन मूल्य

1.13 साहित्यिक जीवन मूल्य

1.14 पितृसत्तात्मक व्यवस्था : नारी जीवन मूल्य

1.15 हिंदी समकालीन लेखिकाओं की दृष्टि में नारी जीवन मूल्य

2. मैत्रेयी पुष्पा : व्यक्तित्व और कृतित्व 73-159

2.1 मैत्रेयी पुष्पा : जीवन संबंधित विशेषताएँ

जन्म–परिवार; शिक्षा–दीक्षा; व्यक्तित्व; ग्रामीणता

2.2 मैत्रेयी पुष्पा की साहित्यिक रुची एवं साहित्यिक परिवेश

2.2.1 मैत्रेयी पुष्पा के कृतित्व का संक्षिप्त परिचय

2.2.1.1 कहानी सहित्य :

चिन्हार; ललमनियाँ; गोमा हँसती है; पियरी का सपना

2.2.1.2 उपन्यास साहित्य :

स्मृतिदंश; बेतवा बहती रही; इदन्नमम्; चाक; झूलानट; अल्मा कबूतरी; अगनपाखी; विजन; कही ईशुरी फाग;, त्रिया हठ; कस्तूरी कुन्डल बसै; गुड़िया भीतर गुड़िया; गुनाह–बेगुनाह; फरिस्ते निकले

2.2.1.3 स्त्री विमर्श :

खुली–खिड़कियाँ; सुनो मालिक सुनो; चर्चा हमारा तब्दील निगाहें

2.2.1.4 रिपोर्ताज : फाइटर की डायरी

3. मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास साहित्य : नारी जीवन मूल्य 160-208

3.1 सामाजिक

3.2 शैक्षणिक

3.3 आर्थिक

3.4 राजनीतिक

3.5 सांस्कृति

3.6 विद्रोही स्वर :

3.6.1 सामंती परिवारिक नारी विरोधी मूल्यों का ध्वस्त

3.6.2 विवाह संस्था के नारी विरोधी मूल्यों का ध्वस्त

3.6.3 पितृसत्तात्मक नारी विरोधी नैतिक मूल्यों का ध्वस्त

3.6.4 पितृसत्तात्मक नारी विरोधी संस्कारों का ध्वस्त

4. मैत्रेयी पुष्पा का कहानी साहित्य : नारी जीवन मूल्य 209-241

4.1 सामाजिक

4.2 शैक्षणिक

4.3 आर्थिक

4.4 राजनीतिक

4.5 सांस्कृतिक

4.6 दलित नारी

4.7 विद्रोही स्वरः

4.7.1 सामंती परिवारिक नारी विरोधी मूल्यों का ध्वस्त

4.7.2 विवाह संस्था के नारी विरोधी मूल्यों का ध्वस्त

4.7.3 पितृसत्तात्मक नारी विरोधी नैतिक मूल्यों का ध्वस्त

4.7.4 पितृसत्तात्मक नारी विरोधी संस्कारों का ध्वस्त

5. मैत्रेयी पुष्पा का आत्मकथा साहित्य : नारी जीवन मूल्य 242-288

5.1 आत्मकथा लेखन की पृष्ठभूमि एवं परिभाषा

5.2 हिन्दी आत्मकथाएँ और जीवनी

5.3 दलित आत्मकथाएँ

5.4 दलित महिला की आत्मकथाएँ

5.5 हिन्दी में महिला आत्मकथाएँ

5.6 हिन्दी के आत्मकथात्मक उपन्यास

5.7 मैत्रेयी पुष्पा का आत्मकथा साहित्य : नारी जीवन मूल्य

5.7.1 सामाजिक

5.7.2 शैक्षणिक

5.7.3 आर्थिक

5.7.4 राजनीतिक

5.7.5 सांस्कृतिक

5.7.6 साहित्यिक

5.8 विद्रोही स्वर :

5.8.1 सामंती पारिवारिक नारी विरोधी मूल्यों का ध्वस्त

5.8.2 विवाह संस्था के नारी विरोधी मूल्यों का ध्वस्त

5.8.3 पितृसत्तात्मक नारी विरोधी नैतिक मूल्यों का ध्वस्त

5.8.4 पितृसत्तात्मक नारी विरोधी संस्कारों का ध्वस्त

6. मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्य : शिल्प और शैली 289-343

6.1 शिल्प

6.1.1 लक्ष्य

6.1.2 देश काल वातावरण

6.1.3 विश्वसनीयता

6.1.4 कथानक और पात्र

6.1.5 कलात्मक भाषा

6.1.6 सांकेतिक भाषा

6.1.7 संवादों की भाषा

6.2 आत्मकथात्मक शैली

6.3 डायरी शैली

6.4 सामाजिक विद्रोह की भाषा शैली

6.4.1 निम्नवर्ग

6.4.2 मध्यवर्ग

6.4.3 उच्चवर्ग

6.5 सामाजिक व्यंग्य शैली

6.6 राजनीतिक व्यंग्य शैली

6.7 धार्मिक व्यंग्य शैली

6.8 मुहावरे

6.9 लोकोक्तियाँ और कहावतें

6.10 लोक भाषा शब्दावली (देशज शब्द)

6.11 संस्कृत शब्दावली

6.12 अपशब्द (गालियाँ)

6.13 अंग्रेजी शब्द

6.14 अरबी शब्द–फ़ारसी शब्द

उपसंहार 344-356

आधार, संदर्भ एवं सहायक ग्रंथ सूची 357-364

प्राक्कथन

हिंदी कथा साहित्य में मैत्रेयी पुष्पा का नाम सुविख्यात है। हिंदी साहित्य में ऐसा पहली बार हुआ है कि किसी महिला रचनाकार ने शुध्द गाँव–कस्बे की कहानी और उपन्यास लिखा है। उन्होंने ग्रामीण नायिका के प्रज्ञा–पक्ष, उनके तेज को, उनके नैतिक भूगोल को स्त्री लेखन के द्वारा पहली बार अभिव्यक्त किया है। आज नारी को शोषण से मुक्त कराने के अनेक प्रयास हो रहे हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने भी पुरूष प्रधान संस्कृति के विरोध में, विद्रोह में आवाज उठाई हैं। इनके इस विद्रोह का सबसे सशक्त हथियार 'साहित्य' है। मैत्रेयी पुष्पा के पास ऐसे अनुभव थे, जिन पर मध्यवर्गीय महिला सोच भी नहीं सकती थीं। उन पीढ़ित महिलाओं पर गहरी संवेदना व समझ के साथ लगातार लिखने वाली पहली महिला लेखिका हैं। उनके कथा साहित्य के केंद्र में गाँव का जीवन और संघर्ष ही ंमिलता है। वह पुरूषों द्वारा बनाई गई आचार संहिता का पुरजोर विरोध अपनी निर्भीक भाषा में करती है। उनमें रचना के प्रति संवेदना, वास्तविकता, सामर्थ्य, नयापन और लगन है। इसी से उनकी महिला पात्रों का विकास होता है। वे परिस्थितियों के दबाव में खरगोश से शेर बन जाती हैं। 'हंस' के संपादक और साहित्यकार राजेंद्र यादव मैत्रेयी पुष्पा के लेखन की सहजता और विशिष्टता के बारे में कहते हैं कि 'निश्चय ही मैत्रेयी के लेखन में बौद्धिक तेजस्विता, राजनैतिक आक्रामकता और न्याय संघर्ष की अति–परिचित पक्षधर घोषणा नहीं हैं, मगर महानगरों से हटकर खेत–खलिहानों में निरंतर चलनेवाली लड़ाइयाँ और उनके बीच जागरूक होती नारी के अघोषित विद्रोह की कहानियाँ हैं। जहाँ हिंदी के जनाने लेखन और स्त्री के बौद्धिक–विमर्श के बीच उसी तरह की ताज़गी देती हैं, जैसे कभी रेणु ने दी थी। वे नारी चेतना के व्यक्तित्व–निर्माण की नहीं, सामंती अमानवीयताओं और उभरती लोकतांत्रिक स्थितियों के बीच सहज नारी आकांक्षओं की ऐसी कहानियाँ हैं, जहाँ 'संघर्ष' और 'विद्रोह' शब्द बाहर से थोपे हुए लगते हैं क्योंकि वहाँ वे सिर्फ जीने की जिद और दी गई नियति के अस्वीकार की संकल्प–कथाओं का रूप लेती हैं–सेक्स, बलात्कार भी वहाँ उसी जीवन–प्रणाली का हिस्सा होकर आता है। वे नारी के अपने अस्तित्व से अस्मिता तक पहुँचानेवाली कहानियाँ हैं।'

वह पुरूष वर्चस्व से स्वतंत्रता पाने की आवाज उठाते हुए स्त्री को मानसिक यंत्रणा से मुक्ति दिलाना चाहती हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा साहित्य में विद्रोह के साथ सामन्ती

संस्कारों, आर्थिक, पारिवारिक संबंधों के चित्रण नवीन वैचारिक दृष्टि अपनायी हैं। मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य में लोक संस्कृति और लोक जीवन आदि का अंकन भी किया गया है।

मैत्रेयी पुष्पा की नारी समय के साथ करवट बदलती है। मानसिक यातनाएँ और बारीक हिंसा को पहचानकर उन पर सवाल खड़े करती हैं और बाहर निकल आने का भी हौसला दिखाती हैं। बदलता हुआ समाज, परिवेश के अनुसार संघर्ष और टकराहट के बीच नए मूल्य रचती है। उन्होंने पुरुष को नहीं, बल्कि पुरुष व्यवस्था के सोच–विचार और दृष्टिकोण का विरोध करती हैं। आधुनिक हिन्दी साहित्य में स्त्री की आवाज को शब्द देने और लिपिबद्ध करने वाली लेखिकाओं की अग्रिम पंक्ति में मैत्रेयी पुष्पा का नाम आता है । उनके लेखन की धार अनेक बार पुरुषवादियों को लहूलुहान कर चुकी है। उनके लेखन अपने–आप में अनूठा है। क्योंकि वे खरी बात खरे–खरे शब्दों में लिख डालती हैं। लेखिका उन कारणों को टटोलती हैं जो आवाज से आवाज मिलाने के साहस के रास्ते में रोड़ा बन जाते हैं। लेखिका को पहला और बुनियादी रोड़ा मिलता है संस्कारों के रूप में। सभी संस्कार नहीं अपितु वे संस्कार जो अपना स्वरूप गंवा चुके हैं, वीभत्स बन चुके हैं और जो समाज में सड़े–गले विचारों की दुर्गन्ध फैलाते रहते हैं। ऐसे दूषित संस्कारों को छोड़ देने का आह्वान उनके कथा साहित्य के माध्यम से किया हैं। यहां मैत्रेयी पुष्पा के उन विचारों की वास्तविकता मुखर होती है, जिसमें वे निरा स्त्रीवादी नहीं बल्कि मानवतावादी हो कर स्त्री के हित के बारे में साहित्य रचती हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने कथा साहित्य के माध्यम से स्त्री शिक्षा–सामाजिक, पैत्रुक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक मूल्यों पर स्त्रियों के अधिकार, घरेलू हिंसा आदि के साथ स्त्री को जागरूक करती हैं। लेखिका किसी स्थापित मूल्यों को स्वीकृति नहीं देती हैं ।

शोध विषय के चयन को लेकर मैंने अपने शोध निर्देशक प्रो.वी. कृष्ण के साथ चर्चा की। उन्होंने मेरे एम.फिल. के शोध प्रबंध का विषय 'अल्मा कबूतरी का यथार्थ' के बारे में जानकर मुझे ***"मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्यः नारी जीवन मूल्य"*** विषय पर शोध कार्य करने की सलाह दी। समय–समय पर उनका मार्गदर्शन और प्रोत्साहन मिलता रहा। उनके भरपूर सहयोग से ही मेरा यह पीएच.डी. का शोध प्रबंध सफल हो पाया है। इसके लिए मैं उनका ह्रदय से आभार व्यक्त करते हुए धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध अध्ययन की सुविधा हेतु छः अध्यायों में विभाजित किया गया है। इसके अतिरिक्त अंत में उपसंहार; आधार, संदर्भ एवं सहायक ग्रंथ की सूची दी गई है।

प्रथम अध्याय ***"समकालीन कथा साहित्य : नारी जीवन मूल्य"*** के अंतर्गत समकालीनता का अर्थ, अवधरणा, काल की सीमा के साथ–साथ समकालीन कथा लेखिकाएँ किन प्रवृत्तियों को लेकर उभरती आ रही हैं, उनकी भूमिका और सक्रियता के महत्व को दिखाने की कोशिश की गयी। जीवन मूल्य का अर्थ एवं परिभाषा देते हुए भारतीय और पाश्चात्य संदर्भों को रेखांकित किया गया है। मूल्य परिवर्तन और मानव मूल्य के साथ–साथ, जीवन मूल्य को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक सांस्कृतिक और साहित्यिक संदर्भों पर प्रकाश डाला गया है। अध्याय के अंत में पितृसत्तात्मक व्यवस्था में नारी जीवन मूल्य और समकालीन लेखिकाओं की दृष्टि में नारी जीवन मूल्य को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

द्वितीय अध्याय ***"मैत्रेयी पुष्पा व्यक्तित्व और कृतित्व"*** के अंतर्गत मैत्रेयी पुष्पा के व्यक्तित्व और कृतित्व को लेकर विस्तार से विवरण देने का प्रयास किया गया है। व्यक्तित्व के अंतर्गत उनके जन्म–परिवार, शिक्षा–दीक्षा और विवाह संबंधित विशेषताएँ समाविष्ट की गयी हैं। कृतित्व के अंतर्गत उनके सारे उपन्यासों, चार कहानी संग्रहों की चर्चित कहानियाँ, स्त्री विमर्श और संस्मरण संबंधी पुस्तकों पर संक्षिप्त चर्चा की गयी है। इनके लेखन अपने निजी अनुभवों पर आधारित है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यास और कहानियों में मध्यवर्ग की स्त्री समस्याओं पर चर्चा की है। स्त्री चेतना, नारी जीवन मूल्यों को समकालीनता के साथ जोड़ते हुए अपने नारी पात्रों को संघर्ष करते हुए दिखाया गया है।

तृतीय अध्याय ***"मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास साहित्य : नारी जीवन मूल्य"*** के अंतर्गत मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नारी जीवन मूल्य को सामाजिक, शैक्षणिक आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक संदर्भ में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। नारी विरोधी मूल्यों के अंतर्गत नायिकाएँ पितृसत्तात्मक व्यवस्था के नियमों का सीमित हद तक ही पालन करती हैं। उसके जीवन मूल्यों की ह्रासमय स्थिति को जानते हुए वह उनकी अवाज बन पायी हैं। विद्रोह कर स्थापित मूल्यों को ध्वस्त करती हुई दिखाई देती हैं।

चतुर्थ अध्याय ***"मैत्रेयी पुष्पा का कहानी साहित्य : नारी जीवन मूल्य"*** के अंतर्गत मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में निहित नारी जीवन मूल्य जैसे समाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक, राजनीतिक

सांस्कृतिक, संदर्भों को उजागर करने का प्रयास किया है। इन कहानियों में जहाँ पर धर्म और संस्कारों के नाम पर पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने स्त्री को उपेक्षित किया है, वहाँ पर वह अपना विद्रोही स्वर उठाकर प्रश्न करने से पीछे नहीं हठती है। वह स्त्री विरोधी नियमों का तिरस्कार करती हैं और अपने लिए नए मूल्य गढ़ती हुई दिखाई देती हैं।

पंचम अध्याय ***''मैत्रेयी पुष्पा का आत्मकथा साहित्य : नारी जीवन मूल्य''*** के अंतर्गत आत्मकथा लेखन की पृष्ठभूमि, परिभाषा देते हुए आत्मकथा, जीवनी साहित्य के भेद, महिला, पुरुष और दलित की आत्मकथा के भेद को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। मैत्रेयी पुष्पा के आत्मकथा साहित्य में निहित नारी जीवन मूल्यों को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सांस्कृतिक संदर्भों में रेखांकित किया गया है। मैत्रेयी पुष्पा अपनी आत्मकथा में कहीं नारी जीवन मूल्य में हस्तक्षेप करती है तो कहीं उसका समर्थन की मुद्रा में खड़ी होती दिखाई देती हैं। विद्रोही रूप में मैत्रेयी पुष्पा स्त्री नियति की लक्ष्मण रेखाओं को लांघती हुई नारी अस्मिता को बचाने वाली एक नयी नारी के रूप में दिखाई देती हैं। लेखिका अपनी नायिकाओं से भी अधिक जुझारू, संघर्षमई और विद्रोहिणी दिखाई देती हैं। आत्मकथा के बहाने मैत्रेयी पुष्पा नए मूल्यों को गढ़ती दिखाई देती हैं। अपने भोगे हुए जीवन का यथार्थ रूप इसमें प्रस्तुत किया है, उसको दिखाने की कोशिश की गई है।

षष्ठम अध्याय ***''मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्य : शिल्प और शैली ''*** के अंतर्गत मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में प्रयोग किये गये भाषा, शिल्प और शैली के विभिन्न रूपों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। ग्रामीण अंचल के परिवेश के अनुसार भाषा पात्रानुकूल है। इनके कथा साहित्य के नारी पात्रों ने पुंसवादी भाषिक संरचना को छोडकर स्त्रीनिष्ठ भाषिक संरचना को अपनाया है। इसको दिखाने का प्रयास किया गया है। सामाजिक, राजनीतिक धार्मिक संदर्भों में किस प्रकार का व्यंग्य किया गया है उसको उद्घाटित करने की कोशिश की गयी है। गाँव की सहज सिध्द ठेठ शब्द असल में उनके कथा साहित्य की सफलता की कुंजी है। आंचलिकता व बुंदेलखंडी भाषा के साथ–साथ संस्कृत, विदेशी भाषा के शब्द जैसे अंग्रेजी, फारसी और अरबिक शब्दों का प्रयोग किस प्रकार किया गया है दिखाने की कोशिश की गयी है।

अपने गुरु व शोध निर्देशक प्रो. कृष्ण के साथ–साथ हिंदी विभाग के अन्य सभी अध्यापकों से मुझे स्नेह और प्रोत्साहन मिलता रहा। विशेष रूप से सेवानिवृत्त अध्यापिका और पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो. शशि मुदिराज का ह्रदयपूर्वक धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ जो मेरे इस शोध कार्य के संपन्न होने के कारक हैं। प्रस्तुत विभागाध्यक्ष प्रो.आर.एस. सर्राजु को तहे दिल से धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने व्यक्तिगत रूप से सलाह और भरपूर सहयोग दिया। मेरे डॉक्टोरल कमिटी के सदस्य डॉ. श्याम राव, डॉ.गरिमा श्रीवास्तव, डॉ. भीम सिंह को भी धन्यवाद देती हूँ समय–समय पर उनसे सलाह और सहयोग मिलता रहा।

शोध कार्य कई रुकावटों के बावजूद संपन्न हो पाया है तो निश्चय रूप से इस में परमेश्वर का अनुग्रह ही है। इसके पीछे अनेक लोगों की दुवाएँ और प्रेम है। मेरी आत्मीय दीदी सौजन्या भी मेरे इस शोध कार्य के लिए एक प्रमुख व्यक्ति है, उनको भी मैं अःतर मन से ध्न्यवाद देना चाहती हूँ। मेरी सहेली डॉ. माया देवी को भी ह्रदय से धन्यवाद देती हूँ। यह शोध कार्य के सफल बनने में भाई गौतम, डॉ.राजु, डॉ.साबिरा की मदद भरपूर रही है। उनके साथ राजेश, डॉ.विद्यावति, डॉ.पद्मा की भी मदद मिली है उन केलिए भी धन्यवाद देती हूँ। मेरे आत्मीय सहेलियाँ हैं–लता, चरिता, झांसी, सुनीता, चारु शीला, पापा और उनके परिवारजनों को भी ह्रदय से धन्यवाद देती हूँ जो आर्थिक, आत्मिक, मानसिक रूप से मेरी मदद करते रहे। इनके साथ–साथ भाई–बहन रमणा,, मृदुला, रूत, माधवी, दिव्या को ह्रदय से धन्यवाद देती हूँ।

मेरे यहाँ तक पहुँचने में मेरे स्वर्गीय माता–पिता का आशीश, प्रेम व स्नेह मेरे लिए मेरूदंड का काम करता रहा। मेरे बडे भाई कोटेश्वर राव, ब्रह्मय्या, आनंद व अन्य परिवारजन हर समय मेरा साथ देते रहे, दीदी–जीजाजी के परिवार से माता–पिता सा प्रेम व स्नेह मिलता रहा उनके लिए धन्यवाद शब्द छोटा पडता है। चारों भाईयों एवं राजु–अन्नम्मा (चाचा–चाची) का भी आभार व्यक्त करती हूँ। सबसे आखिर में सबसे अधिक जीवन साथी डॉ. अजयाकुमार कवला का आभार या धन्यवाद क्या कहूँ उनका साथ, सहयोग हमेशा बना रहे, हर सफर में, हर हाल में...

जी. मल्लेश्वरी

अध्याय–1

समकालीन हिन्दी कथा साहित्य : नारी जीवन मूल्य

1.1 समकालीन शब्द का अर्थ एवं अवधारणा

1.2 हिन्दी कथा–साहित्य : महिला लेखन

1.3 हिन्दी में स्त्रीवादी साहित्य का प्रवेश

भारतीय अवधारणा; पाश्चात्य अवधारणा

1.4 समकालीन हिन्दी उपन्यास : महिला लेखिकाएँ

1.5 समकालीन हिन्दी कहानी : महिला लेखिकाएँ

1.6 जीवन मूल्य का अर्थ और परिभाषा

1.7 मूल्य परिवर्तन और मानव मूल्य

1.7.1 जीवन मूल्य : भारतीय चिंतन

1.7.2 जीवन मूल्य : पाश्चात्य चिंतन

1.8 सामाजिक जीवन मूल्य

1.9 आर्थिक जीवन मूल्य

1.10 राजनीतिक जीवन मूल्य

1.11 धार्मिक जीवन मूल्य

1.12 सांस्कृतिक जीवन मूल्य

1.13 साहित्यिक जीवन मूल्य

1.14 पितृसत्तात्मक व्यवस्था : नारी जीवन मूल्य

1.15 समकालीन लेखिकाओं की दृष्टि में नारी जीवन मूल्य

1.1 समकालीन शब्द का अर्थ एवं अवधारणा :

समकालीनता वह दृष्टि है जिसने आधुनिकता के विविध आयामों का विकास किया है। आधुनिकता वस्तुतः एक प्रक्रिया है जिसमें मूल्य चेतना विद्यमान रहती है। आधुनिकता का चिंतन सबसे अधिक वर्तमान के लिए होता है। यह एक प्रक्रिया है जो मूल्यों में परिणत होकर इन (मध्ययुगीन) मूल्यों को जोड़ती है। आधुनिकता को औद्योगीकरण से भी जोड़ा जाता है। समकालीनता के लिए आधुनिकता अनिवार्य है। आधुनिकता के समान ही समकालीनता एक मूल्यपरक दृष्टि है परंतु इसमें समय की अनिवार्यता आवश्यक है। हिंदी में समकालीन शब्द वस्तुतः 'कांटेंपोरेनिटी'(Contemporaneity)या 'कोईवाल'(Coeval) से बना है जिसका अर्थ है—'एक ही कालखंड में होनेवाली घटना या एक ही कालखंड में जीने वाले व्यक्ति। 'आधुनिकता ने निरंतरता के साथ जिस चेतन संसार की यात्रा की है उसमें सारी विचारधाराओं का केन्द्र मनुष्य है। मनुष्य केन्द्र में है, यही एक यथार्थ है। यहाँ सारी विचारधाराओं के अंतर्विरोध, अंतरसंबंध में बदल जाते हैं। समय का अस्तित्व सर्वातीत नहीं है, उसकी सत्ता देश और काल में है, जो समकालीनता से साक्षात्कार करती है। इसमें समय है और जगह भी है, जहां मनुष्य एक केन्द्र पर स्थित है।

'समकालीनता' मनुष्य को प्रासंगिक बनाये रखती है। यथार्थ का record (अभिलेख) होता है, यथार्थवाद खत्म हो जाए तब भी वह बना रहता है। हर्षबाला शर्मा के अनुसार ''समकालीन शब्द एक विशेषण है, जो युग की विशेषताओं को स्वर देने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। ऐसा कुछ भी जो नवीन व अपने युग के मूल्यों को अभिव्यक्ति करते हुए युगीन समस्याओं से जूझने का प्रयास करता है, समकालीन कहलाता है। समकालीनता परंपरा और आधुनिकता के बीच की कड़ी है, जो नवीन मान्यताओं को प्राचीन से जोड़ने का कार्य करती है। मनुष्य पर विश्वास करती है, तथा विवेकयुक्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर बल देती है।''[1]'समकालीनता' नवलेखन के संदर्भ में प्रयुक्त परिचित शब्द है। 'समकालीन' संज्ञा साहित्य की प्रायः सभी विधाओं के साथ प्रयुक्त हो रही है, यथा 'समकालीन कविता', 'समकालीन उपन्यास', 'समकालीन निबंध', 'समकालीन कहानी' आदि। नवलेखन में 'समकालीन कहानी'

की अवधारणा के संबंध में जितना भ्रम रहा है कदाचित उतना किसी अन्य विधा के संबंध में नहीं।

समकालीनता की अवधारणा :

डॉ. शिवप्रसाद सिंह 'समसामयिकता' को उसके मूल अर्थ में ग्रहण करते हुए इसे आधुनिकता से अलग मानते हुए कहते हैं कि–''समसामयिकता कलेवर की चीज होती है। आधुनिकता समसामयिक बिखराव और कलेवरगत उथल–पुथल के भीतर निरंतर प्रवाहित गतिशील चेतना को समझने का दृष्टिकोण है। इसलिए समसामयिक को आधुनिकता मान लेना जोखम है।''[2]

डॉ. नगेन्द्र समसामयिक को सीमित संकुचित अर्थ में ही आधुनिकता के समकक्ष मानते हैं। वे कहते हैं ''आज के सीमित संदर्भ में आधुनिक का एक संकुचित अर्थ 'समसामयिक' भी उभरकर सामने आया है। इस संदर्भ में आधुनिकता का अर्थ है वर्तमान का युगबोध, यहां दृष्टि वर्तमान पर ही केंद्रित रहती हैं।''[3]'समकालीनता' और 'समसामयिकता' अपने मूल अर्थ में अंग्रेजी के कंटेंपोरेनिटी (Contemporaneity) अथवा कोविल (Coeval) शब्दों के समतावाची हैं जिनका अर्थ है 'उसी समय के कालखंड में होने वाली घटना या प्रवृत्ति, या एक ही कालखंड में जी रहे व्यक्ति। 'समसामयिकता' के समानार्थी रूप में ही समकालीनता शब्द व्यवहृत हुआ है।

डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय 'समकाल' और 'समकालीनता' का अर्थ विस्तार करते हुए कहते हैं–''समकाल शब्द यह बताता है कि काल के इस प्रचलित खंड या प्रवाह में मनुष्य की स्थिति देखकर या उसे अंकित–चित्रित करके ही हम 'समकालीनता' की अवधारणा को समझ सकते हैं। शर्त यही है कि लेखक आज के (देश–काल स्थित) मनुष्य के अंकन में, वस्तुगत रहे, यानी उसके चित्रण की विधि कोई भी हो लेकिन उससे जो मानवबिंब उभरता हो, वह वास्तविक के निकट हो।''[4]समकालीनता यानी वास्तविक चित्रों का पुंज है, जिसमें वर्तमान स्थितियों को वास्तविकता के साथ दिखाना है। आज 1960 ई. के बाद के साहित्य के लिए 'समकालीन' संज्ञा प्रचलन में आ चुकी है। आधुनिक नवलेखन के संदर्भ में इन शब्दों को 'आधुनिकता' के समानधर्मा रूप में स्थापित करने की चेष्टा हुई है, किन्तु इनमें वह अर्थ–विस्तार नहीं आ पाया है जो आधुनिकता में है। हम 'समकालीन' को काल–परक मानते

हुए ''1962 ई. के पश्चात् समस्त साहित्य–सृजन के लिए उसका प्रयोग कर सकते हैं।''[5] 'समकालीन कहानी' या सन् साठ के बाद की कहानी को 'सातवें दशक की कहानी' के रूप में भी जाना गया है। काल–सीमा में सन् 1965 ई. के बाद के समस्त कहानी लेखन को परिगणित करते हैं। समकालीन कथा–साहित्य में जीवन–यथार्थ का कोई भी अंग अनछुआ नहीं रहा है। आज के मनुष्य ने जिस–जिस रूप में जिन्दगी को देखा, भोगा, उन सबका प्रामाणिक दस्तावेज समकालीन साहित्य प्रस्तुत करता है।

1.2 हिन्दी कथा साहित्य–महिला लेखन :

स्त्री का योगदान अगर अन्य चीजों की तरह साहित्य सृजन में भी हाशिए पर ही रहता आया है तो उसके लिए कारण है पितृसत्तात्मक व्यवस्था। पितृसत्ता एक सामाजिक घटना है, जो हजारों साल से चली आई ऐसी व्यवस्था है, जिसमें स्त्री की अधीनस्थता सर्वविदित है। पुरूष की सांस्कृतिक सत्ता ने स्त्री को वह सामाजिक सुविधा नहीं दी, जो कि पुरूष को परंपरा से मिलती रही। पुरूषवादी व्यवस्था ने स्त्री के विकास को सदियों से रोका। जिसमें शिक्षा मुख्य थी। 'शिक्षा' के द्वार उसके लिए सदा बंद रहे। स्त्री ने एक जीव के रूप में जन्म तो लिया, मगर इसके बाद पुरूष की सभ्यता और सत्ता पर अपनी मान्यताएँ ही नहीं,सबकुछ समर्पित करती रही। पुरूष ने स्त्री जीवन उसकी कार्यशैली, उसकी सत्ता को निर्धारित करने की चेष्टा की, जबकि तथ्य तो यह है कि स्त्री भी पुरूष की तरह एक अलग संवर्ग है, उसकी अलग कोटि और अलग सामाजिक स्थिति है, वह अपने जीवन में चुनाव की क्षमता रखती है। मगर स्त्री को चुनाव का न क्षेत्र दिया गया, न अधिकार।

पुरूष अपनी स्थितियों से परे जा सकता है या फिर परे जाने की क्षमता रखता है, आरोपित सीमाओं का अतिक्रमण कर सकता है, पारंपरिक भूमिका को चुनौती दे सकता है, बल्कि उसके द्वारा दी जानेवाली यह चुनौती क्रांति की भूमिका लिखती है। समाज द्वारा यह अपेक्षित भी है। उधर स्त्री ऐसा नहीं कर पाती। वह अपनी वैयक्तिकता में कैद है। यह तो इतिहास में पहली बार घट रहा है कि स्त्री पितृसत्ता को नकार रही है, उस सत्ता द्वारा आरोपित भूमिकाओं के प्रति सवाल उठा रही है। वह वस्तु से व्यक्ति बनने की प्रक्रिया में है, किन्तु इस प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त करने की मुख्य समस्या है कि स्त्री तो स्वयं एक तरल

स्थिति में है, उसका जीवन अंततः संभावनाओं से भरपूर है, वह कुछ भी हो सकती है। उसके पास कोई ठोस निर्धारित जानकारी, सबूत नहीं। पूर्व आधुनिक काल में विदेशी प्रभाव हर जगह उपस्थित है, पर साक्षरता–दर व जागृति के साथ उत्तर–पूर्व भारत और दक्षिण में कुछ ज्यादा ही है। विदेशी प्रभाव से शैलीगत, विधागत, भावगत जो बदलाव आए, वे कमोबेश सारी भाषाओं के महिला–लेखन में उसी कालानुक्रम में मिलते हैं–प्रतीकवाद, बिंबवाद, संक्षेप में सघन अभिव्यक्ति, क्षणजीवी आधुनिकता, विद्रोही भावनाओं की मुखरता, लघु कथाएँ, छोटी कहानी, नई कविता, 'हाइक' तक। कथा में सभी जगह उपन्यास पहले आया, कहानी बाद में और अब उपन्यास की जगह लंबी कहानियाँ व उपन्यासों की प्रवृत्ति भी सभी जगह समान रूप से चल पड़ी। साहित्य में विशेष रूप में, हिन्दी कथा–साहित्य में महिला कथाकार पीछे नहीं, कहीं अग्रणी भूमिका भी निभा रही है। इस संदर्भ स्त्री लेखिकाओं को लेकर सुब्रह्मण्य भारती की कविता बहुत ही उचित लगती है कि–

"नाचो! खुशियाँ मनाओ!
जो कहते थे कि स्त्रियों को पुस्तक छूना पाप है
वे मर चुके हैं,
जो मूर्ख कहते थे कि वे स्त्रियों को
घरों में कैद कर देंगे
वे अब अपनी सूरत नहीं दिखा सकते
उन्होंने हमारी जगह घर में दिखायी
जैसे हम कोई बैल हों जो
चारा खाए, पीटा जाए और
मुँह बन्द करके काम करे।
हमने यह सब खत्म कर दिया है
नाचो गाओ खुशी मनाओ!"[6]

स्त्री के लेखन का इतिहास वस्तुतः स्त्री के परिवेश और परिस्थितियों के साथ बदलते हुए संबंधों का उसके अपने रुख और रवैये का इतिहास है। एक परिस्थिति से ऊपर उठकर जिस अनुपात में वह अपनी नियति को अपने हाथ में लेती गई है उसी अनुपात में भावुकता के

विरूद्ध विवेक का दखल उसके लेखन में बढ़ता गया है। उसके लेखन के इतिहास का हर अगला मोड़ विवेक के इसी दखल का अगला कदम है। यह एक विकल्पों की तलाश का इतिहास है।

1.3 हिन्दी में स्त्रीवादी साहित्य का प्रवेश :

हिन्दी साहित्य में स्त्री–विमर्श या स्त्रीवादी साहित्य का प्रारंभ कथा साहित्य से होता है। हिन्दी कथा–साहित्य स्त्रियों के परिवर्तन की नयी श्रृंखला को जन्म देता है। वर्तमान हिन्दी कथा–साहित्य में स्त्री समाज की त्रासदी और विडंबना उसकी शोषित स्थिति, उसकी आर्थिक सामाजिक पराधीनता सदियों से चले आ रहे स्त्री संबंधों, सामंती मूल्यों, रूढ़िग्रस्त मान्यताओं और धारणाओं से जुड़े प्रश्नों को खुले, तीखे एवं महत्वपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया जा रहा है।

अनादि काल से नारी समाज में चहुँमुखी शोषण का शिकार बनी हुई है। इस संदर्भ में तेजसिंह की बातें महत्वपूर्ण हैं, वह कहते हैं कि ''सभी समुदायों की स्त्रियाँ समान रूप से ब्राह्मणी पितृसत्ता से पीड़ित और शोषित हैं। ब्राह्मणी पितृसत्ता जाति और लिंग पर आधारित है जबकि अन्य समाजों की पितृसत्ताएँ केवल लिंग पर आधारित हैं। इसलिए भारत की ब्राहमणी पितृसत्ता दुनियाँ के समाजों की पितृसत्ताओं में से सबसे अधिक विकृत और अमानवीय है। ब्राहमणी पितृसत्ता स्त्रियों को सभी मानवीय और लोकतंत्र के अधिकारों से वंचित कर पुरूष की अधीनता स्वीकार करने के लिए मजबूर करती है''[7] पितृसत्ताके अंतर्गत औरतों पर नियंत्रण रखने और उन्हें दबाने के लिए अनेक प्रकार की हिंसा का प्रयोग होता है। इसे सही भी माना जाता है। यह व्यवस्थित एवं ढांचागत होता है। सामाजिक हिंसा, घरेलू हिंसा, हमला, काम के स्थान पर हिंसा, अल्पसंख्यक महिलाओं पर हिंसा, निम्न तबके की स्त्री का यौन शोषण और हिंसा, राजकीय हिंसा आदि कई स्वरूप है। हिंसा के अभाव में महिलाओं को दबाव और शोषण की स्थिति में नहीं रखा जा सकता है। महिलाओं को उत्पीड़ित करने के लिए परिवार, जो समाज का एक छोटा अंश है उसके माध्यम से दबाया जाता है। घर के अंदर हिंसा को मान्यता प्राप्त हो जाती है। नारीवादी सिद्धांतकार मारिया मीस ने कहा है–''लिंगों के बीच श्रम का असमान बँटवारा हिंसा की मदद से आरंभ हुआ। फिर परिवार व सरकार जैसी संस्थाओं ने

एक मजबूत विचारधारा की मदद से उसे कायम रखा। पितृसत्तात्मक धर्म ने इसमें खास भूमिका निभाई जो मानता है कि औरत भी प्रकृति का हिस्सा है तथा उस पर पुरूष का दबाव व नियंत्रण होना जरूरी है।''[8]

आज नारी को शोषण से मुक्त कराने के अनेक प्रयास हो रहे हैं। हमारे वर्तमान युग में महिला सशक्तिकरण एवं स्त्री विमर्श जैसे शब्द हर ओर सुनाई देते हैं। 21वीं शती के आरंभ में तथा 20वीं शती के अंतिम दशकों में स्त्रियों के प्रश्नों पर विश्वभर के बुद्धिजीवियों, समाज सुधारकों तथा राजनीतिज्ञों में चर्चा शुरू हुई। भारत में स्त्रियों की दशा को लेकर महात्मा ज्योतिबा फुले तथा राजा राममोहन राय क्रियाशील थे। 19वीं शती में न केवल भारत में बल्कि विश्वभर में स्त्रियों की अवस्था को लेकर चिंतन शुरू हो जाता है। यूरोप में इसकी शुरूआत कार्ल मार्क्स द्वारा शुरू हुई थी।

नारी मुक्ति के इर्द–गिर्द रचा गया कथा–साहित्य स्त्री–विमर्श का साहित्य माना जाता है। ''मूलतः स्त्रीवाद एक ऐसा आंदोलन है, जो नारी को उसके अधिकारों के प्रति सचेत करते हुए अपने लिए सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक क्षेत्रों में संपूर्ण स्वतंत्रता की मांग करता है। सन् 1975का वर्ष अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप मेंतथा 1975 से 1985 तक का दशक अंतर्राष्ट्रीय महिला मुक्ति दशक के रूप में मनाया गया। यहीं से ही हिन्दी साहित्य में स्त्रीवाद, स्त्रियों के अधिकार, स्त्री–मुक्ति, स्त्री–विमर्श की चर्चा काफी जोरों से होने लगी।''[9]
हिन्दी साहित्य के उपन्यास की विधा में नारी विमर्श का विकास नारी मुक्ति आंदोलन से प्रभावित है। नारी मुक्ति आंदोलन की शुरूआत भारत में सन् 1920 से हुई। नारीवाद अपने प्रथम रूप में समानता की मांग को लेकर आता है। वर्तमान समय में स्त्री–विमर्श स्त्री को मानवी रूप मेंप्रस्तुत कर उसे समस्त अधिकार प्राधान करना चाहता है। नारी विमर्श पर नासिरा शर्मा, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, अलका सरावगी, मनीषा, मृदुला गर्ग, प्रभा खेतान, तसलीमा नसरीन, सुरेंद्र वर्मा आदि साहित्यकारों ने प्रकाश डाला है।आजस्त्रीवादी भूमिका को लेकर लिखे गए साहित्य में स्त्री लेखिकाओं के साथ–साथ पुरूष लेखकों ने भी अहम भूमिका निभाई है, जिसमें प्रेमचंद, यशपाल, निराला अमृतलाल नागर, सुरेंद्र वर्मा, रामदरश मिश्र, भीष्म साहनी, विष्णु प्रभाकर, राहुल सास्कृत्यायन, निर्मल वर्मा, राजेन्द्र यादव, सुधीश पचौरी, अरूण सिंह, कमलाकांत त्रिपाठी आदि हैं।

आधुनिक काल में स्त्री शिक्षा के कारण स्त्रियों को अपने शोषण का अहसास होता गया और वह पुरूष प्रधान संस्कृति के विरोध में विद्रोह कर उठी। उसका इस विद्रोह का सबसे सशक्त हथियार 'साहित्य' है। ऐसा नहीं है कि इससे पूर्व स्त्रियों की दशा के बारे में लिखा नहीं गया। हिन्दी साहित्य में नारी का चित्रण आदिकाल से विविध रूपों में किया जा रहा है। आदिकाल में नारी का चित्रण वीरांगना और आदर्श सती के रूप में दिखाई देता है। भक्तिकाल के साहित्य में एक ओर नारी को निंदित एवं उपेक्षित चित्रित किया गया है तो दूसरी ओर उसे आराध्य देवताओं की संगिनी के रूप में चित्रित किया है। रीतिकाल में उसे भोग–विलास की वस्तु के रूप में चित्रित किया है। भारतेन्दु युग में समस्याओं से घिरी नारी का चित्रण किया गया है। द्विवेदी युग के साहित्य में ममता, करुणा, वेदना, त्याग आदि रूपों में तो छायावादी साहित्य में प्रियतमा, माँ, देवी, सहचरी के रूप में नारी का चित्रण किया गया है। भले ही स्त्री–विमर्श आधुनिक काल में आया हो, पहले से स्त्री विभिन्न रूपों में साहित्य में वर्तमान रही है। इससे स्पष्ट होता है कि स्त्री–विमर्श का इतिहास काफी पुराना है।

पुरूष साहित्यकारों द्वारा स्त्री के बारे में लिखा गया है, परंतु वह लेखन कभी स्त्री के प्रति करूणा से प्रेरित होकर लिखा गया तो कभी नारी के लिए कुछ नए मूल्यों का सृजन करने के लिए। उसमें अनुभव की प्रामाणिकता, अभिव्यक्ति का अभाव है। उन्होंने अपने साहित्य में नारी को उसी रूप में चित्रित किया जो उनका अभीष्ट था। पुरूष साहित्यकारों ने स्त्री को क्षणिक पत्नी, अनंतकालीन माता, देवी, शक्ति जैसे गरिमामयी रूप में प्रस्तुत तो किया है परंतु एक मानव के बराबर कभी देखा नहीं है। हमारा धार्मिक साहित्य भी इस बात का साक्षी है कि स्त्री को ही हर बार आहुति देनी पड़ी है। इस संदर्भ में 'महादेवी वर्मा' कहती हैं कि ''पुरूष के द्वारा नारी का चरित्र अधिक आदर्श बन सकता है, परंतु अधिक सत्य नहीं, विकृति के अधिक निकट पहुँच सकता है, परंतु यथार्थ के अधिक समीप नहीं। पुरूष के लिए नारीत्व अनुमान है, परंतु नारी के लिए अनुभव। अपने जीवन का जैसा सजीव चित्र वह हमें दे सकेगी, वैसा पुरूष बहुत साधना के उपरांत भी शायद ही दे सके''[10] महादेवी वर्मा के अनुसार पुरूषनारी को उसके यथार्थ रूप में नहीं बल्कि केवल अनुमान के आधार पर चित्रित कर सकता है। स्त्री द्वारा लिखे साहित्य और पुरूष द्वारा लिखे गये साहित्य के बीच 'अनुभव' की प्रामाणिकता को रेखांकित करते हुए 'आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी' कहते हैं कि ''यह विचित्र बात है कि स्त्री

जब साहित्य लिखती है तब स्त्रियों के बारे में ही लिखती है और पुरूष जब साहित्य लिखता है, तब भी स्त्रियों के संबंध में ही लिखता है। दोनों में अंतर यह होता है कि स्त्री के लिखने का उद्देश्य अपने विषय में फैले हुए भ्रम का निवारण करना है और पुरूष का उद्देश्य है, उसके विषय में भ्रम और भी पैदा करना।''[11] इस कथन को सौ प्रतिशत सही न भी माने तो भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि स्त्री–जीवन के बहुत से ऐसे अनुभव हैं, जिनके संबंध में पुरूष को कल्पना से ही काम लेना होता है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि स्त्री अपनी बात अनुभूतियों की प्रामाणिकता के साथ स्वयं कहे।

भारतीय अवधारणा : स्त्रीवाद या स्त्री–विमर्श आज संपूर्ण विश्व में एक प्रमुख नारा बनकर उभर रहा है। विभिन्नि दृष्टिकोणों से स्त्री के संबंध में विमर्श अथवा बहस छिड़ी हुई है। इसके कारण अनेक रूपों में छपी है स्त्री की अंतर कथा। यह है स्त्री–विमर्श का सत्य है–'मैं कौन हूँ?''मेरी अस्मिता क्या है?''क्या मेरा कुछ वजूद है?' आदि–आदि। आम तौर पर स्त्री–विमर्श के नाम पर जिस विमर्श की चर्चा की जाती है, वह मूलतः पाश्चात्य से आयातित माना जाता है।

पाश्चात्य अवधारणा : स्त्री–विमर्श में स्पष्ट किया गया है कि ''पश्चिम में स्त्री–विमर्श से उद्‌भव 'स्त्री–मुक्ति आंदोलन' के माध्यम से स्त्रियों ने अपने लिए पितृसत्तात्मक समाज द्वारा बनाई गई सीमाओं का अतिक्रमण करना प्रारंभ किया और पुरूष सत्ता वाले मानदंडों को तोड़कर स्त्री जाति के विश्वव्यापी संघर्ष को रूपायित किया। इसने जहाँ स्त्री के जागरूक, सचेत व एक जुट होकर संघर्ष करने का मार्ग दिखाया।''[12]इस प्रकार पितृसत्तात्मक व्यवस्था तथा पुरूष सत्ता से मुक्ति के भिन्न–भिन्न रूपों के समन्वित विद्रोह को 'वूमैन लिबरेशन मूवमेंट' का नाम दिया गया, जिसको भारतीय संदर्भ में 'नारी–मुक्ति–आंदोलन' कहा गया। लेकिन भारत में 'स्त्री–मुक्ति आंदोलन' सामाजिक आंदोलनों के साथ–साथ चला जहाँ पुरूष और स्त्रियाँ भी भागीदारी थे।

आधुनिक समय में हिन्दी साहित्यकारों की दृष्टि के अनुसार प्रत्येक देश की परिस्थिति के अनुरूप ही वहाँ के समाज निर्माण होते हैं। पाश्चात्य समाज में 1792 ई. के 'मेरी वोल्सटनक्राफ्ट' की पुस्तक 'दि विंडीकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वुमैन' तथा 'जे.एस.मिल' की पुस्तक 'दि सब्जैक्शन ऑफ वुमैन' के साथ 'वूमैन लिबरेशन मूवमेंट' का प्रारंभ हुआ और कुछ

दशक के बाद शांत हो गया और अब बीसवीं शताब्दी के 60–70 के दशक में दुबारा प्रारंभ हुआ। लेकिन भारत में ऐसा नहीं देखा गया। जिस प्रकार का स्त्री–विमर्श पाश्चात्य के 20वीं सदी के साठ–सत्तर के दशक में देखा जाता है, लगभग उससे मिलता–जुलता स्त्री–विमर्श 'सीमंतनी उपदेश' जो एक अज्ञात हिन्दू द्वारा लिखा गया है, उसमें देखने को मिलता है।

'एक अज्ञात हिन्दू औरत' द्वारा लिखी गई पुस्तक 'सीमंतनी उपदेश' जिसे 1982 ई. में डॉ. धर्मवीर भारती ने संपादित किया था। उसमें स्त्री की समस्याओं को समग्रता से देखा गया है। ''यह पुस्तक हिन्दू स्थान की बेटियों के लिए 'आजादी का घोषणा पत्र' के समान है। यह औरत के दर्द और विद्रोह का सुलगता हुआ दस्तावेज है। जब–जब पढ़–लिखकर उसकी समझ और संवेदना का विस्तार हुआ है, तब–तब सदियों से हो रहे अत्याचार के खिलाफ उसके आँसू आग बनकर घर की चारदीवारी के बाहर बरसने लगते हैं। तब वह अपने विस्तार की तलाश करने लगती है और आसमान की ऊँचाइयाँ छूना चाहती है। तब वह पुत्री, बहन और पत्नी की इमेज के साथ–साथ अपने भीतर के व्यक्ति को भी खोजना चाहती है। यह किताब नारी के भीतर के उसी शाश्वत व्यक्ति की खोज का हिस्सा है।''[13]

लेखिका स्त्री–मुक्ति के लिए इस प्रकार प्रार्थना करती है कि ''हे पिता, हमें कब इस जेलखाने से निकालकर आजाद करेगा। हे जगत् पिता, क्या तूने हमको पैदा नहीं की....लोगों ने तेरा नाम दर्द करार दिया इसलिए तू भी हिन्दुओं की तरह बेरहम बन गया है।''[14] लेखिका ने इस पुस्तक के माध्यम से उसी समय पितृसत्तात्मक व्यवस्था से मुक्ति की आवाज बुलंद की थी। मनुस्मृति के आधार पर उसने कहा कि जब स्त्री और पुरूष की उत्पत्ति एक ही बदन से हुई है, तब दोनों के अधिकार बराबर क्यों नहीं? इस तरह के प्रश्न ही इस व्यवस्था पर दिखाई देते हैं, जो पुरूषवादी व्यवस्था पर चोट है। जो साहित्य के माध्यम हमारे सामने दिखाई देते हैं। जिसे हम देख सकते हैं। प्रश्न करने की तीव्रता हमें मीराबाई में भी दिखाई देती है।

मीराबाई : भारत में स्त्री–मुक्ति की सपने के शुरुआत देखना है तो 1498 से 1546 तक की जिस कालावधि में मीरा के होने का अनुमान इतिहासकार लगाते हैं, वह काल हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल के नाम से जाना जाता है। ''मीरा काव्य के केन्द्र में है। मीरा के भीतर की निखालिस स्त्री जो पुरूष दृष्टि की चौकसी और दबाव से मुक्त हो अपने मनोजगत् में दहकती

लालसाओं को निर्भीक भाव से व्यक्त कर रही है। वह अपने विरोध की प्रचंडता को भी जानती है, परकीय प्रेम के प्रति दुर्निवार आकर्षण की 'अनैतिकता' को भी और अकेले समाज से टकराने के जोखिम को भी। आज की आलोचना स्त्री–विमर्श के नाम पर स्त्री की आत्माभिव्यक्ति को व्यापक सामाजिक संदर्भ में देखने की कोशिश करती है।''[15]

'स्त्री–विमर्श' स्त्री–अस्मिता का आंदोलन है। यह हाशिए पर धकेल दी गई अस्मिताओं को पुनः केन्द्र में लाने और उनकी मानवीय गरिमा को पुनःप्रतिष्ठित करने का महाभियान है। स्त्री–विमर्श अपनी मूल चेतना में स्त्री को पराधीन बनाने वाली पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था का विश्लेषण करता है। यह स्त्री को दोयम दर्जे का प्राणी मानने का विरोध करता है और स्त्री को एक जीवंत मानवीय इकाई समझने का संस्कार देता है। स्त्री–विमर्श पितसृत्तात्मक व्यवस्था की पड़ताल करने के उपक्रम में विवाह संस्था, धर्म, न्याय और मीडिया की स्त्री–विरोधी भूमिका को प्रकाश में लाता है। यह ठीक वही भावोच्छवास है जो मीरा–काव्य में सर्वत्र बिखरा मिलता है। मीरा के काव्य में सर्वाधिक मुखर है विवाह संस्था के प्रति असंतोष का भाव, जो राणा के जानलेवा षड़यंत्र और सास–ननद के उत्पीड़न के जरिए उभरता है। पत्नी एवं कुलवधू के रूप में जैसे ही मीरा से पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा पोषित रूढ़ छवियों में बंधने की मांग की गई स्वप्नद्रष्टा मीरा की स्वतंत्रता की भावना को गहरी ठेस लगी इस बात को हम उनकी पंक्तियों द्वारा देख सकते हैं कि

''लोकलाज कुलकाण जगत् की, दी बहाय ज्यूं पांणी।
अपने घर का परदा कर लौ, मैं अबला बौरांणी।''[16]

किसी भीआत्माभिमानी पुरूष की भांति मीरा अपने जीवन में किसी के आयाचित हस्तक्षेप को स्वीकार नहीं कर सकती। अपने ढंग से जीना उसकी मजबूरी है। मीरा का काव्य 'विद्रोहिणी स्त्री' पर लगाए गए इन आरोपों का जवाब है कि वह स्वतंत्रता की आड़ में संबंध–व्यवस्था से मुक्त हो उच्छृंखल जीवन जीना चाहती है।

हिन्दी आलोचना प्रायः राणा को मीरा के देवर 'विक्रमजीत सिंह' के रूप में चित्रित करती रही है और मीरा के सुखी दांपत्य जीवन की परिकल्पना और ससुराल द्वारा वैधव्य के उपरांत मीरा के उत्पीड़न–दमन के तथ्य को रेखांकित करती रही है। ऐसे ही सवाल हमें आधुनिक युग में महादेवी वर्मा में भी दिखाई देते हैं।

महादेवी वर्मा : हमारे प्राचीन साहित्य में स्त्री–विमर्श के बहुत से बिन्दु मिलते हीहैं, आधुनिक हिन्दी साहित्य में भी इनकी कमी नहीं। 1882 ई. के बाद स्त्री–विमर्श की अगर कोई पुस्तक मिली है तो वह है 'महादेवी वर्मा' द्वारा रचित 'श्रृंखला की कड़ियाँ' जिसकी रचना 1941 ई. के आस–पास हुई। महादेवी वर्मा गरिमामय पूरक युग्म के रूप में दिखाई देने लगती हैं जहाँ पुरूष प्रतिशोधमय क्रोध है तो स्त्री क्षमा; पुरूष शुष्क कर्तव्य है तो स्त्री सरस सहानुभूति, पुरूष बल है तो स्त्री हृदय की प्रेरणा। वे कोमलता, सरसता, भावुकता, क्षमा और करुणा की प्रतिमूर्ति स्त्री के इस रूप पर गर्वित हैं क्योंकि ''स्त्री की कोमलतामयी सदाशयता और सहानुभूति समाज के संतप्त जीवन के लिए शीतल अनुलेप का कार्य करती है।'' इसलिए '' 'श्रृंखला की कड़ियाँ' की भूमिका में उन्होंने उग्रता की बात करने के साथ–साथ 'ध्वंस के लिए ध्वंस' का सिद्धांत प्रतिपादित न करने की बात कहती हैं तो मानो कैफियत देती लगती हैं। अंत में उनकी अभीष्ट स्त्री पारंपरिक रूढ़ छवि से मुक्त नहीं होगी। बस वे चाहती हैं थोड़ा सा ब्रीदिंग स्पेस, ढ़ेर सा आत्मानुशासन और वर्जनाओं को ढालकर बनाई गई 'आधुनिक' आचार संहिता''[17]

महादेवी वर्मा जितने आधुनिक विचारों के साथ चलने की आकांक्षा रखती है, उतने ही परंपरागत भी होते दिखाई देती हैं। ''दरअसल यहां महादेवी वर्मा औसत जागरूक की भांति परंपरा के स्वीकार–नकार के द्वन्द्व में फॅसी दीखती जरूर हैं, किन्तु असल में संस्कार एवं मूल्यबोध उसी परंपरा से लेकर अपने अस्तित्व और व्यक्तित्व, चिंतन और जीवनशक्ति की जड़ें भी वहीं रोप आई हैं। अंतिम परिणति में उसी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद(पुनरुत्थानवाद) परंपरा की एक कड़ी बन जाती हैं जो परिवर्तन की प्रक्रिया में उलट–पुलट और निरीक्षण को क्रांति यथास्थितवाद का पोषण करने लगती हैं।''[18]

उस समय के विद्वद् समुदाय और तत्कालीन पुरूष समाज महादेवी वर्मा के स्त्री–चिंतन को न केवल स्वीकारता है बल्कि एक प्रबुद्ध महिला, चिंतक और कवयित्री के रूप में उनके साहित्यिक–सामाजिक अवदान के प्रति श्रद्धा भी ज्ञापित करता है। रोहिणी अग्रवाल का क्रोध इस बात पर है कि ''वही पुरूष समाज क्यों उनकी पूर्ववर्ती मराठी रचनाकार 'ताराबाई शिंदे' जिसकी 'स्त्री–पुरूष तुलना'–1882; पं. रमाबाई (हिन्दू स्त्री का जीवन–1887) तथा अज्ञात

हिन्दू महिला (सीमंतनी उपदेश–1882) को उसी अंदाज में सिर–आंखों पर नहीं बिठाया? क्या इसलिए कि पं. रमाबाई के रूप में उभरनेवाली चेतना पति के रूप में पुरूष के वर्चस्व को छिन्न–भिन्न करती? बालविधवाओं की दुर्दशा की कैफियत मांगती 'ताराबाई शिंदे' और 'अज्ञात हिन्दू महिला' पुरूष की अमानुषिकता को बेनकाब कर जाती हैं? सावित्री बाई फुले और पं. रमाबाई द्वारा विधवाश्रम खोलने और बालविधवाओं को प्रसूति सुविधा देने के मानवीय प्रयास पुरूषों को अपने नैतिक पतन पर पानी–पानी कर देते हैं? नहीं कटघरे में खड़े होने की आदत नहीं होती समर्थ को अपनी ओर उठती उंगलियों को तोड़ना और मोड़ना खूब जानता है वह।''[19] 'श्रृंखला की कड़ियाँ' के संदर्भ में 'स्त्री–पुरूष तुलना' 'सीमंतनी उपदेश' और 'हिन्दू स्त्री का जीवन' रचनाओं पर विचार दो वजहों से बहुत जरूरी है। पहला–सामंतवादी समाज के ब्राह्मणवादी संस्कार के बीच भले ही ये लेखक–सुधारक स्त्रियाँ जाति–व्यवस्था का विरोध नहीं कर पाईं, किन्तु अभिजात हिन्दू परिवार की स्त्री की स्थिति, नियति और दशा को वस्तुपरक ढ़ंग से देखने, विश्लेषित करने और अपराधी व्यवस्था को बदल डालने की 'आग' इनकी लेखनी और गतिविधियों दोनों को प्रचंड कर देती है, जहाँ लड़ने और कोई भी रणनीति बनाने से पहले अपनी और प्रतिपक्षी दोनों की स्थिति को उघाड़कर पूरा खरा जायजा लेना जरूरी होता है। पं.रमाबाई तो विवाह संस्था में आमूलचूल परिवर्तन की मांग करती हैं।दूसरा है–ये स्त्रियां; स्त्री–वमर्शकार के रूप में अपनी बौद्धिक भूमिका भर से संतुष्ट नहीं थीं। बल्कि कर्मक्षेत्र में उतरकर उत्पीड़ित स्त्रियों को सहायता के लिए निरंतर प्रयासरत दिखाई देती हैं। उल्लेखनीय है कि ''रमाबाई के प्रयासों के परिणाम स्वरूप ही भारत में लड़कियों के लिए मेडिकल की शिक्षा संभव हो गई।''[20]

'श्रृंखला की कड़ियाँ' में अनुभव और सक्रियता की यह आग नहीं है। रमाबाई न केवल हिन्दू विधवाओं के लिए 'शारदा सदन' (1889) और पथभ्रष्ट स्त्रियों व उनकी संतान के लिए 'कृपा सदन' (1898) खोलती हैं बल्कि लड़कियों के पाठ्यक्रम में विज्ञान, भूगोल, चिकित्सा, कानून जैसे पुरूषोचित कहे जाने वाले विषयों की समायोजना की भी मांग करती हैं।महादेवी वर्मा भी रमाबाई की तरह लड़कियों के लिए देशी स्त्री शिक्षिकाओं की मांग करती हैं लेकिन दोनों की मांग के स्वरूप में बुनियादी अंतर है।उन्नीसवीं सदी के अंतिम डेढ़ दशक के कालखंड में सक्रिय रमाबाई के आग्रह के पीछे अल्पसंख्या में उपलब्ध अंग्रेजी शिक्षिकाओं के

समानांतर देशी शिक्षिकाओं की लम्बी कतार विकसित करने का लक्ष्य था ताकि देश के कोने–कोने में फैलकर वे अधिकसंख्य लड़कियों को शिक्षित करें। भिन्न धर्म एवं संस्कृति से उन्हें कभी परहेज नहीं रहा। वे स्वयं हिन्दु धर्म की विकृतियों एवं बर्बरता से आहत होकर ईसाई धर्म में दीक्षित हो चुकी थीं।इसके विपरीत महादेवी वर्मा की मांग देशी शिक्षिकाओं के जरिए लड़कियों के कच्चे मन में सुघड़ गृहिणी के संस्कार और आचार संहिता विकसित कर देने की है। कहना न होगा कि महादेवी वर्मा के लिए स्त्री–धर्म का परिपालन स्त्री होने की पहली और अंतिम शर्त है। 'श्रृंखला की कडियाँ' लेखिका का उच्छवास भावोच्छ्वास है लेकिन 'स्त्री–पुरूष तुलना और 'सीमंतनी उपदेश' के विकट भावनात्मक विस्फोट से भिन्न है। इनमें 'पुरूष की बर्बरता' के बरक्स 'स्त्री की मनुष्यता' को पहली बार साहित्य में ज्ञापित किया गया है।

1.4 समकालीन हिन्दी उपन्यास : महिला लेखिकाएं

मोटे रूप से हम वर्तमान से 15–20 या अधिक से अधिक पच्चीस वर्ष पीछे के समय को 'समकालीन' की परिसीमा में रखकर उस कालखंड की विधा विशेष की साहित्यिक प्रवृत्तियों के विश्लेषण–मूल्यांकन में प्रवृत्त हो सकते हैं। साहित्यिक अध्ययन के इतिहास में दो–चार वर्ष का समय कोई विशेष महत्व नहीं रखता क्योंकि किसी भी काल–खंड की विधा में नव प्रवृत्तियाँ या धाराएँ न यकायक उद्भव होती है, और न ही यकायक उनकी विलुप्त हो जाती है।

इस 'समकालीन' काल के उपन्यास को लेकर दो विद्वत् जन ने भिन्न–भिन्न मानते हुए काल निश्चित किये हैं कि–गोपाल राय–''सन् 1981–2000 की अवधि को 'समकालीन' परिदृश्य मानना विवादास्पद हो सकता है, पर विवेचन की सुविधा की दृष्टि से इसका विकल्प भी नहीं है। इस परिच्छेद में हमने उन उपन्यासकारों का विवेचन करने का निर्णय किया है जिनका पहलाउपन्यास 1981 ई. में या उसके बाद प्रकाशित हुआ। यद्यपि इस वर्ष को समकालीनता का आरंभ मानने का कोई निर्विवाद औचित्य नहीं है, पर समय की कोई न कोई रेखा तो हमें निर्धारित करनी ही होगी जहाँ से समकालीनता का आरंभ माना जा सके।''[21]बीते हुए दशक में जो उपन्यासकार सामने आये हैं, उनकी औपन्यासिक संभावनाएँ पूरी तरह से खुली हुई हैं।

1981 ई. में ही संजीव का पहला उपन्यास 'किसनगढ के अहेरी' 'सर्कस' (1984) और 'सावधान!नीचे आग है'(1986) उपन्यास प्रकाशित हुए। 'किसनगढ़ के अहेरी' अवध की सामंती अहेरी वृत्ति पर और 'सर्कस' सर्कस–कर्मियों के जीवन पर आधारित उपन्यास है। सावधान! नीचे आग है में 'झरिया' क्षेत्र की कोयला खदान की एक दुर्घटना को केन्द्र में रखकर कोयला–माफियाओं, ठेकेदारों और उनके दलालों के स्वार्थी, शोषक और क्रूर रूप का अंकन किया गया है। कोयलांचल के जीवन का कटु, नग्न यथार्थ अपनी पूरी तीव्रता में उजागर हुआ है। संजीव के अन्य उपन्यास हैं–'धार'(1990); 'पाँव तले की दूब' और 'जंगल जहाँ शुरू होता है' (2000) संजीव के उपन्यासों का कथ्य झारखंड और बिहार के दूरदराज अंचलों के यथार्थ से जुड़ा हुआ है। गोपाल राय समकालीन उपन्यासों का आरंभ संजीव के उपन्यासों से मानते हैं। इसके बाद 'पुष्पपाल सिंह' भी समकालीन उपन्यासों को लेकर काल सीमा निर्धारित करते हैं कि ''सन् 1985 या उसके आस–पास के समय से हिन्दी उपन्यास का जो सृजन–परिदृश्य है, उसे 'समकालीन हिन्दी उपन्यास' के रूप में देखा–परखा जा सकता है।''[22]यह बात अपनी जगह पर सही है कि पन्द्रह–बीस वर्ष पश्चात् 'समकालीन' की अवधारणा निश्चित रूप से कुछ और होगी, कुछ और आगे की होगी।

उपन्यास की प्रवृत्ति मुख्यतः अतीतजीवी रही है, वह अपनी कथा के सूत्र अतीत में, बहुत पीछे के इतिहास में खोजता रहा है जबकि कहानी की प्रवृत्ति 'तात्कालिकता' की रही है, अतः वह अपने वर्तमान समय में तेजी से हस्तक्षेप करती हुई समय की प्रत्येक प्रमुख घटना से मुठभेड़ करती रही है। उदाहरण के लिए भीष्म साहनी का 'तमस' (1973) विभाजन की त्रासदी को कथ्य बनाता है तो 'मथ्यादास की माडी' (1988) प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 1857 से 1950 ई. तक के समय को कथा में समेटता है। कामतानाथ का द्विखंडी उपन्यास 'कालकथा'(2000) स्वतंत्रता आंदोलन के दौर को लेकर चलता है। गिरिराज किशोर 'ढ़ाई घर'(1991) तथा 'गिरमिटिया'(2001) में स्वातंत्र पूर्व के समय को ही कथा के केन्द्र में रखते हैं। असगर वजाहत 'सात आसमान' (1996) में कंपनी–राज्य से प्रारंभ कर आजादी के बाद तक के समय तक कथा को पहुँचाते हैं। जगदीश चंद्र 'नरक कुंड में बास' 1994, वीरेन्द्र वर्मा 'निथान्वे' (1999), 'मैं अपनी झांसी नहीं दूँगा' (2004) आदि जैसे उपन्यासों में कथा को पीछे से ही उठाते हैं,

किन्तु वर्तमान से संयुक्त कर उसे पूरी तरह आज में निक्षेपित कर देते हैं। इन सबके रहते हुए भी समकालीन उपन्यास हाल के वर्षों में बहुत तेजी से अपनी प्रवृत्ति को 'तात्कालिकता' की ओर उन्मुख कर रहा है। बिल्कुल सन्निकट का वर्तमान उपन्यास की चिंता का केन्द्रीय विषय बनकर उभरते जा रहा है।

हिन्दी कथा साहित्य में एक नई स्त्री–चेतना का उदय, जिसे एक प्रकार से विस्फोट भी कहा जा सकता है, प्रायः पिछले 15–20 वर्षों में परिलक्षित किया जा सकता है। इस कालावधि में महिला कथाकारों के द्वारा उपन्यास की श्रेष्टता के साथ–साथ संख्या बहुलता में भारी दिखता है। रचनात्मक स्तर पर यह पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में अपने को एक नए सिरे से परिभाषित करने का प्रयत्न था। यद्यपि हिन्दी उपन्यास के जन्म के समय से ही नारी उत्थान को कथ्य बनाकर 'देवरानी जेठानी की कहानी' (पं. गौरादत्त), 'भाग्यवती' (श्रद्धराम फिल्लौरी) से लेकर प्रेमचंद और प्रेमचंद युग, प्रेमचंदोत्तर युग और स्वातंत्रोत्तर समय में नारी के बदलते रूप को केंद्रित कर उपन्यासों की रचना होती रही।

बीसवीं शती में अर्द्ध–शती के समय तक अधिकांश पुरूष लेखकों द्वारा नारी को एक सुधारवादी समाज–व्यवस्था में उसका सम्मान पद स्थान दिलाने, शिक्षा, सुशिक्षा के माध्यम से उसे घर से बाहर के समाज में गौरवपूर्ण रूप में प्रतिष्ठित करने के प्रयत्न ही साहित्य में होते रहे। ''भारतीय भाषाओं में नारी को उसके अपने पूरे वजूद में, पूरी तरह से हाड़–मांस की नारी के रूप में प्रस्तुत करने का प्रथम विस्फोटक प्रयत्न 'इस्मत चुगताई' की 'लिहाफ' कहानी ने किया जिसके प्रकाशन ने साहित्य की दुनिया में एक जलजला–सा दिया, एक थर्राहट जिसकी धमक दूर तक और देर तक सुनी जाती रही।''[23]

समकालीन उपन्यास आज–जन के संघर्ष को व्यक्त करता है। यह व्यक्ति को गूढ़ चिंतन के धरातल पर समझने के बजाय उसके जीवन के छोटे–छोटे मुद्दों को समझना चाहता है और उसे अभिव्यक्ति भी करता है। आदमी का छोटे से छोटा सुख–दुःख इन उपन्यासों में बगैर किसी झिझक के चलता आता है और कई बार तो मुख्य कथानक के बजाय, ये छोटे–छोटे प्रसंग कहीं ज्यादा गहरी अर्थ–व्यंजनाएं कर जाते हैं। उपन्यास अपनी 'असाधारणता' खो चुके हैं और साधारण में ही असाधारणत्व की प्रतिष्ठा करते हैं–''समसामायिक औपन्यासिक परिदृश्य पर विचार करते हुए यह तथ्य आश्वस्तकारी है कि

आठवें दशक की समाप्ति के साथ हिन्दी उपन्यास को लेकर जिस नई गहमागहमी का दौर शुरू हुआ था, वह आज परिपक्वता प्राप्त कर चुका है।''[24]

समकालीन उपन्यासों में आम आदमी के साथ स्त्री का चित्रण गंभीर बहस का विषय रहा है, क्योंकि नारी समाज के सामने बहुत सारे चुनौतियाँ रहीं हैं। नारी समाज की चुनौतियाँ– दहेज उत्पीड़न, यौण शोषण, हिंसा, बलात्कार, कन्या भ्रूण हत्या, देह व्यापार, निरक्षरता, अशिक्षा, लैंगिक भेदभाव, विस्थापन, धार्मिक स्वार्थ की उपस्थिति, राजनीतिक पिछड़ेपन, आर्थिक पिछड़ेपन, रूढ़िग्रस्त मानसिकता की कुप्रवृत्तियाँ आदि छाई रही हैं।

समकालीन उपन्यास साहित्य में पिछली कई पीढ़ियों के उपन्यासकारों को शामिल किया गया है। सहानुभूति और स्वनुभूति के फर्क को समझते हुए भी स्त्री चेतना के निर्माण में पुरूष उपन्यासकारों के महत्व को कम करके नहीं आँका जा सकता है। पुरूष रचनाकारों ने इस मुद्दे पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है। समकालीन उपन्यासकारों में जैनेंद्र का नाम प्रमुख है जिन्होंने अपने पहले के उपन्यास 'परख', सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी में नारी की नई नैतिकता तलाश की है। 'सत्येन कुमार' का उपन्यास 'नदी की याद नहीं'(1998) की नायिका शारीरिक सुख के लिए विवाहेतर संबन्धों को बुरा नहीं मानती। विष्णु प्रभाकर का उपन्यास 'अर्धनारीश्वर'(1992) में स्त्री के दुःख–दर्द और उसकी मुक्ति की बात उठायी गयी है। और स्त्री–मुक्ति के लिए बीड़ा तो स्त्रियों को ही उठाना पड़ेगा– यह संदेश भी दिया गया है। क्षमा शर्मा का उपन्यास 'कब हुई सुबह'(1992) में स्त्री ही स्त्री के अधिकारों को हड़प लेती हैं। 'मनोहर श्याम जोशी' समकालीन समय में सार्थक हस्तक्षेप करने वाले उपन्यासकार के रूप में माने जाते हैं। उनके उपन्यास 'हमजाद'(1996) में स्त्री की स्थिति का चित्रण, बाजार और उपभोक्तावाद के बढ़ते प्रभाव के संदर्भ में किया गया है। भगवान दास का 'बाबुल तेरो देस में' समकालीन समय के महत्वपूर्ण उपन्यासों में से एक है। इसमें 'मोरवाल' केन्द्रीय पात्र है।

समकालीन समय में रूपसिंह चंदेल की 'रमला बहू' यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र की 'गुलाबड़ी', सुरेन्द्र वर्मा की 'मुझे चांद चाहिए' आदि उपन्यासों में स्त्री की विभिन्न स्थितियों का चित्रण किया गया है। फिर हिन्दी में नद–नदिया–सी खुली–डुली मद–भरी मित्रो मरजानी (कृष्णा सोबती) का जन्म हुआ जिसने पारंपरिकता और मर्यादा की चूनर को तार–तार कर साहित्य में नई नैतिकता का सूत्रपात किया। वह नैतिकता थी स्त्री को वस्तु, पदार्थ से व्यक्ति में परिवर्तित

करने की। अंग्रेजी में कमला दास ने 'मेरी कहानी' और पंजाबी में 'अमृता प्रीतम' ने अपनी आत्मकथा 'रसीदी टिकट' लिखकर नारी लेखन के सामने एक नई दिशा ही खोल दी।

समकालीन उपन्यास–साहित्य में स्त्री–लेखिकाओं द्वारा स्त्री पर लेखन एक महत्वपूर्ण आयाम बनकर उभरा है। स्वयं भुक्तभोगी होने के कारण अपनी वैचारिक स्थिति को लेखिकाओं ने बहुत प्रामाणिकता के साथ रखा है। सहानुभूति की जगह स्वानुभूति का प्रश्न ज्यादा प्रासंगिक है। स्त्री की दुनिया का सच, स्त्री से बेहतर कोई नहीं लिख सकता। ''स्त्री को अपनी लड़ाई खुद ही लड़नी पड़ेगी। यद्यपि हिन्दी उपन्यास की नारीवादी सोच और स्त्री की नई चेतना के निर्माण और चित्रण में महिला कथाकारों की कृतियों का ही योगदान अधिक है किंतु यह भी एक न भूलनेवाला तथ्य है कि नारी–स्वतंत्रके नए युग में नई परिभाषा गढ़ने का सर्वप्रथम श्रेय सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास 'मुझे चांद चाहिए' को है।''[25] 'वर्षा वशिष्ठ' की रूढ़ियों से ग्रस्त बंद ब्राह्मण–समाज की कन्या अपने शाहजहाँपुर जैसे छोटे से शहर से आकर अपने रंगमंच की दुनिया से ऊपर उठकर बम्बई के फिल्म जगत तक की सुदीर्घ यात्रा नए नारीत्व की जय–यात्रा है। और वह अपनी पारंपरिकता को तोड़ती ही है, विभिन्न रूपों में स्त्रीत्व के लिए गढ़े हुए पुरातन आदर्शों को पूरी तरह अपनी मुक्ति का नवीन राजपथ बना लेती है। इस प्रकार इस उपन्यास में लेखक ने नारीस्वतंत्र का एक अलग मानक और (मॉडल) प्रारूप दिखाया हैं।

सुरेन्द्र वर्मा के इस दिशा निर्देशक उपन्यास के पश्चात् महिला कथाकारों ने नारीवादी सोच के साथ अनेक औपन्यासिक कृतियों की रचना की जिन्होंने बद्ध स्त्रीवादी विमर्श को यथावत स्वीकृति नहीं भी दी, उन लेखिकाओं ने भी अपने समय की बदली हुई समाजार्थिक स्थितियों में स्त्री–प्रश्नों पर गंभीरता से विचार विमर्श किया। अब नए युग की स्त्री ने अपनी बेचारगी को पूरी तरह तिलांजलि दे दी है, आज वह स्त्री–सशक्तिकरण (वीमेन एंपावरमेंट) के समस्त प्रयत्नों से न केवल भली–भाँति परिचित है अपितु प्रत्येक दृष्टि से उसमें अपनी सक्रिय भागीदारी निभाती है। उपन्यासों में भी रचनात्मक स्तर पर उसका यह प्रयत्न सदैव अपनी सार्थक प्रतीति कराता रहा है। कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा आदि की पीढ़ी के बाद मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यासों में नारी स्वातंत्र का अर्थ अलग तरह से खोजा।

मृदुला गर्ग अपने उपन्यास 'चित्तकोबरा' (1979) में दांपत्य में तीसरे की उपस्थिति और स्वीकार के चित्रण द्वारा साहित्य–लेखन में एक हलचल सी मचाकर रख दी थी। अनित्य (1980) तथा मैं और मैं (1984) में भी वे स्त्री के व्यक्ति–स्वतंत्र के प्रश्नों से रू–ब–रू होती हैं, किन्तु स्त्रीवादी विमर्श की दृष्टि से इस कालावधि में प्रकाशित 'कठ गुलाब' (1996) विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। यहाँ बारंबार 'स्त्रीवादी' (फेमिनिज्म) तर्कों से स्त्री–प्रश्नों को उठाती स्त्री–पात्र उपस्थित होती है। उपन्यास के सब स्त्री–पात्र पुरूष के विरूद्ध प्रतिपक्ष में ही खड़ेहोकर देखने में ही स्त्री की स्वतंत्र अस्मिता का अर्थ खोजते हैं। (स्मिता, मारियान, नर्मदा तथा असीमा एक पुरूष चरित्र विपिन से नारीवाद संबंधी प्रश्न करते हैं)।'कठगुलाब' को 'पश्चिमी फेमिनिज्म' की तर्ज पर नारीवाद के संदर्भ में देखकर वीरेन्द्र यादव कहते हैं कि ''पुरूष को नर–सुअर में तब्दील करता 'कठगुलाब' का यह नारीवाद विमर्श भले ही कितना ही चौंकानेवाला हो, लेकिन उसकी जड़ें भारतीय नारी की त्रासद स्थितियों में नहीं है। शायद इसीलिए लेखिका ने उपन्यास कथा को वैश्विक संदर्भ दिए हैं। लेकिन आज जब समूचे पश्चिमी जगत में पारिवारिक व नैतिक मूल्यों की वापसी की अनगूँज है, तब नारी–विमर्श का यह उत्तर–आधुनिक भाष्य कितना प्रासंगिक है?''[26]

साथ ही साथ कृष्णा सोबती के उपन्यासों में भी वीरेन्द्र यादव पश्चिमी फेमिनिज्म की जड़ें ढूँढ़ते हैं कि ''मर्द की भोग्या व रखैल बना दिए जाने की त्रासदी जिस सहज व स्वाभाविक रूप और ठेठ हिन्दुस्तानी लहजे में 'दिलो दानिश' में प्रस्तुत हुई है वह कृष्णा सोबती का अपना मौलिक मुहावरा है। विचारणीय प्रश्न यह है कि जो नारी पात्र 'दिलो दानिश' में इतने जीवंत व वास्तविक लगते हैं, वही पात्र 'सूरजमुखी अँधेरे के' या 'ऐ लड़की' में इतने कृत्रिम क्यों दीखते हैं? कहीं इसके केन्द्र में नारीवाद का वह बौद्धिक वाग्जाल तो नहीं, जिसकी जड़ें पश्चिमी फेमिनिज्म में है?''[27] साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास जगत में नारी चेतना का वृत्त 'कृष्णा सोबती' की चर्चा के बिना अधूरा रहता है। 'सूरज मुखी अँधेरे के' व 'मित्रो मरजानी' की देह यात्रा से लेकर 'ऐ लड़की' की चिन्तन यात्रा तक उन्होंने नारी संसार के कई अनछुए पहलुओं का संधान किया है। 'दिलोदानिश' (1993) स्त्री की समस्या को कई कोणों से परखता है। इसमें पुरूष वर्चस्व के खिलाफ स्त्री–चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति की गयी है।

मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'चाक' के संबंध में मृदुला गर्ग का उपन्यास कठगुलाब से उपजे प्रश्न थोड़े भिन्न संदर्भों के साथ उठाए जा सकते हैं। 'इदन्नमम' के बाद 'चाक' अत्यंत चर्चित व महत्वकांक्षी उपन्यास है। 'इदन्नमम' के नारी पात्र जितने ही स्वाभाविक और आश्वस्तिदायक हैं, 'चाक' की रेशम और सारंग उतनी ही कल्पित और अविश्वसनीय हैं। पारंपरिक, पिछड़े अर्धसामंती ग्रामीण समाज में विधवा जाट–पुत्री रेशमगर्भधारण करने के बाद की दिलेर–घोषणा 'हाँ मैं पेट से हूँ, बच्चा मेरे पेट से होगा' अति नाटकीय है क्योंकि रेशम की इस उद्घोषणा के पीछे व्यक्तित्वांतरण की जो प्रक्रिया का माहौल था वह औपन्यासिक कथ्य में नहीं दिखाई देता है। रेशम 'कठगुलाब' के नारी पात्रों की तरह न तो पुरूषों द्वारा बलाकृत है और न उत्पीड़ित, फिर उसकी इस विद्रोही मुद्रा का तर्क तो नहीं है।

'देह को ठूँठ न मानना' कहती हुई विधवा रेशम के द्वारा लेखिका देह–राग की यह अंतरधारा ही इस उपन्यास में नारी चेतना की वाहक मानती है। रेशम विवाह संस्था के बाहर गर्भधारण करने के अधिकार की मांग करती है तो सारंग पति पुत्र, ससुर–सास से भरे–परे संयुक्त परिवार में रहते हुए भी प्रेम करने के अधिकार की मांग करती है। देह–मुक्ति या देह–राग की इतनी प्रधानता है कि उपन्यास के सभी प्रमुख स्त्री–पात्र मुक्त यौन–संबंधों में शरणागत होते हैं। प्रेम और यौनमुक्ति के लिए घर, समाज, परिवार में रहते हुए भी माँग करना इन सारे पात्रों का उद्देश्य है। वे घर परिवार को तोड़ना नहीं चाहते हैं। लेखिका प्रेम और देह मुक्ति को स्त्री जीवन की भूमिकाएँ समझती है। ये स्त्रीपात्र सारे की सारे, आर्थिक स्वतंत्रता से भी मुक्त दिखाई देते हैं।

'इदन्नमम' की मंदा सचमुच स्त्री–संघर्ष का प्रतीक लगती है। इसका चरित्र धीरज और ईमानदारी से बुना गया है। इस उपन्यास की सारी स्त्रियाँ पुरूष पराधीनता से मुक्ति चाहती हैं। उपन्यास 'झूलानट' स्त्री–विमर्श को एक नए कोण से प्रस्तुत करता है। 'अल्मा कबूतरी' में भी मैत्रेयी पुष्पा ने स्त्री–जीवन से जुड़े संदर्भों को मुख्य विषय बनाया है। इसमें नायिका अल्मा बार–बार बलात्कृत होकर देह की शुचिता खो देती है। इसमें सभी प्रमुख पात्र संघर्ष के पहले चरण में हैं। इस उपन्यास ने यह आवरण खोला कि किस प्रकार ऊँची जाति के पुरूष दलित और जनजातियों का दैहिक शोषण करते हैं। 'विजन' को लेकर वीरेन्द्र यादव कहते हैं कि ''विजन' के औपन्यासिक कथ्य में विन्यस्त 'कैरियर वुमेन' बनाम स्त्री–अस्मिता का विमर्श

'कठगुलाब' सरीखे उपन्यासों की फेमिनिष्ट नारेबाजी से अलग छिन्नमस्ता सरीखे उपन्यासों में स्त्री–विमर्श का विस्तार है, जो भारतीय समाज के लिए अधिक प्रामाणिक व प्रासंगिक हैं''[28]

'चित्रा मद्गल' नारी–विमर्श की इस गहमागहमी के बीच अपने उपन्यास 'आँवा' में बिना किसी विमर्शकारी प्रतिज्ञा एवं शैलीगत वैशिष्ट्य के स्त्री नियति एवं चेतना के उन कई पहलुओं को कथात्मक बनाती हैं, जो पारंपरिक भारतीय समाज में रचे–बसे हैं। इस उपन्यास में कथा मजदूर आंदोलन और उसमें पिसती स्त्री के दुखों, यातनाओं और संघर्षों को वाणी दी गई है। उनका और एक उपन्यास महत्वपूर्ण है–'एक जमीन अपनी' (1990) इस उपन्यास में बाजारवाद के दौर में स्त्री–शोषण को मुख्य विषय बनाया है। विज्ञापन और बाजार की इस दुनिया में स्त्री का पुरूष समाज किस प्रकार उपयोग या दुरूपयोग करता है। वे विज्ञापन एजेन्सी जगत से परिचय कराती हुई उसके अंतर बाह्य को बहुत सूक्ष्मता से उघाड़ती हैं। समकालीन उपन्यासों में 'राजी सेठ' का उपन्यास 'तत्–सम' 1983 का अपना महत्व है। उपन्यास की नायिका विधवा होने के बाद भी जीवन जीने के लिए निराशा में नहीं पड़ती है। हिम्मत हारे बिना अपने अनुकूलपुरूष को चयन कर विवाह करती है। 'चंद्रकांता' का उपन्यास 'अपने–अपने कोणार्क'(1995) में उड़ीसा की प्रेम कथा उठायी गयी है। 'कुनी' परंपरावादी परिवार और घर की बड़ी बेटी होने के कारण अपने स्त्रीत्व को और खुद को भी भूलकर परिवार की देख–भाल करने लगी है लेकिन अनिरूद्ध को मिलने पर अपने अंदर की इच्छाएँ जागृत होती हैं तो अंततःउसे स्वीकार भी करती है।

समकालीन उपन्यासकारों में 'नासिरा शर्मा' महत्वपूर्ण लेखिका हैं। वे अपने उपन्यास शाल्मली(1987) तथा 'ठीकरे की मांगनी'(1989) के कारण बहुत ही चर्चित हुई हैं। इन दो उपन्यासों में भी नारी की सामाजिक स्थिति को विश्लेषित किया गया है–शाल्मली में हिन्दू परिवार की पृष्ठभूमि में दांपत्य की विसंगतियों का रेखांकन है तो ठीकरे की मँगनी में मुस्लिम परिवार में स्त्री के दंशों को दर्शाया गया है। मुस्लिम परिवार के जीवन का यथार्थ यहाँ सूक्ष्मता से प्रस्तुत हुआ। 'ठीकरे की मंगनी' के माध्यम से लेखिका एक नया सवाल नायिक महरूख के माध्यम से करती है– ''औरत को बनाते हुए खुदा ने कोख तो उसी के वजूद से बनाई है, अपने बाद सृष्टि का अधिकार उसे ही दिया है? फिर उसका श्रेय मर्दों के नाम पर किसने चढ़ा दिया है?''[29] लेकिन इस प्रश्न तक पहुँचने के पूर्व महरूख को जिन ऊबड़–खाबड

पगडंडियों से होकर गुजरना पड़ा, वह नारी अस्मिता के प्रश्न को नई अर्थवत्ता प्रदान करता है। लेकिन नारी अस्मिता की यह तलाश 'अस्तित्ववाद' में न होकर जिस सामाजिक रूपांतरण में होती है, वह नासिरा शर्मा की दृष्टि–सम्पन्नता का परिचायक है। यह नारीवाद का सामाजिक परिप्रेक्ष्य भी है।

प्रभा खेतान का उपन्यास 'छिन्नमस्ता' (1993) स्त्री के आत्मसंघर्ष का प्रतीक है। इस उपन्यास में ऐसी स्त्री (प्रिया) की संघर्ष कथा है जो एक रूढ़बद्ध समाज से टकराते और अपने को भावात्मक स्तर पर लहुलुहान करते हुए अपने अस्तित्व को नये सिरे से परिभाषित करने की कोशिश करती है। समाज और परिवार परंपरा के जड़ मूल्यों को चुनौती देती हुई अपनी अलग पहचान बनाती है, पर कहीं भी असंतुलित नहीं होती है। यह उपन्यास भारतीय समाज का नग्न व क्रूर यथार्थ है। स्त्री के प्रति इस विषय में वीरेन्द्र यादव का कहना हैं–''नारी–देह का जुलूस निकालती पुरूषवादी रति दृष्टि के समानांतर स्त्री लेखिकाओं का नारी–विमर्श नारी जीवन की गोपन सच्चाइयों के उन हादसों को बेपर्दा करता है, जो अपनी उत्साव व अविश्वसनीयता के बावजूद भारतीय समाज का नग्न व क्रूर यथार्थ है।''[30] प्रभा खेतान के ''सभी उपन्यासों की प्रवृत्ति आत्मकथात्मक रही है। जिसे उन्होंने व्यक्तिगत पत्राचार में स्पष्टतः स्वीकार भी किया था''[31] उनका पहला उपन्यास 'आओ पेपे घर चलें' (1990) में पश्चिम की नारी के जीवन के अंतर्विरोधों और पीड़ा का मार्मिक साक्षात्कार है, उसके जीवन का अकेलापन और बेचारगी बहुत कारूणिक रूप में कथात्मक प्रस्तुति पाती है। ''हिन्दी उपन्यास में भारतीय नारी की पीड़ा का चित्रण तो प्रचुर और अनेक रूपों में हो चुका था पर अमरीकी औरत के जीवन के भयानक सच को प्रस्तुत करनेवाला यह हिन्दी का पहला उपन्यास है।''[32] और एक उपन्यास 'पीली आंधी' (1996) में स्त्री का दुःख एक बड़े समाज का दुःख बन जाता है। 'पीली आंधी' प्रतीक है सब उजड़ जाने का। इस पीली आंधी के बाद कैसे एक छोटा सा अंकुर फूटता है और वह फलने फूलने लगता है। यही इस उपन्यास का केन्द्रीय वस्तु है। राजस्थान के मारवाड़ी समाज में स्त्री की स्थिति का चित्रण है। परंपरावादी और आधुनिक दोनों स्त्री–छवियों को इस उपन्यास में चित्रित किया गया है।

1993 में गीतांजलि श्री (1955) का एक लघु उपन्यास 'माई'है। उन्होंने समकालीन कथा–साहित्य में अपनी सशक्त दावेदारी प्रस्तुत की है। बाजारवाद ने अपने फायदे के लिए

स्त्री का शोषण किया तो इसके उलट कभी–कभी कुछ स्त्रियों ने भी सफलता की सीढ़ी चढ़ने के लिए जान–बूझकर अपने शरीर का इस्तेमाल किया इसी संदर्भ को बड़ी बेबाकी के साथ उन्होंने 'माई' में व्यक्त किया है–''दरअसल 'माई' मध्यवर्गीय परिवार के माध्यम से सामाजिक आपातकाल के प्रामाणिक और अविस्मरणीय अनुभवों का अनुवाद है। इस कथा प्रयोग को निरंतर बदलते संबंधों और बढ़ते अंतर्विरोध की पृष्ठभूमि में, देह के चौराहे पर खड़ी स्त्री के नैतिक संकट, विस्फोटक स्थितियों, प्रतिरोध, दमन और द्वन्द्वों का मानसिक उपद्राव भी कहा जा सकता है।''[33]बाजार, स्त्री के अंतः संबंधों के अलावा, स्वच्छन्द प्रेम–संबंधों, उच्च वर्ग जीवन में संबंधों का खोखलापन, आधुनिक पति–पत्नी के बीच तनाव की स्थितियाँ आदि का भी 'माई' में चित्रण हुआ है।

गीतांजली श्री का तिरोहित (2001) उपन्यास एक नये किस्म का है। ''संभवतः हिन्दी में स्त्री समलैंगिकता का अकुण्ठ भाव से चित्रित करनेवाला यह पहला उपन्यास है।''[34] इस उपन्यास के संदर्भ में वीरेन्द्र यादव कहते हैं–''उन्होंने इस उपन्यास से हिन्दी की कथा लेखिकाओं के स्त्री–विमर्श को वयस्क दृष्टि प्रदान की है। कृष्णा सोबती व मृदुला गर्ग के नारी केन्द्रित लेखन को जिन्होंने 'मर्द–मुहावरे' में ढाला था, उन्हें गीतांजलि श्री के इस वयस्क मुहावरे को समझने के लिए अधिक धैर्य व सहानुभूति के साथ स्त्री मानस में प्रवेश करना होगा। इस उपन्यास में गीतांजलि श्री जिस स्त्री राग की रचना करती हैं वे नारी–विमर्श का नया आयाम है। स्त्री–संसार की अंजानी पर्तों को खोलने के लिए लेखिका स्त्री या मर्द मुहावरा न अपनाकर जो वयस्क मुहावरा अपनाती है, वह स्त्री लेखन की आक्रामक मुद्रा को गैरजरूरी सिद्ध कर देता है। मृदुला गर्ग के उपन्यास 'कठगुलाब' में उठाए गए इस प्रश्न कि 'अगर मर्द–औरत के बीच का रिश्ता शोषक–शोषित का रिश्ता है, तो क्या उसका विकल्प लैस्बियनिज्म है? को गीतांजलि श्री 'तिरोहित' में जो सामाजिक संदर्भ प्रदान करती है, वह कई दृष्टियों से मौलिक महत्वपूर्ण है।''[35]

'तिरोहित' के वृत्तांत में 'स्त्री समलैंगिकता' का प्रश्न शारीरिक पसंद के यौन विकल्प तक सीमित न होकर स्त्री की उस व्यापक दुनिया में रचा–बसा है जिसे नारीवादी सिद्धांतकार 'एंड्रीन रिच' ने 'लेस्बियन कांटिन्युम' की संज्ञा दी है। ''पुरूषसत्ता का प्रतिपक्ष रचती यह नई औरत न तो पश्चिमी 'फेमिनिज्म' का अनुकरण करती है और न ही वह नारीवादी के किसी

स्वीकृति साँचे में ढली है। घर, परिवार और समाज के पाखंडी मुखौटे को बेपर्दा होने की प्रक्रिया से उपजा 'पारस्परिक अवलम्बन' जिस 'लेस्बियन कांटिन्युम को रचता है, वह पुरूष सत्ता का 'ध्वस्तीकरण' (सबवर्जन) है।''[36]

अलका सरावगी का उपन्यास 'कलिकथा : वाया बाइपास' (1998) बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक का बहुचर्चित एवं बहुपठित उपन्यास रहा है। 'किशोर बाबू' उपन्यास के केन्द्र में हैं और उन्हीं से जुड़कर स्त्री की विभिन्न स्थितियों का चित्रण किया गया है। इनका दूसरा उपन्यास 'शेष कादंबरी'(2001) में रूबी गुप्ता इस 'आइडेंटिटी क्राइसिस' के साथ जुड़ी हुई है।रूबी गुप्ता की अस्मिता का प्रश्न भले ही नारी–अस्मिता का प्रश्न न हो लेकिन उपन्यास में स्त्री–प्रश्नों की भरपूर अनगूँज है। स्त्री प्रश्नों के लिए कम ही अवकाश है। रूबी की व्यथा–कथा ने अपने दांपत्य की यंत्रणाओं के माध्यम से औरत को लेकर पति के निर्दय व्यवहार को निस्सार करके रख दिया। इनका एक और उपन्यास 'एक ब्रेक के बाद'(2008) है, इसमें कारपोरेट, उद्योग जगत की समस्याओं को बाजारवादी और उपभोक्तावादी नज़रिए से विश्लेषित करता है। ''वहाँ भट्ट की पत्नी के मनोभाव अवश्य स्त्री के अपने स्वतंत्र अस्तित्व के लिए अपनी छटपटाहट दर्शाते हैं''[37]

अनामिका अपने स्त्रीवादी लेखन के लिए पर्याप्त चर्चित हैं। उनका उपन्यास 'तिनका तिनका ' में ''लेखिका इसी रूप में पुरूष की कामाचारी, दुराचारी प्रवृत्ति, स्त्री–पुरूष, पति–पत्नी संबंधों और उनके बीच आज की नारी की भूमिका उसके स्वतंत्र का प्रश्न के विषय में अपनी खुली सोच, नई नारी चेतना का परिचय विविध रूपों में देती है''[38] इनकेएक और उपन्यास 'अवांतर कथा' की नन्ना पुरूष चौखटे को तोड़ती तो नहीं लेकिन उसमें अपनी कल्पना का रंग जरूर भरना चाहती है। उनकी माँग है कि ''दो या तीन बच्चे हो सकते हैं तो, दो या तीन प्रियजन क्यों नहीं हो सकते?''[39] नारी–मुक्ति का यह मर्दवादी विमर्श पुरूष धरातल पर खड़े होकर स्त्री समानता का पक्षधर है। नन्ना पितृसत्तात्मक व्यवस्था या पुरूषवादी वर्चस्व से न तो पीड़ित हैं और न ही उससे मुक्त होना चाहती हैं। वे मर्दवादी सत्ता को ध्वस्त करने के बजाय उसमें अपना 'स्पेस' तलाशती हैं। ''जस्टिस दीनानाथ की पत्नी नन्ना सधाकर के साथ संतुलन के त्रिकोण पर ही टिकी है। अनामिका की 'अवांतर कथा'। नन्ना के लिए यह कोई नई बात नहीं थी क्योंकि नन्ना की दादी ने भी दो–दो मर्द बड़े 'इक्विलिब्रियम' से पाले

थे।''[40]इस उपन्यास की स्त्रियां स्वयंवर, स्वावलंबिनी, स्वाभिमानी होते हुए भी नई औरत नहीं बन पाती हैं, क्योंकि उनकी स्त्री चेतना वायुवीय व प्लेटोनिक होने के कारण उन्मुक्त संबंधों की चाह में तिरोहित हो जाती है। इनसे न तो पुरूष सत्ता का कोई प्रतिपक्ष बनता है और न ही स्त्रीत्व का मानचित्र।

समकालीन उपन्यासों में मृदुला सिन्हा का 'ज्यों महेंदी को रंग, उषा प्रियंवदा का 'रूकोगी नहीं राधिका', मंजुल भगत का 'अनारो', सूर्यबाला के 'मेरे संधिपत्र' और 'सुबह के इंतजार तक', शशि प्रभा शास्त्री के 'मीनारें' और 'कर्क रेखा', निरूपमा सेवती का 'बंटता हुआ आदमी', कुसुम अंसल के 'एक और पंचवटी' और 'रेखाकृति', दीप्ति खंडेवाल का 'प्रिया' आदि उपन्यास समकालीन समाज की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विसंगतियों और जटिलताओं से संघर्ष करती स्त्री से परिचित कराते हैं। इन उपन्यासों में स्त्री जहां अपनी पहचान खोजती नजर आती है, वहीं दूसरी ओर वह 'स्त्री मुक्ति के नए औजार' खोजने में भी जुटी हुई है।

1.5 समकालीन हिन्दी कहानी : महिला लेखिकाएँ :

समकालीन कहानी के संदर्भ में समसामयिक परिस्थितियों का अवलोकन करने के बाद, यह स्पष्ट हो जाता है कि 1965 ई. के बाद बदली इन परिस्थितियों का प्रभाव कहानीकारों पर पड़ा था यह स्वाधीनता प्राप्ति के बाद स्वाधीनता के सपनों से मोहभंग का दौर था। वे स्वतंत्र भारत का क्रूर यथार्थ अपनी आंखों से देख रहे थे। ये नई कहानी आन्दोलन के दिन थे। उनमें नई दृष्टि इन्हीं खंडित परिस्थितियों से उदित हुई। एक तरह से यह समकालीन कहानी के आविर्भाव का कारण भी हुआ था। सभी समीक्षक इस बात से सहमत हैं। इस मोहभंग का वर्णन मन्नू भंडारी की कहानी 'बंद दराजों के साथ' की मंजरी के द्वारा लेखिका करवाती हैं कि ''इस युग में आशा करना ही मूर्खता है, क्योंकि आज जिन्दगी का हर पहलू, हर स्थिति और हर संबंध समाधानहीन समस्या होकर ही आता है, जिसे सुलझाया नहीं जा सकता, केवल भोगा जा सकता है जिसमें आदमी निरंतर बिखरता और टूटता चलता है।''[41] छठे दशक की समाप्ति और सातवें दशक के आरंभ होते–होते वह अस्तित्ववादी संवेदना और गहरी होती गई,

जिसका प्रारंभ स्वतंत्रता मिलते ही देश विभाजन, बढ़ती हुई जनसंख्या, बेरोजगारी, नौकरशाही, भ्रष्टाचार, महँगाई आदि के कारण हुआ था।

डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय ने समकालीन कहानी को 'विद्रोही कहानी' अथवा 'विरोध की कहानी' कहा क्योंकि समकालीन सृजन मूलतः स्थापित व्यवस्था का विरोधी है। वर्तमान व्यवस्था की स्थापित मान्यताओं और मर्यादाओं का ध्वंस ही समकालीन कहानी का मुख्य स्वर है। समकालीन कहानियों में महिला कहानीकारों की उपस्थिति एक सार्थक और विचारोत्तेजक हस्तक्षेप है। इनके कहानियों में मुख्यतः नारी के विविध रूपों का चित्रण हुआ है। उनके पास अनेक दायित्व और समस्याएँ हैं जो सार्थकता पाने के लिए प्रयत्नशील हैं। वे सामाजिक व्यवस्था पर चोट करती हैं। कहानियों का कथ्य प्रभावी होता है और वह जुझारू नारी को प्रस्तुत करती है। डॉ. पुष्पपाल सिंह लिखते हैं–''ये कहानियाँ नारी–छवि पर समाज और कहानी द्वारा थोपे गए दुहरे–तिहरे चेहरों के मुखौटे उतारते हुए नई सामाजिक स्थितियों में अपनी नई बन गयी भूमिका और घर बाहर के नए संबंधों–समीकरणों पर प्रकाश डालती हैं।''[42]लेखिकाएँ यथार्थ के प्रति समर्पित रही हैं। सामान्य जीवन स्थितियों तथा अपरिचित कथ्य को अपनी कहानियों में समेटते हुए उनका मुख्य ध्येय स्त्री की समस्याओं को उठाना ही है। वे कथा चेतना की अनुभूति में समान रूप से संलग्न होती हुई भी विशिष्ट एवं पृथक हैं। ''इन कहानियों की नारी में उसकी बेचारगी, उसकी विवशता या घुट–घुटकर मरने तथा अत्याचार सहने की मुद्रा या करुणा का भोग ही नहीं है अपितु एक सुलगता विद्रोह और ज्वालामुखी–सा फूटता आक्रोश भाव इन कहानियों की पूँजी है।''[43] साठोत्तर काल की लेखिकाओं का दायरा बहुत बड़ा है। वे पुरूष द्वारा थोपी गई नैतिकताओं को नकारते हुए नयी नैतिकता तैयार करती हैं। इन्होंने जहाँ एक ओर स्त्री–पुरूष संबंधों की गहरी पड़ताल की, वहीं नारी की जैविक जरूरतों का खुलेपन के साथ चित्रण किया है। इस धारा को बढ़ाने वाली कहानीकारों में कृष्णा सोबती, मणिका मोहिनी, निरुपमा सेवती, मुदुला गर्ग, मंजुल भगत, कृष्णा अग्निहोत्री, मेहरून्निसा परवेज, नमिता सिंह, कमल कुमार, नासिरा शर्मा, सूर्यबाला, इन्दुबाली इन सारे लेखिकाएँ नई कहानी की दूसरी पीढ़ी की कहानीकार हैं।

'मेहरून्निसा परवेज' के 'टहनियों पर धूल' में पति का पत्नी से संबंध संवेदनात्मक नहीं है पर पत्नी पति को छोड़ने हेतु तैयार नहीं हैं। वे कहती हैं कि ''मेरे कहानी संग्रह 'फाँस की

काई' में पति पर–स्त्री गमन करता है पत्नी उसके प्रति समर्पित रहती है। मन में उभरे विरोध को बलपूर्वक दबाती है। यह उसके अंदर रचे बसे संस्कार है। अंतर्विरोध से मन लबालब है।''[44] पुरूष के बिना आज भी अधिकतर स्त्रियों के लिए कोई पहचान, अस्तित्व नहीं है। यह एक बड़ी चुनौती है। 'उसका घर' की नारियां विद्रोह करती हैं, क्योंकि सहने की भी एक सीमा होती है। उपेक्षित, पीड़ित और दलित और आदिवासी नारी की त्रासदी को मेहरून्निसा परवेज उभारती हैं।

'कृष्णा अग्निहोत्री' के कथा–साहित्य में कस्बाई परिवेश के साथ दांपत्य संबंधों की टूटन और विद्रोह का स्वर प्रमुख है। 'बात एक औरत की' 'परछांइयां', 'कुमारिकाएँ', 'टीसू की कहानियाँ' तीन गलियारे, नपुंसक इनकी चर्चित कृतियाँ हैं। 'मृणाल पांडे' ने अपनी कहानियों में स्त्री को पराधीन करने वाली इन्हीं समाज–निर्धारित मान्यताओं, मूल्यों प्रतिमानों के परत–दर–परत आवरण को उघाड़कर उनके वास्तविक चरित्र को उजागर किया। ''इनकी कहानी 'एक थी हंसमुख दे' इसी प्रयास से रची गई एक अभिधात्मक कहानी है।''[45] 'एक स्त्री का विदागीत' एक और सशक्त कहानी है जिसमें जीवन की जटिलताओं और विषमताओं की पृष्ठभूमि में आधुनिक सोच के प्रभावों और उन संबंधों के ऊपर पड़ने वाले दबाओं एवं तद्‌जनिततनावों को अत्यंत ही संवेदना से व्यक्त किया है। हाल ही में प्रकाशित कहानी संग्रह 'पेटीकोट की बयार' की सभी कहानियाँ स्वतंत्र स्त्री अस्मिता की ही वकालत करती हैं।

'' 'मृदुला गर्ग' का स्त्री लेखन में सबसे धारदार और 'बोल्ड' कथा लेखिका के रूप में नाम लिया जाता है। प्रारंभ से ही इनकी दृष्टि स्त्री–स्वतंत्र व अस्मिता के प्रति सचेत और निश्चयात्मक रही है। उनकी पहली ही चर्चित और पुरस्कृत कहानी 'कितनी कैदें' से यह साफ तौर पर सिद्ध हो जाता है।''[46] और भी उनकी कहानियाँ 'टुकड़ा टुकड़ा आदमी', 'डैफोडिल जल रहे हैं', 'दुनिया का कायदा', 'तुक', 'लौटना और लौटना' 'उर्फ सैम', 'सात कोठरी', 'मंजूर और नामंजूर' जैसी कहानियों में स्त्री–पुरूष संबंध, स्त्री की अपनी आशा–आकांक्षा, विदेशी समाज से भारतीय समाज की समांतर स्थिति आदि को लेकर प्रौढ़ और अनुभवात्मक लेखन प्रस्तुत किया है। 'तुक' कहानी में विवाह–संस्था और प्रेम के नाम पर फैलाये जा रहे भ्रम को तोड़ते हुए पुरूष वर्चस्व को नकारा गया है। 'मेरा' कहानी में भी इन्होंने माँ बनने के समयमें निर्धारण का अधिकार को स्त्री के हाथ में ही सौंपा है। 'नासिरा शर्मा' की कहानियों को पढ़ने

से लगता कि ''इनकी कहानियाँ पुरूष–सत्ता से जुड़े स्त्री–जीवन को 'एक्सपोज' करती हैं। पितृसत्तात्मक मूल्यों संस्थाओं के खिलाफ एक बुलंद स्वर उनके स्त्री–चरित्रों में मिलता है।''[47] वे स्त्री–चिंतन को बदलते परिवेश में भी देखती–परखती हैं। कहानियों का अनुभव–पाट अधिक विस्तृत है, उसमें अपने जाति–वर्ग का भी अनुभव शामिल हुआ है। उनकी एक कहानी 'वही पुराना झूठ है' जिसमें इसी जाति–वर्ग की एक स्त्री चरित्र 'जाहिदा' के माध्यम से 'पुरूष' के झूठ और फरेब को लेखिका ने बेनकाब किया है। पुरूष किस तरह स्त्री को झूठ, फरेब से छलता रहा है, यह केवल जाहिदा का ही सच नहीं है वरन् जन्मना स्त्री होने का सच है। स्त्री के बदलते परिवेश को लेकर 'नाशिरा शर्मा' ने अपनी कहानी 'दुनिया' में शोभना के चरित्र को सूक्ष्मता से व्यक्त किया है। शोभना अपने पिता की मृत्यु हो जाने की सूचना मिलने के बावजूद मुख्यमंत्री के साथ होने वाली मीटिंग के चलते गाँव नहीं जाती है। वह अपनी आधुनिकता और अस्मिता में पाश्चात्य स्त्री तक पहुँच चुकी है–''दिल का कहना मानने का मतलब है चोटें सहना, जो मुझे मंजूर नहीं। वह रास्ता मैं बहुत पहले छोड़ चुकी हूँ। उसमें दुःख है, मिलता जुलता कुछ नहीं है।''[48] उनकी दो कहानी संग्रह 'शामी कागज' और 'पत्थर गली' हैं।

'सुधा अरोडा' का लेखन स्त्री–अस्तित्व से अधिक जुड़ा है। स्त्री उत्पीड़न, शोषण एवं त्रासद को पूर्णरूपेण उभारने का कार्य अपने कहानियों में उन्होंने खुलकर किया है। इस संदर्भ में उनकी चर्चित कहानियाँ 'निर्वासित', 'मिसाफिट', 'स्वप्नजीवी', 'स्टैटलर' एवं 'बगैर तराशे' आदि हैं। चित्रा मुद्गलकी कहानियों में घर की चारदीवारी को लाँघकर दफ्तर तक पहुँचने वाली नौकरीपेशा स्त्रियों की घर और बाहर की समस्याओं का अवलोकन अत्यंत सूक्ष्मता से करती हैं। 'मामला आगे बढ़ेगा अभी', 'पाली का आदमी', 'लाक्षागृह', 'अपनी वापसी' जैसी कहानियाँ इसी थीम को लेकर लिखी गई हैं। नौकरीपेशा नारी की समस्याएँ और उनसे जुड़े हुए गोपन का जो द्वन्द्व है वह लेखिका की एक अन्य कहानी 'दरमियान' में बड़ी ही ईमानदारी से अभिव्यक्त हुआ है। इनकी और एक अत्यंत सफल कहानी है– 'बलि' जिसमें सामंती–व्यवस्था के प्रतीक और पोषक ठाकुरों एवं ब्रह्मणों की ठसक भरी परंपरा एवं प्रतिष्ठा के निर्वहन में पिसती कुँआरी कन्या 'शिवकला' की व्यथा कथा है।

गीतांजलि श्री और अल्का सरावगी की कहानियों में स्त्री को लेकर जो नैतिकताएँ, वर्जनाएँ स्थापित की गई हैं, उनपर स्त्री के नजरिए से बिना कोई क्रांतिकारी मुद्रा अपनाए एक

सार्थक बहस दिखती है। यह एक सहज–स्वाभाविक रचनात्मक पकड़ स्त्री को स्वायत्त करती है। प्रियदर्शन का मानना है कि–''गीतांजलि श्री की 'स्त्रियाँ' वाचाल और सबल नहीं हैं, फिर भी वह अपनी स्वतंत्र अस्मिता में कृष्णा सोबती जैसी कथा लेखिकाओं के स्त्री पात्रों से बहुत आगे की चीज हैं उनकी 'नाम', 'चौक', 'दहली', 'दिशाशूल' जैसी कहानियों की स्त्री–पात्र इस करेक्टर को बखूबी निबाती है।''[49]

'क्षमा शर्मा' नई पीढ़ी की कहानिकारों में से हैं जो अपने लेखन की प्रामाणिकता में रोजमर्रा के जीवन और परिवेश में चल रहे व्यवहारों, स्थितियों से सूत्र लेती हैं। जहाँ 'स्त्री' को 'स्त्री' होने की तीन हजार वर्ष पूर्व से षड़यंत्रपूर्वक रोका जाता रहा है। यह सच वर्तमान और समकालीन मुहावरों में विस्तार पाकर एक नई दुनिया रचता है। इनकी कहानी 'दादी माँ का बटुआ' मादा भ्रूण से मुक्ति दिलाने की कवायदों को लेकर लिखी गई एक संवेदनशील कहानी है। इनकी और एक कहानी है 'वेलेंटाइन–डे'। यह एक ऐसी आधुनिक और 'इंटलीजेंट' स्त्री की कथा है जिसे नकुल जैसा पुरूष स्वीकार नहीं करता है, 'उर्मिला शिरीष' के कथा लेखन में स्त्री–स्वर' आधुनिकता लिए हुए है। इनका स्त्री–चरित्र गाँव और शहर दोनों का है। निम्न जाति और मध्यवर्ग की स्त्री का भी जो दुःख दर्द है वह दर्ज है और अपनी अस्मिता के प्रति सजग भी है। ऐसी कहानियाँ–'वे कौन थे' 'मुआवजा', 'सहमा हुआ कल', 'शहर में अकेली लड़की' इसका प्रमाण हैं। उनकी स्त्रियाँ किसी पीड़ा या दमघोंटू माहौल में नहीं जीती हैं और न ही उनको पारंपरिक शोषण का शिकार ही दिखाया गया है। यह निश्चित रूप से एक नई दिशा की ओर छलाँग है। 'बहुस्थामि' कहानी की शिखा बड़ी ही लड़ाई और जिजीविषा के बाद बहुआयामी जीवन में पहुँच पाती है।

मैत्रेयी पुष्पा अपनी कहानियों में संदर्भित विषय को सूक्ष्मता में जाकर परखने और उसकी विडंबनाओं को जकड़ने में सक्षम कहानीकार सिद्ध होती हैं। इनकी स्त्री केवल मध्यवर्ग की ही नहीं है, वरन् निम्न–वर्ग की स्त्री की कसकऔर पीड़ा को भी इन्होंने व्यक्त किया है। इस संदर्भ उनकी कहानियाँ 'रिजक' और 'ललमनियाँ' हैं। 'संबंध' कहानी में लेखिका स्त्री के अंदर पुरूषवादी वर्चस्व वाली मानसिकता को उजागर करते हुए गौरा के द्वारा हस्तक्षेप करती हैं कि ''माँ तुम बूढ़ी होती जा रही हो तो क्या पुरूष प्रकृति में ढलती जा रही हो।''[50] 'पगला गई है भागवती' कहानी के माध्यम से एक ऐसे परिवार का चित्रण हुआ है जिसमें लड़की का

जन्म अशुभ माना गया है। अन्य जाति के लड़के से शादी करनेवाली अनसूइया को मार डालने से उसकी मौसी भागवती, जो अशुभ मानी जाती थी उसी का पक्ष लेकर दीदी, जीजा के विरोध में आवाज उठाकर विद्रोह करती है। मैत्रेयी पुष्पा ''इसी दशक में लेखन में प्रविष्ट होने वाली परंतु आयु और अनुभव की दृष्टि से वयस्क और प्रौढ़ लेखिका हैं। मैयेत्री पुष्पा जिनके पास जिन्दगी की वास्तविकता के धरातल पर ज्यादा ठोस और मांसल कहानियां और उनकी खुरदरी नायिकाएँ हैं जो अपनी लेखिका को अधिक सहज–स्वीकार्य जमीन देती हैं।''[51] इनके कहानी संग्रह–'चिन्हार', 'ललमनिया', 'गोमा हँसती है' और 'पियरी का सपना' आदि हैं।

इस तरह समकालीन महिला कहानीकारों द्वारा महिला लेखन किया गया है। जिसमें स्त्री के विविध पहलुओं का पर्दाफाश किया गया है। आज की स्त्री अपना इतिहास खुद लिखना चाहती है। नई पीढ़ी की नये कहानीकारों में और भी नाम है जो अपने लिखनेकी प्रक्रियामें हैं। अपनी जगह बनाने के लिए सक्रिय हैं, उनमें प्रभा खेतान, नमिता सिंह, सुशीला टाकभौरे, प्रतिभा कटियार, वंदना तिवारी, कुसुम भट्ट; सारा राय, दूर्वा सहाय, जया जादवानी, दीपक शर्मा, माधुरी छेड़ा, अलका सरावगी; मधु कांकरिया; मृदुला सिन्हा; डॉ. अहिल्या मिश्र; पुष्पा भारती, कविता; कुमुद लता, रेखा सिंह आदि की भी चर्चा अधिक उल्लेखनीय हैं।

1.6 जीवन मूल्य का अर्थ और परिभाषा :

आधुनिक समालोचना के संदर्भ में 'मूल्य' शब्द की चर्चा प्रायः सुनी जाती है। यह शब्द अपने आधुनिक अर्थों में अपेक्षाकृत नया है। परंपरागत संकेतार्थ की दृष्टि से देखा जाये तो 'मूल्य' का अर्थ किसी वस्तु या कार्य के बदले में दी जानेवाली 'राशि मूल्य' कहलाती है। अब 'मूल्य' शब्द का अर्थ व्यापक हो गया है। अब इसका प्रयोग वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक और धार्मिक स्तर पर संपूर्ण मानव व्यवहार के मानदंड के रूप में किया जाता है।

हिन्दी में प्रयुक्त 'मूल्य' शब्द संस्कृत की 'मूल' धातु के साथ 'यत्' प्रत्यय संयुक्त कर देने से बना है। जिसका अर्थ कीमत, मजदूरी आदि से होता है। हमारा अभिप्रेत 'मूल्य' शब्द अंग्रेजी 'VALERE' शब्द से बना है जिसका अर्थ अच्छा, सुन्दर होता है। अर्थात 'मूल्य' शब्द के अर्थ में शिव और सुंदर सन्निहित रहते हैं। इस संदर्भ में 'मूल्य' को सही अर्थ में परिभाषित

आर.के. मुकर्जी ने किया कि ''जो कुछ भी इच्छित, वांछित है वही मूल्य है।''[52] इसलिए कुछ विद्वान Value शब्द के लिए संस्कृत के 'इष्ट' शब्द के समानार्थ प्रयुक्त करते हैं और अन्य मान्यता भी है कि 'मूल्य' शब्द वस्तुतः नीतिशास्त्रीय Value का पर्यायवाची है।

मानव–जीवन के सम्यक और सुचारू रूप से परिचालित करने के उद्देश्य से विद्वानों ने जीवन के कुछ मापदंडों का निर्धारण किया और उन्हीं के आधार 'मूल्य' की अवधारणा अस्तित्व में आई। इस दृष्टि से मूल्य का अर्थ मानव–जीवन के संदर्भ में ही महत्व रखता है। डॉ. देवराज ने भी कहा कि ''मनुष्य किन चीजों को मूल्यवान समझते हैं। अंततः मूल्यवान वस्तु वह है जिसकी मनुष्य कामना करता है।''[53] अर्बन के अनुसार भी किसी भी इच्छा या आवश्यकता के पूरक ही मूल्य है। और भी अधिक विस्तार और पूर्णता के साथ इस प्रकार स्पष्ट किया कि ''वही वस्तु अंतिम रूप से स्वलक्ष्य दृष्टि से मूल्यवान है जो कि व्यक्तियों के आत्मविकास अथवा आत्मानुभूति की ओर ले जाती है।''[54] अर्थात चरम मूल्य वही होते हैं जो व्यक्ति को उसके पूर्ण विकास की ओर गतिशील करें। वास्तव में मूल्यों का समाज में महत्व है तभी तो समाज इनके अस्तित्व को स्वीकारता है। फिर मूल्यहीन समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। ये मूल्य ही व्यक्ति, समाज तथा शब्द के विकास में सहायक होते हैं। कहा जा सकता है कि मूल्यों की सृष्टि मानव समाज के साथ–साथ हुई, इसीलिए मूल्यों का मानव समाज में महत्व है। अतः मूल्य तो जीवन के प्रति एक गुण है, एक अंतर्दृष्टि है, एक अवधारणा है, एक दृष्टिकोण है। मूल्य जीवन के प्रति एक वैचारिक इकाई है, एक दृष्टिकोण है जो विवेकशील मानव के चिंतन का परिणाम है। ये मूल्य मानदंड होते हैं जिनसे व्यक्ति मर्यादित होता है। यह मानवीय क्रिया–कलापों के मापदंड भी होते हैं। कुछ विद्वानों ने मूल्य को व्यक्ति की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में स्वीकार किया है, जिसके आधार पर समाज विशेष के क्रिया–कलापों तथा आचरणों को गाया जाए अर्थात् मानव जीवन के परिप्रेक्ष्य में 'मूल्य' संस्कृति का अभिन्न अंग है, क्योंकि प्रत्येक समाज की संस्कृति के अपने 'मूल्य' होते हैं। यही कारण है कि किसी भी देश के जीवन मूल्यों पर संस्कृति की अमिट छाप होती है लेकिन प्रत्येक समाज या देश की अपनी संस्कृति होती है तो जीवन–मूल्य भी भिन्न हो सकते हैं।

एक व्यक्ति का जीवन, 'जीवन मूल्य' के आधार पर हम निर्धारण कर सकते हैं कि 'जीवन यापन' या 'कैसे जीये' ये दोनों सवाल ही संस्कृति एवं जीवन मूल्यों को समानांतर

स्थिति पर ला खड़ा करते हैं। इसमें कार्य करने की पद्धति 'तथ्य' संबंधित होती है, जबकि जीवन कैसा होना चाहिए में 'आदर्श' होता है। समाज में मूल्य वांछित, गुम, उचित होना चाहिए आदि के अर्थ से संबंधित होते हैं। मूलतः यहां 'तथ्य' तथा 'मूल्य' की दो प्रमुख धारणाएं बन सकती हैं–तथ्य का संबंध 'यथार्थ' से और आदर्श का संबंध 'मूल्य' से हो सकता है। समाज आदर्श से जुड़ा रहने के कारण जीवन मूल्यों के महत्व को स्वीकार करता है। यह मानव जीवन के मानदंड और दृष्टिकोण है और हम जीवन–मूल्यों को जीवन धर्म या जीवनादर्श का पर्याय कह सकते हैं।

1.7. मूल्य परिवर्तन और मानव मूल्य :

पहले पहल जीवन के मूल्य ईश्वरीय सत्ता के रूप में था इसी विषय को डॉ. राजेन्द्र प्रसाद कहते हैं कि ''पहले ईश्वर को ही सर्वोच्च सत्ता माना जाता था, वहीं सबसे महत्वपूर्ण थे। परंतु आज विज्ञान के इस युग में मानव का मूल्य बहुत बढ़ गया है।''[55] अर्थात ईश्वर का स्थान आज इस विज्ञान युग में मानव ने ले लिया है। इस समाज में सबसे बड़ा मूल्य 'मानव–मूल्य' है जो आज प्रासंगिक है। ''आज वही मानव और मानवता संकट में है क्योंकि वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति ने बहुत से मानवीय और सामाजिक मूल्यों को नष्ट कर दिया है।''[56] इन्हीं मानवीय मूल्यों के बारे में डॉ. मोहिनी शर्मा कहते हैं कि ''विश्व–विकास को अगर व्यापक दृष्टिकोण से परखा जाये तो यह मानवता का ही विकास सिद्ध होगा। इस अवस्था की प्राप्ति में प्रारंभ से ही मानवीय मूल्यों का हाथ रहा है। दूसरे शब्दों में आज की संस्कृति मानवीय मूल्यों के परिणाम की ही स्थिति है। वस्तुतः मूल्य ही वह जीवन–द्रव्य (Protoplasm) है, जिससे मानव संस्कृति–रूपी वृक्ष पल्लवित, पुष्पित तथा फलित होता है।''[57] उनका मानना है कि विश्व–विकास में आरंभ से ही मानवीय मूल्यों का महत्वपूर्णयोगदान रहा है। जिसके कारण संबंधों का विकसित रूप विद्यामान होता जा रहा है।

कहा जा सकता है कि 'मूल्य' समाज के जीवन को व्यवस्थित एवं सुशासित करता है। यह सामाजिक, धार्मिक तथा नैतिक व सांस्कृतिक पक्षों की आधारशिला है। जो हमारे कार्यकलापों, व्यवहारों तथा सामाजिक व्यवहारों को मर्यादित करता है। जिसके माध्यम से हम शुभ–अशुभ, सत्–असत्, औचित्य और अनौचित्य का निर्णय करते हैं। इससे समाज सुसंगठित

एवं व्यवस्थित तो होता है साथ ही व्यक्ति भी विकास की ओर उन्मुख होता हुआ शांति, सुख आदि का अनुभव करता है। देश के लिए प्राण त्यागता है तो उसके लिए 'सत्य' तथा देश प्रेम मूल्यवान मूल्य होंगे। यह हमेशा सत्य तथा शुभ या कल्याण के लिए प्रयोग होते हैं। जो उस श्रेष्ट शुभादि के अंतर्गत समाहित होते हैं। निम्नतर मूल्य साधनात्मक मूल्यों के अंतर्गत आ जाते हैं जो साध्य के निर्माण एवं विकास में सहायक होते हैं। ये मूल्य डॉ. वासुदेव शर्मा के अनुसार इस प्रकार हैं कि "ईमानदारी, सत्य, करूणा, प्रेम, दया, अहिंसा, त्याग, परोपकार, आदर, वात्सल्यता, ममता, सेवाभाव, मानवता, नैतिकता तथा आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति के लिए कोई व्यक्ति जोखिम उठाता है तो वह 'मूल्य' उसके लिए परम मूल्य होंगे।"[58] मूल्य मानव जीवन को स्थायी नहीं बनाता है बल्कि उसे अन्य अनेक महत्वपूर्ण उपादानों से उत्कृष्ट भी करता है। जिसके बल पर सामाजिक व्यवस्था संचालित होती है। उसकी संस्कृति स्थिर रहती है। मूल्य अच्छाई, भलाई, सच्चाई तथा जनसेवा के लिए होते हैं। ऐसे मूल्य सामाजिक मूल्यों के अंतर्गत समाविष्ट होते हैं।

मूल्य विकास की स्थिति सामाजिक आचरणों तथा क्रियाओं द्वारा होती है। व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है और वह समाज में रहकर अपने जीवन को विकासोन्मुख बनाता है। समाज के अस्तित्व के बिना उसके व्यक्तित्व के विकास की कोरी कल्पना है। मूल्य विकास की प्रक्रिया हमारे चिन्तन से संपृक्त रहती है और चिन्तन की सतत् प्रक्रिया विचारों को जन्म देती है। विचारों से धारणाओं का निर्माण होता है और ये धारणाएं ही नये जीवन–मूल्यों की सृष्टि करते हैं। मूल्य परिवर्तन के अन्य कारण भी हो सकते हैं जैसे अनिश्चित की स्थिति होना, पराई–संस्कृति या पराई सभ्यता का अनुकरण करने के कारण स्वेच्छा और सुविधा व्यक्ति, दल या सरकार द्वारा लोकमत तैयार किये जाने से, महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं के कारण या आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक आदि से भी मूल्य तंत्र प्रभावित होते हैं।

ऐसे नये मूल्य मानव जीवन में अचानक नहीं होते हैं। इनका आविर्भाव और विकास समाज के साथ–साथ हुआ है। समाज जितना प्राचीन होगा, उतने ही पुराने उसके मूल्य होंगे प्राचीन समय में वैदिक ऋचाओं और मंत्रों से जीवन–मूल्य की स्थापना हुई क्योंकि ब्रह्मण ग्रंथों एवं उपनिषदों में सत्य, ज्ञान, विवेक, पारमार्थिक सत्ता तथा ईश्वर संबंधी मूल्यों की संरचना हुई। ज्यों–ज्यों समय व्यतीत होता गया, त्यों–त्यों धार्मिकता तथा नैतिकता के आधार पर मूल्य

बने हैं। भक्तिकाल में लौकिक पक्ष की अपेक्षाकृत पारलौकिक सत्ता को अधिक महत्व दिया गया और मानव समाज में मूल्य इससे संबंधित हो गये। व्यक्ति इसे बिना किसी आक्षेप के ईश्वर इच्छा मानकर स्वीकार कर लेता। यह प्रकृति का नियम है कि जैसे–जैसे समाज सुसंस्कृत या सुशिक्षित होता गया तो वैसे–वैसे वह प्रबुद्ध होता गया। व्यक्ति बौद्धिक होता गया और बुद्धि–तर्क के आधार पर धार्मिक, सामाजिक, नैतिक मान्यताओं को कसने लगा। यही कारण रहा कि प्रभुता के कारण परंपरागत जीवन–मूल्य गतिशील होते गये।

1.7.1 'जीवन–मूल्य' भारतीय चिंतन

भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही विचारधाराओं के अंतर्गत मूल्य–मीमांसा एक महत्वपूर्ण विषय विद्यामान है। भारतीय दर्शन के अंतर्गत पुरूषार्थ को ही जीवन–मूल्य के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। पुरूषार्थ का मूल अर्थ उन प्रयत्नों से है, जिन्हें जीवन के उद्देश्य की पूर्ति हेतु किया है। हिन्दू जीवन–दर्शन में पुरूषार्थ का रूढ़ अर्थ मानव–जीवन के उद्देश्यों से है। भारतीय दार्शनिकों ने मानव–जीवन के चार उद्देश्य अर्थात मूल्य स्वीकार किये हैं कि ''धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।'' मोक्ष को जीवन का साध्यात्मक मूल्य तथा धर्म, अर्थ और काम को साधानात्मक मूल्य के रूप में मान्यता दी है। भारतीय दर्शनानुसार शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा इन चार तत्वों का समन्वय ही मनुष्य है। शारीरिक विकास हेतु अर्थ, मानसिक विकास के लिए काम बौद्धिक विकास के लिए धर्म तथा आत्मिक विकासार्थ मोक्ष– इन चारों को ही पुरूषार्थ तथा लक्ष्य के रूप में स्वीकारा गया है। वस्तुतः ये ही भारतीय जीवन के चार प्राचीनतम मूल्य है।

धर्म का अर्थ है–मानव द्वारा व्यष्टि तथा समष्टि के प्रति नैतिक कर्तव्यों का धारण करना ही है। इस दृष्टि से धर्म का संबंध नैतिक मूल्यों से हैं। जीवन मूल्य धारणा के अंतर्गत धर्म से आशय कर्तव्य संबंधी दृष्टिकोण से है। अर्थ से आशय गृहस्थी चलाने, परिवार को बसाने और धार्मिक कार्यों को पूर्ण करने हेतु आवश्यक भौतिक वस्तुओं से है। आर्थिक मूल्यों को धार्मिक मूल्यों से संयुक्त करके उन्हें मोक्ष संबंधी मूल्यों की प्राप्ति में साधन मानना भारतीय दर्शन की अपनी विशेषता है।

धर्म संबंधी मूल्य की उपयोगिता और महत्व अर्थ और काम को संयमित तथा सुनियोजित रूप में बनाये रखने तथा उन्हें मोक्ष की ओर प्रेरित करने में है। इस दृष्टि से धर्म अर्थ, काम अर्थात इहलोक को मोक्ष अर्थात् परलोक से समृद्ध करता है। जीवन के चरम–मूल्य के अर्थ में मोक्ष का अर्थ मानव–जीवन की स्वतंत्रता ही है। व्यक्तिगत जीवन के दृष्टिकोण से मोक्ष धर्म, अर्थ और काम का स्वाभाविक परिणाम है। पुरूषार्थ के अर्थ में मोक्ष का अर्थ जीवन की समाप्ति का मृत्यु से नहीं, बल्कि मोक्ष का अर्थ है आत्म–साक्षात्कार है। डॉ. राधाकृष्णन पुरूषार्थ को जीवन के मूल्य स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि ''अपना अस्तित्व बनाये रखना, आत्मा की निर्मलता को बनाये रखना ही जीवन का लक्ष्य है। मानव केवल भौतिक संपत्ति और ज्ञानार्जन से ही संतुष्ट नहीं रह सकता। उसका ध्येय है आत्म–साक्षात्कार करना।''[59]

1.7.2 जीवन मूल्य–पाश्चात्य चिंतन

पाश्चात्य चिंतन–धारा वर्तमान को ही एकमात्र सत्य मानकर उसी को साध्य के रूप में स्वीकार करने की ओर विशेष झुकाव दिखाई पड़ता है। इसी दार्शनिक आस्था पर आधारित पाश्चात्य संस्कृति का स्वरूप भारतीय संस्कृति से भिन्न है। ''जीवन–मूल्यों के संदर्भ में पाश्चात्य चिंतन में मूलतः भोगवादी दर्शन अथवा वर्तमान जीवन को ही सत्य मानकर चलनेवाली विशेषता ईसाई दार्शनिकों के द्वारा अरस्तु के उच्चतम आदर्श अर्थ ईश्वर से तादात्मत की इच्छा से सिद्ध करने के प्रयत्न में जीवन से परे किसी अन्य सत्य की खोज का आग्रह भी देखा जा सकता है। आगे चलकर काण्ट और हीगेल में सौंदर्य, कला, आचार और धर्म आदि की सर्वोपरी मूल्यों के रूप में प्रतिष्ठापित किया। स्टोइक और एपीक्यूरियन लोगों ने भी जीवन के उच्चादार्शों को ही मूल्य माना है। किन्तु पश्चिमी मूल्य–चेतना क्रमशः मुख्य रूप से वस्तुवादिता को ही ग्रहण करती गई।''[60] मूल्य की स्थिति की दृष्टि से भी तीन विचारधारा में मिलती है।

(1) प्रथम विचारधारा के अंतर्गत स्पिनोजा लोट्ज तथा डीवी आदि फलवादी दार्शनिकों को सम्मिलित किया जाता है जिन्होंने मूल्य को व्यक्तिगत मानकर किसी इच्छा की तृप्ति करनेवाले आधार को ही मूल्य कहा है। इनके मतानुसार मूल्य की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं होती उसका

निर्माण तो व्यक्ति की अपनी रूचि, अरूचि, मानसिक स्थिति और उसकी आवश्यकताओं के आधार पर होता है।

(2) लेयर्ड तथा मूर दूसरी विचारधारा के पोषक हैं, जिन्होंने मूल्य को रूप, रस और गन्ध की भाँति व्यक्ति–सापेक्ष न मानकर विषयगत माना है।जे.एस. टफट्स और 'एम.सी. ऑटो' ने भी मूल्य की विषयी निष्ठता को नकार कर केवल उसकी विषय–निष्ठता को स्वीकार किया है।

(3) इन दोनों विचारधाराओं के मद्य का भाग अपनाकर एक तीसरी विचारधारा की स्थापना करनेवाले एक अन्य दार्शनिक एलेक्जेण्डर हैं, जिन्होंने व्यक्ति, जो मूल्य का अनुभव करता है और वस्तु जिसके मूल्य का अनुभव किया जाता है, उन दोनों के संबंध में मूल्य के अस्तित्व को स्वीकार किया है।

उपर्युक्त तीनों दृष्टियों का संक्षेप में समाहार करते हुए डॉ. महावीर दाधीच लिखते हैं कि ''पहला, वर्ग विज्ञान को स्वीकार कर धर्म अथवा प्रत्ययवादी दर्शन की प्रतिष्ठा करना चाहता है। दूसरा, धर्म को अस्वीकार कर वैज्ञानिक चेतना से ही मानव–मूल्यों को प्राणवान बनाने का इच्छुक है। मूलतः यह मानवतावादी है। तीसरा, मत एक प्रकार से वस्तुस्थिति को भावात्मक रूप में स्वीकार कर आदिम अथवा प्राकृतिक जीवन का पक्षपाती है।''[61] इस प्रकार पाश्चात्य चिन्तकों ने भी मानव जीवन–मूल्यों की विविध व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं, जिनमें धर्म, व्यवहारिकता, सुखवादिता, फलवादिता, वैज्ञानिकता तथा प्रकृतिवादिता आदि विभिन्न दृष्टिकोणों से जीवन–मूल्यों का स्वरूप–निर्धारण करने का प्रयत्न किया है।

भारत में जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों का निर्माण तो समाज के द्वारा होता ही है। उसके जैविक तथा मनोवैज्ञानिक मूल्यों की स्वीकृति के लिए भी उसे समाज पर ही आश्रित रहना पड़ता है। समाज में विभिन्न क्षेत्रों में हम जीवन मूल्यों को देख सकते हैं। उनमें तो मुख्यतः ये वे हैं कि सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, आर्थिक और राजनीतिक है।

1.8 सामाजिक जीवन मूल्य :

सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति, परिवार तथा समाज है। सामाजिक मूल्यों का आशय व्यक्ति की सामाजिकता का उन्नयन करनेवाली जीवन–दृष्टियों से होता है। यह उल्लेखनीय है कि व्यक्ति समाज में रहकर व्यक्तिगत तथा आध्यात्मिक मूल्यों को स्वीकार करता है। दयाभाव,

सद्भाव, समाज सेवा, समाज कल्याण, प्रेम, त्याग आदि जीवन मूल्य सामाजिक एवं परपंरागत है। समाज में मूल्यों का निर्माण व विकास होता है। प्रत्येक समाज की अपनी मान्यताएँ तथा परंपराएँ हैं। व्यक्ति इन्हीं परंपराओं में बंधा रहता है। वह समाज समूह में आचरण, क्रियाकलाप तथा व्यवहार करता है। जो सामूहिक मूल्यों के रूप में प्रचलित हो जाते हैं। सहयोग, सहकारिता, समानता, संगठन आदि मूल्य समुदाय से बने। सामूहिक क्षेत्र में कुटुंब व्यवस्था, विवाह प्रथा, नारी सम्मान, लोकाचार, शिष्टाचार, गृहस्थ जीवन का महत्व रहा है। समाज में व्यक्ति को स्वविकास की स्वतंत्रता रही है।मनुष्य का विकास सकी सामाजिकता का विकास कहा जा सकता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का दर्शन इस रूप में मनुष्य के सामाजिकता विकास का चरम बिन्दु है। मनुष्य का विकास उसकी सामाजिकता का विकास कहा जा सकता है। सामाजिक मूल्य सामाजिक जीवन के रक्षा–कवच होते हैं वस्तुतः सामाजिक मूल्य सामाजिकता के उत्थान के लिए आवश्यक कार्य करते हैं।

1.9 आर्थिक जीवन मूल्यः

जीवन–मूल्यों के इतिहास में सर्वप्रथम जिन मूल्यों का निर्माण हुआ, वे हैं आर्थिक–मूल्य। आज भी अविकसित और अल्पविकसित जातियाँ विद्यमान हैं, उनमें चाहे दार्शनिक और कलात्मक मूल्यों का कोई स्थान न हो, लेकिन आर्थिक–व्यवस्था वहां भी मौजूद है और वहां आर्थिक मूल्यों का अस्तित्व है। आर्थिक मूल्यों का संबंध मनुष्य की प्रमुख मूल प्रवृत्तियों से है, जो कि सदैव और सबमें विद्यिमान रही है। मानव जन्म से ही ऐसी मूल्य–प्रवृत्तियां और आवश्यकतायें लेकर आता है जिनकी संतृष्टि के लिए उसे आर्थिक–व्यवहार में प्रवेश करना ही पड़ता है। धर्म, दर्शन, कला, विज्ञान, साहित्य आदि सभी क्षेत्र मानव संस्कृति के इतिहास में उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करते गये हैं, लेकिन इन सबकी आधारशिला मनुष्य की आर्थिक तुष्टि ही है।

मनुष्य की सामाजिक चेतना का मूल है उनकी जीवन प्रणाली है। आर्थिक भिन्नता के आधार पर संस्कृति, राष्ट्र, धर्म, जाति आदि विचारधाराओं, मान्यताओं और मूल्यों में भी अंतर पाया जाता है। दो भिन्न आर्थिक स्थितियों वाले परिवार में पले हुए व्यक्तियों के जीवन–मूल्यों में भिन्नता मिलेगी। आर्थिक स्थिति व्यक्ति के सांस्कृतिक स्तर को रूपायत करती है। इसीलिए

निम्न–वर्ग तथा मध्य–वर्ग की यौन–पवित्रता एवं नारी–विषयक मूल्यों में अंतर मिला है। वस्तुतः अर्थ मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास में बहुत ही महत्वपूर्ण साधन है। इसीलिए परिवार और समाज की आर्थिक स्थिति उसके जीवन मूल्यों को प्रत्येक क्षेत्र में गहराई तक प्रभावित करती है। आर्थिक स्थिति के परिवर्तित होने के साथ–साथ ही उसके मूल्य भी बदलते जाते हैं।

1.10 राजनीतिक जीवन मूल्य

राजनैतिक संघर्ष जीवन के सभी क्षेत्रों में घुस आता है और चेतना के सभी रूपों में प्रवेश करता है। वास्तव में अगर हम आदिम समुदाय के युग को छोड़ दें तो हम देखते हैं कि राजनैतिक स्वार्थ और राजनैतिक संघर्ष संपूर्ण सामाजिक जीवन पर छाये हुए हैं। यहां तक कि आर्थिक जीवन का नियमन भी शासन–व्यवस्था के आधार पर ही होता है। जीवन–मूल्यों पर कानून एवं युद्ध का शासन–व्यवस्था के अंग–रूप में प्रभाव पड़ता है। शासन–व्यवस्था का जन्म मानव–जीवन की बढ़ती हुई जटिलता के परिणाम स्वरूप हुआ है। यह मानव–विकास प्रक्रिया में एक आवश्यक तथा अपेक्षित संस्था के रूप में अस्तित्व पा सका है। शासन–व्यवस्था का संबंध मनुष्य के अस्तित्व और उसके संरक्षण होने के कारण उसने मानव–जीवन को बहुत दूर तक प्रभावित किया है। शासन व्यवस्था के स्वरूप परिवर्तन के साथ–साथ ही मनुष्य की विचारधाराओं का स्वरूप भी बदलता जा रहा है। राजतंत्र, सामन्तशाही, प्रजातंत्र, पूँजीवादी, समाजवादी, साम्यवादी आदि सभी शासन–व्यवस्थाओं के नागरिकों के जीवन–मूल्य भिन्न–भिन्न होते हैं।

कानूनों और मूल्यों में मुख्य अंतर एक राजनैतिक संस्था द्वारा प्रदान की जानेवाली वैधता का है। कानून मूल्यों में क्रांतिकारी परिवर्तन कर सकता है, क्योंकि कानून के लागू होने के पीछे प्रभावशाली सत्ता का हाथ होगा। राजनैतिक सत्ता द्वारा या किसी समुदाय द्वारा मानवीय मूल्यों की सुरक्षा तथा स्थायित्व रखना, वृद्धि करना और उनमें सामंजस्य बिठाये रखना ही है।

युद्ध जो कि एक राजनैतिक निर्णय होता है। मानव–मूल्यों को सर्वाधिक प्रभावित करनेवाली शक्ति है। युद्ध मनुष्य की जीवन–व्यवस्था में महान क्रांति है, जो उसको हिलाकर रख देती है। युद्ध के कारण प्रकृति, सामाजिक–संरचना, अंतर्राष्ट्रीय जीवन, आर्थिक,

राजनैतिक पारिवारिक यहाँ तक कि उसके वैयक्तिक जीवन सभी में विघटन उत्पन्न हो जाता है। मनुष्य के जीवन–साधन, जीवन–प्रक्रिया, चिन्तन–पद्धति सभी परिवर्तित हो जाते हैं। 20वीं शताब्दी के दो विश्व युद्धों ने संपूर्ण विश्व के जीवन–मूल्यों में क्रांति ला दी है।

एक देश की जलवायु भी उसके नागरिकों के दृष्टिकोण को प्रभावित करती है, क्योंकि जलवायु से भौतिक जीवन प्रभावित होता है और भौतिक जीवन से उसके विचार आदि देश की भौतिक समृद्धि के आधार उस देश में पाये जानेवाले भौतिक साधन भी होते हैं। भौतिक साधनों की प्रचुरता व्यक्ति के भौतिक जीवन को ऊँचा उठाती है, उसके जीवन–स्तर को प्रभावित करती है बशर्ते कि उसका उपयोग देश के कल्याण को ध्यान में रखकर किया जाय। इस तरह देश की भौतिक संपदा का प्रभाव वहाँ के नागरिकों के जैविक तथा पराजैविक सभी प्रकार के मूल्यों पर पड़ता है।

आज कोई भी अपमान करनेवाले के सामने सिर झुकाये चुपचाप खड़ा नहीं रहता, बल्कि तनकर उससे कहता है–''मेरा अपमान करने का तुम्हें कोई हक नहीं है। मैं मनुष्य हूँ और हर मनुष्य को मानपूर्वक जीने का अधिकार है''[62] यह एक नयी नैतिकता है जो हमारे समाज में ही नहीं, दुनिया के सभी समाजों में किसी न किसी रूप में सामने आ रही है। इसका नयापन इसी से जाहिर है कि 'मान' के अधिकार के लिए अभी तक हमारी भाषा में कोई शब्द नहीं था और हमें 'मानवाधिकार' शब्द गढ़ना पड़ा। 'मान' कोई लेन–देन की वस्तु नहीं है। वह तो प्रत्येक मनुष्य में मनुष्य होने के नाते ही, अंतर्निहित होता है। मनुष्य होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति एक जैसा मूल्यवान है, चाहे वह स्त्री या पुरूष हो, दलित या ब्रह्मण हो, काला या गोरा हो, इस समुदाय का हो या उस समुदाय का हो या एक देश का हो या दूसरे देश का। उसका मूल्य उसमें अंतर्निहित है और उस मूल्य के साथ कोइ मोल–तोल या समझौता नहीं किया जा सकता। मानवाधिकार को यह स्वायत्तता की भावना नैतिक रूप से उचित तथा आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक दृष्टियों से आवश्यक बनाती है। अतः आज की नयी नैतिकता इस बात पर जोर देती है कि मान मनुष्य का एक निरपेक्ष और उसी में अंतर्निहित मूल्य है और प्रत्येक मनुष्य, मनुष्य होने मात्र से ही मान का अधिकारी है। 'मान' को स्थिति–सापेक्ष बनाना तो श्रेणीबद्ध समाजों के शासक वर्गों की रीति–नीति रही है, जिसके चलते निरंकुश और अत्याचारी शासक भी मान–सम्मान के अधिकारी माने जाते रहे हैं। स्त्रियों,

दलितों, कालों, अल्पसंख्यकों आदि को अपनी तमाम विशिष्टताओं और उपलब्धियों के बावजूद अपमान सहने पड़े हैं।

आज दुनिया में जनतांत्रिक कहलानेवाले बहुत से देश तानाशाही की तरफ जाते नजर आते हैं और फसिस्ट राजनीति के जरिए लोगों को उनके मानवाधिकार से वंचित करने के तरह–तरह के तरीके अपनाते हैं। उदाहरणार्थ भारत में हिंदुत्व के नाम पर की जानेवाली राजनीति स्त्रियों, दलितों, आदिवासियों तथा अल्पसंख्यकों को अपनी मनुष्यता पर गर्व करने से रोककर हिन्दू या भारतीय होने पर गर्व करना सिखाती है। वह लोगों में वर्ण तथा जातिवाली उस पितृसत्तात्मक व्यवस्था को स्वीकार किये रहने की मानसिकता पैदा करती है, जिसमें दासता उचित, आवश्यक और नैतिक माना जाता है। यह राजनीति मनुष्य के साथ किये जानेवाले भेदभाव पर ही चलती–पलती है, इसलिए मनुष्यों के मानवाधिकार के लिए इसमें कोई जगह नहीं है। यह लोगों को दासता के पाठ पढ़ाती है– कभी धर्म के नाम पर, कभी संस्कृति के नाम पर, तो कभी देश या राष्ट्र के नाम पर और उन्हें एक–दूसरे का मान नहीं, अपमान करना सिखाती है। मसलन, स्त्रियों को पुरूषों से हीन, दलितों को सवर्णों से हीन, आदिवासियों को तथाकथित मुख्यधारा के लोगों से हीन और अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों से हीन माननेवाली विचारधारा फैलाकर वह लोगों में एक तरफ दासता की प्रवृत्ति को और दूसरी तरफ हेकड़ी की प्रवृत्ति को बढ़ावा देती है। यह राजनीति मनुष्यों को उनके मानाधिकार से ही नहीं, बल्कि उनकी मनुष्यता से भी वंचित करती है और उन्हें बर्बर बनाकर अन्य मनुष्यों के विरूद्ध उनसे नितांत अमानुषिक कृत्य भी कराती है। इस राजनीति का सीधा संबंध पूँजी भूमंडलीकरण से है, जो निजीकरण और बाजारवाद के जरिए कल्याणकारी राज्य की अवधारणा और उससे जुड़ी जनहित की तमाम चीजों को नष्ट कर ही रहा है, साथ ही लोगों को उनके मानाधिकार से भी वंचित कर रहा है।

1.11 धार्मिक जीवन मूल्य :

धार्मिक मूल्यों का संबंध मन, आत्मा तथा परमात्मा से है। किसी उच्चतर, श्रेष्ठ और पवित्र शक्ति पर विश्वास करके उससे प्रार्थना, पूजा या आराधना के माध्यम से भावात्मक संबंध स्थापित करना ही धर्म है। विश्व के सभी धर्म जिस किसी भी अलौकिक शक्ति में विश्वास

रखते हैं, वह मानवीय शक्तियों से अधिक सत्य, सुन्दर, सामर्थ्यवान, सार्वभौमिक तथा कल्याणकारी मानी गई है। मनुष्य ने अपनी सीमाओं को पहचानकर एक असीम सत्ता की कल्पना की है और जिसको उसने अपने श्रेष्ठ और सुन्दरतम मूल्यों की भेंट चढ़ा दी है। अतः धर्म ने सभी सुसंस्कृतियों को भिन्न–भिन्न रूपों में व्यापकता के साथ प्रभावित किया है।

आज, जबकि चिन्तन में व्याप्त वैज्ञानिकता के कारण धर्म का रूप बदल रहा है, ईश्वर एक भ्रम सिद्ध होता जा रहा है। भौतिक–वादियों ने उसे समाज के लिए अफीम सिद्ध कर दिया है, तब धर्म के नाम पर अब तक बने मूल्य जर्ज हो गये हैं।मानव धर्म के कारण जीवन श्रेष्ठ बनाता है। अहंकार के त्याग, चारित्रिक संचिता से ही मनुष्य अपने संस्कारों को पावन बनाता है। धर्म की अंधी सत्ताएं जब सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का छद्म नाम लेकर राजनीतिक सत्ता तक पहुँचती है तो उसके मूलभूत संकीर्ण सोच की प्रबलता का प्रदर्शन देश के धर्मनिरपेक्ष सिद्धांत को चकनाचूर करता है। असहिष्णुता, क्रूरता, बर्बरता की प्रवृत्तियाँ प्रदान होकर देश में धार्मिक उन्माद को और मजबूती देती है और अन्य संस्कृति, धर्म, संप्रदायों का सह–अस्तित्व उसके लिए असहनीय हो जाता है। एक धर्म, एक संप्रदाय, एक गोत्र में रक्त की शुद्धता की पौराणिक परंपरा को प्रमुखता देकर जनमानस में अलगाववाद, जातिवाद और संप्रदाय की भावना को उकसाया जाता है। देश के संविधान के धर्मनिरपेक्षता, सहिष्णुता, समता, स्वाधीनता, न्याय और भाईचारे के उदात्त तत्वों की प्रधानता का विरोध तब संविधान को बदलने तक के कट्टर तालीबानी फैसलों तक पहुँचता है।

विश्व के प्रसिद्ध समाजविज्ञानियों ने समाज और धर्म के संबंध का विश्लेषण करते समय व्यक्ति और समाज के संबंध कैसे होने चाहिए इसके संबंध में तीन प्रकार के मत व्यक्त किए हैं। वे भिन्न–भिन्न मानते हैं कि (1) व्यक्ति सुख ही समाज का अंतिम हेतु होता है (2) व्यक्ति की प्रगति में ही आदर्श का निर्माण और प्रगति भी है (3) व्यक्ति के अंगभूत गुण और शक्ति को विकास का अवसर दिया जाना ही समाज–व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए।
लेकिन जब डॉ. अंबेडकर धार्मिक विचारों की ओर दृष्टिपात करते हैं तो हम कुछ भिन्न तरह के अनुभव से गुजरते हैं। डॉ. अम्बेडकर का मानना है कि ''हिन्दू धर्म व्यवस्था इन तीनों मतों से अलग है। हिन्दू धर्म में व्यक्ति का स्थान नगण्य है क्योंकि हिन्दू धर्म की समाज–व्यवस्था वर्ण–जाति आधारित है। एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से क्या व्यवहार हो, उसका निर्देश नहीं

है। एक वर्ण का दूसरे वर्ण के साथ संबंध और व्यवहार कहां तक, कैसा हो, का हिन्दू धर्म में निर्देश कठोरता का है। व्यक्ति विकास के लिए समाज की आवश्यकता होने पर भी हिन्दू धर्म ने समाज की अवधारणा और आवश्यकता पर चुप्पी साध ली है। व्यक्ति–जीवन की स्वतंत्रता और प्रगति समाजांतर्गत ही संभव है, इसलिए प्रगति राष्ट्रों में कोई व्यक्ति दूसरे को गुलाम नहीं बना सकता। जिन धर्मों में व्यक्ति स्वतंत्रता को प्रधानता नहीं है, ऐसे धर्म मुझे स्वीकार्य नहीं''[63]

डॉ. अंबेडकर के उद्देश्य से हिंदू धर्म व्यक्तिनिष्ठ न होकर जाति–वर्णाधारित है। जिसके वजह से धार्मिक स्वतंत्रता पूरी तरह से सिकुड़ कर रह गयी। धार्मिक मूल्यों का अंतिम लक्ष्य मानवता की स्थापना करना होना चाहिए लेकिन आज उन धार्मिक मूल्यों में परिवर्तन होता दिखाई दे रहा है। जब से धर्म ने सत्ता को हथियाने की कोशिश की है तब से देश भर में दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक और महिलाओं पर हिंसा का कहर टूट पड़ा है।

1.12 सांस्कृतिक जीवन मूल्य :

संस्कृति वह गुण है जो हममें व्याप्त है। मानव के जीवन–मूल्यों का सीधा संबंध संस्कृति से होता है और सभ्यता के साथ जीवन–मूल्यों का संबंध संस्कृति के माध्यम द्वारा ही संभव है। मूल्य मनुष्य और समाज की गतिविधियों के संबंध में लिए गये वैचारिक निर्णय है। इस रूप में मूल्यशास्त्र संस्कृति का ही एक अंग है। सांस्कृतिक परिवर्तन मूल्यों का भी परिवर्तन है। डॉ. देवराज ने सभ्यता और संस्कृति के अंतर को इस प्रकार स्पष्ट किया है कि ''सभ्यता तथा संस्कृति दोनों मनुष्य की सृजनात्मक क्रिया के कार्य या परिणाम है। जब यह क्रिया उपयोगी लक्ष्य की ओर गतिमान होती है तब सभ्यता का जन्म होता है और जब मूल्य–चेतना को प्रबुद्ध करने की ओर अग्रसर होती है तब संस्कृति का उदय होता है।''[64] मैकइवर तथा हुमायू कबीर ने कहा है कि सभ्यता का संबंध उपयोगिता के क्षेत्र से है और संस्कृति का मूल्यों के क्षेत्र से। संस्कृति परिवर्तन मूल्यों का भी परिवर्तन है। पदार्थ का चेतना को और चेतना का पदार्थ को प्रभावित करना सृष्टि की प्रकृति है। इस दृष्टि से मनुष्य की सभ्यता के परिवेश का उसके सांस्कृतिक वातावरण पर प्रभाव होना अनिवार्य है और इसी रूप में सभ्यता भी मूल्य निर्माण का घटक बनती है।

समस्त राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक संस्थायें, जो कि मानवीय सभ्यता और संस्कृति के उपादान हैं, मनुष्य के सामूहिक चिन्तन का परिणाम और संस्थायें मानव–मूल्यों को दूर तक प्रभावित करती है। इस प्रकार मनुष्य सभ्यता व संस्कृति के प्रभावानुसार अपने वैयक्तिक मूल्यों का सृजन करता है। सभ्यता और संस्कृति की भिन्नता के अनुरूप ही व्यक्ति के जीवन–मूल्य में भी अंतर पाया जाता है। भक्ति के व्यंक्तित्व का निर्माण व विकास समाज से काटकर नहीं हो सकता है, इसलिए वह समाज से शिष्टाचार तथा सामाजिक मान्यताओं को ग्रहण करता रहता है और अपने दायित्व का पालन करता है। साथ ही वह समाज से प्रेम, दया, सदभाव, मानवता, त्याग, अहिंसा, सत्य, ईमानदारी, समाजसेवा व कल्याण आदि की भावनाओं को सीखता है। इसलिए संस्कृति से प्रभावित रहता है। ''समस्त मूल्यों के सृजन में संस्कृति का योगदान रहता है।''[65] यह उल्लेखनीय है कि– प्रत्येक समाज की भिन्न संस्कृति होती है और संस्कृति के अपने मूल्य होते हैं जो समाज के व्यवहारों से संचालित होते हैं। ये सामाजिक कार्यकलाप ही नए जीवन–मूल्यों की संरचना करते हैं। अतः ये मूल्य समाज के निर्माता हैं। यही सामाजिक संबंधों के एक सूत्र में पिरोकर, उसे निष्क्रियता से बचाकर, गतिशील करते हैं और संस्कृति को यथोचित आधार देते हैं। क्योंकि मानव–समाज मूल्यों का संग्रह व संगठन है जो उसकी व्यवस्था को अनुशासित करते रहते हैं।

1.13 साहित्यिक जीवन मूल्य

साहित्य, मानव–जीवन सापेक्ष होता है और मानव–जीवन साहित्य से प्रेरित तथा प्रभावित होता रहता है। यदि साहित्य का सृष्टा मानव है तो मानव–जीवन का चित्रण करना ही साहित्य का उद्देश्य है। साहित्य का मानव–जीवन से चिरंतन एवं घनिष्ठ संबंध है। साहित्य के द्वारा ही मानव–जीवन के विविद रूपों, घटनाओं, समस्याओं, भावनाओं, विचारों और जीवन मूल्यों को अभिव्यक्ति मिलती है। चिर गतिशील और विकासशील मानव–जीवन में मानव के दृष्टिकोण और उसके जीवन–मूल्यों में भी परिवर्तन आना अनिवार्य है। एक ओर इस परिवर्तन में साहित्य का प्रभाव सहयोगी होता है तो दूसरी ओर मानव–जीवन के बदलते मूल्यों के अनुरूप ही साहित्य की विविध विधाओं में भी विषय और अभिव्यंजनाओं का रूपांतरण दिखाई पड़ने लगता है। साहित्य तत्कालीन सामाजिक मूल्यों को ग्रहण करता हुआ, नए जीवन मूल्यों

की सृष्टि के जरिए समाज को गतिशीलता प्रदान करता रहता है। समाज की अभीष्ट मूल्य–स्थापना है, परंतु पूर्व–युग से चले आ रहे मूल्यों में परिवर्तन ऐसे ही नहीं हो जाता, ये किसी विशेष परिस्थिति में आकर नये कलेवर धारण करते हैं। ऐसी स्थिति में साहित्य के मूल्य तो बदलते ही हैं परंतु शाश्वत मूल्य कभी नहीं बदलते हैं बल्कि उनका अस्तित्व विषय परिस्थितियों के कारण दब सा जाता है। जो मूल्य बदलते हैं समाज सापेक्ष ही होते हैं। और जो नये जीवन मूल्य समाज में विकसित होते हैं वे भी समाज सापेक्ष ही होते हैं। शाश्वत मूल्यों का आज भी समाज, साहित्य में महत्व है, जिस प्रकार आदिकालीन साहित्य से भिन्न पूर्व एवं उत्तर मध्यकालीन साहित्यिक मान्यतायें तथा अभिव्यंजनाएँ हैं उसी प्रकार आधुनिक युग में भी युगबोध की क्रमशः परिवर्तित अंतर्दशाओं तथा बाध्य परिस्थितियों का परिचय आधुनिक साहित्य में पाया जा सकता है। बदली हुई परिस्थिति के कारण ही समाज या साहित्य के मूल्य दर्शन और आदर्श बदलते हैं। कविता से गद्य का विकास और गद्य–विधाओं में भी उपन्यास–विधा का सर्वाधिक विकास युगबोध के भावुकता से शनैः शनैः बौद्धिकता में विकसित होने का सूचक है। आज का साहित्यकार युग यथार्थ–जीवन का चित्रण अपने साहित्य में करता है। वह समाज में रहकर अपने भोगे हुए यथार्थ का चित्रण समाज से भिन्न होकर नहीं कर सकता है। इसलिए साहित्यकार अपने साहित्य के अंतर्गत समाज के मूल्यों को अंकित करता है। डॉ. धर्मवीर भारती ने ठीक ही कहा है कि ''साहित्य मनुष्य का ही कृतित्व है और मानवीय चेतना के बहुविध प्रत्युत्तरों में से एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रत्युत्तर है। इसलिए हम आधुनिक साहित्य के बहुत से पक्षों को या आयामों को केवल तभी बहुत अच्छी तरह समझ सकते हैं जब हम उन्हें मानव मूल्यों के इस व्यापक संकट के संदर्भ में देखने की चेष्टा करें''[66]

पाठक के जीवन–मूल्यों के निर्माण तथा परिवर्तन का एक कारण साहित्य का प्रभाव भी होता है। ठीक उसी तरह साहित्यकार के विचारों तथा उसके जीवन के प्रति दृष्टिकोण के निर्माण का आधार युगीन आचार–विचार, रहन–सहन, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा धार्मिक परिस्थितियाँ और नियम होते हैं। अतः साहित्य के सही मूल्यों के लिए संपूर्ण युगबोध आवश्यक होता है और युग–बोध के सच्चे परिचय का माध्यम युगीन साहित्य ही हो सकता है। इसीलिए जीवन–मूल्यों और साहित्य का सापेक्ष संबंध मानना चाहिए। कोई भी साहित्य युगीन जीवन मूल्यों से निरपेक्ष नहीं होता है। साहित्य के मूल्य जीवन, जीवन–मूल्यों

से ही निर्धारित होते हैं। साहित्यकार केवल उन्हें नयी भाव–मूर्तता प्रदान करके ग्राह्य और सर्वजन–संवेध बना देता है, जिससे उसकी कृति मनुष्य की चेतना और उसके आचरण को नियंत्रित करनेवाली सहज–प्रवृत्तियों को अधिक संस्कृत और अपने सामाजिक परिवेश के प्रति अधिक जागरूक बनाती जाती है–युग, युगांतर तक।

प्रत्येक युग का साहित्यकार धार्मिक मत, दार्शनिक, चिंतन प्रक्रिया और राजनैतिक गतिविधियों के मध्य सामंजस्य स्थापित करता हुआ साहित्य सर्जन प्रक्रिया को गति प्रदान करता है और नवीन मूल्यों की स्थापना पर बल देता है। हालाँकि सामाजिक तथा धार्मिक सुधारवादी व समाजसेवी तथा राजनीतिक नेताओं के द्वारा भी नये मूल्यों की स्थापना हुई परंतु मूल्य संकट के समय साहित्यकार का दायित्व बढ़ जाता है। उसे ऐसी विषय स्थिति में और अधिक जागरूक रहना पड़ता है। मध्यकाल में कबीर, तुलसी तथा अनेक धार्मिक नेताओं और अठारहवीं व उन्नीसवीं शताब्दी के राजनैतिक क्षेत्र में राजा राममोहन राय, विवेकानंद, दयानंद, गांधी आदि ने समन्वय की नीति को अपनाकर जनता को नये विचार, नये चिंतन, नये भाव तथा नये मूल्यों से जोड़ा, वह समन्वयात्मक दृष्टि ही सजग दिशा प्रदान करती है। यह देखा जाये तो सामाजिक चेतना का भाव पूर्वयुगीन साहित्य में अत्याधिक दृष्टिगोचर होता है, युगीन परिवेश में उतना नहीं है।

छायावादी काव्य के मूल्यों में जहाँ वैयक्तिकता, सुकोमल कल्पनाशीलता, आदर्शवादिता और सौंदर्यपरक का प्रधान्य दिखाई पड़ता है, वहीं प्रगतिवादी काव्य में सामाजिकता, कटु यथार्थवादिता, वास्तविकता और उपयोगिता का महत्वपूर्ण स्थान है। इन दो काव्यधाराओं के साहित्यिक मूल्यों में पाये जानेवाले परिवर्तन का कारण जीवन–मूल्यों का बदलाव ही है।

साहित्य की यही विशेषता रही है कि वह तत्कालीन–परिस्थितियों से प्रमाणित रहा है। साहित्य हमारी परंपराओं से जुड़े रहने पर भी परंपराओं के प्रति विद्रोह करके उसे नयी दिशा तथा गति प्रदान करता है। कारण यही है कि आज वैज्ञानिक युग विघटन का युग है। इस युग का व्यक्ति तथा परिवार व समाज नयी शिक्षा, नये दबाव और नयी परिस्थितियों से टूट रहे हैं। उनके जीवन में मूल्यों का जो विघटन आ रहा है वह उसके आत्मकेन्द्रित होने से है। आज का व्यक्ति मूल्य संकट की स्थिति में न तो मूल्यों को पूरी तरह से त्याग रहा है और न ही पूरी तरह से आत्मसात् कर रहा है। यही साहित्य की स्थिति है। इतना आवश्यक है कि

यह युग मूल्यहीन है, उसके नये पुराने की टकराहट है, कुण्ठाग्रस्त है और तनाव का जिसे आधुनिक साहित्य ने स्वीकारा है। इसका श्रेय आधुनिक राजनीति को दिया जा सकता है क्योंकि राजनीतिक चेतना ने प्रत्येक व्यक्ति की मानसिकता को प्रभावित किया। साहित्य में मानवीय मूल्यों अंतश्चेतना की क्रियाओं की विस्तृत एवं गहराई के साथ अभिव्यक्ति होती है क्योंकि साहित्यकार पर किसी प्रकार का बंधन नहीं होता है। यही कारण है कि आज के साहित्य में मूल्य संक्रांति दृष्टिगोचर है।

साहित्यकार बन्धन मुक्त होने के कारण मूल्य अंतश्चेतना की क्रिया की विस्तृत एवं गहराई के साथ अभिव्यक्ति करता है जो सामाजिक अंतप्रक्रिया का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है और जिसके आधार पर मानव की संवेदनाओं, आकांक्षाओं, क्रिया–कलापों, व्यवहारों, जीवन मूल्यों तथा अभिवृत्तियों को निर्मित किया जाता है। फलतः बदलती हुई जीवन, परिस्थितियों के साथ–साथ मानव मूल्यों आदर्शों, प्रतिमानों, सद्वस्तुओं, जीवन दर्शन, संकल्पों आदि में परिवर्तन दृष्टि गोचर है। यह परिवर्तन सामाजिक मूल्यों के साथ वैयक्तिक मूल्यों में भी है, जो वैयक्तिक मूल्य सामाजिक मूल्यों के विकास में सहायक होते हैं, परंतु आज के साहित्य में यथार्थ धरातल पर व्यक्तिवादी मूल्यों का चित्रण अत्यधिक है। व्यक्ति ज्यों–ज्यों शिक्षित होता जा रहा है, त्यों–त्यों अंतर्मुखी होता जा रहा है। आज के साहित्य में व्यक्ति की नयी मानसिकता की तीव्रता तथा कुण्ठा का वर्णन है। इन विभिन्न दुर्बल मानसिकताओं के कारण साहित्य के मूल्य टूटते हुए दृष्टिगत हैं। ''वैसे नये साहित्यकारों की नयी पीढ़ी विघटनों, विसंगतियों तथा नयी मानसिकता को लेकर चलती है। यह एक वैचारिक बौद्धिक संक्रांति से गुजर रही है। नया व्यक्ति, नया व्यक्ति खोज रहा है, इस खोज में वह छटपटाहट और दिशाहीनता की स्थिति में है।''[67]

लेकिन सच्चा साहित्यकार उसे ही कहा जा सकता है जो समय की परिधि के मध्य समन्वयात्मक प्रवृत्ति से यथार्थ मूल्यों का अंकन करता हुआ मानव मूल्यों की स्थापना करता है। अतः साहित्य का प्रतिपाद्य विषय जीवन–मूल्य है जो मानव–मूल्यों तथा मानव संवेदनाओं को महत्व देता है।

1.14 पितृसत्तात्मक व्यवस्था : नारी जीवन मूल्यः

प्रत्येक समाज की भिन्न संस्कृति होती है और संस्कृति के अपने मूल्य होते हैं जो समाज के व्यवहारों से संचालित होते हैं। ये सामाजिक कार्यकलाप ही नए जीवन मूल्य की संरचना करते हैं। ये मूल्य जो स्त्री के लिए पितृसत्तात्मक व्यवस्था में निर्णय लिए गये हैं कहीं पर भी स्त्री से पूछकर नहीं बनाये गये हैं। नारी सदा से समाज की मुखापेक्षी रही है। वह पितृसत्तात्मक व्यवस्था के सम्मोहन में रूढ़ियों तक बँधी रही। समाज मूल्यों के नाम पर उसे नैतिकता के पाठ पढ़ाता रहा और वह इन्हें मूक भाव से पढ़ रही। किसी व्यक्ति या वर्ग का दूसरे व्यक्ति या वर्ग की अस्मिता पर उसकी सहमति के बिना हस्तक्षेप को वर्चस्व की संज्ञा दी जा सकती है। वर्चस्व का यह रूप राजनैतिक, आर्थिक, बौद्धिक और नैतिक हो सकता है। नारी के संदर्भ में भी ऐसी ही स्थिति रही।

एक स्त्री क्या चाहती है? यह एक बहुत बड़ा प्रश्न है। इस प्रश्न का उत्तर सभी अपने–अपने ढ़ंग से देते हैं। जैसे कोई कहता है कि स्त्री को गृहस्थी मिल जाए, परिवार, पति, बच्चे मिल जाएं तो वह खुश रहती है और अपने–आप में पूर्णता का अनुभव करती हुई संतुष्ट रहती है। कोई कहता है कि स्त्री पुरूष की छाया बनकर जीना पसंद करती है। वहीं कुछ लोग मानते हैं कि कुछ उच्छृक्त औरतें दैहिक स्वतंत्रता पाकर प्रसन्न रहती हैं अर्थात वे अपनी देह को अपने ढंग से जीना चाहती है। पुरूष प्रधान समाज में ऐसे उत्तर मिलना स्वाभाविक है। किंतु सही उत्तर तो स्त्री ही दे सकती है कि वह क्या चाहती है, अपने जीवन से, अपने समाज से, अपने परिवार से या फिर अपनी देह या अपने विचारों से। ''जब भी स्त्री ने अपने अस्तित्व से जुड़े इस प्रश्न का उत्तर देना चाहा तो उसे झिड़क दिया गया कि 'बहुत बोलने लगी हो', 'अपनी जबान पर लगाम दो।', 'आवारा हो चली हो' मुंह से आवाज भी निकाली तो ठीक नहीं होगा आदि–आदि। आवाज! हाँ, इसी आवाज को स्त्री के भीतर से बाहर आने की आवश्यकता सदैव रही है।''[68]

नारी को पुरूष ने उन समस्त गतिविधियों से दूर रखा जो उसकी चेतना का वर्धन कर सकते थे–''इस संभावना का पूर्णतया खारिज नहीं किया जा सकता कि किसी काल विशेष में स्त्रियाँ संयोगवश और स्वाभाविक तौर पर अपने जैविक व्याकरण के अनुरूप गृहस्थी के उन्हीं कार्यकलापों में शरीक हुई हो, जो कालांतर में उन्हें हाशिए पर रखने के शाश्वत कारण बन

गए हों तथा शिकार करना, युद्ध, राजनैतिक तथा धार्मिक विधियों का संपादन जो कालक्रम में अपेक्षाकृत ज्यादा महत्व के समझे गए, उन्हें पुरूषों ने अख्तियार कर लिया हो।''[69] आरंभ कार्यों का विभाजन स्त्री–पुरूष दोनों की सहमति से बना होगा जो कालांतर में नारी पर आरोपित हो गया। इस प्रकार नारी ''घर की चहारदीवारी में एक बार सिमटी तो सिमटती चली गयी तथा उन सुविधाओं से वंचित होती चली गई, जो उन्हें इस दायरे से बाहर जाने में प्राप्त हुई होती।''[70] सामंती आधार पर हमारी व्यवस्था विकसित हुई है जो वह यथास्थितिवाद को बनाए रखने में विश्वास रखती है। जो जहाँ है वह वहीं रखकर अपने कर्तव्यों का पालन करता रहे। इस सामंती व्यवस्था को हंस के संपादक, कथाकार राजेन्द्र यादव पिरामिड के आकार की बताते हुए कहा कि ''सामंती व्यवस्था पिरामिड के आकार में ऊपर से नीचे की ओर फैलाती है। हर पत्थर और ढोके का कर्तव्य है कि वह जहाँ है वहीं स्थिर रहकर शीर्ष को साधें रहे।... वरना यह शीर्ष के प्रति विश्वासघात है।... यहाँ सारी मूल्य संहित और व्यवस्था की बनावट यही है। जो ईंट अपने कर्तव्य या धर्म से जरा भी हिलती या ऊपर जाने की कोशिश करती है। वह या तो तोड़ दी जाती है या बेकार करार देकर फेंक दी जाती है।''[71]

सामंती व्यवस्था में व्यक्ति प्रमुख नहीं होता, केवल संस्था और व्यवस्था होती है। नारी के साथ भी ठीक यही स्थिति थी। पति उसके लिए स्वामी या परमेश्वर या और यह समाज का एक मूल्य ही था, जिससे नारी का जीवन संचालित होता था। अपनी इसी सामाजिक स्थिति के कारण नारी ऐसे मूल्यों से घिरी रही जिन्होंने सदियों की गुलामी, सामाजिक स्थिति और असुरक्षा में बने रहने से नारी को सारे आत्मविश्वास को छीन लिया है। उसे अपने होने और बनने की हर स्थिति में पुरूष की स्वीकृति, समर्थन चाहिए। पर निर्भरता के इस वातावरण से नारी में जो वैयक्तिक मूल्य जन्में थे–वह आगे बढ़ते हुए फिर वापिस अपनी जगह स्थिर होते दिखाई देती हैं। ''आर्थिक और सामाजिक निर्भरता के माहौल में नारी होने की व्यर्थता, अर्थहीनता और खोखलेपन का अभिशाप संबंधों के झूठे पड़ते जाने का दंश... फिर परिचित दुनिया में लौट आने या अपरिचित शून्य में छलांग लगाने वाली आत्महत्याएँ।''[72]नारी ने जब–जब इस व्यवस्था से बाहर निकलने का प्रयास किया, तब–तब उसके प्रयास को या तो तोड़ दिया गया था या व्यर्थता का नाम देकर फेंक दिया गया। इस प्रकार नारी सामंती मूल्यों

के प्रति निष्ठा निभाती हुई जीवन व्यतीत करती रही। समाज के आंतरिक विद्रोह समाज के मूल्यों को बदल नहीं पाए।

स्वतंत्रता से पूर्व तो भारतीय नारी पुरूष से राजनैतिक स्थिति में हीन थी, किंतु संविधान निर्माण के साथ वह पुरूषों के समकक्ष आ खड़ी हुई है। आजादी के बाद भारतीय संविधान के प्रावधानों में मताधिकार और अन्य राजनैतिक अधिकारों में स्पष्टतः इनके प्रति कोई भेदभाव नहीं रखा गया है। स्त्री को राजनीतिक अधिकार तो प्राप्त हो गए। लेकिन नारी समाज द्वारा उस पर लगाये गए नैतिक बंधनों के भार से दबी रही। इस संदर्भ में मैत्रेयी पुष्पा की बातें महत्वपूर्ण हैं कि–''दलित समाज का जीवन विकास के लिए आरक्षण स्वतंत्रता या सबसे प्रखर स्वर है, जो आज 'जय भीम' कहकर भक्तिभाव में गोते लगा रहा है। मेरे मन में सवाल उठता कि मालिकीकरण के रस्से से जिनकी गर्दन बँधी थी, उनमें स्त्रियाँ थी और दलित के मुकाबले वह कई गुणा ज्यादा थीं। गांधीजी ने स्त्री–दुर्दशा पर गौर किया, मगर भीमराव अंबेडकर की तरह उन्हें ठोस आधार नहीं दिया।''[73]

इस व्यवस्था से नारी ने जो पाया है वह अपने साहस के चलते ही पाया है। शिक्षा अधिकार, आर्थिक निर्भरता, संपत्ति में साझेदारी और सत्ता की संभाव्य भागीदारी। इन सब अधिकारों को लेकर नारी ने स्वाधीन होने का अनुभव कर सकती है। ये समस्त अधिकार पाने के क्रम में नारी वैयक्तिक हुई। वैयक्तिकता का यह अधिकार नारी को सर्वप्रथम अपनी देह को अपने अधिकार में लेकर चलने से हुआ। भारतीय नारी के वैयक्तिक मूल्य सामाजिक मूल्यों की छत्र–छाया में सिमटे रहे हैं। जैसे– स्त्रीत्व, शीलतत्व, प्रातिव्रत, मातृत्व आदि ये वैयक्तिक मूल्य पाश्चात्य नारीवादी आंदोलनों और नारी की आर्थिक आत्मनिर्भरता से दरकने लगी हैं। देह के नाम पर परतंत्र की गई नारी ने अपनी स्वतंत्रता का हथियार भी उसे बना डाला। आज की चेतना संपन्न नारी वैचारिक संपर्क, सांस्कृतिक संगति और सूचना माध्यमों से जिन मूल्यों को ग्रहण कर रही है उन्हें वह इस प्रकार अभिव्यक्ति देती है–''आत्मनिर्भय को अधिकार का अर्थ होगा ऐसी स्वतंत्रता जिसमें सुरक्षित एक जीवन अविवाहित दांपत्य अथवा लिव इस संबंध अविवाहित मातृत्व या विवाह के भीतर भी मातृत्व से इन्कार का अधिकार अनचाहे दांपत्य से बाहर निकल आने की सुविधा, एकाधिक विवाह या मनचाहे प्रेम प्रसंगों और संबंधों के स्वच्छंद जीवन जैसे चुनावों की निर्वाधता हो।''[74] यानी स्त्री उन तमाम सामाजिक मूल्यों को नकारना

चाहती हैं जिन्हें उन तक ही सीमित किया गया। वह स्वतंत्र प्रणी बनकर अपने अनुसार अपनी जिंदगी जीना चाहती है।

मैत्रेयी पुष्पा स्त्री स्वतंत्रता से जुड़े मुद्दों को लेकर बात करते समय स्त्री–विमर्श की मूल सैद्धांतिक अवधारणा देती हैं कि ''मेरे लिए स्त्री–विमर्श का अर्थ स्त्री की स्वतंत्रता इच्छा और अस्मिता है''[75] वास्तव में मातृसत्ताक से पितृसत्ताक का आवतरण ही स्त्री जाती की सबसे बड़ी हार थी। स्त्री को धरती व देवी कहा गया किन्तु वह पुरूष की संगी, मित्र के बराबरी कभी नहीं रही। पुरूष स्त्री को कई रूपों में सुख–सुविधा अपने मुताबिक दिया लेकिन समानता कभी नहीं दिया। भारत हो या विदेश कहीं पर भी स्त्री मात्र उपेक्षा और बंधनों को सहती है।

सदियों से इन बंधनों और सामंती पुरूष के अत्याचारों का अहसास स्त्री को धीरे–धीरे होने लगा तो अब स्त्री अपने अस्तित्व और अस्मिता की पहचानकर उसे रक्षा करने के लिए सक्रिय होने लगी। और उसकी लड़ाई अब पुरूषों के विरोध में नहीं बल्कि उसकी लड़ाई पुरूषवादी दृष्टिकोण से, और अत्याचार के विरोध में है। वह देवी, दासी, दानवी नहीं सिर्फ मानव बनना, व्यक्ति बनना चाहती हैं। जिसमें सहज और अवगुण भी होते हैं।

इस विमर्श में नारी के व्यक्तित्व में प्रतिष्ठा, उसकी विभिन्न समस्याओं, विचार, नारी के प्रति होनेवाले अन्याय, अत्याचार और शोषण का विरोध नारी के सामर्थ्य की खोज तथा उसकी पहचान नारी की प्रतिष्ठा, नारी की मानसिकता में परिवर्तन के साथ ही पुरूष मानसिकता और सोच में परिवर्तन आदि बिंदुओं को स्पर्श करने का यत्न किया जाता है।कहने के लिए तो बहुत से महत्वपूर्ण कथाकारों (स्त्री–पुरूष दोनों) से हिन्दी साहित्य समृद्ध हुआ, मगर जिस सुचिंतित गद्य के द्वारा मैत्रेयी पुष्पा ने स्त्रियों में जागृति की लहर उत्पन्न की, वैसी कोई अन्य साहित्यकार न कर सका। आज उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के द्वारा स्त्रियों/युवतियों में विशेष रूप से धर्म, नैतिकता, नियमों, पितृसत्ता के व्यवस्थात्मक विधि–विधानों के स्त्री–विरोधी प्रावधानों पर नई रोशनी की जागृति से बदले हुए नजरिये से सोचने, समझने की शुरुआत हो चुकी है।

1.15 हिंदी समकालीन लेखिकाओं की दृष्टि में नारी जीवन मूल्य :

हिन्दी साहित्य में महिला लेखन की शुरूआत समकालीन कथा साहित्य से हुई। इससे पूर्ववर्ती कथा–साहित्य में 'महादेवी वर्मा', आधुनिक युग में 'सुभद्रकुमारी चौहान' 'शिवरानी देवी' आदि महिला रचनाकार अपनी कविता के साथ–साथ कहानी भी लिखी थीं। वे स्त्री–विमर्श का नाम लिए बिना कहानियाँ लिखीं। सुभद्रा कुमारी चौहान की 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी' जैसी कविता राष्ट्रीय मूल्यों के महत्व को दर्शाता है। साथ ही वे तीन कहानियाँ भी लिखी थीं, उनमें स्त्री को लेकर मन में आग भभकती थीं। इस संदर्भ में मैत्रेयी पुष्पा अपने शब्दों में ठीक व्यक्त किया हैं कि ''आग हमारे मन में है, उससे कहीं ज्यादा आग उनके मन में थी और 'बेबिया' कहानी को जब मैंने पढ़ा, तो मुझको लगा कि मेरे अंदर भी वही आग है। हम दुहाई दे–देकर स्त्री–विमर्श का झंडा फहराते हैं या स्त्री विमर्श का नाम लेते हैं। उन्होंने स्त्री–विमर्श नाम लिए बिना कहानियां लिखीं।''[76]'बिबिया' कहानी एक बदनाम–बदचलन कही जाने वाली स्त्री की कहानी है। यह शिशु जैसे स्निग्ध, स्नेह की कहानी है। उसकी महिमा खोद–खोद कर खराब की जाती है। जब 'बिबिया' की शादी हो जाती है तब वह कहती है ''हम तोहार बाप के मेहरारू अही। अब भाखा–कुभाखा सुनब तो तोहार पिठिया के चमड़ी न बची''[77] उसमें इतना माद्दा है। यह एक उदाहरण है कि उस जमाने की औरतों में इस तरह की बातें करने की हिम्मत भी है। आज के जमाने में अगर कोई स्त्री पुरूष को इन्कार करती हैं तो 16 दिसंबर निर्भया और जे.एन.यू. और ऐसे कई हिंसात्मक प्रतिक्रिया हम देश भर में देख रहे हैं। उस जमाने में पुरूष को बिबिया इन्कार करती तो उसकी भी हालत आज के जैसे ही बन जाती है। जब लड़की इन्कार करती है और उस पुरूष को अपने काबिल नहीं पाती तो पुरूष के अहम को ठेस पहुँचने पर पुरूष को कितना क्रोध होता है इसे महादेवी वर्मा भी उस जमाने में कह रही थीं। ''मुझे तो खुद पर बहुत धिक्कार हुआ''[78] लेकिन उनकी कविता की महत्वपूर्ण पंक्ति ने मनुष्य के मनुष्यत्व को जगाने का प्रयास किया है। ''मैं नीर भरी दुःख की बदरी।''[79] कमाल है कि प्रिय–प्रिय पुकारती हुई महादेवी का मोहभंग पुरूष वर्ग से सन् 1942 में ही हो गया था और वे स्त्री को लता, बाती और नीर–भरी बदली के रूप में देखना छोड़ चुकी थी। वे अब स्त्री के स्वावलंबन की बातें कर रही थीं। कह रही थीं–''स्त्री को शासन–व्यवस्था में स्थान मिले। मगर उसे केवल पुरूष परिषदों को

अलंकृत करने के लिए नहीं रखा जाए। उसके अस्पष्ट विचारों को स्पष्ट करना और उन्हें क्रियात्मक रूपरेखा देना ही समाज के लिए हितकर होगा।''[80] महादेवी वर्मा ने यही सोचा कि बाहरी का क्षेत्र संघर्ष का क्षेत्र है, उसे स्त्री आंसुओं से गीला नहीं करती पुरूष के सामने कर्तव्य या अकर्तव्य के अंतर को स्पष्ट करती है। देखते–देखते 'नीर भरी बदली' में कडपन पड़ी। 'श्रृंखला की कडियां' के रूप में बिजली ने समाज में प्रवेश किया तो उस समय यह विस्फोट से कम नहीं रहा होगा। वे यही कहने तक हो जाती है कि हम मिट सकते हैं जकड़न में रहना मंजूर नहीं। स्वतंत्रता की इससे बड़ी कसौटी क्या होगी।

सृजन कार्य चाहे वह साहित्य ही क्यों न हो, जीवन मूल्यों के बिना पूरा नहीं हो सकता। वस्तुतः जिसके जीवन में मूल्य नहीं वह रचनाकार हो ही नहीं सकता। हमारे साहित्य का मूलाधार वेद है, परंतु जब व्यक्तिवादी विचारधार ने साहित्य में प्रवेश किया तो स्वार्थ सीमित तथा इसके साथ प्रारंभ हो गये जीवन मूल्यों का विघटन जिन्होंने समाज बनाए उन्होंने वैसा ही साहित्य लिखा। व्यक्तिवादी साहित्य का सृजन संकीर्ण होता है, असरकारी नहीं होता। महादेवी वर्मा ने भारतीय–मूल्यों के अनुसार हमारा मार्ग भी प्रशस्त किया है।

इसके पूर्व भक्तिकाल में मीराबाई, सहजोबाई आदि ने भी अपनी भक्तिमय रचनाओं के माध्यम से मानव मूल्यों को ऊपर उठाकर, उसका उदारीकरण किया है। आधुनिक युग में सुभद्रा कुमारी चौहान, कवयित्रियों जैसी कत्यायनी, गगन मिल, रमणिका गुप्ता, स्नेहमयी चौधरी, शकुंतल माथुर एवं आज की अनेक नवोदित कवयित्रियों ने गिरते मानवीय मूल्यों पर गहरी चिंता व्यक्त की है।

प्राचीन काल से आज तक के जीवन–मूल्यों में परिवर्तन की छाप अधिक पड़ी, भले ही उसे चिंता का विषय क्यों न माना जाए। लेकिन साहित्य इस प्रभाव को अनदेखा नहीं कर सकता। सच्चाई तो यह है कि ''जीवन जगत के सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में बहुत सी जटिलताएँ रहीं। तो इन जटिलताओं को नारी के अकेलेपन ने देखा और परखा है उसे पहचाना है। तभी तो आज वह अनेक सवाल उठा रही है, अपना मौन तोड़ रही है।''[81] महिला रचनाकारों ने चार दीवारियों से बाहर जाकर देखा और उसकी तुलना भीतरी परिवारों से की। जिन कहानियों का उसने सृजन किया वे उसके खुद के भोगे हुए जीवन की जीवंत अनुभव है। नारी पुरूष जीवन की अंतर कथाओं ने जो प्रश्न खड़े किए, उनका खुलासा करने की जिज्ञासा जहाँ प्रेमचंद,

जयशंकर प्रसाद, जैनेन्द्र, अज्ञेय, कमलेश्वर, रेणु आदि में थी उससे कहीं अधिक इच्छा, मन्नू भंडारी, कृष्ण सोबती,मणिका मोहिनी शिवानी, मृणाल पांडे, मालती जोशी, राजी सेठ, ममता कालिया, सुधा अरोडा, अनामिका, मैत्रेयी पुष्पा आदि की कथाओं में भी थी। जिन्होंने बहुत इमानदारी के साथ अपनी कथाओं में मौलिकता के साथ प्रस्तुत कर आज के प्रश्नों को दर्द के रिश्ते से जोड़ा। उदाहरण के लिए विवाह तो स्त्री–पुरूष का आनंद विषय है परंतु उसमें जितनी भी घटनाएँ स्त्री के साथ मूल्य के नाम पर अन्याय हो रहे हैं सब स्त्री को नष्ट कर चीर रहे हैं मानो वह इंसान नाम की चीज ही क्यों न हो। इसे भाग्य पर छोड़ दिया जाता है। यह बड़ी विडंबना और मजबूरी है, यह प्रश्न आज भी अनुत्तरित है। इस प्रणय व्यापार की स्थिति पर आज का युग मौन क्यों है।

भारत में आम आदमी का जीवन मूल्य धर्म से संबंधित है और जीवन के संस्कार, आस्था और विश्वास पर टिके हैं। दूसरे जीवन मूल्य है रोजी रोटी का, रोजी–रोटी कमाने के बाद ही उसे भगवान की याद या मंदिर, मस्जिद याद आते हैं। भरे पेट में ईश्वर की याद आना प्रतिफल है। भारत में न नकारनेवाली सच्चाई है कि नारी चुप रहकर कष्ट और दुःखों में स्वयं को भक्ति रंग लगा लेती है। यह पुरूष की दृष्टि में स्त्री का बड़े सम्मान जनक जीवन मूल्य कहते हैं। जबकि आज की समकालीन लेखिकाएं पुरूष की महत्वकांक्षाओं को चालबाजी के रूप में देखा तब भी उसे स्वीकारते हैं। लाचारी है कि ढर्रे के कारण ही औरत की अपनी जगह सिकुड़ती चली जाती है। इस प्रकार चिंतित होकर मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं–''ज्यादातर वे हैं जो जीवन मूल्यों को चालबाजियों, दादागिरियों में परिवर्तित करते हुए उन्हें न्यायसंगत बताते फिरते हैं, जैसे यही लेखकीय मर्यादाओं की नई परिभाषा हो''[82] मैत्रेयी पुष्पा पुरूष के इस प्रकार के मूल्यों को लेखकीय उपभोक्तावादी मानती है। परिवारों में स्त्री को सांस्कृतिक लक्ष्मण रेखा के लाचारी के साथ भी स्त्री पुरूष से समन्वय ही चाहती है, बिखराव नहीं, अलग होना नहीं चाहती है। ''पुरूष एक प्रतिशत भी नहीं बदला जबकि वह चाहता है नारी को बदलना चाहिए। यह दोहरा मानदंड जीवन मूल्यों में आघात है।''[83] पुरूष नारी दोनों संपूर्णता चाहते हैं जो व्यवहारिक है परंतु ऐसा नहीं होता है। परिस्थितियों अथवा समस्याओं के हिस्से को मनुष्य के बीच से हटा दिया जाए तभी मानव–मूल्य शाश्वत हो सकेंगे।

ममता कालिया ने 'नरक–दर–नरक' उपन्यास में इस प्रश्न को उठाया है जहाँ जीवन आज भी ज्यों का त्यों है। इसमें पुरूष प्रधान व्यवस्था की ओर संकेत है। स्त्री–पुरूष के मध्य आपसी समझ का अभाव पारस्परिक विश्वास के तंतुओं को क्षीण कर रहा है। मैत्रेयी पुष्पा परिवारों को तोड़ना नहीं, जोड़ने के लिए चाहते हुए कहती हैं कि ''हम साथी हैं, मित्र हैं, तुम्हारी ताकत बनना चाहते हैं। तुम्हारे साथ चलना चाहते हैं, तुमसे अलग नहीं, समाज, परिवार, जोड़ना चाहते, तोड़ना नहीं, लेकिन अपने टूटने की कीमत पर अब नहीं।''[84] शिक्षा, महिला आरक्षण विधेयक पर पक्ष–विपक्ष की सोच राजनीति से प्रेरित है आज की नारियाँ इस त्रासद संबंधों को झेल रही है। नारी–पुरूष जिन जीवन–मूल्यों के लिए विचार करते हैं वह आज तक रहस्य है। क्योंकि सारे मूल्यबोध पुरूष के द्वारा रचा गया। मूल्य निर्णय, नियम–कानूनों को निर्माण करते समय किसी नारी का अभिप्राय, इष्ट–अइष्ट तक न पूछा गया था। तलाकशुदा नारी को समाज में कोई सम्मान नहीं है इसका उदाहरण मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी' है, जिसमें बंटी को नए माता–पिता से अच्छा प्लेटफार्म, फुटपाथ या अनाथालय ही दिखाई देता है।

समाज में स्त्री किसी की पत्नी, माँ शादी के द्वारा ही सम्मानीय है। स्त्री की जिंदगी की पूर्णता माँ बनने से ही होती है। स्त्री मां रूप में देवी मानी जाती है। कुआरी स्त्री अगर गर्भ धारण कर माँ बनती तो कोई मान्यता या मर्यादा नहीं है। ''यह बात विधवा, परित्यक्ता और किसी भी हालत में बिना पति की स्त्री पर लागू होती है।''[85] मैत्रेयी पुष्पा ने समाज में व्याप्त इस कुसंस्कृति को बदलने पर जोर देती है। अपने साहित्य में कुँवारी स्त्री माँ बनने के लिए समर्थन 'अल्माकबूतरी' उपन्यास में करती हैं। शादी–विवाह कुल–खानदान और वंश परंपरा को आगे बढ़ाने के लिए होते हैं। इज्जत–आबरू के आगे लड़की की जिंदगी का मोल मैत्रेयी को ज्यादा महत्वपूर्ण लगता है। स्त्री–मुक्ति के बारे में और श्लील–अश्लील के बारे में चर्चा करते समय रमणिका गुप्ता एक तेलुगु कहानी का जिक्र इस प्रकार करती हैं–''सोनी सिंह की 'योनी कथा' नाम की एक कहानी है। उसी विषय पर एक तेलुगु भाषा की कहानी भी है। तेलुगु लेखिका योनी को रोटी कहती है। योनी उसके लिए भूख मिटानेवाली रोटी बना दी जाती है। एक प्रवासी कहानी है। एक मां सजधज रही है, उसकी बेटी उसे कह रही है 'तुम अपने प्रेमी से मिलने जा रही हो ये साड़ी पहनकर जाओ। यानी माँ उसके प्रेम प्रसंग में हिस्सा

ले रही है। ऐसे विषय तक की कहानियां पहुँची हैं। उधर कविता जी की 'उलटवासी' नामक कहानी है, जिसमें वह मां की शादी में हिस्सा लेती है।''[86]

आज ये सारे बदलाव व्यवहार में घर रहे हैं, उन्हें लेखिकाओं ने बेबाकी से दर्ज किया है। पुराने जमाने में मूल्यों के नाम पर जिन तथ्यों को हम छिपाते थे, अब उसे छिपाया नहीं जा रहा। ये सारे देखकर पुरूष में एक और बदलाव आया पहले पुरूष में न कहने की ताकत थी, अब न सुनने पर कुल्हाड़ी चला देते हैं। रमणिका गुप्ता अपनीएक कविता में लिखा है ''मेरा न कहने का अधिकार तो रहने दो''[87] लेकिन आज कोई औरत 'न' कहे तो उसके सिर पर कुल्हाड़ी चल जाएगी। यह पुरूष की या मनुष्य की अनवति है। औरत का बोलना–पुरूष से बर्दाश्त नहीं होता। आज कहीं न कहीं संतुलन बिगड़ा है।

****

संदर्भ ग्रंथ

[1] समकालीन हिन्दी नाटक, डॉ. हर्षबाला शर्मा–भूमिका से

[2] समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ, डॉ. पुष्पपाल सिंह, पृ. 82

[3] समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ, डॉ. पुष्पपाल सिंह, पृ. 82

[4] समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ, डॉ. पुष्पपाल सिंह, पृ. 83

[5] समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ, डॉ. पुष्पपाल सिंह, पृ. 84

[6] स्त्री मुक्ति और कविता, सं. प्रमीला के.पी., पृ. 5

[7] अंबेडकरवादी स्त्री–चिंतन, तेजसिंह, भूमिका से

[8] आधुनिकता के आने में–स्त्री संघर्ष, डॉ. अहिल्या मिश्रा, पृ. 31

[9] साठोत्तरी हिन्दी कथा साहित्य : नारी विमर्श, प्रो. अनिता नेरे पृ. 45

[10] श्रृंखला की कड़ियाँ', महादेवी वर्मा पृ. 74

[11] साठोत्तरी हिन्दी कथा–साहित्य' नारी विमर्श, प्रो. अनिता नेरे (संपादक)

[12] कमलेश्वर के कथा–साहित्य में स्त्री–विमर्श, डॉ. करुणा शर्मा, पृ. 74

[13] कमलेश्वर के कथा–साहित्य में स्त्री–विमर्श, डॉ. करुणा शर्मा, पृ. 74

[14] कमलेश्वर के कथा–साहित्य में स्त्री–विमर्श, डॉ. करुणा शर्मा, पृ. 75

[15] स्त्री लेखन : स्वप्न और संकल्प, रोहिणी अग्रवाल, पृ. 12

[16] स्त्री लेखन : स्वप्न और संकल्प, रोहिणी अग्रवाल, पृ. 13

[17] स्त्री लेखन : स्वप्न और संकल्प, रोहिणी अग्रवाल, पृ. 129

[17] स्त्री लेखन : स्वप्न और संकल्प, रोहिणी अग्रवाल, पृ. 129

[18] स्त्री लेखन : स्वप्न और संकल्प, रोहिणी अग्रवाल, पृ. 130

[19] स्त्री लेखन : स्वप्न और संकल्प, रोहिणी अग्रवाल, पृ. 130

[20] हिन्दी उपन्यास का इतिहास, प्रो. गोपाल राय, पृ. 375

[21] भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास, पुष्पपाल सिंह, पृ. 79

[22] भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास, पुष्पपाल सिंह, पृ. 207

[23] आधुनिक हिन्दी उपन्यास–2, डॉ. नामवर सिंह, पृ. 11

[24] भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास, पुष्पपाल सिंह, पृ. 209

[25] आधुनिक हिन्दी उपन्यास–2, डॉ. नामवर सिंह, पृ. 21

[26] आधुनिक हिन्दी उपन्यास–2, डॉ. नामवर सिंह, पृ. 21

[27] उपन्यास और वर्चस्व की सत्ता, वीरेन्द्र यादव, पृ. 196

[28] आधुनिक हिन्दी उपन्यास–2 डॉ. नामवर सिंह, पृ. 20

[29] आधुनिक हिन्दी उपन्यास–2 डॉ. नामवर सिंह, पृ. 19

[30] भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास, पुष्पपाल सिंह, पृ. 98

[31] हिन्दी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, पृ. 383

[32] हिन्दी कथा–साहित्य : पाठ के विविध आयाम, राजेश राव, पृ. 73

[33] हिन्दी का गद्य–साहित्य, डॉ. रामचंद्र तिवारी, पृ. 283

[34] आधुनिक हिन्दी उपन्यास–2 डॉ. नामवर सिंह, पृ. 22

[35] आधुनिक हिन्दी उपन्यास–2 डॉ. नामवर सिंह, पृ. 22

[36] भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास, पुष्पपाल सिंह, पृ. 22

[37] भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास, पुष्पपाल सिंह, पृ. 222

[38] उपन्यास और वर्चस्व की सत्ता, वीरेन्द्र यादव, पृ. 189

[40]उपन्यास और वर्चस्व की सत्ता, वीरेन्द्र यादव, पृ. 189

[41] हिन्दी कथा साहित्य पाठ के विविध आयाम–राजेश राव, पृ. 76

[42] हिन्दी कथा–साहित्य पाठ के विविध आयाम, राजेश राव, पृ. 77

[43] हिन्दी कथा–साहित्य पाठ के विविध आयाम, राजेश राव, पृ. 77

[44] आधुनिकता के आईने में स्त्री–संघर्ष, डॉ. अहिल्या मिश्रा पृ. 45

[45] समकालीन हिन्दी कहानी,सं.डॉ. एन मोहनन – पृ. 83

[46] समकालीन हिन्दी कहानी, स.डॉ. एन मोहनन – पृ. 85

[47] समकालीन हिन्दी कहानी,सं.डॉ. एन मोहनन – पृ. 87

[48] समकालीन हिन्दी कहानी,सं.डॉ. एन मोहनन – पृ. 88

[49] समकालीन हिन्दी कहनी,सं.डॉ. एन. मोहनन – पृ. 92

[50] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 118

[52] कथा–साहित्य के सौ बरस, विभूति नारायण राय, पृ. 193

[53] हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य, डॉ. मोहिनी शर्मा, पृ. 1

[54] हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य, डॉ. मोहिनी शर्मा, पृ. 2

[55] हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य, डॉ. मोहिनी शर्मा, पृ. 2

[56]तार सप्तक के कवियों की समाज चेतना, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, पृ. 163

[57] तार सप्तक के कवियों की समाज चेतना, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, पृ. 163

[58] हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य, डॉ. मोहिनी शर्मा, पृ. 13

[59] साठोत्तरी हिन्दी कहानी, मूल्यों की तलाश, डॉ. वासुदेव शर्मा, पृ. 14

[60] हिन्दी उपन्यास और जीवन–मूल्य, डॉ. मोहिनी शर्मा, पृ. 9

[61] हिन्दी उपन्यास और जीवन–मूल्य, डॉ. मोहिनी शर्मा, पृ. 10

[62] हिन्दी उपन्यास और जीवन–मूल्य, डॉ. मोहिनी शर्मा, पृ. 11

[63] कथन– जनवरी–मार्च, 2004 संपादकीय से

[64] दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, विमल थोरात, पृ. 103

[65] हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य, डॉ. मोहनी शर्मा, पृ. 25

[66] साठोत्तरी हिन्दी कहानी–मूल्यों की तलाश, वासुदेव शर्मा, पृ. 17

[67] हिन्दी उपन्यास और जीवन–मूल्य, सं.डॉ. मोहिनी शर्मा, पृ. 42

[68] साठोत्तरी हिन्दी कहानी–मूल्यों की तलाश, वासुदेव शर्मा, पृ. 12

[69] samkalinkathayatra.blogspot.in, डॉ. शरद सिंह

[70] अपनी माटी, रविवार, अगस्त–03, 2014, सं. ललित कुमार (ई पत्रिका)

[71] अपनी माटी, रविवार–अगस्त–2014, सं. ललित कुमार (ई पत्रिका)

[72] आदमी की निगाह में औरत, राजेन्द्र यादव, पृ. 20

[72] आदमी की निगाह में औरत, राजेन्द्र यादव, पृ. 113

[73] सुनो मालिक सुनो, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 206

[74] अपनी माटी, अगस्त 2014, सं. ललित कुमार (ई पत्रिका)

[75] मैत्रेयी पुष्पा, स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 64

[76]युद्धरत आम आदमी, फरवरी 2014, पृ. 69 (रमणिका गुप्ता)

[77] युद्धरत आम आदमी, फरवरी 2014, पृ. 70 (रमणिका गुप्ता)

[78] युद्धरत आम आदमी, फरवरी 2014, पृ. 70 (रमणिका गुप्ता)

[79] औरत के आस–पास, डॉ. उर्मि शर्मा, पृ. 135

[80] तब्दील निगाहें, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 139

[81] औरत के आस–पास, डॉ. उर्मि शर्मा, पृ. 135

[82] सुनो मालिक सुनो, भूमिका से, मैत्रेयी पुष्पा

[83] औरत के आस–पास, डॉ. उर्मि शर्मा, पृ. 136

[84] चर्चा हमारा, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 17

[85] आवाज, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 70

[86] युद्धरत आम आदमी, रमणिका गुप्ता, पृ. 74

[87] युद्धरत आम आदमी, रमणिका गुप्ता, पृ. 75

अध्याय – 2

मैत्रेयी पुष्पा : व्यक्तित्व और कृतित्व

2.1 मैत्रेयी पुष्पा : जीवन संबंधित विशेषताएँ

जन्म–परिवार; शिक्षा–दीक्षा; विवाह; व्यक्तित्व; ग्रामीणता

2.2 मैत्रेयी पुष्पा की साहित्यिक रुची एवं साहित्यिक परिवेश

2.2.1 मैत्रेयी पुष्पा के कृतित्व का संक्षिप्त परिचय

2.2.1.1 कहानी सहित्य :

चिन्हार; ललमनियाँ; गोमा हँसती है; पियरी का सपना

2.2.1.2 उपन्यास साहित्य :

स्मृतिदंश; बेतवा बहती रही; इदन्नमम; चाक; झूलानट; अल्मा कबूतरी; अगनपाखी; विजन; कही ईशुरी फाग;, त्रिया हठ; कस्तूरी कुण्डल बसै; गुड़िया भीतर गुड़िया; गुनाह–बेगुनाह

2.2.1.3 स्त्री विमर्श :

खुली खिड़कियाँ; सुनो मालिक सुनो; चर्चा हमारा; तब्दील निगाहें

2.2.1.4 रिपोर्ताज : फाइटर की डायरी

2.2.1.5 सम्मान एवं पुरस्कार

2.1. जीवन संबंधित विशेषताएँ :

जन्म–परिवार :

मैत्रेयी पुष्पा का जन्म 30 नवंबर 1944 को उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जिले के सिकुर्रा नामक गांव में हुआ था। मैत्रेयी पुष्पा हिन्दी साहित्य के समकालीन महिला लेखन की प्रमुख हस्ताक्षर हैं। उन्होंने बुंदेलखंड कॉलेज, झांसी से हिन्दी साहित्य में एम.ए. किया। स्त्री की पक्षधर, स्त्री के विचार को साहित्य के माध्यम से रेखांकित करने वाली कथा शिल्पी मैत्रेयी पुष्पा अपने पहले कहानी संग्रह 'चिन्हार' से चर्चा के केंद्र में हैं। व्यक्ति के जीवन में पारिवारिक परिवेश की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। एक रचनाकार के व्यक्तित्व के बनने में वंश, कुल–गोत्र, सामाजिक, शैक्षिक परिस्थिति एवं तत्कालीन विचारधारा महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कृतिकार अपने आप में संवेदनशील होता है। इसलिए परिवार, समाज, युगबोध रचनाकार के चेतन तथा अवचेतन में प्रेरणा देकर गहरा प्रभाव डालते हैं।

मैत्रेयी पुष्पा अपने साहित्य के माध्यम से पुरूष द्वारा लिखित इतिहास को पलट देना चाहती हैं। वह पुरूषों द्वारा बनाई गई आचार संहिता का पुरजोर विरोध अपनी निर्भीक भाषा में करती है। वह पुरूष वर्चस्व से स्वतंत्रता पाने की आवाज उठाते हुए स्त्री को मानसिक यंत्रणा से मुक्ति दिलाना चाहती हैं। इसलिए मैत्रेयी पुष्पा का लेखन उस लेखन से सर्वथा भिन्न है, जिसमें लेखक स्वयं अपनी छवि का निर्माण करता है। उनका लेखन जो परंपरागत सामाजिकताओं, अत्याचारों के कठघरे में खड़ाकर उनके स्त्री–विरोधी चेहरे को बेनकाब करता है, किंतु मैत्रेयी पुष्पा यहीं रूक या थम नहीं जातीं वे स्त्री के उस पौरूष और सक्रिय प्रतिवाद को भी दर्ज करती हैं, जिसके बगैर नई सामाजिक संरचना एक लेखिका की कोरी बकवास भर बनी रहेगी। सामाजिक और सांस्कृतिक चरित्रों का यह नवनिर्माण हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में दुर्लभ अविस्मरणीय और योगदानकारी है।

सीधी–सादी और सहज–शुद्ध भारतीय स्त्री जैसी दिखाई देनेवाली लेखिका, बहुमुखी प्रतिभा की धनी मैत्रेयी पुष्पा का जीवन एक खुली किताब जैसा है। मैत्रेयी पुष्पा स्त्री जीवन की बुनियादी समस्याओं को लेकर सवाल करती हैं। अपने भोगे हुए जीवन की अभिव्यक्ति इनके साहित्य में दिखाई देती हैं। वह अपने जीवन और समय का सच है। उन्होंने नारी समस्याओं को द्वन्द्व के परिप्रेक्ष्य में देखा, भोगा और समझा है। जहाँ नारी समानता के स्वर

प्रदान करने की बात संघर्ष रूप में आयी है, वहीं उनका नारी मन ज्वालामुखी की भांति फूट पड़ा है।

देश की स्वतंत्रता से तीन साल पहले अलीगढ़ जिले के सिकुर्रा नामी पिछड़े क्षेत्र में मैत्रेयी पुष्पा का जन्म हुआ। उनके पितामह पंडित मेवा लाल किसी कारणवश अपने पैतृक गाँव मीठना को छोड़कर सिकुर्रा गाँव में आकर बस गये थे। इनके एकमात्र पुत्र हीरालाल का विवाह कस्तूरी के साथ हुआ था। मैत्रेयी पुष्पा के पिता व माता ब्रह्मण परिवार के उपाध्याय गोत्र की सनान्दय परंपरा के थे। ब्राह्मण कुल में जन्मी मैत्रेयी पुष्पा भिन्न वर्ग, समुदायों के पारिवारिक आश्रम में बड़ी हुयी। इनका आरंभिक जीवन झांसी के खिल्ली गाँव में बीता।

मैत्रेयी पुष्पा कस्तूरी और हीरालाल की एक मात्र संतान थी। पिता हीरालाल एक गरीब किसान थे। पंडित जी ने उनके गृह नक्षत्र को देखकर मैत्रेयी नाम सुझाया था। नाम सुनकर पिता की भावना इस रूप में व्यक्त हुई थी कि ''अरे यह तो हमें बाबूलाल पंडित जी ने बता दिया था कि इस लड़की का जन्म ऐसी सती की लग्न में हुआ है, जिसे धन धान्य की नहीं, ज्ञान की चाहत थी। अपने पति से भी उसने उनके ज्ञान में हिस्सा मांगा था। उस देवी का नाम मैत्रेयी था। इसका भी नाम मैत्रेयी होगा।''[1] लेकिन गाँव के लोग यह नाम उच्चारित नहीं कर पाने के कारण उन्हें पुष्पा नाम से बुलाते थे। पुष्पा नाम उनकी दूर की रिश्ते की बुआ ने उन्हें यह नाम दिया था। कालांतर में जब उन्होंने साहित्य क्षेत्र में पदार्पण किया तो अपने दोनों नामों को मिलाकर 'मैत्रेयी पुष्पा' नाम से लिखने लगीं।

मैत्रेयी पुष्पा की माता कस्तूरी एक अडियल और बेहद जिद्दी किस्म की औरत के रूप में सामने आती हैं। माता कस्तूरी अपूर्व साहसिकता की प्रतिमूर्ति, प्राचीन रूढ़ियों एवं परंपराओं का तार्किक विरोध करने में समर्थ, प्रगतिशीला विचार संपन्न तथा अपने सिद्धांतों के प्रति अडिग रहनेवाली महिला थी। हीरालाल का अपनी पत्नी कस्तूरी के साथ सहयोगी भाव नगण्य था।

मैत्रेयी पुष्पा के जन्म के अठारह माह बाद मोतीझारा की बीमारी से 35 वर्ष की अल्प आयु में उनके पिता का आकस्मिक निधन हो गया था। कस्तूरी देवी विधवा हो गई। पिता की मृत्यु के पश्चात विधवा माता कस्तूरी के कंधों पर अबोध बेटी मैत्रेयी और वृद्ध व अपाहिज ससुर की देखभाल व गृहस्थी का भार आ गया। स्वभाव से अचंचल, तेज सुचरित्रवान महिला

कस्तूरी ने संघर्षरत रहकर गृहस्थी का संचालन, करते हुए बेटी का पालन–पोषण किया ''काम लायक पढ़–लिखकर, संतान के रूप में एक मात्र बेटी को पालने–पोसने के लिए वह नौकरी करती है– मर्दों की इस दुनिया में एक दबंग, अड़ियल और बेहद जिद्दी औरत के रूप में''[2] प. मेवालाल की मृत्यु के पश्चात् ग्राम सेविका बनने तक कस्तूरी देवी अपनी बेटी के साथ सिकुर्रा में रही। नौकरी के कारण वह स्वयं सैलार चली जाती है और मैत्रेयी को अलीगढ़ में समाज कल्याण बोर्ड की संयोजिका के यहाँ पढ़ने के लिए छोड़ जाती है। आगे चलकर उन्हें महिला मंगल योजना के सर्वोच्च पुरस्कार से नवाजा जाता है।

पिता की मृत्यु ने मैत्रेयी पुष्पा के हृदय में संसार के प्रति उदासीनता उत्पन्न कर दी। इसलिए हमेशा उनकी दृष्टि में अकेलापन, संसार की अस्थिरता, नश्वरता और क्षणभंगुर नृत्य करने लगी। माँ की ममता कभी न मिलने के कारण आपका मन शिक्षा से विमुख हो गया था लेकिन यौवन की दहलीज पर प्रवेश करते ही उनकी कल्पना ने सुख–स्वप्नों का ऐसा संसार रचना आरंभ किया कि उन्हें जीवन की क्षणजीवी अनुभूतियाँ बड़ी और मधुर प्रतीत होने लगीं। मैत्रेयी पुष्पा बचपन में बेहद शरारती व जिद्दी किस्म की लड़की थी। उनके जीवन को माता कस्तूर देवी ने अधिक प्रभावित किया। वे माँ के बनाये नीरस मार्ग पर कतई चलने को तैयार नहीं थीं। जहाँ उनकी माँ उन्हें एक आदर्श स्त्रीत्व से भरपूर और अनुशासनप्रिय जीवन देना चाहती थी, वहीं मैत्रेयी स्वच्छन्द और खुली हवा में जीवन जीना चाहती थीं। उनकी माँ एक कर्मठ, मजबूत इरादोवाली, जुझारू, महत्वाकांक्षी स्त्री थी। नौकरी के चलते वह मैत्रेयी पर अधिक ध्यान नहीं दे पाती थीं। इसलिए बचपन में माँ से उन्हें घृणा और डर था। अपनी इस भावना को वह गाँव की खेरापतिन दादी के सामने प्रकट करती है कि ''मेरी माँ, माँ नहीं, माताजी हैं, मैं उनसे डरती हूँ, सो कुछ नहीं कह सकती।''[3] खेरापतिन दादी मैत्रेयी को बहुत पसंद है? ''दादी जहाँ–जहाँ बैठती, वह घुटनों में फ्राक फँसाकर बगल में बैठ जाती।''[4] खेरापतिन दादी एक तरह से मैत्रेयी को अपनी गायिकी का वारिस मान बैठी थी। जहाँ दादी का सुर टूटता था वहां मैत्रेयी पुष्पा अपनी आवाज मिला देती थी ताकि लय टूटे नहीं। खेरापतिन दादी से मिली लोकगीतों की विरासत का उपयोग आगे चलकर मैत्रेयी पुष्पा के लेखन का महत्वपूर्ण अंग बन गया।

शिक्षा–दीक्षा :

कस्तूरी देवी पढ़ाई को जीवन का एक महत्वपूर्ण और अभिन्न अंग मानती थी। वह अपनी बेटी को पढ़ने–लिखने के लिए जबरदस्ती करती थी। अपने मन को शिक्षा से अलंकृत करते हुए अपनी बेटी के बारे में सोचती है कि''उसके सामने हर हाल में स्कूल की इमारत होनी चाहिए। अध्यापक ही उसके साथी हैं और कलम–दवात उसकी सहेली, किताबें उसकी माता होंगी।''[5] कस्तूरी देवी को गाँव की स्त्रियों का अपढ़ वातावरण बिल्कुल पसंद नहीं था। वह मैत्रेयी को उन से दूर रखना चाहती थी। गाँव की औरतों की गालियाँ सुनकर सनसनाकर रह जाती थी। उन दिनों स्त्री–शिक्षा का प्रचार–प्रसार का स्वर पूरे देश में गूँज रहा था। स्त्री–शिक्षा के चलते मन में बन्द गाँठे खुलने लगी और सोचने लगी कि ''पढ़–लिखकर आदमी ज्ञान की उस दुनिया में पहुँच सकता है, जहाँ वह अपने–आपको देख सके कि माहौल में उसकी तस्वीर क्या है? बिना पढ़े मनुष्य का गधे जैसा जीवन।''[6]

मैत्रेयी पुष्पा को बचपन से पढ़ने का शौक नहीं था। वह स्कूल से गैरहाजिर रहती थी। वह स्कूल के रजिस्टर में नहीं, मगर गाँव की कथा भागवत् दृष्टि, अनावृष्टि को लेकर मनुष्य के बचाव में गीत गाती हुई, देवता मनाती हुई पाई जाती थी। वह पढ़ाई से नहीं स्कूल जानेवाले रास्ते से डरती थी क्योंकि स्कूल जानेवाले बच्चों में गाँव के छोटे बड़े सारे लड़के ही होते थे, उनमें मैत्रेयी पुष्पा अकेली लड़की थी। वह अक्सर सखी–सहेलियों के साथ आम तोड़ने जाती थीं और कभी–कभी गडरियों की लड़कियों के साथ बकरियाँ चराने निकल जाती थी। जबकि उनकी माँ भरसक प्रयास करती थी कि अपनी बेटी को अच्छी शिक्षा–दीक्षा दे।

खिल्ली गाँव में मैत्रेयी पुष्पा की आरंभिक शिक्षा शुरू हुई। उस समय वह 'चिमन सिंह' के यहाँ रहती थी। उन्हें मैत्रेयी प्यार से दादा कहती थी और वे भी बहुत प्यार दिखाते थे। अपनी नौकरी के कारण सबसे पहले मैत्रेयी को पढ़ने हेतु अलीगढ़ में समाज कल्याण बोर्ड की संयोजिका के घर, फिर रिश्तेदारों के घर, और बाद में परिचितों के घर भेज दिया गया था। जहाँ भी रहती अपनी जवानी के कारण हर जगह कड़ुवे अनुभवों का सामना करती थी। यही अनुभव एक तरह से उनके किशोरावस्था के अध्याय बन गये।

अलीगढ़ नगर में हुए कटु अनुभव के कारण फिर से मैत्रेयी पुष्पा खिल्ली गाँव के चिमन सिंह के पास आ पहुँची जहाँ उन्हें भरपूर प्यार, अपनत्व और स्वच्छ माहौल मिला। यहीं पर

पूर्ण रूप से उनका मानसिक विकास हुआ। यहीं से मैत्रेयी पुष्पा ने मोंट से हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की और डी.वी. इंटर कॉलेज से, इंटर पास की थी। इन्टर और बी.ए. 'गुरूकुल' से करने के बाद एम.ए. करने के लिए मैत्रेयी पुष्पा झांसी आ गयीं। झाँसी शहर में एक कमरा भाड़े पर लेकर रहते हुए पढ़ती थी। वहाँ से 'बुन्देलखंड महाविद्यालय झांसी' आना–जाना करती थी। कक्षा में मैत्रेयी पुष्पा अपने अध्यापकों से तर्कपूर्ण प्रश्न किया करती थी। इस कारण वह कक्षा के होशियार छात्रों में गिनी जाती थी। प्रो. दरबारी साहब अंग्रेजी पढ़ाते थे।उन्हें नये सिरे से पढ़ाने के लिए मजबूर कर देती थी।

कस्तूरी देवी पढ़ाई के चलते बेटी कितनी भी निर्मोह क्यों न रही हो, वह बेटी को लेकर लापरवाह नहीं थीं। अपनी बेटी जालिम समाज के पुरूषों से जो भी कटु अनुभवों का सामना कर रही थी, उन्हें वह अनदेखा नहीं करती बल्कि सजग व सचेत रहने की शिक्षा देती थीं। लड़कियों को अपनी रक्षा खुद करने का पाठ पढ़ाती थीं। बचाव के रास्ते अपने आप खोजने की सलाह देती थी, क्योंकि एक पढ़ी–लिखी नौकरी करनेवाली विधवा औरत होते हुए खुद उन्होंने कटु जीवन के यथार्थ को भोगा था। माताजी एक अनुशासनप्रिय स्त्री होकर अपनी बेटी को आदर्श जीवन जीने का पाठ पढ़ाती थीं। इस संसार में जीने के लिए उन्होंने अपनी बेटी को व्यवहारिक ज्ञान दिया था। मैत्रेयी पुष्पा एक लड़की होने के नाते डरती और लड़की होने की सजा जगह–जगह पायी थीं।

मैत्रेयी पुष्पा माता के लाड़–प्यार के अभाव के कारण जीवन में अकेलापन महसूस करती थी और कहीं पर भी जाने से असुरक्षित महसूस करती थीं। इसलिए शादी कर सुरक्षित और स्थिर जीवन जीने का इरादा उन्हेंने कर लिया था। 17 साल की उम्र में अपनी माँ से शादी की बात करती है कि 'माँ मेरी शादी कर दो'। उन्होंने जो कुछ भी अपने जीवन में किया सबकुछ अपनी माँ की सहमति से ही किया था। माँ की नौकरी के चलते अकेलापन और अभद्र यौवन उमंग की अस्थिरता ये सभी शादी करके स्थिर जीवन जीने की आशा से शादी करना चाहती थी लेकिन उनकी माँ बी.ए. पढ़ी लड़की को आगे और पढ़ाना चाहती थी। उनकी बेटी पढ़ लिख कर नौकरी करे, स्त्रीत्व, स्त्री शक्ति के लिए कार्य करे। किन्तु बेटी तो उस स्त्री शक्ति को गँवाने पर तुली हुई थी। कस्तूरी देवी की राय में माँ–बाप का अपनी बेटी को ब्याह कर भिजवा देना, बेटी को गाय की तरह हाँक देने जैसा कोई दूसरा अपराध नहीं

था। लेकिन मैत्रेयी पुष्पा के विचार अपनी मां से एकदम अलग थे। विवाह के बारे में वह कहती है कि ''मैंने विवाह का फैसला किसी अल्हड़ रसवन्ती लड़की की तरह नहीं लिया था, खासी प्रौढ़ भावना से लिया निर्णय था। माताजी ने उसे पागलपन कहा, यह अलग बात है, पर मैंने इसे अपनी मुक्ति का रास्ता मान लिया है।''[7]पति को जीवन में हमेशा साथी के रूप में ही कामना की थी जो उन्हें साथी समझकर उनकी भावनाओं को आदर दे, पहचाने। माँ का दहेज विरोधी होना विवाह में बाधा बन गया था। जहाँ भी मैत्रेयी पुष्पा की माताजी जाती थी, वहाँ दहेज की समस्या उनके आगे खड़े हो जाती थी। अपने निरंतर प्रयास से बेटी के लिए डॉक्टर वर ढूँढ़ लेती हैं, जो अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) दिल्ली में चिकित्सक के पद पर कार्यरत था। 19 साल की उम्र में (12 दिसंबर 1963) डॉ. रमेश चन्द्र शर्मा के साथ, उनका विवाह संपन्न हुआ। मैत्रेयी पुष्पा का वैवाहिक जीवन अत्यंत सुखमय रहा।

शादी के बाद जल्दी ही मैत्रेयी पुष्पा तीन लड़कियों की माँ बन गई। मगर एक–एक बेटी के जन्म पर सामाजिक विधान से अपमानों में गढ़ गई थी। अपने अपमानों का वर्णन उन्होंने ''तुम किसकी हो बन्नी' कहानी में बिन्नी के माँ–बाप के माध्यम से चित्रित किया है ''सामाजिक परिवेश कँटीला–सा हो चला। तीज त्योहार चिढ़ाते–बिराते–से निकलने लगे। कलेजे में हीनता की हूक–सी उठती, जो बेचारगी में पलट जाती। राखी हाथ में लिये बेटियाँ कैसी बेअर्थ लगती स्वत्वाहीन, लाचार! संसार की किसी अमूल्य निधि से वंचित! दुर्लभ रिश्ते से कटी हुई। नाते–रिश्तेदारों और आपसी मेल–जोलदारों में चर्चित यह एक बात उनके कलेजे को निरंतर उधेड़ते रहती कि वे बेटे को जनम नहीं दे सकी।''[8] इसी अधूरेपन के अहसास तले वह दबती चली गयी। समाज को अपने अपमान का उत्तर उन्होंने अपनी बेटिययों को पढ़ा–लिखाकर डॉक्टर बना दिया। नम्रता, मोहिता और सुजाता तीन लड़कियाँ डॉक्टर हैं। दो बेटियाँ और दामाद अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में चिकित्सक हैं। और एक बेटी का अपना निजी नेत्रालय है। बेटियों के प्रोत्साहन से आज मैत्रेयी पुष्पा हिन्दी साहित्य के, नारी विमर्श की प्रमुख हस्ताक्षर बन पायी हैं।

व्यक्तित्व :

मैत्रेयी पुष्पा साँवली, शक्ल व सूरत की, दुबली–पतली, मध्यम कद–काठी वाली भारतीय नारी है। अपना और पराया जाति–धर्म, रंग–भेद, धनक–गरीबों, छोटे–बड़े के भेद को

बचपन से ही नहीं जानती थी। वह जो कहती हैं, उसे करने का दम भी रखती हैं। मैत्रेयी पुष्पा आँखों से बात करने की कला में पारंगत है। इस संदर्भ में विजय बहादुर सिंह लिखते हैं कि ''सीता की तरह वे तिरछे नयनों से काम लेना जानती हैं, वे आँखों से बात करती हैं''[9] मैत्रेयी पुष्पा अपने विचारों में आधुनिक है लेकिन दिखने में साधारण हैं। वे पाश्चात्य पोषाक में नहीं दिखाई देती। उन्हें सीधे–सादे दिखाई देनेवाले गँवारों के साथ ज्यादा स्नेह, प्यार दिखाते हुए उनसे घुल जाती हैं। मैत्रेयी के बचपन में मित्रता भी छोटी जाति के एक बालक एदल्ला से थी, एदल्ला का पक्ष लेने पर जाटों के लड़के मैत्रेयी को अपमानित करते हैं कि ''आज से इसे ब्रह्मणी नहीं चमरिया कहेंगे।''[10]

मैत्रेयी को जीवन के प्रत्येक मोड़ पर स्त्री होने की सजा भुगतनी पड़ी, कटु अनुभव और दुष्परिणामों का सामना करना पड़ा। जिसका सामना उन्होंने अपूर्व साहस व कर्मठता के साथ किया और समाज को अपने प्रखर व्यक्तित्व का आभास कराया। इन सबके बावजूद भी मैत्रेयी पुष्पा अपनी कर्मठता, सहनशीलता तथा अड़िग साहसिकता के साथ सारी प्रतिकूलताओं को अपने अनुकूल परिवर्तित करते हुए विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त कर अपना एक सम्मानीय स्थान बनाने में सफल हुईं।

पुरूष वर्चस्ववादी सामाजिक व्यवस्था के विपरीत अपना मन्तव्य व्यक्त करने का गुण उन्हें अपनी माँ कस्तूरी से विरासत में मिला था। उनके इन प्रगतिशील विचारों को हम उनके कथा–साहित्य में देख सकते हैं। अपने क्रांतिकारी विचारों से समाज को एक नई दिशा दी तथा अपने प्रबल तर्कों से अपने विरोध को प्रतिष्ठा प्रदान करते हुए, नई पीढ़ी को सोचने के लिए विवश कर दिया। आप जो सोचती हैं, बात करती हैं वही रचनाबद्ध भी कर डालती हैं। वे अपनी जिन्दगी में साहित्य को महत्वपूर्ण साधन मानती हैं। इसीलिए आपके जीवन और साहित्य में समता, सामंजस्य और समन्वय की जो चेष्टा दिखाई देती है, वह उनके व्यक्तित्व की अप्रतिम विशेषता है। वे बाल्यावस्था से भी बड़ी गंभीर संवेदनशील और जिज्ञासु प्रवृत्ति की हैं। अपने कथा साहित्य में मैत्रेयी पुष्पा स्त्री को क्रूर दिखानेवाली संस्कृति और परंपराओं का निडरता से तिरस्कार करती हैं।

उनका स्वभाव निर्भीक है अपने खुद की कमजोरियों अंतरंगताओं व स्नेह के बिना किसी लाग लपेट के खुले रुप में अभिव्यक्त कर देती हैं। इस अभिव्यक्ति से वह उन तमाम

खतरों से खेल जाती हैं, जिसकी कल्पना मात्र से आम स्त्रियों के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हर हाल में अपने रास्ते खुद बनाने को कहती हैं क्योंकि बने हुए रास्तों पर चलते जाना उनके लिए कम अपमानित नहीं है। मैत्रेयी पुष्पा का व्यक्तित्व गाँव की जमीन और जीवन से जुड़ा है। उनके विचारानुसार 'औरत ही औरत की दुश्मन है' यह नारा पुरूषों के द्वारा रची गयी एक साजिश है।

ग्रामीणता :

मैत्रेयी पुष्पा ने शुद्ध गाँव–कस्बे की कहानियाँ लिखी हैं। गाँव के जीवन और संघर्ष को केन्द्र बनाकर ही उसकी कथा–रचनाएँ हुई हैं। मैत्रेयी पुष्पा के पास ऐसे अनुभव थे जिनपर मध्यवर्गीय महिलाएँ सोच भी नहीं सकती थीं। पीड़ित महिलाओं पर गहरी, संवेदना, समझ के साथ लगातार लिखने वाली पहली महिला लेखिका मैत्रेयी पुष्पा है।

प्रेमचंद ने भी गाँव पर लिखा लेकिन उनके पास भी ऐसी सशक्त और विविध महिला पात्र नहीं हैं। ऐसा राजेन्द्र यादव मानते हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने गाँव के शब्दों, मुहावरों, रीति–रिवाजों, षड़यंत्रों, मरने–जीने को खास तौर से केन्द्र बनाया है। गाँव की वास्तविकता, सामर्थ्य, संवेदनाएँ, नयापन और लगन मैत्रेयी पुष्पा में दिखाई देता है। वे तीस–बत्तीस साल तक महानगर में फाइवस्टार जीवन जीकर भी अपने अंदर गाँव और गाँव के अनुभव को भूल नहीं सकी थीं। इनकी रचनाओं की दुनिया हिन्दी साहित्य के लिए एक अनोखी देन है। मैत्रेयी पुष्पा प्रेमचंद और रेणु की परंपरा का उत्तराधिकार लिए हुए हैं। पर यह सच है कि वे न प्रेमचंद और न रेणु वे तो सिर्फ मैत्रेयी है। उनकी कथा–भूमि ही नहीं, बल्कि उनके अनुभव और प्रेरणा भी गाँव ही हैं। पर यह किसान की कथा नहीं है, मगर जुझारू किसान बंधुओं की कथा जरूर है। इस रूप में वह प्रेमचंद की छोड़ी हुई जमीन पर आती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा के लेखन की जड़ और ज़मीन गाँव से संबंधित है। उन्होंने अपने जीवन के पहले बीस वर्ष ही वहाँ नहीं बिताए हैं। एक तरह से पूरा व्यक्तित्व वहीं से बना है। आज भूमंडलीकरण के युग में भी ज्यादातर गाँवों में जीने योग्य साधन नहीं हैं। परदा, घूँघट है, बाहरी–भीतरी बंदिशें हैं। व्याधियों की खेती है और दवाइयाँ नदारद हैं। आजादी के बाद के गाँवों की यह हालत, अपना गाँव खिल्ली छोड़ दिल्ली जा बसी मैत्रेयी पुष्पा को बेचैन किए रहती है। इस संदर्भ में मैत्रेयी पुष्पा एक साक्षात्कार में कहती हैं कि "गाँव मेरा यथार्थ और

नॉस्टाल्जिया दोनों है। खेत ही खेत। मैं ट्राक्टर चला रही हूँ। चारा काट रही हूँ। मजदूरों से झगड़ रही हूँ। इसलिए न अलीगढ़ न दिल्ली, मैं तो अपने गाँव की हूँ।''[11]

मैत्रेयी पुष्पा अपने पति के साथ विदेश जाने के कई मौके मिलने पर भी कभी नहीं गईं। जैसे ही मौका मिलता है अपने गाँव जाकर खुशियाँ मनाती हैं, लोगों से नजदीक से बातें करना सब जानना अपने नाम से गाँव में जो खेत और घर हैं उनकी देखभाल करती हैं। दिल्ली में रहते हुए उनका मन वहाँ कभी नहीं रमा, माहौल को पचा नहीं पाई। हमेशा गाँव जाने, वहाँ जाकर जीने के लिए तरसती हैं। गाँव की असुविधाएँ जैसे नहाने के लिए, खेतों में ही लोटा लेकर जाना भी चाहती हैं खुशी के साथ मगर गाँव से दूर रहना नहीं चाहती हैं। पति के विदेश जाते ही वे गाँव दौड़कर आती हैं।

रेणु के बाद संजीव के साथ–साथ मैत्रेयी पुष्पा अकेली लेखिका हैं, जिसने सबसे अधिक चरित्र हिन्दी साहित्य को दिए। मैत्रेयी पुष्पा का गाँव–कस्बे से संबंध आज भी बना हुआ है। उन्होंने गाँव से ग्लोबल तक कीर्ति कमाई है। अपने आपको एक गाँव की स्त्री के रूप में परिचय कराने में गर्व का अनुभव करती हैं। स्त्रियाँ अपने आपको कमजोर और अबला समझती हैं मगर ऐसा जीवन जीने की आदत को मैत्रेयी पुष्पा तिरस्कार करती हैं। मगर गाँव में स्त्रियाँ जीवन की व्याख्या खुद करते हुए देखकर आनंदित हो जाती हैं। लोकगीतों को स्त्री अभिव्यक्ति का सशक्त साधन मानती है। वह अन्याय, क्रूर व्यवहार और मान्यता प्राप्त बेईमानियों पर सवाल उठाती हैं। विवाह और प्रेम का सामाजिक मूल्यबोध शास्त्रीय नहीं, व्यवहारिक होना चाहिए– ऐसा मैत्रेयी पुष्पा चाहती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा गाँव में रहनेवाली महिलाओं का संघर्ष और शहर में रहनेवाली महिलाओं के संघर्ष से अलग मानती हैं ''गाँव की महिलाएँ अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही हैं जबकि शहर की महिलाओं का संघर्ष व्यक्तित्व के लिए है।''[12] शहरी महिला अपना व्यक्तित्व अपने परिवार में, समाज में अपनी स्थिति, अपनी भागीदारी की तलाश करती हैं। वहीं उनकी बड़ी समस्या है। गाँव में परिवार व्यवस्था को उपयोगी मानते हुए स्त्री के संबंध में पुरूषों द्वारा खासकर स्त्री शरीर को केन्द्र में रखकर तरह–तरह की रूढ़ियाँ बना ली हैं। वे ध्वस्त हुए बिना स्त्री की स्वतंत्रता मात्र कल्पना हैं। गाँव की स्त्रियों के लिए सरकार ने कई महत्वपूर्ण योजनाएँ बनाई हैं जिसका सही रूप में उपयोग और अमल होना चाहिए तभी सचमुच सबका

लाभ होगा। सरकार द्वारा प्रदत्त राशि को बिचौलियों द्वारा ही गटक लिया जाता है। बिचौलियों में महिलाओं का नवधनाढ्य तबका और राजनीतिक भी शामिल है। यहाँ भी मैत्रेयी पुष्पा दुःखित होती हैं कि महिलाओं के आरक्षण प्रावधान से फायदा, पुरूषों द्वारा स्त्री को मोहरे की तरह इस्तेमाल करना। गाँवों में आरक्षण आधार पर पंचायत में सरपंच और नम्बर के रूप में अधिकारों में नियुक्त कर महिलाओं को स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने नहीं देते हैं। इसी विषय को मैत्रेयी पुष्पा ने 'फैसला' कहानी में सच्चाई के साथ दर्शाया है। पात्रों के द्वारा विरोध भी कराया गया। इससे धीरे–धीरे महिलाओं के भीतर राजनीतिक अधिकारों को पाने की इच्छा पैदा हो सकती है।

मैत्रेयी पुष्पा राजनीतिक अधिकार को स्त्री विकास और बदलाव का मुख्य मार्ग समझती हैं। गाँव में, समाज में, सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन के लिए एक आंदोलन कोजरूरी मानती हैं। सामाजिक–आर्थिक मुद्दों पर आज जो आंदोलन चल रहे हैं, वे प्रकारांतर से महिला मुक्ति की दिशा में महत्वपूर्ण साबित होंगे। अर्चना वर्मा, अनामिका आदि रचनाकारों ने स्त्री–मुक्ति की अवधारणा को इतिहास, भूगोल और राजनीति के परिप्रेक्ष्य में देखने और जांचने की आवश्यकता को महसूस किया है। स्त्री मुक्ति के संदर्भ में राजनीति के महत्व को लेकर रमणिका गुप्ता कहती हैं कि ''राजनीति के बिना कोई पत्ता नहीं हिलता।''[13] आजतकनीकी युग में गाँव भी भूमंडलीकरण में शामिल हो रहा है मगर गाँव स्त्री की बुनियादी अधिकारों से वंचित है। औरत की गुलामी का सबसे बड़ा घटक है औरत की सुरक्षा। असुरक्षा से मुक्ति पाने का बस एक ही तरीका है कि वह स्वावलंबी बने, आत्म–विश्वास पैदा करे, इच्छाशक्ति जगाए, मुकाबला करने के लिए सक्षम बने वरना वह पिटती रहेगी। 'घर की इज्जत चली जाएगी' के नाम पर शोषित होती रहेगी, हिंसा सहेगी और उसके खिलाफ शिकायत नहीं करेगी, चुप्पी साधे रहेगी, इसी चुप्पी को तोड़ना है। इस संदर्भ में मैत्रेयी पुष्पा महिलओं के भीतर शिक्षा का प्रसार करने और उनमें आत्मविश्वास भरने को जरूरी समझती हैं। यह काम सिर्फ चीखने–चिल्लाने और पुरूषों का अंधविरोध करने से नहीं होगा। महिलाएँ यह कार्य शांतिपूर्ण असहयोग से कर सकती हैं, यानी जो वे चाहें उसपर दृढ़तापूर्वक अमल करे और पुरूषों को उसे मानने, स्वीकारने को तैयार करने का सुझाव देती है।

आज इस अनुशासन के रूप में बदलाव लाने के लिए गाँव और कस्बों के बीच ज्यादा काम करने की जरूरत है। वे मानती हैं कि स्त्री को प्राथमिक अधिकारों से वंचित रखा गया है उन्हें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया जाना चाहिए, ताकि आर्थिक विवशता उन्हें पुरूषों की सत्ता के आगे सिर झुकाने को बाध्य न करे।

2.2 मैत्रेयी पुष्पा की साहित्यिक रूचि एवं परिवेश :

मैत्रेयी पुष्पा बचपन में स्कूल जाना ही पसंद नहीं करती थी परंतु किशोरावस्था में उनकी रूचि पढ़ने में बढ़ गयी थी। उन्हें कविता पढ़ना पसंद था और उस समय के कवि 'नीरज' और 'बच्चन' की कविताएँ उन्हें प्रभावित करती थीं। किशोरवस्था में रोमांटिक कविताएं उन्हें ज्यादा अच्छी लगती थीं। पढ़ने के साथ–साथ लिखने के लिए भी प्रेरणा पाने लगती हैं कि मैं क्यों नहीं लिख सकती ऐसा? मैं भी तो लिख सकती हूँ यह चीज, जो वाक्य, विचार या एक किशोरी लड़की की आकांक्षा कह सकते हैं, पर यह बात बराबर उनके दिमाग में रहती थी। नीरज की कविता जो उनको लिखने की प्रेरणा दी थी उसकी कुछ पंक्तियाँ ये हैं–

''प्यार अगर थामता न उँगली
जग में इस बीमार उमर की
हर पीड़ा वेश्या बन जाती
हर आँसू बंजारा होता।''[14]

मोंठ में पढ़ते समय अप्रैल की एक तारीख को अपने सहपाटी से 14 साल की उम्र में मिला, वह यह था कि ''गहरे उतरते चली जा रही है, तुम्हारे ह्ृदय की मधुर भावना।''[15] यह प्रेम–पत्र देखने के बाद उनकी भी प्रेरणा और प्रबल होने लगी कि 'मैं क्यों नहीं लिख सकती वैसी कविता?'। मैत्रेयी पुष्पा ने लिखने की कोशिश की और कविताएँ लिखने लगी। बी.ए. में पढ़ते समय कॉलेज मैगजीन में उनकी कविताएँ प्रकाशित होने लगीं। कई पत्र–पत्रिकाओं में छुट–पुट लेख प्रकाषित होने लगे। उस कॉलेज के टीचर भगवान दास माहौर लिखने के लिए प्रोत्साहित करते रहे। उस समय झाँसी में बुन्देलखंड कॉलेज जब भी 'कवि सम्मेलन' होता तो उसका आयोजन इसी कॉलेज में होता था सम्मेलनों में बड़े–बड़े कवि वृन्दावनलाल वर्मा,

नीरज, बच्चन, मैथिली शरण गुप्त आदि आते थे। वहाँ के छात्र–छात्राएँ कवियों को देखकर प्रेरणा और प्रोत्साहन पाते थे। मैत्रेयी पुष्पा ने एम.ए वहीं से किया था।

एम.ए. पढ़ते समय लोगों के स्वार्थ को देखकर उनमें चेतना लाने हेतु एक कविता लिखी थी जिसका नाम 'बाडे की औरतों के लिए' था। साहित्य में रूचि रहने के कारण एम.ए. में अंग्रेजी और हिन्दी दोनों को अपना विषय चुना। हिन्दी के प्रो. मित्तल तथा अंग्रेजी के प्रो. दरबारी साहब को अनेकानेक प्रश्नों से उन्हें अनुत्तरित कर डालती थी। कस्तूरी देवी अपनी बेटी को बहुत पढ़ाना और नौकरी करवाना चाहती थीं। पढ़ाई के चलते जो भी प्रबंध वह करपाती थी करती थीं जैसे कहीं सम्मेलन, संगोष्ठियों, पुस्तकालय को आने जाने के लिए बहुत प्रोत्साहित करती थीं। शादी को भी पढ़ाई में रूकावट समझती थीं। उनकी माँ दहेज का विरोध करती थीं और ऐसे ही विचारों वाले लड़के से अपनी बेटी की शादी की। विवाह के बाद भी बेटी को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करती, नौकरी करने के लिए विवश करती थीं, मगर ऐसा नहीं हो पाया। मैत्रेयी पुष्पा की भी पढ़ाई मेंरूचि रहने के कारण अपने पति से कहती हैं कि ''मुझे यदि कभी उपहार दे तो फणीश्वरनाथ रेणु की किताब ले आएँ।''[16] उनके पति भी पत्नी की रूचि के अनुसार कुछ लाना चाहते थे तो महादेवी वर्मा, रेणु जैसे साहित्यकारों की किताबें पत्रिकाएँ लाते थे। पुस्तकों का अध्यायन सम्मेलन, गोष्ठियाँ इन सबके चलते मैत्रेयी पुष्पा अपने विचारों में परिपक्वता ला सकीं और स्वतंत्र रुप से अभिव्यक्त करने में सफल हो पायीं। विवाह के पच्चीस वर्ष बीताने के बाद भी तीन बेटियों की माँ के मन में समाज की विरोधाभासी मान्यताओं और लैंगिक असमानता पर आधारित संरचना को लेकर अनेक प्रश्न कुलबुलाते रहते हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने इन प्रश्नों को अभिव्यक्त करने और अन्याय पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को कटघरे में खड़ा करने के लिए साहित्य को माध्यम बनाया। साहित्य का समाज भी पुरूष–व्यवस्था का शिकार है तो यहाँ के स्त्री लेखन को हल्केपन से लिया जाता है। यहाँ प्रोत्साहन की जगह हताशा के भंडार पड़े हैं। शुरूआत में सभी साहित्य जगत के लोग हल्के लेते थे। उनकी बातों में हम समझेंगे कि ''डॉक्टर की पत्नी होने के कारण सब मेरा 'यूज' करते थे और मैं सोचती थी कि वे देवदूत है जो साहित्य का रास्ता दिखा देंगे। वे जैसे पुकारते थे, मैं भागती थी। मुझे यह लगता था कि मेरा काम है तो मुझे इतना करना ही पड़ेगा। झिझक भी बहुत थी मेरे अंदर।''[17] बचपन से गाँव से अकेली लड़की सब लड़कों के

साथ एम.ए. तक पढ़ाई को–एजुकेशन में पढ़ी लेकिन शादी के बाद ऐसी कंडीशनिंग हुई कि वे पुरूषों के बीच में जा मिलने के लिए झिझकने लगी थीं। 'हंस' पत्रिका से कहानी बार–बार लौटाई गयी, अन्य पत्रिकाओं से भी निराशा ही हाथ लगी। भाई–भतीजावाद केवल राजनीति में ही नहीं चलता, शिक्षा, संगीत, नाटक, फिल्म और साहित्य में भी चलता है। साहित्यिक क्षेत्र में मैत्रेयी पुष्पा को कोई मदद करने वाले रिश्ते–नातेवाले कोई नहीं रहे थे, फिर भी उनके अंदर साहित्य के प्रति लगन, दृढ़ संकल्प, प्रतिभा और बचपन से भी मेहनत करने की आदत जो है उन्हें हिन्दी साहित्य जगत में केवल स्त्री लेखिका ही नहीं, वरन् स्त्री–लेखन में वे एक क्रांतिकारी ही बन गई थीं।

समय–समय पर अनेक पुरस्कारों से सम्मानित मैत्रेयी पुष्पा आज स्त्री–विमर्श के संदर्भ में मील का पत्थर साबित हो चुकी हैं। साहित्य के क्षेत्र में स्त्री–विमर्श का कोई पक्ष उनकी रचनाओं का उल्लेख किए बिना संपूर्ण नहीं होता, जो जीवन स्त्री जीने के लिए व्यवस्था ने निश्चित किया था जीते हुए अबला बन गई। मैत्रेयी ये सब आदर्श उद्बोध गीतों को स्त्री के कमजोर करनेवाले साधन मानती है। परंतु उससे ज्यादा ताकतवर वे लोक गीत हैं जिनमें ग्रामीण स्त्रियाँ जीवन की व्याख्या खुद करती हैं। हो चुके अन्यायों, क्रूर, व्यवहारों और मान्यता प्राप्त बेईमानियों पर उबल उठते हैं। मैत्रेयी पुष्पा अपने आपको उन ग्रामीण स्त्रियों में से एक मानती हैं। मैत्रेयी पुष्पा शुरूआत से ही दिए गए नियमों, संबंधों और धार्मिक आंडम्बरों पर उंगली उठाने से बाज नहीं आती। अनुभव व उदाहरण तो यह सिद्ध करते हैं कि व्यवहार के चलन से समाज में थोपी हुई बहुत सारी अनैतिकताएँ एक शाश्वत मूल्य बनकर सामने आते हुए देखकर मैत्रेयी पुष्पा बहुत ही दुःखित होती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा आदर्शवादी साहित्य से यथार्थवाद की ओर मुड़ी, स्त्री के प्रति या दलित जाति के प्रति की जानेवाली क्रूरताएँ साहित्य के द्वारा उजागर करती हैं। स्त्री आर्थिक रूप से निर्बल है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में पुरूष पर निर्भर है, परिवार, समाज में कई रूपों में से दबाई, कुचली गई हैं। पवित्रता, नैतिकता आदि कई थोते आदर्शों के बंधन में उसे जकड़ दिया गया है। स्वतंत्रता, आर्थिक नियमों से दूर रखा गया हैं। इन सारे बंधनों से

छुटकारा पाने के लिए मैत्रेयी पुष्पा अपने साहित्य में स्त्री को शिक्षा, आर्थिक स्वावलंबन को एक मात्र मार्ग मानती है और झूठी नैतिकताओं से छुटकारा दिलाना चाहती है।

मैत्रेयी पुष्पा पर प्रेमचंद, रेणु और भगवती शरण उपाध्याय आदि रचनाकारों का प्रभाव अधिक रहा है। मंदा, अल्मा, रेशम, चन्दना गोमा, सारंग, सावित्री, रायप्रवीण आदि उनकी गाँव की अनपढ़ अर्धशिक्षित स्त्रियाँ होते हुए भी स्त्री चेतना, जागृति और स्त्री अधिकारों से सचेत स्त्रियाँ हैं जिन्हें गाँव में कई परिस्थितियों से होकर गुजरना पड़ता है। गाँव की स्त्री संघर्षमयी स्त्री है। समाज से लड़ते–लड़ते जुझारू होते हुए भी राजनीतिक अधिकार प्राप्त करके स्त्री अपने जीवन में कई अधिकारों से अपने आपको अलंकृत कर पुरूष सत्ता के सामने अपने विजय शंख फूँकती है और विजय का झंडा लहराती और स्थापित करती हैं।

2.2.1 मैत्रेयी पुष्पा के कृतित्व का संक्षिप्त परिचय

हिन्दी कथा–साहित्य में मैत्रेयी पुष्पा समकालीन रचनाकारों में अपना अलग स्थान रखती हैं। उनके कथा–साहित्य की विशेषता है कि उनकी बुंदेली व खड़ी बोली मिश्रित भाषा–शैली, ग्रामीण अंचल व उनकी जबर्दस्त नायिकाएँ। उनके कहानी संग्रह और उपन्यास, आत्मकथा के दो भाग 'कस्तूरी कुण्डल बसै' और 'गुड़िया भीतर गुड़िया' काफी चर्चा में हैं। हिन्दी कथा–साहित्य में मैत्रेयी पुष्पा स्त्री–विमर्श के क्षेत्र में सशक्त हस्ताक्षर है। समकालीन साहित्य और समाज में मैत्रेयी पुष्पा का रचनात्मक स्वर निरंतर सार्थकता प्राप्त कर रहा है। वे हिन्दी की ऐसी विशिष्ट लेखिका हैं, जिन्होंने स्त्री–जीवन के सामान्य सुख–दुःख को अपनी रचना के केन्द्र में स्थान दिया है। इनका लेखन आपके निजी अनुभवों पर आधारित है। इस बात को वह स्पष्ट शब्दों में कहती हैं कि ''मैं तो यह डंके की चोट पर कहती हूँ कि विचार का जन्म मनुष्य के अनुभव से होता है। हर उपन्यास, हर कहानी में अगर मैं न उपस्थित होती तो मेरी कलम कागज पर कैसे चलती? 'इदन्नमम' की मंदा में मेरी छाया है तो 'चाक' की सारंग मेरे गुरूकुल के अनुभव को लेकर चलती हुई पंचायत के उस मुकाम तक पहुँचती है, जहाँ लोग मुझे देखना चाहते रहे हैं।''[18]

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यास और कहानियों में मध्यवर्ग की स्त्री समस्याओं की चर्चा की और स्त्री चेतना, नारी जीवन मूल्योंको समकालीनता के साथ जोड़ते हुए पात्रों के द्वारा संघर्ष के गुंजाइश दी है। लड़े बिना कोई हक न मिलेगा इसी को साबित करके दिखाई हैं।

2.1.1.1 कहानी साहित्य

इक्कीसवीं सदी का स्त्री लेखन, पत्रकारिता, नाटक, सिनेमा, पुलिस, सेना जैसे क्षेत्र में आ रही, जो अभी तक उसके लिए वर्जित माने गए थे। स्त्री की मनोदशा स्त्री से बेहतर कोई नहीं जान सकता। मैत्रेयी पुष्पा की कहानियाँ जीवन के भोगे गए सत्य के नज़दीक हैं। मैत्रेयी पुष्पा एक स्त्री हैं और उन्होंने गहराई से स्त्री के मन को स्पर्श किया है, उसे टटोला है। उनकी कहानियों में दलित, जनजातीय, देहाती और पिछड़े वर्ग की औरतें अपने पुरूष वर्चस्ववादी परिवेश, समाज और मूल्य व्यवस्था से अपने सशक्तीकरण की स्पष्ट माँग के साथ टकराती हैं और सामाजिक पाखंडों, पतनशक्तियों और रूढ़ियों का पर्दा फाश करती हैं। इनके स्त्री पात्र नियति के विरूद्ध खड़े होते हैं।

मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं कि ''कसवाट जहाँ ज्यादा होगी, छटपटाहट वहाँ उतनी ही तीव्रतासे उभरेगी।''[19] गाँव की स्त्री यदि प्रतिरोध में सिर उठाती है तो वह निश्चित ही सिर पर कफन बाँधकर निकली होती है। वे चारित्रिकता और नैतिक मूल्यों के बारे में जो पुरूष व्यवस्था के बनाए हुए शास्त्रीय रूपों को न मानते हुए स्त्री की परिस्थितिजन्य मूल्यवत्ता के प्रभावित होने में विश्वास रखती हैं। गँवई स्त्री परिस्थितियों के अनुसार अपनी राजनीति तैयार करती है क्योंकि उसकी स्थिति शहरी स्त्री के मुकाबले भिन्न और साधनविहीन होती है। गाँव में अशिक्षा, यातायात की असुविधा, थाने और कचहरियों की दूरियाँ, खूँखार सामंती समाज का घेरा और जातिगत पंचायतों को देख सकते हैं। साथ ही विवाह व्यवस्था का थोपा हुआ शिकंजा गाँवों में अपने महत्व को अकाट्य बनाए हुए हैं। यानी कि पुरूषों की राय से हुए विवाह के फैसले जिसमें औरत को बहू के रूप में केवल आज्ञाकारिणी होना है अपनी सेवा और शरीर समर्पण के साथ। हमारी वैवाहिक परंपरा लड़की के माता–पिता को कन्यादान के विधान तले दबाकर मौन रहने को बाध्य करती हैं। साथ ही गाँव में सगे–संबंधी, गांव के लोगों का हस्तक्षेप शहर के मुकाबले ज्यादा रहता है, तो इज्जत का सवाल सिर चढ़कर बोलता है,

जबकि शहरों में आपसी संबंध अस्थायी रहते हैं। यहाँ मर्यादा परिवार का सवाल बन सकती है, समाज का नहीं। परिस्थितिजन्य दुखित अनुभवें को अपनी कहानियों में, लोक–चरित्रों के माध्यम से सामाजिक छवियों को उभारा है। 'चिन्हार', 'ललमनियाँ', 'गोमा हँसती' है और 'पियरी का सपना' कहानि संग्रह हैं।

कहानी संग्रह : 'चिन्हार'

'चिन्हार' शब्द का अर्थ बुंदेली भाषा में 'पहचान' होता है। मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं कि 'उस 'चिन्हार' ने मेरी पहचान बना दी।' इस कहानी संग्रह में 12 कहानियाँ हैं जो बहुत चर्चित रही हैं। इसका प्रथम संस्करण सन् 1991 में प्रकाशित हुआ था। कहानियों की उत्कृष्टता को देखते हुए फिर द्वितीय संस्करण 1997 में प्रकाशित हुआ और तृतीय संस्करण भी 2004 में प्रकाशित हुआ था।

'चिन्हार' कहानी संग्रह का महत्व मैत्रेयी पुष्पा काखुद का सम्मान नहीं, वरन् भाषा का और कृति का सम्मान नहींइसके महत्व लेकर वह खुद लिखती हैंकि–''उन पात्रों का सम्मान मानती है जो इसके असल हकदार हैं। जिन्होंने अपनी धरती पर परिवेशगत दबावों को झेलते हुए मृत्यु से भी भयानक जीवन का वरण किया, प्रतिदान किया, त्याग किया, विकल्प खोजे तथा सत् को असत् पर प्रतिष्ठित करने के लिए होम होते रहे।''[20]

'चिन्हार' की कहानियों के बारे में चर्चा करते हुए हंस के संपादक श्री राजेन्द्र यादव ने कहा था कि ''तुमने इन दस्तावेजों में अनुभवों की बहुमूल्य पूँजी को बेदर्दी से खर्च किया है।''[21] 'चिन्हार' कहानी संग्रह में कहानियों के बारे में लेखिका अपनी राय देती हुई कहती हैं कि ''सजावटी बैठकों में, वातानुकूलित कमरों में या उच्च दीक्षित परिवारों में पली–बढ़ी, रहती–बसती नारी के आहत अहं की कहानियाँ नहीं हैं चिन्हार में, देश की अस्सी प्रतिशत जनता का प्रतिनिधित्व करती औरत की व्यथा–कथा है। मुझे गौरव है उस औरत पर जो अनपढ़ होकर भी बुद्धिमान, साधन–विपन्नता झेलते हुए भी स्नेहमयी, गूँगी होकर भी कर्मशील, असभ्य कहलाकर भी सत्यनिष्ठ और सब तरफ से घिरी होकर भी मुक्त होने के लिए कटिबद्ध है।''[22] स्पष्ट है कि समाज में कई बंधनें घिरे होने पर भी अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत है। मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों का मुख्य मुद्दा है।

बेटी :

इस कहानी के बारे में लेखिका कहती हैं कि ''मैंने 'बेटी' कहानी लिखी, सिर्फ वही बहुत सिंपल सरल भाषा कि कैसी मेरी सहेली मुन्नी स्कूल नहीं जाती थी। और मैं जाती थी, फिर क्या हुआ बस वही लिखा। वह बड़ी हिट कहानी हो गई।''[23] इस कहानी से मैत्रेयी पुष्पासमाज में एक माँ औरत होते हुए भी बेटी के प्रति दिखाए जाने वाले भेदभाव को बड़े मार्मिक ढंग से चित्रित किया है। माँओं की ममता जो अपना पेट खाली रखकर भी अपने पाँच बेटों का पालन पोषण करती है। वह बेटी के साथ उसके व्यवहार में इतनी भिन्नता क्यों है ? वसुधा की सहेली के साथ यही घटा था।वह अपनी माँ से पूछती है कि ''तुम पाँच–पाँच लड़कों को पढ़ा सकती हो, लेकिन मेरे लिए तुम्हारे घर अकाल है–मेरी किताब–कापी के पैसे तुम्हें भारी हैं अम्मा।''[24] बेटी को पराये घर का दलिद्दर और बेटे को बुढ़ापे का लाठी जैसा सहारा मानते हैं। घर में बेटी आने के लिए और खुद बेटा–बहु घर में रहने के लिए भी आखिर मुन्नी की माँ वसुधा से कहती है कि ''मुन्नी कैसे आवे बिटिया...भाभी, भौजाइयों का घर... यहाँ हम ही निभ जाएँ यही बहुत है। अरे क्या बताएँ बेटी, हमारे बनाए घर में हमें ही निकालने को फिरती है तो बहुएँ। खेती–पाती सब बँटा ली, घर भी ले लेंगे तो हम रहेंगे कहाँ? तुम न्याय की कहना वसुधा।''[25]

इस कहानी में पुत्रों की माँ होने से एक स्त्री सिर उठाकर चलती है और अपने आपको सौभाग्यशाली समझती है। मगर बेटी को पराया धन समझकर शिक्षा से वंचित रखती है। उसकी शादी कराकर अपने कर्त्तव्य से हाथ धो लेना चाहती हैं। लेकिन बुढ़ापे में बेटा–बहु घर से भगा देते हैं। उसके सारे खेत खींच लेते हैं। बेटी बूढ़ी माँ की हालत को देखकर रो–रोकर दौड़कर आती है और बुढ़ापे अपने माता–पिता का सहारा बनती है।

इस कहानी में मैत्रेयी पुष्पा ने बेटियों को सामाजिक पारिवारिक महत्व दिलाने की कोशिश की है। पराये घर का दलिद्दर भी अपने जीवन में उजाला ला सकता है। प्रेम, स्नेह बाँट सकता है। बुढ़ापे का सहारा हो सकता है। इसमें दिखाने का प्रयास किया है।

केतकी :

केतकी कहानी में एक तरह से स्त्री पात्र जैसे विद्यावती, रेशमिया और केतकी तथाकथित सामाजिक वर्ग जैसे सामंतवादों, पंडितो, उच्च, सम्मानित व्यक्तियों द्वारा अपमानित

होते हुए शोषण के लिए बाध्य हो जाती है। ऐसी स्थिति में कई स्त्रियां कच्चे मन से अपने जीवन का अंत करलेती हैं, लेकिन केतकी अपनी बुद्धिकुशलता से नामी लोगों का भांडा फोड़कर सबके सामने विश्वासघातीग्राामीण सम्मानीय व्यक्तियों को पुलिस को पकड़ा देती है। लेखिका इसके द्वारा स्त्री जागरूकता और नारी चेतना प्रकट करती है। शिक्षा के द्वारा यह साहस कार्य कर जो बड़प्पन के नाम पर स्त्री–शोषण कर रहे हैं गाँव में उस असत्य परंपरा को बंध कराकर स्त्रियों को आजादी दिलाती हुई केतकी दिखाई देती है।

केतकी का ब्याह मधुपुर गाँव में रहने वाला पंडित श्रीगोपाल के बडे बेटे श्रीकांत के साथ किया गया था। यहाँ के ग्राम प्रधान गंधर्व सिंह अत्यंत गौरवमय और सम्मानीय व्यक्ति थे। केतकी के ससुर के साथ उनका उठना–बैठना था। ग्राम प्रधान हर समस्या का हल बुद्धि–चातुर्य से कर के गाँव में सुखशांति बनाये रखते थे।गाँव में विधवा या कुँवारीलड़की गर्भवती होती है तो उसके अपने किसी रिश्तेदार से विवाह कराकर समस्या का समाधान कर देते थे। इसमें स्त्री की संवेदना, रजामंदी आदि का कोई महत्व नहीं होता था पूरा गाँव उनकी बात को सिर झुकाकर मानता था।

एक दिन केतकी अकेली थी, साथ में देवर मणिकांत था जो अल्पबुद्धि का था। केतकी उसकोमाँ जैसे प्यार देती थी। ससुर बाहर गयाहुआ था। यह जानकर ग्राम प्रधान ने घर में आकर केतकी के साथ बलात्कार करता है। और किसी को न बताने की धमकी देकर जाता है। उस समय मणिकान्त को कमरे में बंद कर देता है। वह चाहकर भी कुछ नहीं कर पाता। उसके बाद समय बीतते–बीतते केतकी गर्भवती हो जाती है। फिर से एक दिखावटी पंचायत जुड़ती है। इससे पहले किसी–किसी की करनी का जामा किसी और के सर पहना जाता था। जब केतकी की भारी आयी तो वह भरी सभा में गंधर्व सिंह का भंडा फोड़ देती है। वहसभी स्त्रियों से इसकुप्रथा को बन्द करवाने का आग्रह करती है। उप पंचायत के सारे नियम झूठे टहराती है। सभी पुरूष आश्चर्यचकित हो जाते हैं। तभी केतकी के कॉलेज का मित्र इंस्पेक्टर चन्दन वर्मा आकर उन्हें गिरफ्तार कर जेल में डाल देता है।

गंधर्वसिंह के जेल जाने के बाद उनका पुत्र केतकी से न जीत पाता तो षड़यंत्र के साथ केतकी का पति श्रीकांत को गुरूकुल में पत्र लिखता है, पत्र पाकर वह सीधा घरआता है। वह आकर श्रीराम का भक्त निकलता है।श्रीकांत पत्नी के तन से पराये मर्द के स्पर्शों की

गंध पाकर उसे छोड़ सदा के लिए चला जाता है। पिता अवाक रह जाते हैं।केतकी ससुर को लज्जा और दुःख देखकर अपने गाँव जाना चाहती है। ससुर पंडित श्री गोपाल उसे रोक कर सारी संपत्ति व मणिकांत कोकेतकी के हवाले कर निश्चिंत हो जाते हैं। 'केतकी' बालक को जन्म देती है। मणिकान्त उसका नाम 'सत्यव्रत' रखता है।

इस प्रकार झूठ से रचे पंचायतें और स्त्री जीवनका अंत एक कठोर सत्य के साथ खत्म हो जाता है। लेखिका एक स्त्री पात्र केतकी के द्वारा सदियों से चली आ रही घिनौनीपरंपराओं को तोड़ डालती हैं। अन्याय और स्त्री शोषण को जड़ से उखाड़ फेंकने का काम केतकी करती है। केतकी के द्वारा लेखिका ग्रामीण स्त्रियों को यह आहवान देती है कि स्त्रियों के खिलाफ हो रहे अन्याय, अत्याचार, अनाचार के खिलाफ आवाज उठाना है। डॉ. दया दीक्षित 'केतकी' को लेकर कहती हैं कि–''केतकी ने यह साबित कर दिया कि स्त्री अगर चाह ले तो बड़े आतताई को लोहे के चने चबवा सकती है।''[26]

चिन्हार :

यह कहानी सरजू के बारे में है जो डाक्टर साहिबा और मैत्रेयी पुष्पा को उनके पढ़ाई के समय किराये पर खाना बनाती थी। पैसा लेने से भी इन्कार करती है, वे लोग जबरन हथेलियों के बीच रूपये ठूँसने से कहती है''रूपया नहीं चाहिए जिया, प्रेम भड़ बनाये रखियो बस्स....''[27] कहते–कहते उसकी आंखे मिदुरा उठी। 'कस्तूरी कुंडल बसै' में मैत्रेयी ने इसपर पुष्पा चर्चा करती है। सरजू जितनी प्रेममयी और निष्ठावती थी, उसका पति उतना ही धूर्त और लम्पट था।

कहानी के शुरूआत में महिला डॉक्टर सरजू को पेशेंट के रूप में देखकर चौक जाती है क्योंकि उनके लिए खाना बनानेवाली सरजू कोबेहद अपनत्व था वह उनसे जुड़ गयी थी। पति चंद्रकांत बस कंडक्टर था जो शराबी पीयक्कड़ वपरस्त्री मोहक था। जहरीली शराब पीने से उसकी मृत्यु हो गई थी। डाक्टर सरजू को दयनीय स्थिति में देख नहीं पा रही थी। सरजू को अस्पताल ले आये स्त्री–पुरूष उनसे बताते है कि सरजू के पति के मरजाने के बाद,उसकी ननद उसे अपने घर ले गयी।उसकी बेटी कनक को अपनी बेटी की तरह लालन–पालन करते है और माँ को आया की तरह रखते है। घर केपीछे के कमरे में उसे रहने के लिए कहता हैं। बेटी कनक को समस्त सुख–सुविधा प्राप्त थी। सरजू चाहकर भी अपनी बेटी को स्तनपान

नहीं करा पाती थी लेकिन क्षुधा से व्याकुल चीखते शिशु को माता के रूप में स्तनपान कराने को तरसतीथी। ननद जबकनक का काम करने को सौंपती है तो वह बाहर जाने के बाद बेटी को वात्सल्य के साथ कनक को अपने पास सुलाती थी और ननद वापस आते ही उसके बिस्तर पर लिटा देती थी। कनक भी सरजू को नौकरानी से ज्यादा नहीं समझती थी। उस के देस्तों की बातें उसे सोचने पर मजबूर करती है कि उसकी शक्ल उसकी नौकरानी की जैसी है।

कनक के विवाह के समय चारों ओर सजावट, धूम–धाम, खाना–पीना, बाराती आदि चल रहा था। शादी बडे 5 सितारा होटल में होती है। सरजू को रिश्तेदारों के बीच में आने न दिया और एक अंधेरे कमरे में रख दियाजाता है। वह वहीं कोठरी में ही दुबकी रहती है। दुल्हन बनी बेटी को आंखों से दूर से भी देख नहीं पायी थी। विवाह भर कनक रोती रही दहलीज पूजने के समय वह घर भागकर सरजू की कोठरी में पहुँचजाती है उसके पीछे–पीछे समस्त बराती जाते हैं। भीड़ अपनी ओर आती देख सरजू अचकचाकर उठ खड़ीहोती है। बेटी कहती है ''माँ दहलीज पुजवाओ... माँ ऽऽ... और उससे लिपटकर रोने लगती है। माँ अपनी बेटी को सीने से तो लगा लेती है किन्तु पत्थर जैसी हो गयी बिन पानी के शून्य, सूखी... एक आँसू नहीं गिरा।''[28]

बस उस दिन से ऐसे हो गयी साहिबा, यही हालत है...। कहकर सरजू का दामाद वह युवक ठंडी आह भरता हुआ कुर्सी से उठता है। पास ही बैठी कनक रो रही थी। यह दिल दहलाने वालेदृश्य को देखकर डाक्टर साहिबा भी रोने से अपने आपको रोक नहीं सकी। कहानीयहीं तक है।

इस कहानी में लेखिका मैत्रेयी पुष्पा ने माँ की संवेदनाएँ,वात्सल्य काबहुत ही मार्मिक ढंग से वर्णन किया है।सुख–सुविधाओं में पली–बढ़ी बेटी जब अपनीमाँ को पहचानती है तो संघर्ष करते हुए, परिस्थितियों से जूझते हुए अपनी माँ के सान्निध्य में आ पहुँचती हैं। इस कहानी के बारे में डॉ. दया दीक्षित कहती हैं कि–''दुनिया ने फूल और खुशबू का रिश्ता अभी तक छिपाए रखा था, वह छद्‌म आखिर टूटी ही गया! आत्मा और आत्मजा में अदृश्य भावात्मक तंतु आखिरकार जुड़ही गया! किंतु कितना अद्‌भुत वाकया था! न कभी माता ने

जताया बताया ना कभी बेटी ने पूछा पहचाना... किंतु अप्रतिम प्रगाढ़ रिश्ते की डोर की चिन्हार ने आखिरकार दोनों को एक कर ही दिया!''[29]

कहानी संग्रह : 'ललमनियाँ'

ललमनियाँ कहानी संग्रह मैत्रेयी पुष्पा का द्वितीय कहानी संग्रह है जिसका प्रकाशन 1996 में किताबघर, दिल्ली से हुआ। इस कहानी संग्रह में कुल दस कहानियाँ हैं:– 'फैसला', 'सिस्टर', 'सेंध', 'अब फूल नहीं खिलते', 'रिजक', 'बोझ', 'पगला गयी है भागवती', 'छाँह', 'तुम किसकी हो बिन्नी', ललमनियाँ।

उनकी कहानियों में अंचल विशेष की बोली और परिवेश की प्रधानता होने के कारण उन्हें आंचलिक कथाकार के रूप में स्थापित करने की कोशिश भी की जाती रही है। सच यही है कि उनकी कहानियों का परिवेश एक मिश्रित परिवेश है, यानी ग्रामीण भी है, और नगरीय भी, पर एक कथा लेखिका के रूप में जो छवि मैत्रेयी पुष्पा ने अर्जित की है, उस पर आंचलिकता की मोहर तो लगी ही है। इस कहानी संग्रह के बारे में रमेश तैलंग कहते हैं कि ''मैत्रेयी पुष्पा के इस कहानी–संग्रह को पढ़ना आधी–दुनिया के अँधेरे उजालों के बीच से होकर गुजरना है''[30]

मैत्रेयी पुष्पा की कहानियाँ पुरूष–सत्ता बरक्स स्त्री कीवेदना और यंत्रणाओं का मार्मिक वृत्तांत प्रस्तुत करती है। ठगा जाना स्त्री नियति है। वह इस नियति को चुनौती देती है। पराजित होती दिखाई देती है परंतु पराजित होना उसे स्वीकार नहीं। वह पुरूष समाज के अंधेरे और उसके खोखलेपन को समझती है। कहानियों की नायिकाएँ तिल–तिलकर समाप्त होती, सुबकती, शरतचंद्री भावुकता में सराबोर दम तोड़ती नायिकाएँ न होकर हॉड–माँस की ऐसी स्त्रियाँ हैं, जो पारंपरिक समाज की कैद में रहते हुए भी अपना अलग रास्ता तलाशती हैं।

फैसला :

'फैसला' कहानी संग्रह की पहली कहानी है, जिसमें राजनेताओं ने स्त्री को राजनीति में लाकर, अपने अधिकारों को पाने केलिएउसकी कठपुतली की तरह किस तरह इस्तेमाल करते हैं दिखाने की कोशश की है। औरत के रूप में नियंत्रण भी करना चाहे तो अंततः कैसे अपने हकों को अपने खुद नियंत्रण में लाना है इस कहानी में वर्णन किया गया है। स्त्री उत्पीड़न,

जुझारूपन की प्रतिक्रिया को अंत में सफलता मिलती है।'फैसला' कहानी बहुत चर्चित हो गई है। इस कहानी पर टेलीफिल्म–'वसुमती की चिट्‌टी'भी बनी है। इस कहानी को लेकर राजेंद्र यादव आश्चर्य चकित होकर लेखिका से कहते हैं कि ''तुम कैसे लिख सकती हो? लगती तो नहीं हो ऐसी, तुम्हारी सकल–सूरत से कि तुम बुद्धिमान हो।''[31]

'फैसला' की बसुमती और ईशुरिया दो पात्र होते हुए भी एक ही स्त्री के दो रूप लगते हैं जैसे बसुमती शरीर हो और ईसुरिया उसकी आत्मा है। बसुमती द्वारा अपने 'ग्राम्य प्रमुख' पति के अनाचार से क्षुब्ध होकर लिया गया फैसला उसकी आत्मा की आवाज का ही परिचायक है, जैसा कि वह स्वीकार करती है–''लेकिन मैं क्या करती, अपने भीतर की ईशुरिया को नहीं मार सकी।''[32]स्त्री तो सहनशील होती, पर जब सहनशीलता की हर हद पार करेगी तो निश्चय ही उसके अंदर की जो विद्रोही आत्मा है जाग उठती है। ईशुरिया बसुमती की अंतरात्मा ही है, जब वह जागती है तो बसुमती का चरित्र बदल देती है। तब वह राजनीतिक छल–छद्‌म और हर तरह के अनाचार के विरूद्ध खड़ी हुई एक भीरू स्त्री नहीं, एक शक्तिवान स्त्री दिखती है जो अपने विवेकाधिकार का इस्तेमाल अपने ही पति के विरूद्ध करने से नहीं हिचकिचाती।

फैसला की बसुमती आरक्षण के द्वारा प्रधानपद के लिए चुनी जाती है। प्रधान बनी बसुमती को देखते हुए ईशुरी कहती है कि ''अब ठठरी बँधे मरद मारकूटी करें, गारी–गरौद दें, मायके न भेजें, पीहर से रूपया पैइसा माँग मँगवाने, क्या कहते हैं कि दायजे के पीछे सतावें, तो बैन सुधी चली जाना बसुमती के दिंग''[33]यह कहना उचित है कि स्त्री के लिए आरक्षण एक राहत का पर्याय बनकर आया है। जिसके परिणाम स्वरूप दहेज की समस्या, पति का अत्याचार इन सबका वह मुकाबला कर सकती है। इस कहानी का महत्व रमेश तैलंग की बातों में समझ सकते हैं कि–''मैत्रेयी पुष्पा ने इस संग्रह की शीर्ष कहानी होने का श्रेय ललमनियाँ को दिया है, पर न जाने क्यों मुझे इस संग्रह की सबसे अच्छी और सशक्त कहानी 'फैसला' ही लगी है। इसके सरोकार 'ललमनियाँ' से बड़े हैं। दूसरे, इसमें बसुमती का अंतरद्वंद्व अपनी चरम सीमा पर उभरा है और तीसरे, इस कहानी में एक छिपा संदेश भी है, जो दूरगामी है।''[34]

लेखिका इस कहानी के द्वारा स्त्री के लिए आरक्षण स्त्री–जीवन काएक दिशा निर्देश समझती हैं। यह आरक्षण राजनीति के क्षेत्र में परिलक्षित है। इस राजनीतिक दायरों में पहुँची

महिलाओं को 'आरक्षण' पहला मुद्दा मानने की सलाह देती है और स्त्री के लिए तैंतीस प्रतिशत आरक्षण को पचास प्रतिशत बढ़ाने का माँग रखती हैं,जो पुरूषों के लिए खतरे की घंटीहैं।

सिस्टर :

'सिस्टर' कहानी संग्रह की दूसरी कहानी है। इसमें सिस्टर डोरोथी डिसूजा जो अस्पताल में काम करके रिटायर होने के पश्चात स्वतंत्र रुप में इंजेक्शन लगाने का काम करती है। डिसूजा अपने पिता की देखभाल करने के लिए आजीवन कुंवारी रहती है।

एक दिनडिसूजा सुरेशचंद्र मरीज को देखने के लिए जाती है। उस परिवार से मेल–मिलाप, अपनत्व बढ़ता चला जाता है। वह नर्स को अपने बच्चों की बुआ, अपनीबहन मानने लगतेहैं, प्यार के साथ उनको सेंतमेंत सेवा करने लगती है। अकेलेपन को भूल जाती है।उसे उस परिवार से बहुत प्यार और इज्जत मिलती है। सुरेशचंद्र भी जल्द ही स्वस्थ हो जाते हैं।

ऐसे में सुरेशचंद्र केबेटे की शादी का दिन आजाता है। भतीजा के लिए सिस्टर बुआ बनकर अपनी जिम्मेदारी निभाने कानिर्णय लेती है। घुड़चढ़ी के वक्त बुआ ही लड़के की आरती उतारती है। उसके लिए बाजार से अपने आपको तैयार करने के लिए साड़ी, चप्पल, चूड़ी आदि खरीदकर अपने को सजाती है, और अपने सामर्थ्य से बढ़कर, होनेवाली बहु के लिए एक सुंदर अंगूठी भी लाती है। वहाँ जाने पर उसे एक मेहमान की तरह बिठाया जाता है।चाय नाश्ता दे दिया जाता है। और घुड़चढ़ी की आरती उतारने के लिए भी कोई सावित्री नाम की स्त्री को बुलावाना सुनकर सिस्टर बहुत अचंबित हो जातीहै।दुःख के साथ वहाँ से जल्दी घर जाकर साड़ी उतारकर, अपना एप्रिन मोजे व टोपी पहन लेती है, और अस्पताल की तरफ चली जाती है।''सुरेश भइया के घर के आगे से तेज रफ्तार से गुजरता हुआ उनका रिक्शा दूर निकल आया। बजते हुए बैंड की ध्वनी पीछे छूटती हुई धीमी होने लगी, अंत में विलुप्त हो गयी।''[35] कमानेवाली बिना पुरुष की स्त्री अकेलेपन को मिटाने के लिए रिश्ते बनाकर अपने आप को भूल जाती है। इस संदर्भ में रमणिका गुप्ता का कहना हैं कि–''अकेली जिन्दगी जीते–जीते आस–पास, अडोस–पडोस से रिश्ते गाँठने,संबंध बनाने को लालायित कामगार महिला के अकेलापन की नीरवता और नीरसता को तोड़ने के प्रयास की एक दस्तक बन पन्नों पर बिखर जाना हो। (सिस्टर), अथवा अपना सुख नकार कर अपने ही परिवार पर न्योचावर होती, हीन भावना की शिकार, अपने त्याग–बलिदान के व्यर्थता बोध के आस–पास

से भयभीत अपमानित होकरभी रिश्तों के टूटने से डरती, सब कुछ छिन जाने के भय से आंतरिक, अपनी ही नजरों में खुद को गिराती है।''[36]

इस कहानी में लेखिका ने खून के रिश्तों को महत्व दियाहै, उसके साथ–साथ इस समाज में कितना ही प्यार, अपनत्व मिले बाहर का रिश्ता घर, खानदान के रिश्तों के आगेउपेक्षा का पात्र ही होता है। मगर सिस्टर परायी होते हुए भी निस्वार्थ प्रेम ही प्रकट करती है।

रिजक :

'रिजक' कहानी संग्रह की पाँचवी कहानी है। इसमें निम्नवर्गीय लल्लन अपनी परिस्थितियों की और राजनीति के कारण शोषित हो जाती है। वह अपनी बसोर जाति के यथार्थ और अपनी नियति दोनों को जानती। रमेश तैंलंग इस कहानी के संदर्भ में कहते हैं कि–''दलितों से जुड़ी अनेक समस्याओं को संश्लिष्ट रूप में उठाती 'रिजक' संग्रह की अच्छी कहानियों में से एक है।''[37]

लल्लन जो है, जाति बसोर की है, वह बेहाल हो उठी है क्योंकि उसका पति आसाराम अस्पताल के विरूद्ध दंगाकरने से और राजनीति करने के कारण हवालात में डाल दिया गया था। पति आसाराम की तरह वह सवप्न दुनिया में नहीं रहती है। आसाराम का तथाकथित क्रांतिकारी रास्ता उसे पसंद नहीं आता। आसाराम की गिरफ्तारी के बाद, जब उसे छुड़ाने के लिए बिरादरी/ गैरबिरादरी का कोई व्यक्तिमदद के लिए आगे नहीं आता। वह अपना सारा रोष आसाराम पर ही निकालती है''बिंडा रह हवालात में। बड़ा मरता था बिरादरी के लिए। सगे खास अब कहाँ अलोप हो गए, सब अपने स्वस्थ के हैं। गुड देखते के पींटे।''[38]अब शहर में जाकर शहरी ढंग से बच्चे जनाने काप्रशिक्षण लेकर आयी तो गाँव में अच्छी पहचान इज्जत मिली थी जैसे एक डॉक्टर को सम्मान, इज्जत मिलती है। अच्छी आमदनी और पहचान होने से लल्लन दाई के घर परिवार का नक्शा ही बदल जाता है।

समय, सुविधाओं के अनुसार ही आसाराम का विचार बदल गया और कहने लगा कि ''हमारी जनानी अबसे बच्चा जनाने घर–घर नहीं जाएँगी। बसोर की जाति है, तो क्या हम गन्दा काम करेंगे? गन्दगी उठाने को पैदा हुए हैं, हमारी औरतें जरूर जानाएँगी, मगर सिरपर नौकरी मिल जाए तब।''[39] इस प्रकार जातिगत राजनीति में डूबकर नौकरी, वेतन, शहरी सुविधा के लिए चिल्लाने लगा।

उनकी औरतें चाहकर भी किसी गर्भवती की जजगी के समय शामिल नहीं हो पाती थी। बच्चोंके मरने से भी यह दाइयाँ अपने–आपको दोषी मानती थीं। जो जाकर काम करती थी उनका जाति बहिष्कार कर दिया जाता था। धीरे–धीरे उनका भी पैसा खत्म होने लगा और आसाराम की राजनीति के चलते उन्हें गिरफ्तार कर लियाजाता है। लल्लन कभी आसाराम को, कभी राजनीति को कोसती है। बूढ़ी सास की हालत बिगड़ने लगी तो लल्लन तड़प उठती है। गाँव में बच्चा जनने के समय जो स्त्री मर जाती थी वह अपने आपको इसका दोषी मानती थी।एक दिन लल्लन मोदी की बहु की चीत्कार सुनकर जाकर बच्चे को जनाती है, आत्मग्लानी हो जाती है और मुँह से गीत निकलता है।इस कहानी में लेखिका जातिगत राजनीति में आसाराम का आत्माभिमान दिखाया और साथ ही साथ स्त्री उसमें फंसकर संवेदना से कैसे छटपटाती है।इसको भी बहुत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। यहाँ भी एक बार फिर लल्लन के निर्णय ने यह सिद्ध कर दिया कि ''औरत का दृष्टिकोण पुरुष से ज्यादा न्यायसंगत व्यवहारिक तथा लोकतांत्रिक होता है।''[40]

पगला गयी है भागवती :

'पगला गयी है भागवति' एक ऐसी स्त्री की कहानी है जो कच्ची उम्र में ही बालविवाह और वैधव्य जीवन को अपने ऊपर लाद रही थी। वह अपने जीजा–दीदी के पास रहते हुए उनकी बेटी अनुसुया का पालन–पोषण करती रहती है। माँ उस बच्ची की उपेक्षा से मुँह फेर लेती है, जीजा को बिटिया का घर में आना एक आँख नहीं भाता। भागो ने उसे पाल–पोसकर बड़ा किया। बड़ी होने पर अनसूइया ने एक मास्टर से प्रम विवाह कर लिया। ठाकुर उसे जहर देकर मार देता है। कभी–कभी उसे अनसूइया की याद आती थी तो वह रोते बैठती थी मगर उसकी माँ (दीदी) नहीं रोती थी, जीजा के सामने कोई अनसूइया का नाम नहीं लेते थे, जो कोई भी उसका नाम लेता तो वह उसे ऐसा देखता जैसा उसेकच्चा चबा जाएगा। पति के डर से मुंह में भींच लेती है।

कुछ दिनों बाद बेटा प्रेम विवाह कर लेता है, उसी उपलक्ष्य में ठाकुर बहू–बेटे के स्वागत के लिए एक पार्टी का आयोजन करता है।''द्वार की धजा बदल चुकी थीचारों ओर खुशियों, आनंद उल्लास, उमंगों के साथ रंग–बिरंगे रोशनियाँ सारे सुविधाओं से शादी हो रही थी। जीजा मधोसिंह और जीज्जी के दिल खुशी, उमंगों से भर आएथी।बेटे की शादी के

अवसर पर, दो–दो शामियाना डाले गएथे। एक शामियाने में वर–वधू के लिए दो महाराजा की कुर्सिया–लाल मखमल जुड़ी हुई, सुनहरी हत्योंवाली सिंहसन की तरह डाल दी गयीथी। सामने कतारबद्ध कुर्सियाँ ही कुर्सियाँ। दूसरे वाले शामियाना में भोजन प्रबंध है और डोंगा प्लेटों का असबोल विभिन्न मसालों की उठती महक गाँव गमक उठा।''[41]

मधोसिंह ठाकुर कादिल बेटे की राजी में राजी होना, जी खोलकर खर्च करना ये सारे चीजे देखकर लोग चकित हो जाते हैं। नरेश शहर में पहले से ही कचहरी कोर्ट में शादी कर आया तो यह सिर्फ लोगों को दिखावटी फंक्शन है। इस ब्याह में दहेज नहीं। भले ही जमींदारी टूट गई, पर मजाल है कि नाक पर मक्खी बैठने दी।

खुशी के समय में अचानक सब अपने आपको बचाने के लिए भागदौड़ कर रहे थे। खोजने लगे पर कोई नहीं मिला। अंत में लाला की रोडी–पत्थर से भरी छत से जो पकड़कर लाई गई थी वही है भागवती वह चीखती आ रही थी कि ''ओ अधमरी! अन्यायी ठाकुर माधों! आज बेटा–बहू के स्वाग में मरे जा रहे हो तुम? सुखी में असपरे भर के गाँव जिंवा रहे।आज आँखें मूँद लईं? बेटा की गलती दिखाई नहीं दई तुम्हें? याद करो माधो... जे ही गलती तो मेरी अनसुइया ने करी थी...बसजे ही। राच्छस... जे ही। तैने जो सराबी–जुआरी ढूढो हतो सो बा ने पसंद नहीं करौ। मास्टर जी से प्रीति हती.... हमें बताई हमाई बिटिया ने। भगवान के अगाई मंदिर में ब्याह करौ हतो और फिर गरभ... मास्टर आन बिरादरी हतो सो का? भलौ हतो। और जा बहु जा चुकी तुम आरती उतार रहो... जा कौन–सी असल की जाई है, जातैं हिन्दू तक नइयां! और चार महीन गरभ! माधो फिर, आज दैदै बेटा को जहर... जैसे मेरी अनसूइया कों....!!!''[42]

इस कहानी में मैत्रेयी पुष्पा ने यह साबित करने की कोशिश की है कि माँ बाप बेटे के पक्षपात करते हैं, भेदभाव दिखाते हैं। माँ–बाप बेटे की हर गलती को क्षमा करते हैं, फिर से उसे अपना लेते हैं, वहीं गलती पर बेटी को अक्षम पाप, अपराधी मानते हुए दूर ही मानते हैं। जहाँ माँ भी एक स्त्री होकर भी बेटी को क्षमा नहीं कर पाती। दोष पति, बेटा, पितृसत्ता समाज को न देकर अपने स्त्री जन्म को ही कोसती रहती है। इसलिए भागो को पागल या सिर्रिन कहते हैं, मगर सच्चाई को कोई ग्रहण नहीं करता। यही है स्त्री जीवन की नियति। डॉ. दया

दीक्षित इस कहानी को–''सामंती संस्कारों की कट्टरतानिर्ममता केसाथ दोयम दर्जे के छलकपट की दासताँ।''[43] मानती हैं।

तुम किसकी हो बिन्नी :

यह कहानी जब 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में छपी तो मन्नू भंडारी से लेखिका को प्रशंसा मिलती है कि ''तुमने बहुत अच्छी कहानी लिखी है, मैं तुमको बधाई देने आई हूँ।''[44] भ्रूण परीक्षण और भ्रूण हत्या के विरोध में लिखी गयी कहानी है।–तीसरी लड़की होने का अनुभव मुझसे ज्यादा किसको हो सकता है? अतः यह कहानी आत्माकथात्मक शैली में लिखी गयी है।

बेटे की चाह रखते हुए जब तीसरी बार भी बिटिया जन्म लेती है। लड़कियों वाली माँ होने के अनुभव को लेखिका इस प्रकार अभिव्यक्त करती हैं। माँ–बाप लड़की को स्वीकार नहीं करते। जीवन भर उसको तिरस्कार का ही सामाना करना पड़ता है।बिन्नी रूढ़ समाज में कन्या के प्रति पारंपरिक रूप से चले आ रहे संकुचित दृष्टिकोण की परिचायक है। इस कहानी में पुत्र की आकांक्षा पिता को नहीं मगर एक माँ को है। इसलिए कहानी की शुरूआत में ही जिस बेटी को एक माँ मिसेज आरती गुप्ता बेटा समझकर जन्म देती है। जन्म के बाद बेटी का जन्म हुआ जानकर तब से उस तीसरी बेटी बिन्नी को प्यार नहीं करती, उसे छूती तक नहीं। दादी और पापा उसे प्यार करके बढ़ाकरते है। गाँव ले जाकर उसे पढ़ाई कराने लगते हैं। बड़ी दो बेटियों को अच्छे–अच्छे कपड़े, अनेक सुविधाएँ देती हैं। तीसरी बेटी बिन्नी को पुराने–फटे कपड़े पहनाती है। माँ से बिन्नी कितना भी प्यार करे, उसकी सेवा करे, फिर भी तिरस्कार ही मिलता है। बिन्नी दादी के प्यार भरे सानिध्य में रहती है। एक दिन बिन्नी दादी से पूछती है कि ''दादी, मेरी माँ सौतेली है? रात को दादी के पास सोते समय बिन्नी ने अनायास ही पूछा''[45]

मिसेस आरती गुप्ता बिना पुत्र की जननी बनने के बाद भी माँ गौरवान्वित पद को स्वीकार नहीं कर पा रही थीं। बेटियों का पालन–पोषण सार्थक नहीं लग रहा था। सामाजिक परिवेश की कंटीला–सा हो चला था। रिश्तेदारों और आपसी मेल–जोलदारों में चर्चित यह एक बात उनके कलेजे को निरंतर उधेड़ती रहती...है–''कि वे बेटे को जन्म नहीं दे सकी... इस अधूरेपन के अहसास तले दबी वे हर गली, हर मोड़ और हर उत्सव से आँखें चुराकर चलने लगीं। आपसी लोगों से कतरा उठी। उन्होंने अपना दायरा संकुचित कर लिया। दोनों बेटियाँ

अंजू और गुड़िया घर का काम नही करती बिन्नी भाग–भागकर सारा काम करने लगती। अकेली बिन्नी सारे घर को उठाये लिये चल रही थी। दोनों बहनों को घर के कामों से अधिक सरोकार नहीं था, मजे से पढ़ती, खेलतीं। बिन्नी को भी अपने चकरघिन्नी बने रहने पर कोई क्षोभ न था। हर आगंतुक से पहला परिचय बिन्नी का ही होता। किवाड़ों पर दस्तक होते ही वह द्वार खोलने भागती। कितने भी काम–सेवा करने से भी उपेक्षा की जाती रहती है। दादी बिन्नी को मुक्त करना चाहती और गाँव लेजाकर स्कूल में दाखिल कर लेती है और भरपूर प्यार, स्नेह देती है।

मिसेस आरती गुप्ता को बिन्नी के रुप में घर संभालने वाली नौकरानी और उसकी सेवा करने वाली सेविका मात्र थी। इसीलिए दुबारा गर्भ टहरता है तो गाँव से बिन्नी को लाने की सोच जागृत हेने लगी। लेकिन दादी ने बिन्नी को उसके जीने का अधिकार दिया था। उसकी प्रथमिक आवश्यकताएँपूरा करने का अधिकार परंपरागत खढ़िया को तोड़कर।

ललमनियाँ :

मैत्रेयी पुष्पा ने इस कहानी संग्रह की शीर्ष कहानी होने का श्रेय 'ललमनियाँ' को दिया है। संग्रह की अंतिम और दसवी कहानी है। 'ललमनियाँ' ब्रजभूमि या बुंदेलखंड नृत्य है, जिसमें स्त्री अपने सांस्कृतिक संप्रदाय का पोषाक पहन कर हाथ में दर्पण लेकर नृत्य करती है। गाँवों में विवाह आदि शुभ अवसरों पर यह नृत्य किया जाता है।

''आज का ग्रामीण और नगरीय समाज एक संक्रमण काल से गुजर रहा है, जिसका असर बरसों पोसी हमारी मानसिकता और संस्कारिक्ता पर भी पड़ रहा है। बदलते वक्त के साथ एक मिश्रित संस्कृति जन्म ले रही है, जिससे अनेक समस्याएँ भी उत्पन्न हो रही हैं। ग्रामीण संस्कृति में नगर संस्कृति के प्रवेश से 'ललमनियाँ' जैसे विख्यात पारंपरिक लोक–नृत्य नए जमाने की वस्तु होते जा रहे हैं और मोहरो जैसे लोक–कलाकार या तो जीवकार्जन के लिए कुछ और काम करने के लिए विवश हो गए हैं या फिर उनके भूखे मरने की नौबत आ पहुँची है।''[46]इस कहानी में लेखिका बुन्देलखंड की नृत्य परंपरा का परिचय देने के साथ–साथ उसे खो देने की चिन्ता व्यक्त की है और एक स्त्री मन की संवेदनाएँभी व्यक्त करती हैं।

कहानी संग्रह : 'गोमा हँसती है'

मैत्रेयी पुष्पा का तीसरी कहानी संग्रह 'गोमा हँसती है।' इस संग्रह में कुल दस कहानियाँ हैं जो इस प्रकार है–'शतरंज के खिलाड़ी', 'राय प्रवीण', 'बिछुड़े हुए', 'प्रेम भाई एंड पार्टी', 'ताला खुला है पापा', 'साँप–सीढ़ी', 'उज्रदारी', 'रास', 'बारहवीं रात', 'गोमा हँसती है'। इस कहानी संग्रह का प्रथम संस्करण 1998 में किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ था।मैत्रेयी पुष्पा नगरीय मध्यवर्गीय सरोकारों व जीवन स्थितियों तक सीमित अधिकांश महिला लेखिकाओं से अलग हैं, कथा सरोकार उस ग्रामीण समाज से उपजे हैं जो सामंती भाव–भूमि पर पुरूष वर्चस्व की मनुवादी अवधारणाओं के बीच आज भी जी रहा है। 'गोमा हँसती है' संग्रह की कहानियाँ एक साथ नारी–दासता और मुक्ति की चाह की कथा कहती है? मैत्रेयी पुष्पा शुद्ध गाँव–कस्बे की कहानियाँ उन पीड़ित महिलाओं पर गहराई, संवेदना, समझ के साथ लगातार लिखनेवाली पहली लेखिका है। गाँव के जीवन और संघर्ष को केन्द्र बनाकर ही उसका कथा–रचनाएँ है। मैत्रेयी जी अपनी कहानियों में प्रतिरोध चेतना की मुखर अभिव्यक्ति द्वारा स्वतंत्र नारी अस्मिता की जमीन तैयार करती हैं। इस कहानी संग्रह की नारी नई नैतिकता का सवाल भी उठाती है। मैत्रेयी पुष्पा अपनी कहानियों के माध्यम से पितृसत्तात्मक समाज के इस पुरुषवादीछद्म रूप को पारंपरिक समाज के ही बीच से रचनात्मक चुनौती देती है। इस संग्रह की कहानियों की नारियाँ वैयक्तिक न होकर सामाजिक हैं। संभवतः इसीलिए कभी वे पितृसत्तात्मक मूल्यों को चुनौती देती हैं। कभी उसका शिकार होती हैं तो कभी स्वयं नारी के ही विरूद्ध पितृसत्तात्मक हथियारों की वाहक होती है। इन स्त्रियों का दुःख, ग्रामीण स्त्रियों की भूमिकाएँ नया नहीं, लेकिन यहाँ स्त्रियाँ अपने दुःखों को महसूस करने और पुरूष–समाज के निरंकुश व्यवहार को समझने की चेतना जरूर है। कहानियों के ये स्त्री–पात्र उस दरिद्र स्त्री–समाज का प्रतीक चेहरा है, जो हाशिए पर है।

राय प्रवीण :

'राय प्रवीण' कहानी संग्रह की दूसरी कहानी है। इसमें छब्बीस वर्षीय गोविन्द गाइड है।पर्यटकों कोओरछा की ऐतिहासिकता का विवरण देते हुए रायप्रवीण की कहानी जरूर सुनाता है। गोविन्द गाइड कोढूँढना नहीं पड़ता। झांसी स्टेशन पर सुनहरे बालों वाले गोरेपर्यटकों को देखते ही उसके भीतर सुनहरी जगमगाने लगती है। अपनी बोली तुरंत बदल

लेता है और जर्मन, फ्रेंच तथा इटालियन भाषा में मुस्कुराकर गर्मजोशी से अभिवादन करता है। पर्याटकों को ओरछा का किला दिखाने ले जाकर राय प्रवीण की कहानी बहुत ही रोचक रूप में सुनाता है। कंचन घाट पर बेतक का निर्मल पानी कंचन नाम की नर्तकी की बेटी सावित्री को 'राय प्रवीण' नाम राज इंद्रमणी सिंह ने दिया था।परिस्थितियों का सामना करते हुए बाढ़ग्रस्त गाँव में लगे राहत कैम्प के अधिकारियों के आगे अपने–आपको समर्पित कर अपने पति, गाँव के लोगों को बचा लेती है। ''टीस, दर्द है, पर वह जिन्दा है। वह जिन्दा रही तो गाँव भी जिन्दा।''[47] वह अपने देह की टीस को अन्न मिल जाने के कारण अपने घर की ओर संतोष–भरी आँखों से देखती हुई चली आ रही थी। पति वीरेन्द्र मिसमिसाकर कहता है–''आगे पाँव मत बढ़ाना रंडी''[48] कहकर घर से बाहर कर देता है। वहाँ से पिता के घर आती है। पिता मिट्टी का तेल डालकर माचिस उठा लेता है। अपने आपको जलाने केलिए तैयार जन्मदाता की स्थिति को देखते हुए पिता के घर से चली जाती है। दूसरे दिन यह खबर सारे गाँव फैल जाती है कि सावित्री बेतवा में डूब मरी।

इस संदर्भ में दया दीक्षित की बातें महत्वपूर्ण हैं कि–''मार्मिक कथात्मक रचाव के साथ मैत्रेयी की यह कहानी पुरुष के दो रूपों (पति और प्रेमी) की शिनाख्त के साथ ही व्यवस्था से यह प्रश्न पूछना नहीं भूलती कि स्त्री को पुरुष के किस रू‍ की वाँछा करनी है पति रू‍ की? जिसमें कि वह अपने अधिकार का प्रयोग करके स्त्री को प्रताडित करते हुए उसके प्रणों का ग्राहक बन जाता है? या प्रेम रूप की वाँछा करनी होगी जिसमें पुरुष स्त्री के सामने एक हमदर्द मित्र और संरक्षक बनकर सामने आता है?''[49]

लेखिका गोविन्द गाइड के द्वारा ओरछा किले की चर्चा, बेतवा नदी की चर्चा और राय प्रवीण के जीवन द्वारा स्त्री जीवन के सुःख–दुःख, जीवन मूल्य और दैयनीय स्थिति, नियति व्यक्त करती हैं।वह पिता–पति किसी का घर की नही, स्त्री बेघर हो जाती दिखाई देती है। स्त्री और दलित स्त्री होने की दुहरी यातना को भी अभिव्यक्त करती है।

बिछुड़े हुए :

'बिछुड़े हुए'कहानी इस कहानी संग्रह की तीसरी कहानी है, जिसमें चंदा का पति गृहस्ति नशेबाज सुग्रीव अपने सारे पैसे व संपत्ति नशे की भेंट करके जब कुछ नहीं बचा तो पत्नी कोभी छोड़कर चला जाता है। उस समय वह अकेली कर्जों में फसी हुई बेटी के साथ

जीवन बिताते हुए आंतरिक और बाह्य संघर्षों से जूझ रही है। पति की प्रतीक्षा में जीनेवाली चंदा को एक दिन उसका पति सन्यासी के रुप में दिखाई देता है पर वह उसको पहचान नहीं पाती। पति कहीं गंगा में डूबकर मर गया है समझकर पति को अपने यादों से मिटा देती है। एक स्वाभिमानी स्त्री के रूप में चंदा चित्रित की गई है।

ताला खुला है पापा :

'ताला खुला है पापा' कहानी कहानी संग्रह की पाँचवी कहानी है।इसमें बिन्दो की कहानी है, जिसे उसके पिता ने बंधक बना रखा था। ब्राह्मण लड़की को एक नाई के लड़के अरविन्द से प्यार करना उस बिन्दो का कसूर हो गया था। माँ–बाप ने उसको बहुत बार चेताया, धमकी दी थी, फिरभी इससे कोई फाइदा नहीं हुआ तो वह घर में ताला लगाकर बन्दकर दी गयी थी।

जगदीश चौबे की पत्नी बीमारी के कारण अस्पताल में भर्ती थी तो वह अपनी दो बेटियों को लेकर पत्नी के पास झाँसी में रहने लगे थे। एक दिन घर आकर देखने पर बिन्दो दिखाई नहीं देती। वह उसे प्यार करनेवाले अरविन्द के साथ भाग गई होगीसोचकर घबराजाता है। घर की इज्जत के बारे में चिन्ता करने लगता है क्योंकि बेटी ही घर इज्जत और आबरूहोती है। बेटी के ऊपर ही बाप मूँछे तानकर चलता हैलेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ था। बिन्दो तो अंधेरी कोठरी में लकड़ी–कंडों के बीच धरती पर सोई हुई मिल जाती है। पास में ही एक खुली हुई कापी पर पेन रखा है। उसे लेकर वह पढ़ता है। अरविन्द से प्यार कैसे हुआ यह पूरा उस डायरी में लिखा था। डायरी लिखने का तरीका भी अरविन्द ने ही सिखाया था। बचपन में माँ–बाप को अरविन्द से स्नेह बुरा नहीं लगा क्योंकि वह उनकी बेटी की मदद करता था। मगर उम्र बढ़ते ही उसके साथ बात करना, देखना पाप समझकर, उसे विवाह की बात उठाई तो माँ–बहुत ही मारी थी। और इस प्रकार घर में बंदकर ताला लगादिया गया था।

यह सब पढ़कर जगदीश चौबे को गुस्सा आता है।वह सोचता है की बेटी के बाल पकड़कर, घसीटकर उसे बाहर कर दे और उसकी गर्दन उड़ा दें। लेकिन अपने पिता के प्रेम के बारे में लिखे हुए पन्ने भी उसे मिल जाते हैं।

यह देखकर जगदीश को एक झटका सा लगा था मानो ज्यों तनी हुई रस्सी एकाएक टूटी हो। वसंती ने घेर लिया है उन्हें। कोठरी में पहुँचकर देखा कि ''उन्नीस साल की वसंती बिन्दो बनकर बेसुध सोई हुई है''[50]निगाह उस जंग लगी बकसिया से जा टकराई जिसके आसपास परिंदों की तरह पत्र फैले थे। उनकी साँस तेजी से चल रही है। बिन्दो की रही सही बची खुची कापी को उसके पास ही धीरे से सरका दी और बाहर निकल आये और सोचने लगा कि सब कहने–लिखने की बातें हैं। गाँव में अभी इस हद तक नहीं उतारा जा सकता। लेकिन बेटी में साहस की दरिद्रता भरी हुई है। अस्पताल में खाना ले जाना भूल गये और बिन्दो को जगाने की ताकत नहीं थी, न है। अंत में साइकिल लेकर जाने के लिए तैयार हो गये तो हाथ से साइकिल छूट गई और धड़ाम से आवाज आई तो बिन्दो उठ गई तो जल्दी से जल्दी निकल जाने के लिए हड़बड़ाते हुए फिर से साइकिल उठा ली और लम्बे–लम्बे लम्भ धरते हुए चल दिये।इस रंग–बिरंगे दुनिया की अथाह गहराई बिन्दों नाप सकती है। हालाँकि पीछे से एक महीन स्वर उनका पीछा करता चला आया– ''ताला खुला है पापा!''

यहाँ लेखिका मैत्रेयी पुष्पा यह कहना चाहती हैं कि पीढ़ियाँ बदल गए किन्तु प्रेम पर लगाए जानेवाले अंकुश नहीं बदले। अपनी जाति की लड़की वसंती से प्रेम करने पर भी शादी न कर सके अपनी बेटी जाति–गत आदर्श विवाह करने के लिए तैयार नहीं। अपने अतीत की याद जब आती तो अपने रूढ़िवादी परंपराओं का 'ताला खुला' छोड़कर आगे निकल चल पड़े हैं। 'ताला खुला है पापा' कहने पर बिन्दों विद्रोही तेवर न अपनाकर यथार्थ स्थिति के स्वीकार कर भी नारी–विरोधी स्थितियों का मार्मिक उद्‌घाटन करती है। दया दीक्षित की बातों में इस कहानी ''अन्याय के प्रतिकार की पर्याप्त गुँजाइश है।''[51]

रास : इसमें लोकतत्व की निर्माण भूमिका निभाता है। लोकतत्व के साथ–साथ एक स्त्री जाति नाई है। उसका स्वभिमान, कला प्रियता अदभुत है। बिना किसी हिचकिचाहट के अपना पेशा करती रहती है। गौने की पहली रात आँगन में बैठकर औरतें ढोलक पर थाप देती रहती हैं। थाप पड़ते ही नृत्य और गीत की गति बढ़ जाती है। एक के बाद एक गाना आरंभ करते हैं। सास दौड़कर आती है और कहने लगी कि बस–बस, नजर लग जाएगी, अब और नहीं। वाहवाही से आँगन जगमगा उठता है। घर आकर रेशमी कपड़े फेंककर, हारी–थकी न जाने कब सो गई? बीच में आँख अचानक खुल गई तो उसे एहसास होता है कि कोई उसके संग

सोया है। उन्नीस बरस की भरपूर देह में जो जोर है, उसी ताकत से धक्का मारकर नीचे गिरा देती है। अंधेरे में ही बक्से के पास रखी गौनियाई चप्पल अंदाजे से खींचकर ऐसे बजाई दुश्मन पर ज्यों बाजरे की सूखी बाले पीट रहीं हो। सास जागकर कुप्पी जलाती है। वह उसके पति का पिता उसका ससुर था। पति–सास देखते रह जाते हैं, वह काँपने लगती है। छत पर सोये पड़ोसियों ने हल्ला के बारे में पूछने से माँ–बेटा एकाएक बोल देते हैं कि बहू सास से डर गई है जैयंती का रोम–रोम सुलग उठता है और वह कहती है कि ''सबेरे, मुँह अँधियारे मेरे पीहर पहुँचा आना नहीं तो हल्ला कर दूँगी।''[52]पुरूष का अपमान करने से दुकान न चलेगी समझकर बहू को मायके छोड़ आते हैं। मायके जाने से उसकी माँ हजार–हजार गालियाँ देती है तसल्ली की एक नरम बात भी नहीं कहती है। अपने आपको समझाकर अपनी माँ से कहती है कि ''मैं तेरे ऊपर बोझ नहीं बनूँगी। नाऊ की बेटी हूँ टहल–चाकरी करके पेट भर लूँगी''[53] अब पूरे गाँव की है जैमन्ती। किसान–जिजमानों की टहल ही उसका जीवन है। जन्म, मुंडन, कनछेदन और ब्याह–कारजों के बुलाये–चलाये की खातिर जैमंती की पुका पड़ी रहती है।

एक दिन उनके गाँव में रास मंडली आती है तो कुछ दिनों के लिए तो उनकी सेवा टहल जैमन्ती को सौंपी गई। जैमंती गीत गाने में प्रवीणा थी। उनकी सेवा करते–करते मंडली के मालिक मनसुख महाराज से प्यार हो जाता है और दोनों प्यार में डूबे रहते हैं, दोनों के दोनों। एक दिन जैमंती को सुनाई दिया कि रास मंडलीवाले उखड़ रहे हैं। जैमंती यह सुनकर बहुत ही व्याकुल हो उठती है। मंडली के पास जाती तो मंडली के मालिक दयाराम के साथ दिखाई देता है और कहता कि 'ये धोतियाँ हैं, अब मंडली के काम की नहीं तो नाई की बेटी जैमंती को दे देता है और मंडली चली जाती है। जैमंती घर आकर निढ़ाल होकर गिर जाती है, उसमें उठने की शक्ति नहीं रहती यादों को भुलाने का प्रयत्न करती है। मनसुख महाराज को अपनी यादों और विचारों और आँखों के सामने से दूर नहीं कर पाती। सजल आँखों के साथ यादों में मुस्कुराती रहती है। यहीं कहानी का अंत हो जाता है।

इस कहानी के संदर्भ में वीरेंद्र यादव कहते हैं–''मैत्रेयी पुष्पा कहानी को लोककथा के रूप में रचकर भी लोक को सार्वकालिक व सार्वदेशिक 'फोक' में नहीं तबदील कर देती हैं। क्योंकि उसकी जड़ें सामंती ग्राम्य समाज की कुरूप सच्चाइयों व ठोस सामाजिक स्थितियों में

है।''[54] मैत्रेयी पुष्पा लोक कथा की रुची और स्नेह और प्यार के भूखी लेखिका है। स्त्री के साथ होनेवाले धोखें और छलावों को जैमंती के द्वारा प्रकट करती है। फिर वीरेंद्र यादव कहते हैं–''यहाँ लेखिका स्त्री के आर्थिक रूप से स्वावलंबन के जरिए पुरूष के दासत्व से मुक्ति की राह तलाशते हुए जैमंती को मनुवादी धारणाओं के चौकट से बाहर ला खड़ा करती है। यद्यपि इसके बावजूद वह प्रेम के बहाने परुष–छल का शिकार होने से स्वयं को बचा नहीं पाती।''[55]

गोमा हँसती है :

यह कहानी संग्रह की अंतिम कहानी है। कहानी संग्रह का शीर्षक भी इसी कहानी पर रखा गया है। कहानी की नायिका गोमा नारी–मुक्ति की चाह रखती है। अक्सर स्वीकृत नैतिक मानदंडों का अतिक्रमण करती हुई 'विवाह' तथा 'परिवार' जैसी सामाजिक संस्थाओं की सीमाओं का अतिक्रमण करती है और अपना नया रास्ता तलाशती है। वह 'परिवार' और 'विवाह' दोनों ही संस्थाओं के छद्म को उनके भीतर ही रहकर तोड़ती है। वीरेंद्र यादव की बातों के अनुसार–''पश्चिमी नारीवाद से भिन्न यह देशज नारीवाद है जो इन संस्थाओं की जकड़न को उनके भीतर से ही उद्घाटित करता है। 'बछिया–पडिया की डंगर से भी गई–गुजरी' गोमा की यह व्यक्तित्वांतरण कथा मैत्रेयी पुष्पा जिन अनजाने व गोपनीय प्रसंगों के साथ रचती हैं, वह भारतीय ग्राम्य जीवन की कुरूप सच्चाइयों का अंतरंग साक्षात्कार कराती हैं।''[56]

कहानी में किड्ढा और गोमा पति पत्नी है। पति अपनी पत्नी को हर तरह से खुश रखना चाहता था। किड्ढा का विवाह गोमा से बड़ी मुश्किल से हुआ था क्योंकि वह इतना सुन्दर नहीं था। गोमा का प्यार भरा, हँसमुख चेहरा देखते ही वह खुश हो जाता था। उसे कितना भी गुस्सा क्यों न आए पत्नी की हँसी देखते ही गुस्सा ठंडा हो जाता था। बली सिंह उसके ही गाँव का आदमी था। दोस्त के रूप में किड्ढा घर में आता जाता रहता था। कालक्रम में गोमा का अंतरंग बलीसिंह की ओर और बलीसिंह का अंतरंग गोमा की ओर झुकने लगता है। किड्ढा सहनता प्रकट करता रहता है फिर भी उन दोनों का रिश्ता टूटने की बजाय और भी घनिष्ट होने लगता है। और वह घर में ही रहने लगता है। किड्ढा बीमार हो जाता है और गोमा गर्भवती होती है तो किड्ढा को शक हो जाता है। वह गोमा को मारने लगता है। उसके पेट से बच्चा का जन्म होने पर किड्ढा बच्चे को किड्ढा भंवर नाम देना

चाहता है जबकि बलीसिंह चाहता कि बलवान। गोमा को भी बलवान नाम पसंद आता है तो किड्ढा का खून उबलने लगता है। कई बार दोनों को अनहोनी स्थिति में देखा भी तो वह गोमा को दुःख न देने के लिए उससे कुछ नहीं कहता था। गोमा की तिरछी मुसकान पर निछावर हो जाता है किड्ढा। गोमा रूपमती ही नहीं, बुद्धमति भी थी और गोमा के बोल झरते हुए मोती थे।

बच्चा पैदा होने के बाद बलीसिंह गोमा भइयादौज देने भिजवा रही है, यह जानकर वह बहुत दुःखित और क्रोधित भी होता है। फिर बलीसिंह चला गया तो गुस्से के मारे किड्ढा भी मुँह फेर लेता है। वहाँ से चला जाता है उसके ससुराल से एक नाई आकर कहता है कि बलीसिंह को आपके साले लोग इतना मार–पीट गए कि उसकी हालत खराब हो गया। यह सुनकर मन न करने से भी बलीसिंह के पास जाकर उसे सैकिल पर बिठाकर घर लाता है ताकि गोमा यह देखकर खुश हो जाए। पत्नी की खुशी के लिए किड्ढा कुछ भी करने को तैयार रहता है। यहीं कहानी का अंत होता है।

लेखिका 'गोमा हँसती है' की गोमा के द्वारा गोमा के प्रेम संबंध के माध्यम से विवाह की नारी–विरोधी परिणितियों को रेखांकित करती हैं। गोमा नैतिकता पर सवाल भी उठाती है। इस हँसी के संदर्भ में ज्ञान रंजन का कथन है कि–''गोमा का हँसना पूरी स्त्री जाति का हँसना है। यह हँसना अपनी विडंबनाओं पर हँसना है और मनुष्य की चालाकियों पर और उसके भोथरेपन पर भी आखिर आरंभ से लेकर आज तक पुरूष की मुख्य चिंता स्त्री पर हावी होने की है। विचित्र बात यह है कि स्त्री को साथ नहीं पाया पुरूष, कभी शंकाएँ तो कभी क्रूरताएँ। किड्ढा ठंडा जवान भी उसी शक की आग में जलता है, राख–राख होता है। गोमा तब भी हँसती है। हँसी अर्थवान है, विडंबनामूलक है और त्रासद भी। दो पुरूषों के बीच गोमा की हँसी सांकेतिक, मर्मभरी और जटिल है। इस हँसी में दुःख की तान है।''[57]

कहानी संग्रह : पियरी का सपना

'पियरी का सपना' मैत्रेयी पुष्पा का चौथा कहानी संग्रह है। 'सामायिक प्रकाशन' नई दिल्ली से 2009 में प्रकाशित किया गया है। कहानी संग्रह में चौदह कहानियाँ हैं जो क्रमशाः (1) मुस्कुराती औरतें (2) रिश्ते का नक्श (3) आवारा न बन (4) छुटकारा (5) बहुत पहले का

चलन (6) जवाबी कागज (7) संबंध (8) गुनहगार (9) मैंने महाभारत देखा था (10) आरक्षित (11) हम बच्चों की कहानी (12) 1857– एक प्रेम कथा (13) गुल्लू (14) पियरी का सपना

इस कहानी संग्रह की कहानियों में मैत्रेयी पुष्पा अपने विकास और संपूर्ण सामर्थ्य के साथ मौजूद हैं। आज की कहानी में छूट गए सच को भरने की कोशिश देखनी हो या कहने का खूबसूरत अंदाज, समय से टकराहट देखनी हो या बेखौफ स्त्री की जबान और हिम्मत वहां मैत्रेयी पुष्पा एक प्रतिनिधि कथाकार का रोल निभाती नज़र आती है। उनका नजरिया उनकी कहानियों में बेआवाज खुलता नज़र आता है।

'मुस्कराती औरतें' जहां इस बात का जवाब देती है कि अलबम के पहले पन्ने पर मुरली तस्वीर क्यों मौजूद है, वहीं 'रिश्ते का नक्श' उस सच का पर्दाफाश करती है जो बताता है कि मोहल्ले के किसानों की नींद क्यों उड़ गई थी? 'आवारा न बन' की बाक्सर लड़की का फुट पड़ा गुस्सा हो या बदमाश महकमे से रिश्ता, 'छुटकारा' की छन्नों का डूबता दिल हो या बहुत पहले का चलन का सच, कथाकार की तल्लीन संलग्नता उसे एक कथा शिल्पी की पहचान देती है। उसकी स्त्री किसी के द्वारा प्रदत्त सुरक्षा नहीं चाहती, चाहती सिर्फ अपना सामर्थ्य ताकि कोई उसके चेहरे पर तेजाब न फेंक सके।

'संबंध' की गौरी हो या 'गुनाहगार' की पंचायत और बहू, 'आरक्षित' की साधना हो 'मैंने महाभारत देखा था' की ब्रजेश, मैत्रेयी पुष्पा के हर हिस्से की स्त्री के सच का खुलासा कहानी में करते हुए एक जागरण अभियान ही चला रही है। उनके यहां एक निरंतर युद्ध है उस संवेदनशील समाज से जो लड़कियों के अन्यायी है। 'पियरी का सपना' ही नहीं, प्रायः हर कहानी में कथाकार उस दखल से लड़ती नजर आती है जो पूरी अराजकता के साथ हमारे समाज में मौजूद है।

मुस्कराती औरतें : स्त्री विमर्श की बहुआयामी कथा है–'मुस्कराती औरतें'। ''पहली बार जब यह कहानीकथाक्रम में प्रकाशित हुई थी, तब उसके कितने ही आगामी अंकों में लंबे–लंबे पत्र आते रहे थे इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप! मैत्रेयी पुष्पा की अन्य कहानियों की भांति इस कथा को पाठकों ने हाथों हाथ लिया था! बेहद मार्मिक तथा स्त्री के भाग्य को बाँचती कथा है 'मुस्कराती औरतें'।''[58] उस सच को पूरी ईमानदारी से खोलती उधेड़ती है कि समाज में ऊँचे पदवी पर बैठी औरतों की मंद स्थिति में कितनी अथाह वेदना छिपी है, पीड़ा का वह एहसास

जो उनके मालिकों ने उन्हें कदम–कदम पर दिया है, उसे मुस्कराहट केछद्म से छिपा लेना चाहती है स्त्री। नौकरी करनेवाली औरत का दोहरा तिहरा शोषण शुरू हो जाता है। नौकरी करलेने मात्र से उसका निर्वाह नहीं हो जाता है।

कहानी का आरंभ मुरली नाम की लड़की की तस्वीर की चर्चा से हेता है जो वह अपने दोस्तों के साथ मिलकर खिंचवायी थी। भीगी हुई लड़कियों की तस्वीर अखबार में आयीथी, प्रधान के चबूतरे पर लोग इकट्ठा होकरदेख रहे थे। और उन्हें आवारा कह रहे थे। यह बात सुनकर मुरली की माँ उसको खूब मारती है और वह जख्मी हो जाती है। यही काम लडका करता तो उसका फोटो कोई नहीं खींचता औरन ही अखबार में आती। मुरली उसकी माँ से लड़की और लड़का के बीच अंतर को लेकर बहस करती है। उसकी सहेली और मुरली दोनों सामान्य रूप से शादी कर लेते हैं। मुरली ससुराल में खेत–खलिहान में मेहनत करती है। मुरली की सहेली भी शादी को सुरक्षा मानकर उस व्यवस्था में शोषित की जाती है। लेकिन उसकी माँ नौकरी करने के लिए कहने से नहीं मानती है। दोनों ही आर्थिक पराधीनता से पीड़ित होते हैं।

इन दोनों की पराधीनता को पार कर फूलकली मैडम विकास खंड मोंठ की सहायक विकास अधिकारी (महिला) ए.डी.ओ डब्लू बनकर आती है। जिसने कैरियर सबसे पहले और आर्थिक निर्भरता जन्मसिद्ध अधिकार की तरह हासिल की थी। अपनी सुविधा को देखते हुए एक ग्रामसेवक (ब्ही.एल.डब्लू) से ब्याह भी कर लेती है। पद का आधार ही है कि ब्लाक के रिहाइशी क्वार्टरों में शानदार घर मिलता है साथ में अर्दली भी। ग्रामीण इलाकों में दौर करना होता है तो जीप भी मिलती है।लेकिन फूलकली मैडम मुरली की माँ सेकहती है कि ''कुसुम बहन, मुझे नहीं पता था कि शादी की शर्तें पत्थर पर खुदी लकीरों की तरह होती है। उन लकीरों को कौन मिटा सकता है जबकि अपना भविष्य ही पत्थर हो गय हो कुसुम बहन, यह तो ब्याह के बाद ही पता चलता है कि पति को जीवनसाथी कहना बड़ा झूठ है शादी के बाद किसी भी लड़की को नया जन्म मिलता है, जीवन उसको अपनी तरह नहीं दूसरों की इच्छा से ढ़लना होता है।''[59]

फूलकली मैडम जब नौकरी, काम में गैर मर्दों से मिलना या उनके साथ मीटिंग में जाना या गाँव टूरों पर जाने से पहले तो हंगामा न करेगा लेकिन जब वापस शाम को घर

पहुँचती है थकावट के साथ तब उसकी पति की आंखों में फांके पड़ी होती है। भाषा में व्यंग्य, गालियां और कटीले ताने, 'किस यार के संग रात बिताई' इस प्रकार मौखिक प्रताड़न से पत्नी जब मुँह खोलती है तो उसे प्रताड़ित करता है कि ''तेरी छिनाल की साल जुबान लड़ाती है। चार पैसे क्या ले आई, कायदा भूल गई। कहकर कमर की बैल्ट खोलने लगे। ऐसी मारपीट की कि चेहरे पर नीले–काले निशानें।''[60] पत्नी को प्यार और धमकियों से नौकर छुड़ाने का प्रयत्न करता है।''प्रस्तुत कथा में लेखिका पुरूष की उस क्रूर मनोवृत्ति को उघाड़ा है जिसके चलते औरत की यौनिकता को चेस्टिटी बल्टों को लौह कारगार में कैद रहने के लिए अभिशप्त होना पड़ता है।''[61] लेखिका सलाह देती है कि स्त्री ही अपनी दशा उसे स्वयं सुधारनी होगी अपने हक की आवाज़ उठाकर कामकाजी और घरेलू औरत दोनों भी सामंती मालिकों के विरूद्ध।

छुटकारा :

इस कहानी के संदर्भ में लेखिका को डॉ. हेतु भरद्वाज कहते हैं कि–''मैं मैत्रेयी पुष्पा का कतई प्रशंसक नहीं हूँ मगर उनकी 'छुटकारा' कहानी जैसी कहानी कोई साहित्यकार लिखकर तो दिखा दे।''[62] हेतु भरद्वाज का कथन शत–प्रतिशत सत्य प्रतीत होता है कहानी पढ़कर। छन्नों के चरित्र की उदात्तता, आजीविका वृत्ति के प्रति समर्पण भाव है विवर्ण होकर भी। ''वसुमति तथा रायप्रवीण की भांति छन्नो मैत्रेयी की कहानियों की साम्रज्ञी पात्रा है।''[63] विशाल हृदय, सहिष्णुता और सज्जनता के मिश्रण से उसकी आकृति निर्मित होती है।

कहानी की शुरूआत ही दलित मेहतरानी छन्नो के घर बहिष्कार से होती है। जब सीता गली में उमेश की बहु सुरेखा शादी कर ससुराल आयी तो सब घर में बहु लायी बायना बांटने जाने से उमेश की माँ बांटनेवालों की कहती है–''बायने जाते हैं मेहतरानियों के घर वह खुद देहरी पर आकर ले जाएगी, आंचर में डाल देंगे। त्यौहारी पावन देने का अपना दंग होता है।''[64] पोता मेहतरानी छन्नो के घर में खेलने जाने से भी छः साल लड़की मारकर रोकने की कोशिश करती है। उसे नहलाने के बाद ही घर के अंदर घुसने देती है। दलित महिला दैनंदिन जीवन के बारे में मोहनदास नैमिश राय कहते हैं कि ''दलित स्त्री दैनंदिन जीवन में अनेक प्रकार से दमन की शिकार हो रही है। लड़की के रूप में पैदा होने के कारण घर में, अस्पृश्य जाति में बड़े होने के कारण गली में, वह कदम–कदम पर अपमानित होती है।''[65]

लेकिन मेहतरानी प्रातः दर्शन उस गलीवालों को शुभलाभ पहुँचाती है जैसे कि ''मेहतरानी का प्रातः दर्शन शुभ होता है, सच में ही उमेश को उस दिन सेनेटरी इंस्पेक्टर की पोस्ट मिली थी। उमेश उत्साह में आकर कहते हैं–''मैंने अपने आत्मीयों, देवताओं के साथ छन्नो का भी नाम शामिल कर लिया था, जिनके आशीर्वाद, कृपा और दर्शन में चमत्कार है।''[66] छन्नो चौदह साल से यह संडास उठाने का काम करती है जब वह शादी करके आयी थी। उसके पहले उसकी सास करती थी। संडास उठाने का काम औरत ही करती है छन्नो का पति यह धंधा नहीं कर सकता था। सीता गली बहुत छोटी गली सेप्टिक टैंक बनाना भी संभव नहीं है। अतः देसी संडासों की संपदा बहाल है, जो छन्नो की संपत्ति है। डालिया, खपरा और झाड़ू के जरिए वह हर ओर से इन्हें निाार–पखार कर रखती है। इस काम में नई मेहतरानियाँ न छन्नो के पास प्रशिक्षण लेने आते हैं। हारी बीमारी, रोग–क्लेश या तो उसके जीवन में आए नहीं या बताया नहीं लेकिन छन्नो ने कभी एक दिन भी गंधा–मैला छोड़कर एक दिन अपने घर बिताया नहीं। सिर्फ प्रसवकाल के समय 15 दिन ही छुट्टी ली थी। उस समय दूसरी मेहतरानी काम निपटाई थी।

छन्नो बच्ची को लेकर अपने घर आयी तो उस बस्ति के सब घरों से अपने–अपने इनाम, जैसे मेवा, घी, लड्डू, गफल, मोजा, छुछक लाकर रख दिये थे। बच्ची का नाम पंडित जी ने राजारानी रखा तो छन्नो उसे प्यार से रज्जो कहकर पुकारा। पति मिस्सी पलटन में सफाई कर्मचारी था उसकी मृत्यु हुई थी तो उस गलीवाले परामर्श किये साथ ही कुछ रूपये, आज, कपड़े सेत्वना रूप में दिए आगे के लिए हौसला बंधाया। कामगर स्त्री, मेहनत मशक्कत के चलते शोक से जल्दी उबर आई। आंसुओं की जगह पसीने ने ले ली।

उस गले में अचानक एक छन्नो के कारण मीटिंग लग गयी थी कि कुसुमी की अम्मा का घर छन्नो ने खरीद लिया। गली के बीचों–बीच। मिर्जाजी से सभी लोग की आशा थी कि छन्नो का घर घूर कर देंगे। शेर–गजल कहने वाले मिर्जा जी पेंशन था पता परवारी हैं। अगर मेहतरानी इस गली में रहने लगे तो उस गली वालों का गुजारा नहीं हो पायेगा, चाहे तो घर भी बेच देंगे। एक लड़का पीछे से बोला कि ''मुंशीजी से कहो, छन्नो की नौकरी दे दें। ये तो रोजगार विभाग में है, वह संडास कमाना छोड़ देगी। मुंशीजी किचकिचा पंडे 'संडास क्या तेरी मां साफ करेगी? बोल तैयार है।''[67] राजपाल सिंह कहता है कि ''इतने रूपये उसके पास आए

कहां से? माना कि घर कच्चा–पक्का और अत्यंत छोटा है, पर पच्चीस–तीस हजार से कम तो न गया होगा। किस यास से ले आई रकम? हर चंदा डालकर भी खरीदनेवाले थे मगर घर जो भेजने वाली थी उस गलीवालों से गुस्सा से उन्हें देने को तैयार नहीं थी।''[68]

सब को आश्चर्य होता कि छन्नो की हिम्मत पर ब्रह्मण बनियन, और कायस्थ–ठाकुरों की इस गली में आने से पहले एक बार भी नहीं सोचा कि बसने की इजाजत उसे कौन देगा? उमेश को इतना तो पता था कि पच्चीस हजार रूपये उसे पति के फंड से मिले हैं। मगर सभा में नहीं बताये हैं। लेकिन छुपके से छन्नो से मिलकर आगे गलीवालों से आनेवाले खतरों से होशियार किया। छन्नो को गुस्सा आया और कहने लगा कि उमेश भइया, हमारी भी लालसा थी कि हम मैली–उजड़ी बस्ती से हटकर आप लोगों के संग रहे। रज्जो यहीं सिलायी करेगी उसे खूब काम मिलेगा। मेहतरों की बस्ती में नए कपड़े कौन सिलवाता है, रज्जो को सिलाई सिखाने से पहले यह सोचा नहीं, पास ही सिलाई का स्कूल खुला था। लड़की वहां आने–जाने लगी।

उस गलीमोहल्ले के लोग मेहतरानी जाति के लगों कोअपने गली में से आना–जाना पसंद नहीं करते हैं। इसी कारण रामनाथ मिर्जा कहता है कि ''मेहतरानियों की नस्ल बड़ी शैतानी होती है, क्योंकि मिली–जुली होती। रिश्ते आते रहते हैं, बेटी रज्जो मोहब्बत के खेल खेलेगी उच्च जाति वालों से।''[69] रज्जो रोकती है माँ को काम में जाने से और कहती हैं–''अम्मा, मरी डुकरिया के लत। मत लाना। हमें लगता है, मैंने कहा– लड़की, तू आलिकों के बालकों की तरह डरने की बात करेगी तो गली के घर कैसे कमाएगी? वह बोली– नहीं कमाने हमें तेरी गली के घर, गू–मूतों में सनी–लिसड़ी तू ही रह, हमें तो डलिया छूते बास आती है, स्कूल में सब हँसी उड़ाते हैं।''[70] मेहतरानियों के यह एक रिवाज है कि वह मूरदो पर के कपड़े पहना करते हैं। वह उस रिवाज को तोड़ना नहीं चाहती।और मालिकों के दिल को तोड़ना भी नहीं चाहती है।

लेकिन गुस्से के साथ छन्नो काम में गए बिना मौन रहती है तो गलियाँ भर आती है, उस गली से सिलाई के लिए आते–जाते समय गलीवाले रज्जो को गालियाँ, धमकियाँ आदि देते रहते हैं और रज्जों मां से लड़ती है। हर रोज घर में पत्थर की वर्षा होती है। घर को सस्ते में बेचने की धमकियां भी मिलती रहती हैं। जैसे ही गली मैले की नदी बन गई छन्नो

साफ करने तैयार हो जातीहै तो बेटी डलिया छीनकर एक ओर फेंक देती है। गलि वाले मिलकर सब पुलिस को शिकायत देते हैं।छन्नो को मनाने की कोशिश करते हैं लेकिन वह नहीं मानती।

कथांत में जब सीतागली में संडास की जगह फ्लैश शौचालय बनने लगे, छन्नो बहुत तड़पती है। खून के आँसू रोई, लेकिन अंत्यजों की नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती बेटी रज्जो बड़ी खुश थी।

गुनाहगार :

'गुनाहगार' कहानी में अवधबिहारी की बहू (पत्नी) को पंचायत आदेश के अनुसार फैसला होने तक पति की निगरानी में अपने घर की भीतरवाली अंधेरी कोठरी में बंद रखा जाता है। लेकिन अवधबिहारी और उसकी बहू चुपचाप गांव से दूर आ जाते हैं। दोनों के हाथ में सामान के नाम पर कुछ न था, सिवा एक झोले के, जिसे बहु थामी थी। पति को अपनी पत्नी के हाथ में झोला देखकर सर्दी की रात में भी पसीना निकलनेलगा था। वह चांदनी को बार–बार धूप समझ लेता था। पत्नी अपने अंगोछा देकर मुख पोंछने केलिए कहती तो पोंछ लेता है। बाद में उसअंगोछे को ठंड से बचने के लिए दोनों कानों में बांधता है और पत्नी के दांत जाड़े के मारे किटकिटाने लगते हैं।

अवधबिहारी को यह सब देखकर एक तरफ उस पर प्यार आने लगता है तो दूसरी तरफ उसे मार देने का मन करता है। क्योंकि अपने भाई को धतूरे के बीज पीसकर आटे में मिलाकर खिला देने से वह मर गया था। पति जब स्कूल में पढ़ाने दूसरे गाँव जाता हैतब घर में उसका भाई और पत्नी रहते थे। जिस का फायदाउठाकर वह हर दिन भाभी पर बलात्कार करने की कोशिश करता था तब वह पति से कहती है कि–''तुम्हारा भाई बदतमीजी करता है और पड़ोसियों को ले आता है, मेरे लिए।''[71] तब वह अपनी पत्नी को समझाता है कि तुम अपने चरित्र को संभालकर रखो। जब तक राह नहीं मिलेगी, वह हिम्मत नहीं कर सकता। वह अपने भाई को खूब जानता था फिर भी इलजाम पत्नी को देता है।पत्नीहैरान हो जाती है फिर उससे कहती है कि ''भाई है, इसलिए इलजाम मुझे दे रहे हो। ठीक है तुम्हारे बस का नहीं है मुझे बचाना, मैं अपनी हिफाजत खुद कर लूँगी''[72] अपने आपको बचाने केलिए वह उस हैवान

को मार देती है जिसके कारण उसे पंचायत में बिठाया जाता है। पंचों ने ऐलान कर दिया कि आज यह बहु हत्यारी औरत है। यह न किसी की पत्नी है, न बेटी, न मां।

पंचों के फैसले से वह हताश हो जाता है और अपनी पत्नी के प्रति प्रेम के चलते वह सोचने लगता है कि ''बहू ने ऐसा क्यों किया? बहू सच–सच बता दे तो शायद पंचों को समझाने में आसानी हो, फिर वह बच सकती है, गाँव–समाज के रहम पर। बच जाने की बात पर जैसे बहू ही बोली हो, 'अवधबिहार, तुम बच्चा नहीं हो। समझते हो कि कोई औरत ऐसा क्यों करती है? ऐसा खतरनाक कदम क्यों उठाती है? नहीं, ऐसा करने पर वह बच नहीं सकती। मर्दों के नियम, उनकी मुकर्रर की गई सजाएं कौन–सी औरत टाल पाई है?''[73]

''किन्तु अवधबिहारी ने भी ऐसी उक्ति से काम लिया कि सजा भी पूरी हो जाए और पत्नी की प्राण रक्षा भी हो सके। हालाँकि यहाँ भी पत्नी ने प्राण रक्षार्थ प्राणांतक संघर्ष किया।''[74] स्त्री का संघर्ष इसी वस्तु स्थिति के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाना है। स्त्री का सच यही है और लेखिका का संदेश भी यही है।

आरक्षित :

उत्तर प्रदेश में चुनाव की तारीख की घोषणा हुई। श्यामली गांव में उस तारीख के महीने भर पहले मानो चुनाव में अपना विगुल बजा दिया। गांव–गांव अनहोनी हवा चली है। आदमियन के काम औरत को सौंपे जा रहे हैं। औरत कहने लगीं हैं ''लड़े तुम्हारे भइया कि हम बोट मांगेंगे जनियों से? उनका घूँघट कैसे खुलवाएंगे? ससुर–जेठ रिश्ता है हमारा।''[75]और तीखा प्रश्न करते हैं कि–''तुम्हें हमारी कैसे याद आ गई आज? हमें कबहू चौखट पर तो खड़ी होने नहीं दई, आज कहते हो, चुनाव में खड़ी हो जाओ। अब तो हमें शरम लगती है। नजर उठाके बात कर ही नहीं पाते।''[76] परिवार के पुरूषों ने समझाया हैं कि आदमियों के पास नहीं औरतों के पास जाओ। पिंकू के पिताजी से उसकी मां कहती हैं पिंकू के पिताजी, तुम हम बूढ़ी को खड़ी करके क्या लोगे, बहू को खड़ी कर दो। पिरधानी में लिखा पढ़ी सोई करनी पड़ती है, बहू बारह तक पढ़ी है, देख–समझ लेगी। हम तो करिया अक्षर भैंस बराबर। पति गुस्साकर घुडका था। फिर बेटा पिंकू से कहती है कि वे हमसे पर्चा भरने की कह रहे थे, तब बेटा मुस्कुराकरकहता कि ''बड़ी बोली हो अम्मा। सिर्रिन (पगली) तुम नहीं, तुम्हारा तो बस

नाम खड़ा हो रहा है। असल में औरत का नाम चाहिए न। अपने गांव की सीट महिला उम्मीदवार के लिए रिजर्व है''[77]

बाप बेटे एक दूसरे के सामने आए। बेटा अपने पिता से चुनाव से दूर रहने के लिए कहता हैं कि ''घर का एक कोठा देकर हमें निपटा दिया। खेत में से खेत ले लिया। अब चुनाव भी तुम्हारी दादालाई संपत्ति है क्या? इसमें भी पांव अड़ा रहे हो। पांव नहीं अड़ा रहे, अपना हक ले रहे हैं। बूढ़े लोग अपने आप मैदान से जाते नहीं। पिता तिलमिला गए, बोल पड़े, हक तो तभी लोगे, जब कोई दे। यह हक तो गांव की जनता के हाथ में है। जीत नहीं पाओगे''[78] दोनों ने अपने–अपने पत्नियों की अच्छाइयाँ उच्चारण करने लगे।फिर भी माँ को खड़े करने के लिए पिता ने घोषणा कर दिया–'पर्चा तुम्हारी मां के नाम का भरा जाएगा। राजकुमारी यादव के नाम का है।'देखते ही देखते वे एक दूसरे पर झपट पड़े। घूंसों–लातों की आपसी मुठभेड़। सास–बहु बीच–बचाव करते हुए पिटने लगीं। बूढ़े बाप के हाथ में कपड़े पीटने वाला डंडा है तो बेटे हाथमें चाकू। बहू ने चाकू छीना, उसकी हथेली कट गई। सास ने पति को रोका, डंडा कान से जा टकराया। नीले–काले दाग और खूनी जख्मों ने दोनों औरतों को पस्त कर डाला।

बाप–बेटे दोनों अपनी–अपनी पत्नियों के नाम के पर्चे भरे। कई दिन तक अखबार के पहले पन्ने पर छपती रही– श्यामली गांव से सास–बहू के बीच कांटे टक्कर। भारतीय लोकतंत्र में मिली नागरिकता का मर्म औरत की समझ में आ रहा है। सास–बहू आपस में बातें करती हैं–''अम्मा, यह कहें कि बाप को अपने महत्व की लालसा है और बेटा को प्रधानी से जुड़े धन का लालच है। हमें और तुम्हें इन दोनों बातों के काबिल कोई मानता नहीं बहू कहती है अम्मा हमें वोट मांगने भी जाना ही होगा, नहीं तो घर के आदमी जीना मुहाल कर देंगे। मांगो, छीनो, झपटो लड़ो, बस इनके लिए।''[79]

''चुनाव के नतीजे आए। गांव में हल्ला हो गया–मटल्लू जीत गए। अतरलाल और नवाब सिंह के साथ पिंकू हार गए। सास–बहू खड़ी कर दीं, दोनों ने अपने ही वोट काटे''[80] मटल्लू की बहू साधना यादव ने अपने चेहरे से पर्दा उठाया कि रोशनी का द्वार खुल गया। उसने चारों ओर ध्यानपूर्वक देखा अपने जैसी नौजवान आंखों से आमना–सामना हुआ। शब्द

समारोह में कई संकल्प लिए मगर एक मन में रह गया कि अब हम घूंघट नहीं खोलेंगे, यह भी तो शपथ लो।

इस कहानी के संदर्भ में दया दीक्षित कहती हैं कि ''समय समाज के इस अपेक्षित और वांछित बदलाव पर कथाकार की अचूक नजर है। यही तो मैत्रेयी पुष्पा का काम्य भी है। समानता का समाज, नर–नारी का तुला जैसा सामाजिक संतुलन! कथा में चुनाव प्रचार के लिए महिला उम्मीदवारों के परिचय तथा साथ में संबंधित पुरुषों के चित्र हास्य के साथ–साथ व्यवस्था के विद्रूप का सही दृश्य उपस्थित करते हैं। यह हमारे देश की राजनीति की तथा व्यक्ति के ऐसी स्थिति है जिस पर न रोते बनता है नहँसते।''[81]

हम बच्चों की कहानी :

इस कहानी में मैत्रेयी पुष्पा और उसका मित्र एदल्ला के बचपन की कहानी है। एदल्ला सिंह के साथ उच्च जाति के बालक कैसे दुरव्यवहार किये थे, किस तरह से हमला करते थे, खिल्ली उड़ाते थे, जाति के नाम पर पशु जैसे व्यवहार करते थे इन सारे अनुभवों कोजिन आंखों से देखा था उन्हें साफ–साफ लेखिका लिख डाली हैं।हर दिन गांव से स्कूल तक जाने वाली पगडंडी की लंबाई दो कोस, यानी तीन मील अर्थात् पांच किलोमीटर है। प्राथमिक पाठशाला में पांचवी कक्षा पास करने के बाद छठी कक्षा में दाखिला ले लिए थे। गाँव से स्कूल जानेवाले आठ–दस बच्चे थे। उनमें लड़की अकेली मैत्रेयी पुष्पा तो दलित बालक एक था। बाकी उच्च जाति के लड़के थे। स्कूल में दलित लड़का एदल्ला सिंह के नाम से सिंह हटाने के लिए उसे लड़कों ने बारी–बारी उसका कान उमेठ कर गुस्सा व्यक्त किये थे। उसका कान खून में डुबोकर एदल्ला की कनपटी पर चिपका दिया जैसा था 'सिंह' नाम जाट या ठाकुर के साथ रखा जाता है दलित के साथ नहीं। इसलिए वे एदल्ला सिंह नहीं पुकारते थे। हर दिन कुछ कहे बिना एदल्ला सिंह पर हँसते हुए रेत डालते थे जो रेत नहीं डालता वह बाल खींचकर खुश हो लेता। सिलसिला चलते रहा। शुरु–शुरु मेंवह रोने लगा था, बाद में सहने का अभ्यास कर डाला जैसा कि यह दिनचर्या का अंग है। बाद में लड़कों का साथ छोड़कर लड़कियों के साथ चलने लगा था, तो मैत्रेयी पुष्पा को खुशीहोती थी कि उसके आने–जाने में साथी मिल गया था। दोनों की दोस्ती गाढा हो या था। लड़की घर में से गूड़ लाकर एदल्ला सिंह को खिलाती रहती थी। एक दिन पकड़ी गयी थी तो बाबा के सामने

एदल्ला नहीं आया था। उनके बाबा को गुस्सा आने पर भीदलित बच्चे के कारण अपनी बच्ची को सजा नहीं देना चाहा। लेकिन एदल्ला को मुँह भरकर गाली दी–''साला डेढ की औलाद। गुड़ की दो भेली हजम कर गया। चमार–चूहड़े बड़ी जात के भोले बालकों को बहलाकर खाते–पीते रहते हैं। खबरदार जो अब उसे इस मोहल्ले में आने दिया''[82] बच्ची जानती थी कि 'ढेढ़' का अर्थ जो–'मरे हुए पशु को खींचनेवाला आदमी' उस दिन लड़की को उसके बाबा उन लड़कों जैसे बुरे लगे थे।

एक दिन सब जाट बच्चे एदल्ला और मैत्रेयी के साथ–साथ चलने लगे और हँसने लगे। सबको पानी पीना था तो एदल्ला को बस्तों के पास छोड़कर बाकी सब पीने गये क्योंकि उसका पानी पीना सबके पीछे ही तय था। उसके बाद अपने–अपने बस्ते उठाये तो साहूकार का लड़का चतुर–होशियार की तरह कुछ सोचने लगा। और बोला–''सब अपने–अपने बस्ते एदल्ला को दे दो इसका काम ही बोझा उठाना है। देखते नहीं, इसका बाप तेजा हमारे यहां सारे भारी काम करता है, और कभी थकता नहीं। बीमार होता है, फिर भी गोबर डालता है, पशुओं की टहल करता है। हमारे पिताजी कहते हैं, ऐसे लोगों में दिमाग नहीं होता, इनके पास बस देह होती है, जो मेहनत करने के काम आती है।''[83]

एदल्ला के सिर पर एक के बाद एक बस्ते लादने लगे और उसकी टांगों में संटी मारी। तो लड़की रूआंसी हो गई थी। लेकिन एदल्ला विरोध नहीं किया। उसका सिर घिर गया तो उसकी बाहों पर लाद दिए और कहा, अब चल। एदल्ला बेहाल होकर गिर पड़ा तो अपनी चोट भूलकर बिखरे हुए बस्तों को समेटने लगा। रोटियां, परोठों की पोठलिया खुल पड़ी तो एक लड़का उसकी कमर पर जोर की लात मारी और दूसरा लड़का चिंघाड़ा ''ढेढ के, हम तेरा छुआ खाएंगें क्या? हरामी, हम सब सारे दिन भूखे रहेंगे''[84]ऐसे लादते हुए जाने से स्कूल जाने बाद एदल्ला और मैत्रेयी के साथ उनको भी पीठते थे तो इन दोनों ने बच्चों से क्षमा मांगे। देर होने के कारण रास्ते में लड़के एदल्ला को पीटते हैं। इन के साथ एक साइकिल वाला लड़का भी आया तो उस सइकिल परबस्ते टाँग दिये,लड़की को भी बिठा दिया। एदल्ला पीछे आ रहा था। इतने में वह लड़का उस लड़की के साथ कुकर्म करने का प्रयत्न करता है। एदल्ला वहां पहुँच जाता तो वह लड़का इन दोनों को रक्तपात में छोड़कर चला जाता।

वे बच्चे होकर जिन बातों को नहीं माना, बड़े होकर उन बातों को इसतरह समझा कि ''यदि एदल्ला ऊँचे लोगों का बोझ और उनकी गंदगी ढोता रहता तो निश्चय ही दया पा जाता, जो उसकी जिंदगी की मार से बचा लेती। लड़की अगर लड़के के मनोरंजन और आनंद के लिए तैयार हो जाती तो वह स्कूल आसानी से जा पाती। हो सकता है एदल्ला के पिता से भूल हुई हो कि उसने अपने बेटे को मालिकों की फरमाबरदारी और सेवा का पहला सबक न दिया हो। मेरे मां की तो यह सरासर भूल थी कि उसने 'मर्द के लिए समर्पण' वाली बात मातृभाषा की तरह मुझे कभी नहीं समझाई। सच में ही वह पिता और वह मां अलग–अलग अपनी गुलामी जाति के प्रति गद्दार थे, जिनके कारण हम बच्चे सजा भोग रहे थे।''कहानी में बच्चों का बचपन हावी रहता है। निश्छल,निस्वार्थ,निश्चिंत और राग द्वेष से परे।''[85]

पियरी का सपना :

'पियरी का सपना' प्रत्येक युवा और युवती का ऐसा सुंदर सपना है कि कभी टूटता नहीं टूटना चाहता नहीं, मन की किन्हीं परतों के तले तब जरूर दब जाता है, मगर टूटता नहीं, प्रेम, प्यार, प्रीत विश्वास और लगन की डोर जिसका एक सिरा उस साथी के हाथ में है जिसे बाप भाई के घर की सुरक्षा के तले, उसकी पवित्रता के लिए अपनी पाक मोहब्बत को हर हाल में दफन करके विवाह की अँधेरी गुफा में प्रविष्ट कर जाना होता है।

कहानी में रति तिवारी पचाससालकी एक सामाजिक कार्यकर्त्ता है। अपने कॉलेज के दिनों में मुकुन्द माधव जोएक बुद्धिमान लड़का था लेकिन निर्धन था। इन दोनों के बीच गहरी देस्ती, प्रेम था। दोनों मिलकर बच्चों के न्याय के लिए धरने, हड़ताल करते थे। रति तिवारी को कॉलेज यूनियनकेअध्यक्ष चुनवा में जीत हासिल होती है। जीत के जश्न के बीच विपक्ष के लड़कों से मार–पीट हो जाती है। रति के घर में जब इस बात का पता चलता है तो दूसरे दिन रति तिवारी का कॉलेज जाना बंध करवादिया जाता है। घरवाले उसके पहरे लाड–दुलार भरे पहरे पर लग गये थे। ''पिता का किला लड़की के लिए कितना मजबूत होता है। इसमें कोई सुरंग नहीं बनती। हां उड़ा जा सकता है, जिसे भागना कहते हैं। लड़की का भागना ऐसा ही है जैसे को अंजाम देना।''[86] मुकुन्द तरह–तरह के अनुमान लगाता है बीमारी पकड़ी या बेधी समझ नहीं पा रहा था। शेरनी की तरह रहनेवाली बिल्ली कैसे बन गयी? कॉलेज में

भाषण देकर छात्रों और अध्यापकों को स्तब्ध कर देनेवाली रति अपनी चिकनी देहरी लांघकर कॉलेज तक क्यों नहीं आ सकती इस में प्रेम का अर्थ रति समझाती है कि ''हम साथी हैं, इसका आशय मुकुन्द क्या जानते नहीं थे कि इंसानियत, कर्तव्यबोध और शक्ति का संचयन, इन सबका सामंजस्य ही नई राह बनाता है। इसके लिए उम्र ज्यादा हो, जरूरी तो नहीं। ब्याह निर्विघ्न हो गया।''[87]

अलग–अलग व्यक्तियों से उन दोनों का ब्याह हो गया था। रति पत्नी होकर पति के लिए अविश्वास की पात्र है।उसका पति रति के भाई को ही सुरक्षा देने केलिए कहता है। वह सुरक्षा रति की स्वतंत्रता को बांध देती है। एक कार्यक्रम के दौरान मुकुन्द से मिलती है। उसको मुकुन्द अपने घर ले जाता हैऔर अपनी बीवी और बेटी को डाक्टरनी के नाम से उसका परिचय कराता है।स्टेशन पर मिला तो कहने लगे कि–''क्या बदला है हमारे बीच, कुछ भी तो नहीं। सिर्फ कलेंडर में दिन–तारीख महीने और साल बदलते रहे। दांपत्य का बोझ बढ़ता रहा, मगर इस एक पल ने समय की शिला पलट डाली, थोड़ा–सा साहस थोड़ी–सी लगन चाहिए, पहाड़ पलटने के लिए... अपनी जिन्दगी जीने के लिए। यहां जवानी की खूबसूरतियां अपने चेहरों की नुमाइश नहीं करतीं।''[88]

मुकुन्द भी वही मिजाजमें कहता है कि ''इस सबंध को मिटाना चाहा रति तुमने। यदि कायम रखना चाहती तो छिपाती नहीं। छिपाकर हमारी भावनाएं गुनाहगार बना दी। नहीं चलना चाहतीं न सही। अभी तक रूढ़ियों को पाले बैठी हो''[89] रति को यह समझ में आ गया कि प्यार से ज्यादा प्यार की भावना का ही महत्व होता है। दया दीक्षित का मानना है की ''यह कथा मात्र नहीं मानकर यह एक साथ नर–नारी के सह–संबंधों पर एक खुला गंभीर विमर्श मानती हैं।''[90]

2.2.1.2 उपन्यास साहित्य

उपन्यास एक लोकप्रिय विधान है। इस लोकप्रिय विधा के द्वारा मैत्रेयी पुष्पा स्त्री जीवन के भोगे हुए यथार्थ का रेखांकन किया है। अपने अनुभवों के भंडर से खोद–खोदकर नारी जीवन की व्यथाएँ, त्रासदी, मंत्रणाएँ पाठकों तक पहुँचाने के लिए उन्होंने उपन्यास का आधार लिया है। गाँव–कस्बे की मध्यवर्ग और निचले तबकों की स्त्री–पीड़िता पर गहरी, संवेदना के

साथ लगातार लिखनेवाली पहली महिला लेखिका मैत्रेयी पुष्पा हैं। गाँव के जीवन और संघर्ष को केन्द्र बनाकर ही अपनी कथा–रचना की है। इनके उपन्यासों में संवेदना, वास्तविकता, सामर्थ्य, नयापन और लगन दिखाई देती है।

उन्होंने अपने उपन्यासों में वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, दार्शनिक और नैतिक समस्याओं को नवीन दृष्टि से देखा और चित्रित किया है। मैत्रेयी पुष्पा ने मध्यवर्गीय परिवार में जूझती नारी के संघर्ष और द्वन्द्व को नवीन रूप में प्रस्तुत ही नहीं किया अपितु उसमें नयी दिशा भी दी है। मैत्रेयी पुष्पा ने उपन्यासों में विद्रोह के साथ सामंतीय संस्कारों, आर्थिक, पारिवारिक संबंधों में नवीन वैचारिक दृष्टि को अपनाया है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में लोक संस्कृति, संस्कार आदि का अंकन भी किया गया है। वे अपने उपन्यासों में समय को ध्यान में रखते हुए उसमें उत्पन्न संघर्ष और द्वन्द्व को चित्रित किया है।

स्मृति दंश (1990), बेतवा बहती रही (1993), इदनमम् (1994), चाक (1997), झूलानट (1999), अल्मा कबूतरी (2000), अगनपाखी (2001), विज़न (2002), कही ईशुरी फाग (2004), त्रिया हठ (2006), कस्तूरी कुंडल बसै (2002), गुड़िया भीतर गुड़िया (2008), गुनाह–बेगुनाह (2012)।

इन सारे उपन्यासों में सफलतापूर्वक संघर्ष और द्वन्द्व के प्रति पूर्णरूप से लेखिका सजग है। प्रकृति में शाश्वत सत्य जैसे विभिन्न स्तरों पर यह संघर्ष निरंतर चलता रहता है। मानव जीवन में संघर्ष विभिन्न रूपों में दिखाई देता है। इसे हम भीतरी एवं बाहरी, शारीरिक एवं मानसिक आदि वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। बाहरी एवं शारीरिक संघर्ष के अंतर्गत मनुष्य सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, भाषिक जैसी विभिन्न स्थितियों से जूझता रहता है। वहीं दूसरी ओर उसके मन के भीतर ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार, स्वार्थ, क्रोध जैसे नकारात्मक भावों और दया, प्रेम, करुणा, परोपकार, सहयोग जैसे सकारात्मक भावों में निरंतर संघर्ष चलता रहता है। नयी कविता क प्रमुख हस्ताक्षर श्री जगदीश गुप्त के शब्दों में

''सच हम नहीं, सच तुम नहीं
है महजसच. संघर्ष ही।''[91]

बेतवा बहती रही : मैत्रेयी पुष्पा ने उपन्यास साहित्य का आरंभ 'स्मृति दंश' और 'बेतवा बहती रही' उपन्यासों के द्वारा किया है। दोनों उपन्यास कथा की दृष्टि से बहुत मार्मिक हैं। अपना

साक्षात्कार देते समय मैत्रेयी पुष्पा बेतवा बहती के बारे में कहती हैं कि ''मैंने कुछ भी सोच–समझकर नहीं लिखा, पर यह जरूर तय किया कि एक उपन्यास विधवा पर लिखूँगी–'बेतवा बहती रही' लिखा, एक कुँवारी पर लिखूँगी– 'इदन्नमम' लिखा, एक विवाहिता पर लिखूँगी 'चाक' लिखा। विवाहिता का संघर्ष कैसा होता है।''[92] मैत्रेयी पुष्पा अपने उपन्यास विधवाओं पर भी लिखा। उन्होंने विधवाओं के कष्ट, दुःख और उनकी यातनाओं को नज़दीकी से देखा था। अपनी माँ, अपनी बड़ी बहन, और माँ की सखी गौय भी विधवा थीं। लेखिका अपने शब्दों में 'बेतवा बहती रही' उपन्यास के बारे में कहती हैं कि ''बेतवा बहती रही के प्रत्याशित अंत पर बहुत सी स्त्रियाँ मुग्ध हुईं और ये पड़ीं। फोन आए, पत्र आए। हम आपस में संगति बिठाते हुए एकमएक नजर आए। आप मानें या न मानें, मगर यही कहानी प्रभावहीन हो गई। विगलन और आँसूओं में वह ताकत कहाँ, जो कथा को सफल ही नहीं, सार्थक भी बना दे।''[93] मैत्रेयी पुष्पा विधवा समस्या पर लिखने का कारण बताती हैं कि ''विधवा समस्या पर लिखने का कारण यही था कि मैंने अपने आस–पास विधवाओं को देखा था, उनकी यातनाओं को करीब से जाना था। मेरी माँ भी विधवा थी। इसीलिए मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि विधवाओं को कौनसी दिशा दी जाए। वह विधवा जो जन्म भर गुलाम बनने के लिए अभिशप्त है। माँ–बाप, भाई, देवर, देवरानी, जेठ–जिठानी आदि के लिए मर सकती है या वृन्दावन में जा सकती है इसलिए मेरे दिमाग में सबसे प्रथम विधवा की कहानी आई। मैंने कथा तो लिखी लेकिन दिशा देना भूल गयी।''[94]

'बेतवा बहती रही'1994 में किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा बुन्देलखंड के स्त्री जीवन की विपन्नता का अभिशाप–शोषण और सनातन संघर्ष एक विवश यातनामय नारकीय जीवन के बार में उर्वशी के द्वारा चित्रित किया है। इस उपन्यास के द्वारा ही मैत्रेयी पुष्पा एक उपन्यासकार के रूप में पहचानी गई थीं। स्त्री–जीवन का जो अभिशाप है लेखिका उर्वशी के जीवन के द्वारा पाठकों को समझाती हैं। ऊर्वशी की जिन्दगी में यह त्रासदी, यंत्रणा, शोषण, तेजी से बदलते जीवन मूल्य हैं वे सभ्यता के थोथे आंदोलन हैं। आजादी के चालीस वर्षों की तथाकथित विकास उपलब्धियाँ, साथ ही गाँव की रूढ़िग्रस्त धरती, प्रगति के आयामों को विसंगतियों में घोल देने की कुप्रवृत्ति है। विपन्न मानसिकता के दुमुँहे समाज ने आज भी नारी को मात्र वस्तु, मात्र संपत्ति, विनिमय की

चीज समझा है। ये सारे अंधकार के दुःख, दर्द और त्रासदी बुन्देलखण्ड की स्त्री की जिंदगी नहीं, एक तरह से सारी स्त्री जाति की त्रासदी एवं दुःख दर्द हैं और खुद लेखिका के भी हैं। सच है कि औरत सदैव सहने के लिए, झेलने के लिए और जूझने के लिए है। यह उपन्यास जो मैत्रेयी पुष्पा को पहला उपन्यास है, उत्तर प्रदेश साहित्य संस्थान की ओर से सन् 1995 में 'प्रेमचंद सम्मान' से नवाजा गया। उन्हें पहला उपन्यास के लिए ही नवाजा गया था। यह एक उपन्यासकार के लिए बड़ी उपलब्धि मानी जाती है। देश में कितने भी तरह के विकास क्यों न हो गाँव में आज भी पिछड़ेपन, गरीबी, सामंती प्रथा, अंधविश्वास, अशिक्षा, स्त्री त्रासदी और शोषण यथा स्थिति ही चल रहे हैं। रीति–रिवाज, पुराने संप्रदाय, परंपरा निरंतर निस्संदेह चलते रहते हैं। उन सारी झंझटों में फंसी हुई है नारी और उसका जीवन।

माता–पिता की संतान में सिर्फ अजित भैया और ऊर्वशी ही बचे थे। ऊर्वशी अजीत से कई वर्ष छोटी थी क्योंकि अजीत की पीठ पर के कई बच्चे नहीं रहे। कोई चेचक में गया तो कोई मोतीझरा में। उर्वसी का जन्म गरीब घर में हुआ था। दरिद्रता का घोर साम्राज्य उस घर के निवासियों को हर समय पेट भरने की दुश्चिंताएँ घेरे रहतीं। ऊर्वशी के गाँव में मीरा अपने नाना के घर में रहती थी। दोनों एक ही उम्र के होने के कारण एक दूसरे के अंतरंग, अभिन्न दोस्त हो गए थे।

ऊर्वशी के परिवार में दरिद्रता होने पर भी सर्वदमन के साथ उसका विवाह हो जाना उसके लिए सौभाग्य की बात थी। एक सड़क दुर्घटना में उसके पति की आकाल मृत्यु हो जाती है। लेकिन ऊर्वशी के गोद में एक छोटा सा बालक था। ऐसे ही असहज दुःख के सात समय बीतने लगा। वह घर संभालती रहती है साथ ही अपने दऊजी और जिठानी की सेवा करती रहती है। जेठ–जिठानी का परिवार उसके प्रति चिन्ता, तथा प्यार ख्याल करते हैं। मगर ऊर्वशी का भाई उसके प्रति स्वार्थपूर्णता के साथ व्यवहार करता है। बहन का मीरा के पिता बरजोर सिंह जो बूढ़ा आदमी था उससे शादी करा देता है। ऊर्वशी का जीवन नरकमय हो जाता है। वह बूढ़ा होने पर भी कामातुरता के कारण ऊर्वशी के भाई को कुछ रकम थमाकर शादी कर लेता है। दो सखियों का रिश्ता माँ–बेटी के रिश्तें में बदल जाता है। बेटी मीरा दुःखी होकर खाना, पीना, बोलना सब बंद कर देती है। मीरा अपनी सखी (माँ) को देख नहीं पाती और पिता का किया हुआ काम पर शर्मिन्दा हो जाती है। मीरा के भाई लोग उदय और

विजय भी आँखे चुराते रहते हैं, क्योंकि वे पहले बहन की सखी को भी बहन मान लेते थे मगर वहीं आज उनके घर में माँ बनकर घर का बोझ उठा रही है। वह अपने काम में दिन–रात भी भूल जाती है। मीरा का विवाह हो जाता है। ऊर्वशी बीमार हो जाती है और पता लगता है कि दोनों (किडनी) गुर्दे खराब हो गये हैं। अपने कष्टों के कारण वह बेतवा में डूबकर मरने का भी प्रयत्न करती है परंतु मरती नहीं। बुड्ढा जो बरजोर सिंह ऊर्वशी के रूप सौंदर्य को चाहता था वह बीमार पड़ जाने पर उससे घृणा करने लगता है। बरजोर सिंह को यह भी गुस्सा था कि बेटा विजय मर जाने पर बहु का विवाह दूसरा बेटा उदय से करवा देती है। बहु को नयी जिन्दगी दिलाने के कारण बरजोर सिंह उससे घृणा करने लगता है। उदय को दहेज से वंचित कर देने के कारण वह पति के लिए एक कांटा बन जाती है। इसी कारणवश उसे एक डॉक्टर के द्वारा दवाई के रूप में हर दिन धीमी गति में जहर देने लगता है। वह बिस्तर से उठ नहीं पाती, खून की उल्टियाँ होने लगती है।, दिल्ली ले जाने वाले ट्राक्टर को तैयार कर चिरगाँव से झाँसीवाली सड़क पर चलते हुए कुछ दूर पहुँचने के बाद सिरसा का सीवान के पास आते ही वह प्राण छोड़ देती है। ऊर्वशी का दाह–क्रिया की तैयारी करते है। देवेश लाल साड़ी से ढके माँ के शरीर पर से सफेद कोरा वस्त्र उठा देता है। आगे–आगे देवेश के साथ दूसरा कंधा उदय का था पीछे लुटे–लुटे से दाऊ और बैरागी। महाप्रयाण की ओर चली जा रही थी–सर्वदमन की विधवा... ऊर्वशी। बेतवा के निर्मल जल में धीरे–धीरे ऊर्वशी की कंचन काया समाने लगी।

इस उपन्यास में मैत्रेयी जी स्वतंत्र भारत की सभ्यता के थोथे आंदोलन और तथाकथित उपलब्धियाँ दिखाती हैं। तेजी से बदलते जीवन मूल्य को उजागर करना चाहती हैं, जहाँ गाँव की रूढ़िग्रस्त धीरती और प्रगति के आयामों विसंगतियों में घोल देने की कुप्रवृत्ति है। काल के स्याह अँधेरों में भटकती त्रासद जिन्दगी, दुःख–दर्दों की व्यथा–कथा अकेली की नहीं मगर पूरे देश में गाँव की परंपरागत स्त्री की स्थिति है। औरत सदैव रहती है सहने के लिए, झेलने के लिए और जूझने के लिए। वे कहते हैं कि ऊर्वशी के पीछे उनकी बड़ी बहन का चेहरा है। सतीप्रथा, बाल विवाह, विधवा को वृंदावन जैसी किसी जगह भेज देने की मानसिकता में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। बेतवा आज भी बह रही है और बहती रहेगी। और भी कहती हैं कि

''उर्वशी की इस कहानी का मर्म आज भी मुझे बांधे हुए है। उसकी संवेदना या मेरे लगाव में कोई अंतर नहीं आया।''[95]

इदन्नमम :

मैत्रेयी पुष्पा का दूसरा महत्वपूर्ण उपन्यास 1994 में किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ था। यह उपन्यास के आधार पर हिन्दी के कालजयी उपन्यासकारों की कतार में मैत्रेयी पुष्पा अपना स्थान सुरक्षित कर लिया है। 'इदन्नमम' भारतीय उपन्यास की परंपरा को आगे बढ़ानेवाली एक नई कड़ी कहा जा सकता है। इस उपन्यास का प्रकाशित होते ही उनका नाम सुप्रसिद्ध हो गया और उपन्यास के लिए (1) 'नंजनागुडु तिरूमालंबा पुरस्कार' शाश्वती संस्था, बंगलोर से; (2) 'प्रेमचंद सम्मान' उ.प्र. साहित्य संस्थान; (3) ''वीरसिंह देव पुरस्कार'' म.प्र. सहित्य परिषद से; (4) हिन्दी अकादमी नई दिल्ली से 'साहित्यकार सम्मान' और (5) वाँ पुरस्कार 2000 में 'आनंदसागर कथा–क्रम सम्मान' लखनऊ से (6) ''सरोजनी नायुडू पुरस्कार'' 2003 हंगर प्रोजेक्ट के द्वारा (7) 'सार्क साहित्यिक सम्मान' 2001 for outstanding writing.

'इदन्नमम' की भूमिका में राजेन्द्र यादव इस प्रकार लिखते हैं कि ''बऊ (दादी), प्रेम (माँ) और मंदा... तीन पीढ़ियों की यह बेहद सहज कहानी तीनों को समानांतर भी रखती है और एक–दूसरे के विरूद्ध भी। बिना किसी बड़बोल वक्तव्य के मैत्रेयी ने गहमा गहमी से भरपूर इस कहानी को जिस आयासहीन ढंग से कहा है, उसमें नारी सुलभ चित्रात्मकता भी है और मुहावरेदार आत्मीयता भी। हिन्दी कथा–रचनाओं की सुसंस्कृत सटीक और बेरंग भाषा के गाँव की इस कहानी को मैत्रेयी पुष्पा ने लोक–कथाओं के स्वाभाविक ढंग से लिख दिया है, मानो मंदा और उसके आसपास के लोग खुद अपनी बात कह रहे हों–अपनी भाषा और लहजे में बुन्देलखंडी लयात्मकता के साथ... अपने आसपास घरघराते क्रेशरों और ट्रैक्टरों के बीच।''[96]
राजकिशोर के अनुसार 'इदन्नमम' की कथा भारत के ग्रामीण परिवेश की या उसके एक विशिष्ट अंचल बुन्देलखंड की अपनी कथा है। इदन्नमम में पात्रों की संख्या अनगिनत और कथा भी कई स्तरों पर चलती है, किन्तु सजग लेखक की इच्छा इतिहास का अतिक्रमण करने की नहीं उसे बीधने की है। ''उपन्यास शीर्षक (जो संस्कृत के एक सुन्दर श्लोक से लिया गया है) से यह भ्रम हो सकता है कि 'जिसका यशोगान कर विद्वान भव–बाधा से पार हो जाते हैं,

यह आहुति उसी परमेश्वर के लिए है, मेरे लिए नहीं। अतः यह उपन्यास नहीं, बल्कि अपनी निष्ठा की कथा–अभिव्यक्ति है, लेकिन उपन्यास को पढ़ते समय यह भ्रम लगातार खंडित होता जाता है, क्योंकि 'इदन्नमम' जितना आधुनिक जीवन तथा आधुनिक विकास के प्रति आलोचनात्मक है, उतना ही परंपरागत भारतीय जीवन के प्रति भी आलोचनात्मक है।''[97]

मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास इदन्नमम की कहानी 13 साल की मंदा और उसकी 'बऊ' (दादी) की कहानी है। अपने बेटे महेन्दर सिंह की राजनीतिक हत्या और महेन्दर की जवान विधवा 'प्रेम' का घर भाग जाने और मृतक महेन्दर सिंह की जायदाद के लिए मुकदमा लड़ने से घबराकर, बऊ को अपने गाँव सोनपुरा छोड़ श्यामली गाँव के परधान दादा पंचम सिंह की शरण में जाना पड़ता है। क्योंकि मंदा की माँ 'प्रेम' भी कुचकियों के षड़यंत्रों का शिकार होकर अपने घर से निकल जाती है। नैतिक और आर्थिक स्तर पर छलनी–छलनी और लगभग टूट चुकी 'बऊ' जब श्यामली गाँव पहुँचती है, अपनी पोती मंदा को गहरी नींद से जगाने लगती है। वह ऐसा लगता है कि एक समूची विरासत नींद में डूबी पढ़ी है और वह थपथपाकर कह रही है, इतेक देर से हम और क्या कर रहे हैं। उपन्यास पढ़ते हुए मूर्छित स्त्री–चेतना की मूर्च्छा टूटेगी और नींद भी खुल जाया करेगी।

श्यामली गाँव में प्रवेश करने के समय कई शंकाओं और प्रश्नों का सामना करना पड़ता है, जिसे छोटी मंदा नहीं समझ पाती है। न चाहते हुए भी बऊ परिस्थितियों के अनुसार अपनी माँ प्रेम विधवा होने के बावजूद अपने जीजा रतनसिंह के साथ मंदा को छोड़कर भाग जाना, पिता की राजनीतिक हत्या होने की कहानी सुनाती है। उपन्यास जब श्यामली से उठकर सोनपुरा फिर से लौटता है तब उसका यह वाक्य देसिया देस को ही जाता है।

सोनपुरा लौटकर मंदा जिस तरह के संघर्षों और जटिलताओं से होकर गुजरती है, उससे लोक–जीवन में नारी और पुरूष–व्यक्तित्व का एक नया ही उभार सामने आता है। सब जानते हुए मन्दा प्रण लेती है कि वह अपने पिता महेन्द्र का जो सपना था गाँव के अस्पताल में डाक्टर को लाने का उसे पूरा करे। अस्पताल की बात को लेकर वह दिन–रात अफसरों के पीछे दौड़ती है और अंत में डाक्टर को लाकर ही दम लेती है। मन्दा का केवल परंपरागत खेती–किसानी वाला सनातनी दिमाग नहीं है। नई सामाजिक–आर्थिक चुनौतियों और राजनीतिक कतार–ब्यौंतो को समझती हुई वह उस अगले मशीनी युग को लेकर भी सजग है,

जिसमें नई मनुष्यता को अपना सफर तय करना है। मुख्य कथानक के साथ–साथ उपन्यास में कुछ उप–कथानक भी हैं जिसके माध्यम से अनेकानेक घटनाएँ हमारे सामने आती हैं, जो पाठक को यहाँ तक विवश करती है कि ग्रामीण जीवन और वहाँ स्त्री जीवन कितना कठिन और संघर्षमय है।

इदन्नमम के अनेक पात्र, नायिका मंदाकिनी, आधुनिक पूर्व युग के अनेक आकर्षक मूल्यों का प्रतिनिधित्व करने वाले दादा, विद्रोही स्त्रियाँ कुसमा, मन्दा की माँ 'प्रेम' और सुगना, विद्रोह और रचना का संदेश देनेवाले कायले के महाराज, मौन अनुरागी, मकरंद, गाँव का वत्सल प्रधान अपने पूरे दम–खम और व्यक्तित्व के साथ सामने आते हैं। उपन्यास के प्रारंभ से अंत तक कहीं भी मिथ्या आशाओं का ज्वार नहीं है। मंदा की संघर्ष–कथा भी ऊबड़–खाबड़ रास्ते से ही चलती है, फिर भी 'इदन्नमम' मनुष्य की अंतर्निहित क्षमता में हमारा विश्वास कुछ और दृढ़ करता है। वह बताता है कि सड़ी से सड़ी स्थिति भी संभावनाविहीन नहीं होती। जहाँ बड़े पैमाने पर संघर्ष संभव नहीं दिखाई देता हो, वहाँ छोटे पैमाने पर भी कुछ किया जा सकता है। यह छोटी–सी, किन्तु महत्वपूर्ण और आज के समय में लगभग विस्मृत सूचना को 'इदन्नमम' इतनी सहजता से पुनर्जीवित करती है कि पाठक का हृदय अभिभूत हो जाता है।

लेखिका का मन मन्दा के चरित्र को रचने में यह स्पष्ट हो जाता है कि उसने विकृति, विघटन, निराशा और अवसाद को अपने लेखन के आधार मूल्य के रूप में न तो अंगीकार किया, न ही इनके सामने घुटने टेके हैं। उसे परिस्थितियों से आँख मिलाना आता है और मनुष्य की सामूहिक लड़ाई में उसकी घनघोर आस्था है। 'इदन्नमम' का अर्थ ही है लड़ाई। अस्पताल और निजी जायदाद के लिए नहीं, उस विराट् जन समूह के सुखद ऐतिहासिक भविष्य के लिए है, जिसे भारतमाता कहते हैं।

चाक :

'चाक' उपन्यास 1997 में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ था। चाक उपन्यास बहुचर्चित उपन्यास है जिसमें स्त्री–पात्रों का एक सजी संग्रहालय है। 'चाक' एक ग्राम कथा है और एक नारी–कथा भी है। 'चाक' जैसा उपन्यास इसका प्रमाण है कि आज स्त्रियाँ अपनी ही नहीं, अपने पूरे समाज के मुक्ति की लड़ाई लड़ रही है और यह हमारे समय का इतना ज्वलंत प्रश्न या संदर्भ है कि उसे हवा में उड़ाया नहीं जा सकता। इसके बावजूद

मैत्रेयी पुष्पा 'महिला लेखिका' के रूप में पढ़ी जाने के लिए अभिशप्त हैं। चाक उपन्यास एक स्त्री की लंबी लड़ाई का वृत्तांत है। इसी अर्थ में उसके मुक्ति–संघर्ष की महागाथा।

'चाक' उपन्यास में स्त्री की दुःख की कथा उनमें भी सबसे अधिक उन्हें प्रभावित किया चंदना की कथा। चंदना जो शादी शुदा स्त्री होने के बावजूद दूसरे पुरूष से प्रेम करती है जिसके कारण उसका पति उसे दो टुकड़े कर देता है। चाक की नायिका (मैत्रेयी पुष्पा) दादी से कहती है कि इसका चंदना की कथा का अंत बदल दो। इसी अंत को बदलने के लिए सारा उपन्यास लिखा गया। पूरी चंदना की कथा इसमें छाई हुई है। स्त्री की अपनी जिन्दगी पर जो संस्कार हावी हैं, जो उसे तोड़ते, काटते, छीजते हैं, उन्हें बदलने का प्रयास ही 'चाक' है। यह उपन्यास मैत्रेयी पुष्पा के उनके लेखन में सबसे अधिक पसंदिदा उपन्यास है। उन्हीं की बातों में ''आप शायद मुझसे पूछे, 'चाक' ही मुझे सबसे ज्यादा पसंद है। मैंने सब उपन्यासों से चर्चा पाई है, तारीफे पाई हैं। कोइ न कोई पुरस्कार मिले हैं, 'चाक' को कोई पुरस्कार नहीं मिलता है। वह साहित्य अकादमी में कई साल रहा, लेकिन कटता ही रहा। फिर भी मुझे 'चाक' ही मुझे सबसे अधिक प्रिय हैं, क्योंकि स्त्री का दृष्टिकोण देखना है तो सब तरह से है।''[98]

'चाक' को लेकर 'ज्ञानरंजन' कहते हैं कि ''जिस लोक–जीवन से हमारी रचनात्मक धारा काफी पहले विमुख हो चुकी थी उसकी अनेक परतें मैत्रेयी पुष्पा ने खोल दी हैं। मैत्रेयी पुष्पा को उनकी मामूली लेकिन जबरदस्त स्त्रियों के कारण याद किया जाएगा।''[99] 'राजेन्द्र यादव' भी 'चाक' के बारे में कहते हैं कि ''चाक सामंती समाज के भीतर व्याप्त हिंसा और स्वार्थों की टकराहट की प्रमाणिक कहानी है। इस समाज का ताना–बाना हिंसा और सेक्स से बना है। मैत्रेयी इन दोनों को ही एक कथाकार की निगाह से पात्रों के आचार–विचार और सोच के रूप में प्रभावशाली ढंग से पकड़ती हैं। चाक में बिना बड़बोलपन के उन्होंने गाँव की स्त्री की जिस चेतना का विकास किया है। वह उपन्यास–कला पर उनकी पकड़ को रेखांकित करता है।''[100]

चाक उपन्यास की कहानी की शुरूआत सारंग की बुआ की बेटी रेशम की हत्या से होती है। उम्र में उससे ठीक पाँच वर्ष छोटी थी। विधवा होते हुए भी रेशम ससुराल में रहते हुए समाज में सम्मानपूर्वक जीवन जीना चाहती है। बच्चे को जन्म देकर माँ बनना और प्यार के साथ उसका लालन पालन करना चाहती थी। वह किसका बच्चा अपने पेट में बढ़ रहा है

वह किसी को बताना नहीं चाहती है जिसका नतीजा है उसकी हत्या। सारंग अपनी चचेरी बहन की हत्या को लेकर दुःख में तड़पती और बेचैन रहती है कि बहना की मौत हुई थी या हत्या की गयी थी। इसी सच्चाई को सबके सामने लाना चाहती है। वह सोचती है कि किसी की हत्या करके उसकी सहज मौत के रूप में लोगों को विश्वास दिलाना अन्याय है। यही विषय सारंग को नींद आने नहीं देता और मन भी छटपटाते रहता है। रातों–रात जागकर रोते हुए पति रंजीत से कहती है। कि ''तुम जागो रंजीत! उठो! तुम्हारे सिवा मेरा कौन...''[101] पति को समझाकर और विश्वास, हिम्मत दिलाकर गवाहों के साथ हत्यारों को पकड़कर दोषियों को सजा दिलवा देती है। लेकिन वह दुःखित होती है कि जब सजा मिलने पर भी हत्यारा दोषी और गुनाहगार होकर भी पैसा और जाति के पट्टे का उपयोग कर बिना कुछ दुःख–दर्द से बच जाते हैं। कानून या समाज उन्हें कुछ कर नहीं पाते है। रंजीत सही कहता है कि ''कानून–कायदे पैसा देकर कागज के ऊपर पोंछ देनेवाली इबारत के सिवा कुछ नहीं। और औरत के हक में तो बिल्कुल नहीं।''[102]

इस उपन्यास को लेकर क्षमा कौल, जम्मू :''ऐसे नारीवाद से मैं एक नारी होने के नाते बेहतर शर्मसार हूँ... आपने धज्जियां उड़ाई हैं... अच्छा ही किया मैंने जो इस ओछे और घृणित साहित्य को नहीं पढ़ा। ...मगर आपको ऐसे विकृत लेखन पर अपनी ऊर्जा व्यर्थ नहीं करना चाहिए थी... ये लोग इस नकारात्मक चर्चा को ही अपनी प्रसिद्ध की सीढ़ी मानते हैं।''[103]

'जिला पंचायत अध्यक्ष' का पर्चा श्रीधर के प्रोत्साहन से भर कर पती और प्रधान के विरोध चुनाव लड़ने केलिए जिस में श्रीधर, भंवर और उस का बेटा चंदन साथ–साथ उस गाँव के ग्रामीण स्त्रियाँ भी उसका साथ देती हैं। पति पुरूषाहंकार और सामाजिक दबावों के कारण पत्नी की मदद नहीं करता बल्कि प्रधान के हाथ में धोखा खाता है। पत्नी को प्रताड़ित करते हुए अपना गुस्सा निकालता है लेकिन सारंग सारे दावेदारों को पछाड़ देते हुए प्रबल होकर नये सिरे से चरित्र का रूप देती है। यह स्त्री जागरण है। सारंग की विद्रोह–चेतना स्वभाव से नहीं बल्कि परिस्थितियों के कारण हासिल की गयी थी।

यह उपन्यास ग्राम्य स्त्री के 'एमपॅवरमेंट' के समकालीन संदर्भों में एक महत्वपूर्ण उपन्यास माना जा सकता है। जो बिना उपदेश के स्त्री सत्ता को स्थापित करती है। लेखिका मैत्रेयी पुष्पा का उद्देश्य यही रहा कि ''स्त्री भाग का सामान–भर नहीं है, वंश–वृद्धि के लिए

खेत नहीं है, वह हाड–मांस की एक चेतना भी है, और उसमें भी वही बौद्धिक क्षमता होती है जो कि और जैसी कि पुरूष में वह अब लिया है।''[104]सच तो यह कि मैत्रेयी पुष्पा जंग की बातें रचकर बस नहीं करतीं, वे मोर्चे पर भी आती है। यही संदेश इस उपन्यास के द्वारा लेखिका देना चाहती है।

झूलानट :

'झूलानट' मैत्रेयी जी का अपेक्षाकृत काफी छोटा उपन्यास है। इसका पहला संस्करण राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से 1999 में प्रकाशित हुआ था। मैत्रेयी पुष्पा ने जो इदन्नमम् व चाक तथा 'अलमा कबूतरी' जैसे व्यापक फलक वाले बड़े व गंभीर उपन्यास लिखे हैं। लेकिन उनके बीच में झूलानट समीक्षा की भाषा में लघु उपन्यास है। जिसका तमाम समानांतर कथाओं को वांछित विस्तार नहीं दिया जाता। इसमें कथा का कार्य बनकर जगह नहीं घेरता, बस कारण बनकर उपन्यास को बना देता है। मैत्रेयी पुष्पा अपने वक्तव्य देते समय इस उपन्यास के बारे में कहती हैं कि ''झूलानट कहने को तो एक हलका–फुलका उपन्यास है। बहुत हँसी आती है उसको पढ़कर। जिनको वह पसंद है, उनको कोई दूसरा मेरा उपन्यास पसंद नहीं है, उसके मुकाबले। किसी ने कहा है कि वह तो '2000' गज के प्लाट पर '200' गज का मकान है।''[105]

इस उपन्यास के संदर्भ में राजेन्द्र जी का कथन इस प्रकार है कि ''पता नहीं 'झूलानट' शीलो की कहानी है या बालकिशन की। हाँ अंत तक प्रकृति और पुरूष की यह 'लीला' एक अप्रत्याशित उदात्त अर्थ में जरूर उद्रभासित होने लगती है।''[106]

'झूलानट' एक छोटे–से परिवार की कहानी है। एक जुझारू माँ, दो बेटे और एक उतनी ही जुझारू बहू के इस परिवार में संबंधों के समीकरण बेहद उलझे हुए हैं। माँ ने पिता के बाद अकेले ही घर–गृहस्थी का जुआ खींचा है। दुःख–तकलीफ को पानी की तरह पीना जानती है। डरी–झिझकीं तो चला लिया गृहस्थ और गाँव। इस जुझारू क्षमता ने माँ को अपने बेटों की और स्वयं अपनी दृष्टि में एक खास हैसियत दी है। बड़े बेटे के प्रति उनके मन में विशेष पक्षपात है, क्योंकि वह पढ़–लिखकर पुलिस में थानेदार हो गया है और अब वह उनका बेटा कम व इज्जत और नामवरी का पताका अधिक है। माँ के लिए इन्हीं बातों का महत्व सबसे बढ़कर है। इसीलिए माँ सरस्वति को छोटे बेटे बाल किशन के हिस्से में उसी अनुपात

में उपेक्षा और तिरस्कार आते हैं। अपने को नालायक, तुच्छ और तिरस्कृत समझता हुआ छोटा बेटा बालकिशन बड़े भाई के न्यस्त स्वार्थ की पूर्ति का सामान बन जाता है। माँ की प्रसन्नता और प्रशंसा की आशा में ही वह बड़े भाइ से लात–घूँसे और संटियों की मार खाकर भी बहादुर बालक की तरह खड़ा रहता और इन चोटों पर माँ के रो देने पर अपने दर्द से नहीं, माँ की पीड़ा से रोता है।

इस परिवार में शीलो बहू के आगमन से घटनाक्रम की शुरूआत होती है। धीरे–धीरे पता चलता है कि जिसे सुमेर वह ब्याह गई है, उसने रस्म–भर निभाई है, क्योंकि यह ब्याह उसके स्वर्गीय पिता तय कर गए थे, लेकिन इस रस्म का पालन करने को वह किसी भी कीमत पर तैयार न हुआ। फलतः शीलो ब्याही जाकर भी अनब्याही ही रही। गाँव की साधारण सी औरत है शीलो–न बहुत सुंदर और न सुधड़, न रंग और न रूप है, ऊपर से हाथ में छः ऊँगलियाँ तो उसका जीवन नरकमय होने लगा। उसके कठोर–व्रत उपवास पूजा एवं चंपादास के मंत्र–तंत्र भी सुमेर के दृढ़निश्चय को डिग न सके। ढेरों प्रायोजित श्रृंगार पटार भी सुमेर को पिघला न सके। आँसुओं और मनौतियों के सहारे समय काट लेती थी। सुमेर घर नहीं लौटता, आती है एक खबर, उसके दूसरे विवाह की। सुमेर की माँ थानेदार बड़े बेटे को समझाने–फुसलाने से भी उसे दूसरे शादी करने से रोक नहीं सकती है। सुमेर की माँ बेटे को समझाने में थक–हारकर अपने दूसरे बेटे बालकिशन के साथ शीलो को संग रहने देती है।

शीलो अपने से पाँच साल छोटे देवर की शैयासगिनी तो बनती है, पर बछिया यानी दूसरे विवाह के संस्कार से इनकार कर देती है। बिछिया पहनने से इनकार करती है। इस इनकार के साथ–साथ उसने पत्नी होने का दावा करती है तथा उसके अधिकार का भी। धीरे–धीरे शीलो, सास के लिए बाघिन बन जाती है। सरसुती अपने निर्णय को शक करने लगी है। सास–बहु दोनों रिश्ते को लड़ते–झगड़ते, कभी–कभी प्यार से रहते हुए जीवन बिताती हैं। उस समय एक विधवा–परित्यक्ता करके समझने में भूल होती है। एक दूसरे के दुःख का कारण बनजाती हैं। शीलो धीरे–धीरे अपना फंदा बढ़ाती जाती है। जिस से बालकिशन को शक होने लगता है कि यह औरत है या कोई माया? यह एक को ताकत से पछाड़ रही है, दूसरे को प्यार से। बाल किशन के लिए उनके ताने छूटती और टूटती भी। वह उनका झगड़ा–प्यार का आधार और असाधार भी है। असल में कर्ता तो ये दोनों ही है, पर भोक्ता है

मात्र बालकिशन। इन्हीं के बीच कृति का नाम 'झूलानट' सार्थक होता है। दोनों के चलते टुकड़े–टुकड़े काटा गया बालकिशन इस जाल में फँसा जीव बाल–किशन एक किरन के लिए तरसता हुआ भाग जाता है और जोगी सन्यासी बन जाता है। लेकिन श्रृंगार और वात्सल्य अनुभवों के कारण वह एक अक्षम्य अपराधबोध से मनःविक्षोभ तक जाता है। बालकिशन अपने प्रिय दो स्त्रियों के पास लौटता है।

अल्मा कबूतरी :

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास सन् 2000 में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ था। मैत्रेयी पुष्पा इस उपन्यास को साहस जुटाते हुए लिखी थीं क्योंकि खिल्ली के पास कबूतरा जन्मजात अपराधी होते हैं। जो लोग जन्मजात अपराधी हैं क्रिमिनल ट्राइब्स से संबंधित हैं। जाति और जनजाति पर एक नहीं अनेक उपन्यास हिन्दी में मौजूद हैं। पिछले दो–ढाई दशकों में आदिवासी समाज पर कुछ उपन्यास चर्चित भी हो चुके हैं। लेकिन 'अल्मा कबूतरी' की थीम इसलिए अलग है, क्योंकि अपराधी जातियों और जनजातियों पर उपन्यास लिखने की कोशिशें कम दिखाई देती हैं। रामशरण जोशी कहतेहैं–''इस दृष्टि से मैत्रेयी पुष्पा ने सचमुच एक बड़ा जोखिम उठाया, क्योंकि 'इदन्नमम' और 'चाक' का समाज उनका जाना–पहचाना समाज है। इन दोनों उपन्यासों के प्रमुख पात्र लेखिका की सामाजिक एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि के इर्द–गिर्द ही मँडराते हैं उधर 'अल्मा कबूतरी' की थीम और उसके पात्र नितांत अजनबी हैं। सोच, संस्कार और कार्य–व्यवहार की दृष्टि से लेखिका के साथ इन पात्रों की कोई पटरी नहीं बैठती है। थीम और उससेनिकले सरोकार लेखिका के लिए सामान्य नहीं है। यह अपराधी जनजाति 'कबूतरा' के समाज की मुख्यधारा में शामिल होने की प्रक्रिया पर आधारित उपन्यास है। मैत्रेयी पुष्पा की जरायमपेशा जाति कबूतरा की इस रूपांतरण गाथा में दो धाराएँ समानांतर चलती हैं–पहली बदलाव के लिए कबूतरा समाज की आंतरंगिक तड़प और बाध्य प्रयास दूसरी, औरत का आंतरंगिक और बाहरी सशक्तिकरण परस्पर सहयोगी धाराओं के रूप में उपन्यास में उभरते हैं। इसके केन्द्र में भले ही कबूतरी जनजाति के खानाबदोशी है इसकी परिधी जो बनती है उसके भीतर आज के उत्तर भारतीय जनजीवन और राजनीति के यथार्थ का रूप और सच्चाईहै।''[107] इस उपन्यास के रचनाकार मैत्रेयी पुष्पा को

'सार्क लिटरेरी' पुरस्कार से नवाजा गया था। यह उपन्यास एक यथार्थ और सशक्त उपन्यास है।

मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में बुन्देलखंड में बसनेवाले कबूतरा जनजाति के जीवन के याथार्थ को सभ्य समाज के सामने लाईं, जो अपनी वंश परंपरा रानी पद्मिनी और झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई की अंगरक्षिका झलकारी से जोड़ते हैं। उनकी अपमान, विवशता और पीड़ा–भरी जिन्दगी को उन्होंने जीवंत पात्रों के अद्भुत कथा संसार में बदल दिया है। इसके साथ ही लेखिका ने समानांतर 'सभ्य' समाज की जिन्दगी से जिन्हें वे कज्जा कहकर पुकारते हैं उनके टकराव, संघर्ष और पराजय को भी अत्यंत विश्वसनीय और मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया है। वस्तुतः 'कज्जा' और 'कबूतरा' समाज की मुठभेड़ और द्वन्द्व ही अल्मा कबूतरी के केन्द्रीय विषय है। आदिवासी जनजाति के पुरूष एवं औरतों की ओर तथाकथित सभ्य समाज के लोग गलत दृष्टिकोण से देखते हैं। उन्हें अपराधी करार देकर हर छोटे–बड़े हादसे के लिए जिम्मेदार ठहराकर सजा देना आम बात बन गयी है। अल्मा कबूतरी की कहानी पीड़ा, संघर्ष की कहानी है क्योंकि हारी हुई, सताई गई और शोषित की गई लोगों की कहानी है।

उपन्यास की कहानी कज्जा समाज का मंसाराम और कदम बाई से आरंभ होती है। मंसाराम के राजनीति का शिकार कदमबाई का पति 'जंगलिया' होता है। जिसका नतीजा यह होता है कि उसका पति मर जाता है। पति की मृत्यु के बाद मंसाराम के साथ शारीरिक संबंध स्थापित करके पुत्र को जन्म देती है। उसका नाम है 'राणा'। यहीं से कदमबाई की जिंदगी में कज्जा जाति से संघर्ष की शुरूआत होती है। इन दोनों की संतान राणा को लेकर दोनों वर्गों में लड़ाई और चर्चा होती रहती है। मंसाराम को अपने कज्जा जातिवालों से पत्नी–पुत्र और नाते–रिश्तेदारों और समाज से बहिष्कृत किया जाता है। इस अपराधी जाति को बहिष्कार करने के संदर्भ में अजय नवारिया कहते हैं–''अल्मा कबूतरी' एक ऐसी स्त्री कथा है,जो स्त्री होने के दुःख तो उठाती ही है परंतु उस पीड़ा और यातना में भारी इजाफा इस आधार पर भी हो जाता है कि उसकी सामुदायिक पहचान एक अपराधी कही जाने वाली जाति की है। यह जाति या जनजाजि,सभ्य समाज द्वारा बहिष्कृत औरलाछित भी है। गाँव के बड़े लोग इन्हें गाँव में तो दूर, गाँव की सरहद पर भी बहुत दिन टिकने नहीं देते।उनका मानना हैं कि ये रहेंगे, तो चोरियाँ करेंगे।''[108]

सात साल की उम्र से राणा को उसकी माँ कबूतरा जाति की शिक्षा देना चाहती है, लेकिन वह नहीं मानता है। फिर भी राणा को मंसाराम की पत्नी आनंदी के खतरों से बचाने के लिए कबूतरा जाति में पढ़–लिखकर मास्टर बनने के लिए उसे वहाँ भेजकर पढ़ाती है और साथ–साथ रामसिंह की बेटी अल्मा से भी राणा की शादी करना चाहती है। तो वह कुछ सालों के बाद भागकर वापस माँ के पास आ जाता है। वह अपनी माँ से कहता है कि रामसिंह लाभ–लोभ के कारण डाकू और पुलिस वालों से मिलकर अपने ही जातिवालों की हत्या करने कीसाजिश कर रहा है। लेकिन कदमबाई विश्वास नहीं करती है।

रामसिंह के घर में डाकू, दलाल, दरोगा आते रहते हैं। रामसिंह की बेटी अल्मा राणा से प्यार करती है। बप्पा की बातें छिपाती है कई बार राणा के लिए बप्पा से और बप्पा के लिए राणा से लड़ती है। रामसिंह भी दोनों का विवाह करना चाहता है। राणा और अल्मा के बीच का स्नेह प्रेम में बदल जाता है। शारीरिक संबंध भी बन जाता है। घर में आने–जाने वालों से अल्मा की भद्रता के बारे में सोचकर राणा दुःखित होता है मगर रामसिंह जैसे हत्यारे की बेटी से शादी करने से इनकार कर भागकर आता है और रामसिंह को मारने की शपथ लेता है। जब वह बेटा सिंह की मौत की खबर सुनकर राम सिंह को मारने जाता तो असली बात का पता चलता कि बेटा सिंह के नाम पर रामसिंह की मौत हुई है। इस बात का पता चलने के बाद राणा दुःखित होता है कि वह अल्मा को अकेली छोड़ आने से।

अल्मा सूरजभान की कैद से भागकर नत्थू के द्वारा प्रदेश के समाज कल्याण मंत्री श्रीराम शास्त्री के घर पहुँचती है। वहाँ उसकी पत्नी के द्वारा उसे प्रताड़ना मिलती है। लेकिन श्रीराम शास्त्री का मन अल्मा के प्रति झुक जाता है। धीरज जो मंसाराम की दीदी का बेटा अल्मा से मन ही मन प्यार करता था, फिर भी वह राणा–अल्मा के प्यार के बारे में जानने के बाद उन दोनों को मिलाने के लिए कई तरह से कोशिश करता है। मगर अल्मा अपने आपको श्रीराम शास्त्री को समर्पित कर देती है।

जब श्रीराम शास्त्री को गोली लगने से उसकी मौत हो जाती है तब वह बहुत दुःखित हो जाती है। दाह संस्कार का इंतजाम किया जाता है। वहाँ सामाजिक नियम–कानूनों और रीति–रिवाजों अनुसार सबके समक्ष अल्मा शास्त्री को कपूर लगा हुआ अग्निमुख देती है। पंडित और वहाँ के इकट्ठे हुए लोग अंचभित हो जाते हैं और कहने लगते हैं कि पवित्र वैदिक

क्रिया का ध्वंस हुआ है। दूसरे दिन के राष्ट्रीय और स्थानीय समाचार पत्रों में दो बातें खबर के रूप में छपती हैं। उनमें से एक थी कि प्रदेश के कल्याण मंत्री श्रीराम शास्त्री का अंतिम संस्कार ओरछा नगर के कंचन घाट पर संपन्न हुआ तो मुखाग्नि अपनी पत्नी अल्मा ने दी।

दूसरी सूचना थी कि, सत्तारूढ़ पार्टी की ओर से यह श्रीराम शास्त्री के निधन के कारण बबीन विधान सभा की जो सीट खाली हुई, उसके लिए प्रत्याशी श्रीमती अल्मा शास्त्री होंगी यहाँ उपन्यास का अंत हो जाता है।

अगनपाखी :

मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'अगनपाखी' नया नहीं है, बल्कि यह लेखिका के द्वारा 1990 में लिखा गया 'स्मृतिदंश' है। लेखिका नायिका के द्वारा जो कहना चाहती थी इसमें दिखाई नहीं दिया और उन्हें संतुष्टि नहीं हुई। वे कहती हैं कि ''मुझे 'स्मृति दंश' के पुनःपाठ ने लगभग झकझोर डाला और यहाँ तक आ गई कि– यह तो वह है ही नहीं, जो मैं कहना चाहती थी। मेरे विचार को बल दिया इसी रचना की नायिका भुवन ने। परेशान कर डालने की सीमा तक उसने मेरा पीछा किया। जिद भी बड़ी अटपटी कि उसे इस रूप में नहीं होना था। ऊपर से असहाय होने के कारण विनम्र दिखनेवाली स्त्री भीतर से किस ताकत का सपना देखती है, लेखिका यह क्यों नहीं समझी? उसके साथ न्याय नहीं हुआ।''[109]ग्यारह साल बाद वह फिर से लिखती हैं। नब्बे में प्रकाषित उपन्यास पुनः 2001 में प्रकाषित होता है। लेखिका ने उसको नया रूप दिया। भुवन को नए तेवर दिए। इस संदर्भ में मैत्रेयी जी स्पष्ट करती है कि ''उसी वक्त मैने जो यह 'विराट की पद्मिनी' है, को दुबारा पढ़ा था। तब मेरे दिमाग में आया कि 'विराट की पद्मिनी' इतिहास में अपनी तरह से लिखा गया है। लेकिन मैं जो हूँ, दूसरे समय में हूँ। यह वह समय नहीं है। जब हम ऐतिहासिक होकर भी रह जाएँ। तो मैंने कहा, समाज में इसे लाना चाहिए। तो 'विराट की पद्मिनी' बेतवा में कूदती है कि इज्जत चली जाएगी, वही मेरी नायिका नहीं कूदती है। वह ढोंग जरूर करती है कि मैं सती हो जाऊँगी, लेकिन पुजारी जो है, आजकल से फरक पुजारी है।''[110] यह उपन्यास वाणी प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ था।

'अगन पाखी' उपन्यास की नायिका भुवन मोहनी और उसके मौसेरे भाई (मौसी और भाँजे का रिश्ता) चन्दर की कहानी है। विराट के ठाकुर अमान सिंह की दूसरी बेटी भुवन

अपने बहन का बेटा चंदर है के साथ खेलती, कूदती रहती है। सामाजिक कायदे–नियमों को खातर नहीं करते हुए दोनों बचपन से ही प्रेम रखते हैं, जिसे समाज और परिवारजन भी स्वीकारते हैं। चन्दर के पिता भुवन के लिए एक संपन्न सामंती परिवार के छोटे बेटे कुँवर विजय सिंह से शादी कराते हैं।

भुवन को लोगों के द्वारा और अपने स्वयं के अनुभव में आता है कि उसका पति 'कुँवर विजय सिंह' मानसिक अस्वस्थ और नपुंसक व्यक्ति है। उसका उपचार किसी तांत्रिक द्वारा किया जा रहा है। मायके लौटती तो भुवन ससुराल जाना नहीं चाहती है लेकिन उसका माँ उसे जिद कर के ससुराल भेज देती है। भुवन बचपन से तेज, निडर, साहसी होने के कारण ससुराल में सास–जेठ के षड़यंत्रों को भी जल्द ही पहचानी और अपनी दृढ़ता का परिचय दिया। पागल पति को सुधारने के लिए पागलखाने उसे में भर्ती करवा देती है।

अचानक खबर मिलती है कि छोटे कुंवर विजय सिंह का पागलखाने में देहांत हो गया। भुवन मानसिक द्वन्द्व में पड़कर स्तब्ध स्थिति में पति की लाश की प्रतीक्षा करती है। जिठानी अंदर ले जाती और बाहर आकर भुवन सती होने की घोषणा करती है। तो भुवन उनके षड़यंत्र को समझकर कराह उठती है। अंतिम इच्छा देव दर्शन के लिए माँगकर देवी मंदिर में प्रस्थान करती है। वहाँ वृद्ध पुजारी भुवन को गुप्त द्वार से निकालकर बेतवा किनारे चन्दर के हवाले कर देता है। भुवन अपनी चप्पल और ओढ़नी नदी के किनारे छोड़कर, जल–समाधि का भ्रम फैलाकर चन्दर के साथ भाग जाती है। जेठ बड़े कुँवर प्रचार कर देता है कि भुवन जल–समाधि लेकर सती हो गयी, और विराट परंपरा निभा गयी। सती होना था सती हुई।

अनंत विनय ने कहा है कि ''इस उपन्यास में चंदर और मौसी भुवन के प्रेम–प्रसंग और शारीरिक–संबंध बनाने पर निश्चय ही साहित्य के नैतिकता वादियों को घनघोर आपत्ति होगी परंतु उन्हें मैं यह याद दिलाना चाहता हूँ ''जिस परिवेश और परिस्थिति में चंदर और भुवन पल बढ़कर उम्र के ऐसे दौर में पहुँचे थे उसमें यह सब होना स्वाभाविक नहीं तो असंभव भी नहीं है।''[111] अगन पाखी में उन्होंने जिस तरह से भुवन के चरित्र का चित्रण किया है तथा बेतवा नदी के आसपास के गांवों तथा वहां के जमींदारों को अपने हितों के लिए धर्म का इस्तेमाल करते हुए दिखाया है, उसके आधार पर इस उपन्यास को सिर्फ स्त्री–विमर्श का उपन्यास न कहकर समाज विमर्श का उपन्यास कहना ज्यादा उचित होगा। डॉ. नामवर सिंह

ने तो इस उपन्यास को एक साथ स्त्री–विमर्श व सती–विमर्श का उपन्यास कहा है। उन्होंने इस उपन्यास में संपत्ति और सती विमर्श के रेखांकित की प्रशंसा की। नामवर जीने कहा, ''सुबह सवेरे में कि वृन्दवन लाल वर्मा की नायिका इतिहास में रही और मैत्रेयी उसे समाज में खींच लाई।''[112]

विज़न :

'विज़न' उपन्यास मैत्रेयी पुष्पा का विज्ञान और मानवीय भावना की खोजने और खोलने का एक साहसिक प्रयोग है। यह उपन्यास सन् 2002 में वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ था। हर नई रचना में मैत्रेयी पुष्पा किसी न किसी गूँगे यथार्थ को वाणी प्रदान करती हैं। प्रायः जिस क्षेत्र से वह कथावस्तु एकत्र करती रही हैं, 'विज़न' उससे अलग है। कुपढ़ लोगों की लोभ लीला का हिस्सा बन गई डॉ. नेहा और उसकी छटपटाहट पूरे उपन्यास को संचालित करती है। मैत्रेयी पुष्पा की चिरपरित बोलती–बतियाती, सवाल–जवाब करती जीवंत शैली जीवन की गूढ सच्चाइयों और अनदेखे कोने–अंतरों को जिस सादगी और सहजता से पूर्ववर्ती उपन्यासों में उठाती रही, उसी की बानगी पूरे वैभव के साथ मौजूद है।

उपन्यास में 'शरण आई हॉस्पटल' के बहाने नीजी चिकित्सा संस्थाओं पर अपना शिकंजा गहराते धांधुली, अराजकता और अमानुषिकता के अंडरवर्ल्ड को बेनकाब करती हैं। चिकित्सा संस्थाएं जिनकी बुनियाद में होती 'हिपोक्रेट ओथ' लेकिन इंसान के लोभ और पैसे की हवस ने जिसे पाताल तक इस कदर खोखला कर दिया है कि रोगी व्यक्ति नहीं वस्तु और रोग चुनौती नहीं व्यवसाय बन जाता है। बाजार के दबाव उपभोक्तावादी संस्कृति, कला किसी भी कला की तरह आज के बाजार की जरूरत है। मैत्रेयी पुष्पा ने यह उपन्यास लिखकर पाठक वर्ग को ही नहीं बल्कि आलोचकों को भी चकित कर दिया है। उन्हें गँवार लेखिका कहनेवालों को मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास के द्वारा करारा जवाब दिया है। वे एक सफल समकालीन लेखिका के रूप में यह साबित किया हैं कि चाहे परिवेश गाँव का हो या महानगरीय, वर्तमान स्थिति–गतियों की नस पकड़ना ही उनका प्रमुख उद्देश्य है।

उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने दिल्ली महानगर में स्थित वैधकीय क्षेत्र में होनेवाली विद्रूपताओं और कुरुपताओं को पाठकों के सामने उघाड़कर रख दिया है। इस क्षेत्र में व्याप्त घृणित शिक्षा व्यवस्था तथा नियुक्तियों में की जानेवाली गन्दी राजनीति भी खुलकर बता दिया।

इस व्यवस्था का शिकार इस क्षेत्र का नव युवा वर्ग है जो उच्च शिक्षा ग्रहण करके भी, इस क्षेत्र में चलनेवाली आपसी ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा तथा आपसी दुश्मनी का शिकार है। यह वास्तविकता नेहा और आभा के जीवन से हम पढ़ सकते हैं। दोनों उच्च शिक्षित नेत्र चिकित्सकायें होते हुए भी वे दमन, परंपरागत चक्रव्यूह जैसे संस्कृति, संस्कार के कारण इन समस्त स्थितियों की शिकार होकर भी अपने ढंग विद्रोह करते हुए दिखाई देती हैं।

डॉ. सबिता सिंह इस उपन्यास के बारे में लिखती हैं कि–''इस उपन्यास की विशेषता है कि मूक संवाद की व्यवस्था कर लेखिका सीधी चोट समाज पर करने से बच गयी है। शायदनारी का सच बोलना पाठक को चुभन का प्रतीति प्रदान करता इसलिए अप्रत्यक्ष संवाद योजना के रूप में लेखिका ने एक नयी शैली का प्रयोग भी किया है कहीं–कहीं।''[113]

'विज़न' को मैत्रेयी पुष्पा ने आउटसाइडर की भाँति नहीं लिखा है। नेत्र चिकित्सा की तकनीकि व विशिष्ट शब्दावली का सहज प्रयोग और तमाम प्रविधियों का प्रभावी विवरण सिद्ध करता है कि मैत्रेयी पुष्पा लेखन को 'आह से 'उपजा होगा गान' नहीं मानती है। विधिवत् अनुसंधान कर वह अपनी रचनाएँ तैयार करती हैं। कुछ–कुछ संजीव और महाश्वेता देवी की तरह। 'विज़न' मैत्रेयी पुष्पा की उपन्यास कला के कुछ विलक्षण साक्ष्य उपस्थित हैं। डॉ. आभा के साथ फौजी की आँख का ऑपरेशन वाला प्रसंग की वर्णन कला और संवेदना की दृष्टि से अद्‌भुत है। ऑपरेशन जैसे एक साधना, एक अनुष्ठान है। मैत्रेयी पुष्पा ने इसे शल्य अनुष्ठान कहा भी है। कुल मिलाकर जीवन–दृष्टि का प्रश्न उठता है। इस उपन्यस के माध्यम से लेखिका ने विज्ञान और तकनीकि युग की सार्थकता पर प्रश्न उठाती हैं। कंप्यूटर जैसे तकनीकि से जो चिकित्साएँ किया जाते हैं, वह कहां तक सफल हो पाती है। उस पर हमें कितना निर्भर होना पड़ेगा।

डॉ. रामप्रसाद शरण अपने अस्पताल के विकास के लिए विभिन्न हथियारों, लालसाओं की पूर्ती के लिए अनेक प्रकार से पैसे देकर अपने अयोग्य बेटे को नेत्र चिकित्सक बनाने के लिए उच्च चिकित्सकीय प्रमाण पत्र दिलाता है।

नेहा एक प्रतिभाशाली नेत्र सर्जन के रूप में नाम कमाने के सपनों को लेकर डॉ. आर. पी. शरण के खानदान की बहू बनकर आती है। लेकिन वह उनके परिवार और अस्पताल के लिए एक मुहर जैसा उपयोग हो पा रही है। उस अस्पताल में आपरेशन डॉ. आर.पी. शरण के

अगुवाई में होते हैं। उनकी अनुपस्थिति में डॉ अजय ही वहाँ सर्जक होता है। चाहे वह आपेरेशन करना जानता हो या नहीं। लेकिन कुशल डॉक्टर नेहा को प्रवेश करने नहीं देते। अजय अपनी पत्नी को चाहते हुए भी अपने पिता के कारण पत्नी का साथ नहीं दे पाता है। इसी बीच में एक बेटे को जन्म देती है। तो नेहा उससे बंध जाती है। ससुराल और मायके में परिवार और प्रोफेशन के सवालों का सामना करती हुई संदिग्ध में पड़ी रहती है। द्वन्द्व में पड़कर आभा दी से सवाल करती है और उनके द्वारा कहीं गयी स्त्री शक्ति की चेतना, संजीवनी की बातें सुनकर आगे बढ़ती है। एक मरीज का पुनः आपरेशन करने केलिए उसके पति और पापा तैयार हो जाते हैं। उनकी लापरवाही के कारण उस मरीज की मृत्यु हो जाती है। जिससे अस्पताल का नाम अखबारों एवं मीडिया के सुर्खियों में आ जाता है। डॉ. नेहा इस घटना से विचलित हो जाती है। और अपने आपमें बुदबुदाने लगती है।यह सुनकर नर्स डॉ. अजय के पास जाती है और कहती है, 'सर, डॉ. नेहा को कुछ हो गया, डॉ. नेहा.... शी इज सिक।' यही इस उपन्यास का अंत होता है। लेखिका इस उपन्यास के माध्यम से जीवन दृष्टि का प्रश्न उठाती है। 'विजन' स्त्री–शक्ति के नये डाइमेंशन्स (आयाम) खोजने और खोलने का एक साहसिक प्रयोग है।

कस्तूरी कुन्डल बसै :

'कस्तूरी कुन्डल बसै' एक आत्मकथात्मक उपन्यास है, जिसमें अपने ही यानी खुद मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा है। यह आत्मकथात्मक उपन्यास राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा सन् 2002 में प्रकाशित हुआ। कहना न होगा कि 'कस्तूरी कुन्डल बसै' की लेखिका मैत्रेयी पुष्पा ने स्त्री के उस 'सबाल्टर्न' निम्नवर्गीय पक्ष को वाणी दी है, जिसकी सहभोक्ता वे स्वयं रही हैं। कांति कुमार जैन ने मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा को लेकर इस प्रकार अचंभित हो रहे हैं कि ''आज से शताब्दियों पहले जब कबीरदास ने यह दोहा लिखा था कि

कस्तूरी कुन्डल बसै, मृग ढूँढे बन माँहि।
जैसे घटि घटि राम हैं, दुनिया देखे नाँहि।

तो उन्होंने कल्पना भी नहीं की होगी कि इक्कीसवीं शताब्दी की कोई आत्मकथा लेखिका नितांत आध्यात्मिक अर्थ देनेवाले दोहे की कोई मानो भौतिक व्याख्या भी करेगी और उसके सामाजिक–मनौवैज्ञानिक निहितार्थों के तानों–बानों से एक औपन्यासिक आत्मकथा या

आत्मकथात्मक उपन्यास लिखकर अपने जीवन, अपने दुस्साहस और अपने आत्मस्वीकार से अपने समय, समाज और साहित्य के रोते हुए जल में भँवरें उठा देगी। लड़की यादवों की होती, जाटों की होती तो भी कोई बात थी। ब्राह्मण परिवार के उपाध्याय गोत्र की सनाढ्य लड़की, वह भी खिल्ली–सिकुर्रा जैसे पिछड़े क्षेत्र में पली–पढ़ी, वह ऐसी हिम्मत करेगी– सोचा भी नहीं जा सकता।''[114]

कांति कुमार जैन कहते हैं कि ''इस आत्मकथा का नाम ही कबीर से उधार लिया, इसके अध्यायों के नाम भी उसने कबीर से उधार लिए हैं। मैत्रेयी पुष्पा इस आत्मकथा में भगवानदास माहौर, प्रो. दरबारी जैसे अपने अनेक गुरूओं का स्मरण करती हैं; पर जो गुरू गोविन्द की तरह उनके तन–मन–प्राण और लेखनी पर कबीर छाया हुआ है। अपनी पूरी अखंडता और फक्कड़ता के साथ। इस आत्मकथात्मक उपन्यास में लेखिका किसी की परवाह नहीं करती, न लोक की, न वेद की, न गुरू की, न शास्त्र की। यदि मैत्रेयी की आत्मकथा का डी.एन.ए. टेस्ट करवाया जाए तो मुझे पूरा विश्वास है कि उसमें कबीर के गुणसूत्र निकलेंगे।''[115]

मैत्रेयी पुष्पा अपने होने के अर्थ को अपनी माँ कस्तूरी देवी के होने में तलाशती हैं, इसलिए यह जितनी आत्मकथा है, उससे अधिक माँ की जीवन–कथा है। यह अजब विरोधाभास है कि दोनों पक्षों का निर्धारण पुरूष वर्चस्ववाद की प्रतिक्रिया का ही परिणाम है, फिर भी दोनों एक–दूसरे के आमने–सामने हैं। इस प्रक्रिया में मैत्रेयी की माँ को भी खोलती है और स्वयं को भी।मैत्रेयी पुष्पा इस आत्मकथात्मक उपन्यास की भूमिका में कहती हैं कि ''यही है हमारी कहानी। मेरी और मेरी माँ की कहानी। आपसी प्रेम, घृणा, लगाव और दुराव की अनुभूतियों से रची कथा में बहुत सी बातें ऐसी हैं, जो मेरे जन्म के पहले ही घटित हो चुकी थीं। मगर उन बातों को टुकड़ों–टुकड़ों में माता जी ने जब–तब बता डाला, जब–जब उन्हें अपनी बेटी को स्त्री–जीवन के बारे में नए सिरे समझाना पड़ा।''[116]इस आत्मकथा में माँ और बेटी के अंतर्द्वन्द्व व टकराहट के कई आयाम हैं, यह टकराहट एक विधवा स्त्री और कुंआरी युवती के भिन्न स्त्री–परिप्रेक्ष्य की भी है।

'कस्तूरी कुन्डैल बसै' वृत्तांत को वीरेन्द्र यादव ने कहा था कि ''दरअसल 'कस्तूरी कुन्डल बसै' मैत्रेयी पुष्पा का जीवन वृत्तांत मात्र न होकर एक ऐसा साहित्यिक दस्तावेज है, जिससे

एक गँवई लड़की के एक महत्वपूर्ण लेखिका के रूप में व्यक्तित्वांतरण के 'फेनामिना' को समझा जा सकता है। स्वीकार करना होगा कि मैत्रेयी लेखकीय व्यक्तित्व के निर्माण में उनके वंचित बचपन व अनुभवों से भरी–पूरी असुरक्षित किशोरावस्था की वह विपुल संपदा रही है, जो किसी भी लेखक के लिए इर्ष्या का विषय हो सकती है।''[117]

कहानी की शुरूआत ही मैत्रेयी पुष्पा की माँ कस्तूरी की युवा अवस्था में शादी की इंकार से होती है। कस्तूरी को इस बात का पता चलता है कि वह बूढ़ा और बीमार भी है इसलिए कस्तूरी विवाह करने का विरोध करती है। तो वह यह अवश्य जानती है कि उसे अपने खुद को सती होना पड़ेगा। इस संदर्भ डरते हुए कहती हैं कि ''मुझमें सती होने की हिम्मत नहीं है। मुझे मरने से डर लगता है।''[118] ससुराल जाने के बाद कस्तूरी मायके से नाता तोड़ डालती है और संसारिक लालसाओं से दूर हो जाती है। कस्तूरी देवी एक बेटी को जन्म देती है। उसे सब लोग पुष्पा कहते थे। पति पियक्कड़ होकर जल्दी ही मृत्यु प्राप्त करता है। कस्तूरी अपनी बेटी के साथ जीवन बिताती रहती है। बहुत पढ़ना चाहती थी। इतने कठिनाइयों का सामना करते हुए भी अपनी बेटी को एक श्रेष्ट मार्ग पर चलाना चाहती है। यह सिखाना चाहती है कि लड़कियों को जीवन के युद्ध में जीत ना हो थी शिक्षित होना अनिवार्य है।

दोनों ने सामाजिक रूढ़ियों और बंधनों से छुटकारा, मुक्ति चाहते हुए भी एक दूसरे के विरोधी दृष्टिकोण में पनपते हैं। कस्तूरी अपनी बेटी से कहीं अधिक आधुनिक, यथार्थता व सामाजिक रूढ़ियों को धिक्कारने में यानी कि क्रांतिकारी भावों के साथ हमारे सामने आती हैं। बेटी को पढ़ाकर समाज केलिए तैयार करना चहती है। लेकिन वह माँ के सामने विवाह का प्रस्ताव रखती है। माँ शादी करने से इनकार करती है। लेकिन वह उसकी माँ तरह सफेद साड़ी में, बिना कुछ अलंकार के, गंभीर चेहरा बनाकर पुरूषों से नफरत करते हुए जीना नहीं चाहती है। जितना जल्दी हो उतनी जल्दी माँ से अलग होकर विवाहिता होकर स्वच्छंद सुखमय और भद्र व सामाजिक जीवन जीना चाहती है। शादी के बाद माँ को कही हुई सारी बातें सच्ची लगने लगती है।

'कस्तूरी कुन्डल बसै' में मैत्रेयी पुष्पा यह समझाना चाहती है। कि स्त्री के दुःखमयी जीवन का कारण सिर्फ समाज, रीति–रिवाज, राजनीति आदि कोई नहीं। बल्कि स्त्री खुद अपने जीवन

को दुःखमय बना लेती है। स्त्री के लिए पढ़ाई–कमाई किसी भी काल में नकारा नहीं जा सकता है। स्त्री जीवन के ऐसे ही गहरे और अंधेरे कोणों को लेखिका ने बाहर लाने का प्रयास किया है।

कही ईशुरी फाग :

'कही ईशुरी फाग' उपन्यास मैत्रेयी पुष्पा जी ने लोककवि ईशुरी को लेकर लिखा है। 2004 ई. में राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली' से प्रकाशित उपन्यास है। ईशुरी के माध्यम से एक कवि के जीवन के कई कोणों को उद्घाटित करने का प्रयास किया है।

''शास्त्रीय भाषा में ईशुरी शुद्ध 'लम्पट' कवि है। उसकी अधिकांश फांगें एक पुरूष द्वारा स्त्री को दिए शारीरिक आमंत्रणों का उत्सवीकरण है। जिनमें श्रृंगार कान की कोई मर्यादा नहीं है।''[119] बुन्देलखंड में ईशुरी की फागें वहाँ की संस्कृति के नियामक तत्व हैं। खासकर लोक संस्कृति के। ईशुरी की फागों की बुन्देलखंड में क्या अहमियत है, इसका पता वहाँ प्रचलित इस लोकोक्ति से चलता है–'रामायण तुलसी कही सूरदास ज्यों राग, ऐसे ही कलिकालि में 'कही ईशुरी फाग'।

रजऊ ईशुरी के फागों की संबोधिता है। यह गौरतलब है कि रजऊ संबोधिता होते हुए भी अस्तित्वहीन है यानी काल्पनिक है। ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता कि रजऊ नाम की किसी स्त्री का दूसरी के जीवन में कोई अस्तित्व था। लेकिन अस्तित्वहीन होते हुए भी ईशुरी की फागों के साथ वह अनिवार्य रूप से जुड़ी हैं। मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'कही ईशुरी फाग' इसी काल्पनिक रजऊ और वास्तविक ईशुरी के प्रेम का बयान है। लेकिन ये सिर्फ प्रेमाख्यान नहीं है। लेखिका ने इस प्रेमगाथा को वीरगाथा भी बना दिया है। यह वरीगाथा ईशुरी की नहीं, रजऊ की वीरगाथा। रजऊ इस उपन्यास में महज ईशुरी की प्रेमिका या संबोधिता बनकर नहीं रह जाती, बल्कि 1857 अंग्रेजों के विरूद्ध चले प्रथम स्वंत्रता संग्राम की सेनानी भी बनती है। वह झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई और उनके समकालीन देशपात दीवान का अलग–अलग साथ देती है। यथार्थ में नहीं, क्योंकि यथार्थ में तो रजऊ था ही नहीं। रजऊ का यह सेनानी रूप भी कल्पित है, जिस तरह उसका प्रेमिका रूप कल्पित है। लेखिका इस उपन्यास में यह कहना चाहती है कि रजऊ प्रेम दिवानी ही नहीं बल्कि प्रेम व्यक्तित्व को बदलता है, उसे सक्रिय बनाता है। साथ ही ईशुरी की तरह तोड़ता भी है। फागों की सार्थकता रजऊ से है, सफलता

ईशुरी ने जरूर पाई। इसमें स्त्री संघर्ष की गाथा भी, जो विपरीत परिस्थितियों में संघर्ष करते हैं। ये स्त्रियाँ या तो समाज में परिवार की सताई है या प्रेम की मारी है। यह उपन्यास एक शोध छात्रा के ऐंगल से लिखा गया है।

ऋतु अपने प्रेमी माधव के साथ अपनी पी. एच. डी. के विषय के आधार पर ईशुरी और रजऊ की कहानी से संबंधित फागों और जीवन चरित्र को ढूँढने निकलती है तो बुन्देलखंड प्रांतों में एक गाँव में उनका परिचय सरस्वती देवी नामक महिला से होती है जो बुन्देलखंड में घूम–घूमकर फाग मंडली बनाकर फागों को सांस्कृतिक रूप देना चाहती है। वहाँ शोध संबंधित समाचार कुछ मिलता मगर अधूरी है क्योंकि शहरी लोग आकर फाग मंडली को खरीदकर ले जाते हैं। ऋतु जो अपने पी–एच.डी. विषय के हेतु जो संशोधन कर सामग्री बटोरती है परिश्रम के साथ, फिर भी उसे पी–एच.डी. की डिग्री हासिल नहीं हो सकी। क्योंकि रिसर्च गाइड प्राध्यापक प्रवर पी.के. पांण्डेय की दृष्टि में ऋतु ने ईशुरी पर जो कुछ लिखा, वह न शास्त्र सम्मत था, न शोध–अनुसंधान की जरूरतें पूरी करता था। वह शुद्ध बकवास था क्योंकि वह 'लोक' था।

'लोक' में कोई एक गाइड नहीं होता। लोक उस बीहड जंगल की तरह होता है जहाँ अनेक गाइड होते हैं– जो जहाँ तक का रास्ता बता दे वही गाइड बन जाता है– कभी–कभी तो कोई विशेष पेड़, कुआ या खंडहर ही गाइड का रूप ले लेते हैं। ऋतु भी ईशुरी–रजऊ की प्रेम कथा के ऐसे ही बीहडों के सम्मोहन की शिकार है। बड़ा खतरनाक होता है जंगलों, पहाड़ों और समुद्र का आदिम सम्मोहन... हम बार–बार उधर भागते हैं किसी अज्ञात के 'दर्शन' के लिए 'कही ईशुरी फाग' भी ऋतु के ऐसे ही भटकावें की दुस्साहसिक कहानी है।
उपन्यास के संदर्भ में विजय बहादुर सिंह अपने विचार प्रस्तुत करते हैं कि ''अतिशयोक्ति न माना जाए तो ईशुरी के बगैर अगर बुन्देलखंड की पहचान संभव नहीं है और रजऊ के बगैर ईशुरी की, तो इन तीनों की ठीक–ठीक पहचान के लिए मैत्रेयी का लेखन अपरिहार्य है''[120]

ईशुरी और रजऊ की मूल प्रेम कहानी इस प्रकार चलती है– कि माधोपुर युवक प्रताप छतरपुर में काम करता था और उसकी पत्नी अपनी बूढ़ी सास के साथ रहती है। बसंत ऋतु में फगवारे जो फागों को गाते हैं माधोपुर अपने मंडली के साथ पहुँचते हैं। उसमें ईशुरी और धीरे पंडा फागे गाने आते हैं। ईशुरी मंडली की फागे प्रेम व यौवन को समर्पित थी। ऐसे एक

दिन रज्जो ईशुरी से परिचित होती तो वह रज्जो के लिए दीवानी बन जाता और उनके फागों में रज्जो को रजऊ नाम देकर अपनी फागें उसे समर्पित कर देता था। हर एक फाग में रजऊ के अंग–पत्यंग का रसपूर्ण वर्णन था। जो भी सुनता अचंभित हो जाते रहते तो बात रज्जो और उसकी सास तक पहुँचती है। तो पति के प्यार से वंचित रज्जो ईशुरी के फागें सुनकर मुग्ध हो उठती तो वहीं बूढ़ी सास का कलेजा हिल उठता है। रज्जो ईशुरी को देखने के लिए तरसती और ईशुरी भी रज्जो को ढूढता रहता है। इसके चलते सामाजिक नियम, कानून को पालन नहीं कर पाते तो दोनों गाँव में बदनाम हो जाते हैं। सास ईशुरी को कड़क से कहती कि रज्जो के नाम न लेकर फागे गाने को कहा तो रज्जो को दुःख सामाजिक निन्दाओं को देखकर ईशुरी मधोपुर छोड़कर चला जाता है। रज्जो के पति प्रताप भी ये सब बदनाम सुनकर पत्नी को प्रताड़ित करते हैं। और पत्नी को बेवफादारी समझकर वह गुस्से से उसे छोड़ अंग्रेजों की सेना में भर्ती हो जाता है।

उधर रजऊ के यादों में ईशुरी रातदिन तड़पते रहते और रज्जो से संबंधित फागे गाया करता था। उस समय संपूर्ण भारत में क्रांतिकारियों ने अपने–अपने दल बनाकर योजना तैयार कर चल रहे थे। ऐसे ही एक दल, जिसके मुखिया देशपत थे तो उनकी गुप्तचर गंगिया बेडनी थी जो ईशुरी की फागों से प्रेरित व उनकी प्रसंशक व हमदर्द थी, एक दिन माधोपुर जाकर ईशुरी के प्रेम तड़पती रज्जो का अपने संग भगाकर ले आती है और फगवरे से मिलवाने का वचन देती है किन्तु परिस्थितिवश वह उसे भी देशपत के दल में शामिल कर देश भक्ति की ओर उन्मुख करती है। ईशुरी एक दिन मुसाहिब जो हवेली के मालिक के यहाँ फाग गा रहे थे तो मुसाहिब मालिक की बेटी रज्जू राजा सुनती और फागों में रज्जू नाम अपना समझकर ईशुरी से तहे दिल प्यार करने लगती है। तो ईशुरी उसकी प्रेम को तिरस्कार न कर पाते थे। कुछ दिन उसकी ओर भी मोहित होते थे। लेकिन जब यह प्रेम मुसाहिबजी को पता चला तो वे ईशुरी को सजा देने का निर्णय करके उनपर चोरी का इल्जाम लगाकर पेड़ से लटकाकर कोड़े दिलवाते हैं। और बेटी के बदनाम के वास्ते उन्हें एक कोठरी में बन्द करवाते हैं। रज्जूराजा उनके कारण अनेक यातनाएँ और लोगों से शोषण सहती रहती है और एक दिन ईशुरी के संग भाग जाती। कुछ समझे कि वह मर गई है लेकिन वास्तव में रज्जू राजा का पता किसी को नहीं पता चला था।

रज्जो यहाँ देशप्रेम के खातिर अपना प्रेम विस्तार करके राष्ट्र प्रेम बनालेती। वह गंगिया के साथ फागे गाते हुए अंग्रेजों की षड़यंत्रकारी योजनाओं का पता लगाती है। उसमें रहते समय रज्जो आदित्य राजकुमार से परिचय होता तो दोनों के भावनाओं के कारण अपनत्व में आते हैं लेकिन कुछ के बाद रज्जो दल अनियमितताओं और आपसी फूट को देखकर आदित्य के संग दल से अलग हो जाती है और रानी लक्ष्मीबाई की शरण में चली जाती है, जहाँ युद्ध के समय अलकारीबाई के बाद स्वयं रानी लक्ष्मीबाई का रूप घर अंग्रेजों को काफी समय तक भ्रमित कर रानी को अपनी मंजिल तक पहुँचने तक पर्याप्त समय प्रदान करती है। अंततः वह युद्ध करते–करते युद्ध भूमि में ही शहीद हो जाती है।

जब ईशुरी को रज्जो की मृत्यु की समाचार सुनकर यकीन नहीं कर पाते लेकिन धीरे–धीरे वास्तविकता जानकर पागल होते दिखाई देते थे और पागलपन के कारण रज्जो के बारे में कुछ न कुछ कहते रहते हैं। उनकी हालत बिगड़ती चली जाती तो धीरे पंडा और उनकी हमदर्द आबादी बेगम हर वक्त चिंतित रहते हैं। तो ईशुरी पहले से ही शादी–शुदा थे। अंत में वे अपने जीवन की संपूर्ण कमाई अपनी बेटी गुरन को भेज निर्गुण ब्रह्मा की ओर अग्रसर होता और सन्यास धारण कर लेते हैं। उनके प्रेम का ऐसा अंत देख धीरे तड़प उठते हैं। और यही ईशुरी और रजऊ की कहानी का अंत हो जाता है।

मैत्रेयी पुष्पा इस उपन्यास में केवल उन फागों से ही कहानी निकाल दी है जो ईशुरी ने लिखा। वे ईशुरी के लिए कोई कल्पना न कर रजऊ के लिए कल्पना कर उपन्यास पूरा किया है। स्त्री के संदर्भ में जो फागे आई उन्हीं को ही लेकर बताना चाहती है कि ईशुरी कवि और उसकी प्रेमिका रजऊ दोनों बदनाम है न कि केवल स्त्री। इसको दिखाना चाहती है हिम्मत के साथ।

गुड़िया भीतर गुड़िया :

'गुड़िया भीतर गुड़िया' मैत्रेयी पुष्पा की आत्मा कथा का दूसरा भाग है। 'कस्तूरी कुन्डल बसै' आत्मकथा पहला भाग है। 'गुड़िया भीतर गुड़िया' राजकमल प्रकाशन से नई दिल्ली 2008 में प्रकाशित हुई है। 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी विवाहोत्तरी 'व्यथा–कथा' कहने की कोशिश की है। इसके माध्यम से यह भी चेष्टा की है कि अपने वैवाहिक जीवन की विडंबनाओं के साथ एक लेखिका के रूप में अपनी रचना प्रक्रिया तथा साहित्यक संघर्ष को भी

पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर सकें। कुल मिलाकर 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में मैत्रेयी जी ने अपनी जवानी, वैवाहिक जीवन और लेखक बनने की कथा लिखी हैं। स्त्री के बारे में सर्वविदित है कि वह जैविक होने से अधिक सांस्कृतिक इकाई हैं जिस रूप में सीमोन द बोउअर समाज से बनाइ गइ सांस्कृतिक इकाई न होकर उन्होंने खुद को वैसा बनाया था, जिस रूप में हमने उनहें पाया है मैत्रेयी भी एक ऐसी ही स्त्री है, जिन्हें समाज ने जितना बनाया, उससे अधिक उन्होंने अपने आपको बनाया। 'गुड़िया भीतर गुड़िया'इसी बनने की रोमांचक कथा है।

मैत्रेयी के निन्दकों को उनकी रचनाओं में जिस चीज की तलाश रहती है वह लेखक की आत्मकथा दूसरे खंड में भरपूर मिलेगी। उन्होंने अपनी इस महत्वकांक्षी कृति में खुद को कुछ ज्यादा ही उडेल दिया है। इस संदर्भ में अनामिका कहती हैं–''मैत्रेयी पुष्पा सचमुच वह दरवाजा बन चुकी है जिसे जितना अधिक पीटा जाता है, वह उतना ही ज्यादा खुलता जाता है।''[121] 'आत्मकथा' का आरंभ मैत्रेयी पुष्पा वहाँ से करती है जब उन के पति डॉ. रमेशचंद्र शर्मा एक चिकित्सक है, जो सन् 1967 में 'अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान' में नौकरी मिलने पर अलीगढ़ से दिल्ली आ गए थे। तभी मैत्रेयी जी भी उनके साथ दिल्ली आ गई थीं और फिर दिल्ली में ही बाद में नोएडा में पति के साथ रहने लगी थी। कुछ अलग बनने या दिखने की चाह में वह एक लेखिका भी बन जाती है। 'आत्मचिंतन' इन्हीं पहलुओं को इसमें लिखा गया है। तीन लड़कियों को जन्म देने के कारण भी कई प्रकार की पितृसत्तात्मक विचारें के दंश का शिकार हेना पड़। बेटे की लालसा में पति द्वारा दूसरा कर लेने की धमकी भी दी गयी।'गुड़िया भीतर गुड़िया' में मैत्रेयी ने कई स्थलों पर आत्मव्यथा या 'आत्ममंथन' से उबरकर अपने परिवेश एवं देश–काल की कई समस्याओं के बारे में भी चिंतन किया है।

अपने समकालीन लेखकों–लेखिकाओं के विचार और व्यवहार के कुछ खट्टे–मीठे और कड़वे अनुभवों के बारे में भी उन्होंने पर्याप्त साफगोई से लिखा है। विकट परिस्थितियें में एक सज्जन संपादक ने उनकी कहानियां लगातार छापकर उन्हें उनकी रचनाशीलता के प्रति आश्वस्त किया। इसके बाद मुख्य्य प्रसंग है कि 'हंस' के संपादक राजेन्द्र यादव का है। उनका प्रारंभिक उपेक्षा के बाद मैत्रेयी पुष्पा के लेखन को विकसित करने में सहयोग दिया। बेशक राजेन्द्र यादव ने मैत्रेयी जी का भरपूर मार्गदर्शन किया क्योंकि यह तो हर संपादक का फर्ज है

कि वह नई प्रतिभाओं को खोजे और उनपर सान चढ़ाए। राजेन्द्र यादव ने मैत्रेयी जी से अपने संबंध को सख–सखी भाव की संज्ञा दी है ''रही बात मेरे और तुम्हारे संबंध की, बहुत सोचा अपने रिश्तो को क्या नाम दूँ? क्या हम आपस में ऐसे ही नहीं, जैसे कृष्ण और द्रौपदी रहे होंगे? बहुत आत्मीयता, बहुत भरोसा और सेक्स का लेशमात्र भी नहीं...।''[122] पर मैत्रेयी जी अपने रिश्ते के बारे में पति से कसम खाती है कि बंद कमरे में डॉ. साहब किसी चोट खाई हुई पत्नी की तरह पूछते हैं–''कसम खाती हो, उनसे तुम्हारा यही रिश्ता है? मैत्रेयी का मरदाना जवाब गोली की तरह दनदनाता है 'गंगाजली उठाऊँ और कोई विश्वास भी करे, ऐसे मुझे दरकार नहीं।''[123]

'गुड़िया भीतर गुड़िया' एक स्त्री के अनेक परतीय व्यक्तित्व और एक लेखिका की ऐसी ईमानदारी आत्म–स्वीकृतियाँ है जिनके साथ होना शायद हर पाठक की मजबूरी है। आत्मकथाएँ प्रायः बेईमानी की अभ्यास पुस्तिकाएँ लगती हैं क्योंकि कभी सच कहने की हिम्मत नहीं होती तो कभी सच सुनने की अक्सर लिहाज में कुछ बातें छोड़ दी जाती हैं तो उन्हें बचा–बचाकर प्रस्तुत किया जाता है। मैत्रेयी जी ने इसी तनी रस्सी पर अपने को साधते हुए कुछ सच कहे हैं– अक्सर लक्ष्मण रेखाओं को लाँघ जाने का खतरा भी उठाया है।

यहाँ सबसे दिलचस्प और नाटकीय संबंध हैं पति और लेखिका के बीच, जो पत्नी की सफलताओं पर गर्व और यश को लेकर उल्लासित है मगर संपर्कों को लेकर 'मालिक' की तरह सशांकित घर परिवार में रहकर भी लेखिका सारा लेखन किया है जिसे साहित्य में बोल्ड, साहसिक और आपत्तिजनक इत्यादि न जाने क्या–क्या कहा जाता है और हिन्दी की बदनाम मगर अनुपेक्षणीय लेखिका के रूप में स्थापित हैं।

गुनाह–बेगुनाह :

'गुनाह–बेगुनाह' उपन्यास 2011 में राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। उपन्यास में लेखिका की कल्पनाएँ और आकांक्षाएँ उन यातना भरे अत्याचारों के खिलाफ एक अपील है, जो समाज में आधी आबाधी को स्त्री–देह के रूप में छितराकर देखने के लिए प्रचलित है।

भारतीय समाज में ताकत का सबसे नजदीकी, सबसे देशी और सबसे नृशंस चेहरा–पुलिस। कोई हिन्दुस्तानी जब कानून कहता है था सरकार कहता है तब भी उसकी

आँखों के सामने कुछ खाकी सा ही रहता है। इसके बावजूद थाने की दीवारों के पीछे क्या होता है, हममें से ज्यादातर नहीं जानते। यह उपन्यास एक महिला पुलिसकर्मी की नजरों स इसी दीवार के उस तरफ की रहस्यमय दुनिया के कुछ दहशतनाक दृश्य दिखाता और सो भी। इला जो अपने स्त्री वजूद को अर्थ देने और समाज के लिए कुछ कर गुजरने का हौसला लेकर खाकी वर्दी पहनती है। वहाँ जाकर वह देखती है कि चालाक, कुटिल लेकिन डरपोक मर्दों की दुनिया से निकलकर ऐसे मर्दों की दुनिया में आ गई है जो और भी ज्यादा क्रूर, हिंसालोलुप और स्त्री भक्षक हैं। ऐसे मर्द जिनके पास वर्दी और बेल्ट की ताकत भी है, अपनी अधपढ़ मर्दाना एवं कुंठाओं को अंजाम देने की निरंकुश निर्लज्जता थी और सरकारी तंत्र की अबूझता से भयभीत समाज की नजरों से दूर, थाने की अँधेरी कोठरियों में मिलनेवाले रोज–रोज के मौके भी। डॉ. दयदीक्षित की दृष्टि में आधी आबादी की बेगुनाही उसका सबसे बड़ गुनाह है। इसके उल्ट जो गुनाहगार हैं, वे निर्द्वन्द्व होकर घूमते हैं। वे मुक्त हैं, उनके लिए सजा का कोई प्रवधान नहीं है, उन्होंने स्त्री की सक्षमता जो इस उपन्यास दिखाई देती है उसका बारे में कहती है–''उपन्यास स्त्री विमर्श से आगे की पायदान पर खड़ होकर आधी दुनिया को संगठित करने, उसे मजभूत वैश्विक भगिनीवाद/बहनापे के आत्मीय रिस्ते में बाँधता आवाज देता है कि अब पुरुषों के गरियाने का बेबसी पर रेने घुटने का नहीं, बल्कि पुरुष अन्याय के विरुद्ध लामबंद होकर मिलजूल कर उससे लेना का प्रतिरोधी कदम उठाने का समय है।''[124]

अपने बेलाग और बेचैन कहन में यह उपन्यास हमें बताता है कि मनुष्यता के खिलाफ सबसे वीभत्सदृश्य नहीं दूरयुद्धों के मोर्चों और परमाणु हमलों नहीं, यहीं हमारे घरों से कुछ ही दूर, सड़क के उस पार हमारे थानों में अंजाम दिए जाते हैं।

2.2.1.3 स्त्री विमर्श :

खुली–खिड़कियाँ :'खुली खिड़कियाँ' मैत्रेयी पुष्पा के द्वारा लिखा गया स्त्री–विमर्श से संबंधित प्रथम वैचारिक और आलोचनात्मक निबंध संग्रह है। यह निबंध संग्रह 'सामायिक प्रकाशन नई दिल्ली के द्वारा 2005 में प्रकाशित हुआ है। इस निबंध के जो लेख लेखिका ने लिखे हैं उसमें स्त्री से संबंधित जो विमर्श है वह हज़ारों सालों से फैला हुआ है। पुस्तक के प्रकाशन से

पितृसत्तात्मक व्यवस्था की जड़ें हिलने लगी हैं। संपूर्ण विषय वस्तु को लेखिका ने छः खंडों में विभाजित किया है क्रमशः (1) धर्म (2) संस्कृति (3) समाज (4) साहित्य (5) राजनीति (6) फिल्म और टेलीविजन। दलित और स्त्री के लिए इतिहास नहीं है क्योंकि दलित जहां ब्रह्मणवादी व्यवस्था के अधीन रहे हैं, तो स्त्री पुरूष की सामंतवादी सोच और अहंकार के अधीन रही है। इधर स्त्री–विमर्श की दिशा में जो सार्थक हस्तक्षेप हुआ है उसने स्त्री मुक्ति के लिए एक नई बहस की शुरूआत करते हुए अनेक वैचारिक खिड़कियों को खोला है। इस निबंध के लेखों में लेखिका ने स्त्री पीड़ा पर बड़ी बेबाकी से गहन चिंतन व्यक्त कीया है।
पितृसत्तात्मक समाज की उन काल कोठरियों में इन लेखों द्वारा झांकने का प्रयास किया गया है, जिनमें भारतीय नारी अपनी अस्मिता और अस्तित्व के लिए सतत् संघर्ष कर रही है। लेखिका स्त्री–शोषण का केन्द्र पितृसत्तात्मक व्यवस्था को मानती हैं। यह पितृसत्ता का मूल कारण 'धर्म' ही है। भारत में स्त्री शोषण मुक्त होने के लिए धर्म को प्रमुख रूप से मूल रूकावट बताती है। लेखिका के अनुसार भारत में धर्म सहिष्णु आधार पर नहीं उग्र ताकतों के इशारों पर डराने व धमकाने का काम करता है। इस कारण 21 वीं सदी में भी स्त्री दोयम दर्जे का स्थान रखती है। पुरूष स्त्री को केवल शरीर ही समझता है, उसके विचार को कोई महत्व नहीं देता उसे केवल चल संपत्ति ही मानता है। रंग, जाति, धर्म, वर्ग भी उसे चल संपत्ति बनने से कोई रोक नहीं सकते हैं। स्त्री का कोई स्थान नहीं होता क्योंकि वह मात्र चल संपत्ति होती है, जिसे उपमानव कहे या दोयम दर्जे का नागरिक माने। स्त्री होने के कारण मर्दों के हमले झेलती है।

बाजारवाद ने जो षड़यंत्र रचा है स्त्री–शोषण के लिए, उसमें स्त्री अचानक ही घिर गई। क्योंकि तकनीकी युग में शिक्षित स्त्रियाँ भी प्रचारित शारीरिक सौंदर्य में ही अपनी अस्मिता, आजादी समझती है। लेकिन लेखिका ने स्त्री की अस्मिता और आजाद खुले विचारों में देखना चाहती है न कि आधुनिक पहनावे और सज–धज में। पुरूष वर्चस्व धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक और फिल्म और टेलीविजन हर क्षेत्र में हावी है। जो स्त्री–सशक्तिकरण कहनेवाले दिनों में उपयुक्त छः खंडों में भी लेखिका यह बताने की कोशिशें की है कि पुरूष की निरंकुशताओं के चौखटे को तोड़कर अपने मानवीय होने के लिए है। इस निबंध के लेखों में लेखिका न केवल विशेष समुदाय की स्त्री की जंजीर तोड़कर उन्हें

मुक्त करना चाहती है बल्कि जो भारतीय स्त्री कोई भी वर्ग की या समुदाय की स्त्री है उन सभी को मुक्त कराना चाहती है।

सुनो मालिक सुनो : 'सुनो मालिक सुनो' मैत्रेयी पुष्पा की वैचारिक पुस्तक है। यह लेख संग्रह लेखक के नारीवाद पक्ष का संग्रह है। यह पुस्तक 'वाणी प्रकाशन', नई दिल्ली द्वारा 2006 में प्रकाशित हुआ है। स्त्री के लिए खुली खिड़कियों के बाद। मैत्रेयी पुष्पा ने 'सुनो मालिक सुनो' के द्वारा मालिकों से गुहार नहीं की है, बल्कि उन्हें खुलेआम लक्ष्मण–रेखा लांघने की चुनौती दी है। पुरूष सत्ता की इस लगभग क्रूर और अमानवीय संरचना में स्त्री की स्थिति का जायजा लेती है यह किताब। इस विश्लेषण में स्त्री के स्वप्न हैं, इच्छाए हैं और इन सबके नीचे भागदौड़ की थकान और पिटाई की खरोंचे हैं, साथ ही आशा प्रेम और आकाँक्षा से लबरेज भविष्य की स्त्री है। यह पुस्तक मुख्य रूप से दो भागों में बाँटी है। एक में वैचारिक लेखन को रखा गया है, जिसका कुछ हिस्सा, मैत्रेयी पुष्पा के विभिन्न वक्तव्यों की शक्ल में है, जो उन्होंने वक्त जरूरत, सभागारों में दिए थे। दूसरे में, आलोचनात्मक लेख हैं, जिन्हें वक्त–जरूरत की बजाय मानसिक दबावों के नतीजों के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। इस किताब में मैत्रेयी पुष्पा विस्तार से विवाह और दहेज को लेकर चर्चा की है और अंत में कहती है दहेज दाता और दहेज लोभी दोनों पुरूष ही हैं लेकिन स्त्री मायके में और ससुराल में भी निराधार और शून्य की स्थिति में ही उखड़ा हुआ अस्तित्व में ही रह जाती है। उसी तरह परिणीता लेख में भी विवाह को लेकर स्त्री–पुरूष के दोनों पक्षों के बारे में वैचारिक भेदों को खोल देती है जैसे कि– अविवाहित पुरूष अपराधी नहीं होता लड़का अगर अविवाहित रह जाती है तो भविष्यहीन और दया की दृष्टि से देखकर उसे अभाव के खाते में रखते हैं। पुरूष को आदर मिलता है ब्रह्मचारी, पूज्य होता है।

लेखिका मानती है कि 21वीं शताब्दी में स्त्री अपनी देह की मालिक स्वर्थ है और अपनी जीवन की नैतिकता खुद रचती है। अपनी इच्छा की मालकिन, अपने शरीर को दूसरे की फैसले पर न छोड़कर अपने मन से काम लेती रही। समाज में बुरा नाम के साथ भी समझौता न करती हुई परिवर्तन की निशानी टकराहट और सर्जन। फिर नए की निशानदेही करती है। यह पुस्तक समाज–सम्मति नहीं है क्योंकि यह तो युद्ध की ललकार जैसी है, जहाँ मैत्रेयी की नारी 'श्लीनता की रक्षा के लिए जिन्दगी तबाह' करने को तैयार नहीं है, वह लक्ष्मण रेखा की

चुनौतियाँ स्वीकार करने को तैयार है। वह पुरूष जो पिता, ससुर हो, पति या भाई अलग–अलग नहीं है वे मालिकों के षड़यंत्र के अलग–अलग रूप भर है। नैतिकता क्या होती है, क्या नहीं होती स्त्रियाँ नहीं जानती।

चर्चा हमारा : 'चर्चा हमारा' मैत्रेयी पुष्पा का तीसरा निबंध संग्रह है। हिन्दी में दरअसल यह एक नई शुरूआत है। क्योंकि यहां एक स्त्री द्वारा एक स्त्री रचनाकार के विचार को समझने के साथ–साथ उसे तरतीब से प्रस्तुत करने का एक नया अंदाज है। युवा कथाकार और साहित्यकार प्रतिभा कटियार द्वारा प्रस्तुत यह पुस्तक लेखिका मैत्रेयी पुष्पा की वैचारिक बेचैनी, लेखन कौशल, कथा का अनूठा रूप, साफ–शफ्फाफ भाषा और सरोकारों को सामने रखने का एक गंभीर प्रयास है। 'चर्चा हमारा' 'सामायिक प्रकाशन' नई दिल्ली से 2009 में प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक में स्त्री लेखन की चुनौतियों पर गंभीर चिंतन, वहीं सामंती पुरूष–पक्ष की उड़ती धज्जियां भी नजर आएंगी। बाजार होती औरतों के विराध में ही नहीं, स्त्री–सोच के संस्कारों के खोखलेपन के उजागर करने में भी मैत्रेयी जी की कलम सन्नध रही है।

इस किताब के द्वारा 'प्रतिभा कटियार' ने मैत्रेयी पुष्पा के साहित्यिक विचारों को एकत्र करना चाहती है। यानी कभी अल्मा, कभी सारंग, कभी कलावती चाची, कभी श्रीधर की देह में भटकते विचारों को एक छत के नीचे सुरक्षित कर देना ही है। इस किताब में और भी यही बताना चाहती कि क्यों एक स्त्री दूसरी स्त्री के लिए दुश्मन होती है। स्त्री सच्चाई को पहचानने की कोशिशें इसमें है। यह सारी व्यूह रचना पुरूषों ने इस चालाकी से की है कि हमें एक–दूसरे के दुश्मन के रू॰ में आमने–सामने खड़ा कर दिया और खुद निकल गए चौरस खेलने या बाहर आनंद करने। स्त्रियाँ आपस में जूझी रहती हैं बल्कि पुरूष बाकी दुनिया में उनका वर्चस्व कायम रखता है।

महिलाओं के मुद्दे सिर्फ मंच पर डिस्कस करने भरके या नारी विमर्श के झंडे के नीचे पलने भर के नहीं रह गए हैं। उन्हें अब हर घर में, हर स्त्री और पुरूष ने भी पनपना जरूर समझते हैं। स्त्रियों की चुनौतियाँ नए दौर में और बढ़ी हैं। नौकर, घर, समाज सबको संभालते हुए वह टूटने की स्थिति में आ जाती है, पर हिम्मत नहीं हारती। इस किताब के जरिए मैत्रेयी पुष्पा और प्रतिभा कटियार यही कहना चाहते हैं कि ''हमको दुश्मन की निगाह से देखना बंद कीजिए। आरोपों–प्रत्यारोपों और उपेक्षाओं की प्रार्थना उतार दीजिए। हम साथी है, मित्र हैं,

तुम्हारे ताकत बनना चाहते हैं। तुम्हारे साथ चलना चाहते हैं, तुमसे अलग नहीं, समाज परिवार जोड़ना चाहते हैं, तोड़ना नहीं, लेकिन अपने टूटने की कीमत पर अब और नहीं!''[125]

तब्दील निगाहें : 'तबदील निगाहें' किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली के द्वारा 2012 में प्रकाशित हुआ है। सच को पूरे साहस के साथ कहनेवाली रचनाकारों में सम्मिलित मैत्रेयी पुष्पा ने इस पुस्तक के संकलित लेखों में कुछ ऐसा ही प्रयास किया है। 'उसने कहा था', 'गोदान' चित्रलेखा, 'ध्रुवस्वामिनी' 'त्यागपत्र', 'मैला आंचल' और 'राग दरबारी' जैसी अपने समय की कालजयी रचनाओं को बिल्कुल अलग निगाह से देखती है और उसके स्त्री–पात्रों के मन में सोए पड़े सवालों को उघाड़कर उन्होंने एक नई बहस को आधार प्रदान किया है। इन कृतियों के संदर्भ में लेखिका द्वारा उठाए गए सवाल, न केवल पढ़नेवाले को बेचैन कर सकते हैं बल्कि इन्हें नई तरह से तबदील निगाहों के जरिए पुनर्मूल्यांकित करने की मांग भी करते हैं।

कालजयी कृतियाँ जिन्हें हिन्दी भाषाई वैभव मानते हैं, इनके बिना हिन्दी वांग्मय की कल्पना भी नहीं कही जा सकती। लेकिन मैत्रेयी पुष्पा ने इन कृतियों पर समग्र रूप से विचार करने के बजाय इनके प्रमुख नारी चरित्रों के चित्रण का स्त्रीवादी विश्लेषण करने के बहाने संदर्भित कालखंडों की पुरूषवादी सोच को उजागर करने का साहसिक प्रयास किया है। उन्हें सामाजिक न्याय को अपनी कसौटी बनाया है, वह भी चरणबद्ध ढंग से। ये लेख समय–समय पर पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं और अब ये संकलन के रूप में प्रस्तुत है। लेखिका की कसौटी इनमें परंपरागत तटस्थ और निर्मम आलोचकीय नीर–क्षीर विवेक न होकर सघन मानवीय करुणा और नारीसुलभ कोमल संवेदना है।

आवाज :

'आवाज' मैत्रेयी पुष्पा की ताजा नवीनतम स्त्री–विमर्श की पुस्तक है, जिसमें लेखिका स्त्री से संबंधित अनेक सवाल उठाती हैं। विभिन्न समुदायों में स्त्री की स्थिति को समझने के लिए मैत्रेयी जी ने 'सुश्री अर्चना त्रिपाठी' और 'डॉ. सविता सिंह' जो दक्षिण अफ्रीकी कवइत्रियों की कविताओं का हिन्दी में 'काली मशाल' के नाम से अनुवाद करके मैत्रेयी पुष्पा को दिया था मैत्रेयी पुष्पा उनमें से कविता की कुछ पंक्तियों को इस किताब के अनुच्छेदों के लिए शीर्षक चुना। नारी समस्या–शोषण का विरोध करते हुए सवाल उठाती हैं। वे समझती हैं कि पुरूष

व्यवस्था पर सवाल उठाना उतना ही जरूर है, जितना कि मुक्ति की आकांक्षा करना। यह पुस्तक 'सामायिक प्रकाशन नई दिल्ली द्वारा 2012 में' प्रकाशित हुइ है।

व्यवस्था हो या समाज, पारिवारिक संस्थाएँ लेखिका को कहीं भी किसी भी रूप में स्त्री विरोधी वातावरण, स्वर और तंत्र से असहमति और घोर विरोध है। वे स्त्री को संस्कारों में जकड़ी देखना नहीं चाहतीं। उस इतिहास को पलट देना चाहती हैं जो पुरूष रचित है। उसके द्वारा बनाई गई आचार संहिता का पुरजोर विरोध अपनी निर्भीक भाषा में करती हैं। वह पुरूष वर्चस्व से स्वतंत्रता पाने की आवाज उठाते हुए स्त्री को मानसिक यंत्रणा से मुक्ति दिलाना चाहती हैं। वे स्त्री को एक पूर्ण इकाई के रूप में परिभाषित करती हैं, स्त्री के विरूद्ध काम करनेवाली अनेक सामाजिक रूढ़ियों के विरूद्ध अवाज उठाती हैं। लेखिका व्यवस्था से प्रश्न करती हैं कि 'यह व्यवस्था, समय कब बदलेगा?'

2.2.1.4 रिपोर्ताज :

फाइटर की डायरी :

'फाइटर की डायरी' मैत्रेयी पुष्पा का एकमात्र 'रिपोर्ताज' है। इसमें सिपाही–लड़कियों की सूज–बूझ और चेतना संपन्न खुद की संघर्षमई गाथाएँ सकलित हैं। गाँवों से आई इन लड़कियों ने अपने अनुभव लेखिका के साथ बाँटे थे। इनकी आँखों में भावात्मक ऊष्मा की चमक है और इनके चेहरे लगाव से लबरेज हैं। यह पुस्तक एक तरह से 'डेमोक्रेसी का दस्तावेज' है। 'फाइटर की डायरी' 'राजकमल प्रकाशन' नई दिल्ली के द्वारा 2012 में प्रकाशित हुआ था।

लेखिका मानती हैं कि निश्चित ही जिसे मैं अपनी जद्दोजहद मानती हूँ, इनका संघर्ष उससे कई गुना बड़ा है। लेखिका के संघर्ष का माथा इन लड़कियों की आत्महंता स्थितियों और उनका सामना करने के साहस के आगे झुक गया। इस पुस्तक के माध्यम से मैत्रेयी पुष्पा खुश मानती कि लड़कियाँ पारिवारिक कटघरों को तोड़कर मुक्ति की तलाश में और ताकत हासिल करने के लिए इस एरिया में हस्तक्षेप करती हैं जिसमें अभी तक उनके लिए सामाजिक मान्यता प्राप्त नहीं थी। लेखिका समझती हैं। वर्दी उनके लिए एक ताकत है, जिससे वह अपने मुक्ति संघर्ष को आगे बढ़ा सके। तभी स्त्री समाज के लिए आपराधिक माने गए मामलों की

बेगुनाही साबित करती है। इन्हीं फाइटर्स के वृत्तांत के आधार पर मैत्रेयी पुष्पा ने अपना 'गुनाह बेगुनाह' लिखा है।

2.2.1.5 सम्मान एवं पुरस्कार :

वरिष्ठ कथाकार मैत्रेयी पुष्पा स्त्री–विचार को प्रमुखता से रेखांकित करने वाली रचनाकार हैं। उनकी रचनाएँ स्त्रियों की हमसफर होकर चलती हैं। उनकी रचनाओं में लेखकीय विद्वत्ता, प्रवीणता या कुशलता, किस्सागोई कम हकीकत ज्यादा है। वे स्त्री विषयक चिंतन में कयवीय भाषा के संजाल में न फंसकर अपनी सहज संप्रेषणीय जवाब में ऐसी बात करती हैं कि आम स्त्रियां भी पहचान सकें कि उनके बारे में किया जा रहा चिंतन क्या है? यह कथाशिल्पी अपने पहले ही कहानी संग्रह से चर्चा में आ गई थी। तब से लगातार कई पुरस्कार और सम्मान उनकी रचनाओं के प्राप्त हुए हैं

(1) 'चिन्हार' कहानी के लिए – 1993 में – ''साहित्य कृति सम्मान'' हिन्दी अकादमी द्वारा

(2) 'फैसला' कहानी के लिए – 1993 में – ''कथा पुरस्कार''

(3) 'नंजनागुड तिरुमला पुरस्कार' 'इदन्नमम्' के लिए – 1995 में – (शाश्वती संस्था, बैंगलोर)

(4) 'इदन्नमम्' के लिए 'वीर सिंह जू देव पुरस्कार' 1996 में मध्य प्रदेश साहित्य संस्थान के द्वारा

(5) 'इदन्नमम्' के लिए 'कथाक्रम सम्मान' – 2000 में

(6) 'कस्तूरी कुन्डल बसै' के लिए 'मंगला प्रसाद पारितोषकम' – 2006 में

(7) 'समग्र लेखन' के लिए 'सुधा स्मृति सम्मान' – 2009 में

(8) 'आग्रा यूनिवर्सिटी गौरव श्री सम्मान' – 2011 में

(10) 'समग्र लेखन' के लिए 'साहित्यकार सम्मान' 1998 में–'हिन्द अकादमी दिल्ली' द्वारा

(11) 'बेतवा बहती रही' के लिए 'प्रेमचंद सम्मान'–1995 में उत्तर प्रदेश साहित्य आकदमी द्वारा

(12) 'इदन्नमम्' के लिए 'प्रेमचंद सम्मान' 1996 में उत्तर प्रदेश साहित्य अकाडमी द्वारा

(13) 'सरोजिनी नायडू पुरस्कार' 2003 में हंगर प्रोजेक्ट के द्वारा (पंचायती राज पर लेख

(14) 'महात्मा गांधी सम्मन' – 2012 में

****

संदर्भ ग्रंथ :

[1] हंस, जून 2007, संपादक–राजेन्द्र यादव, पृ. 36

[2] मैत्रेयी पुष्पा, स्त्री होने की कथा, सं. विजय बहादुर सिंह, पृ. 261

[3] कस्तूरी कुन्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 41

[4] कस्तूरी कुन्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 36

[5] कस्तूरी कुन्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 42

[6] कस्तूरी कुन्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 30

[7] कस्तूरी कुन्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 16

[8] ललमनियाँ कहानी संग्रह, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 122

[9] मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 254

[10] कस्तूरी कुन्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 40

[11] मेरे साक्षात्कार, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 11

[12] मेरे साक्षात्कार, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 69

[13] युद्धरत आम आदमी, फरवरी 2014, संपादक रमणिका गुप्ता

[14] मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 18

[15] मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 18

[16] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 143

[17] मेरे साक्षात्कार, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 84

[18] मेरे साक्षात्कार, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 108

[19] समकालीन साहित्य समाचार, संपादक : सत्यव्रत, अक्तूबर 2010, पृ. 22

[20] चिन्हार, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 142

[21] चिन्हार, मैत्रेयी पुष्पा, भूमिका से (पृ. 7)

[22] चिन्हार, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 143

[23] मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 25

[24]चिन्हार, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 21

[25]चिन्हार, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 23

[26] मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम, डॉ. दया दीक्षित, पृ. 153

[27] चिन्हार, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 136

[28] चिन्हार, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 141

[29] मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम, डॉ. दया दीक्षित, पृ. 128

[30] मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 300

[31] मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 31

[32] ललमनियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 20

[33] ललमनियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 8

[34] मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 289

[35] ललमनियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 34

[36] आधुनिक महिला लेखन (कहानी), रमणिका गुप्ता (भूमिका से)

[37] मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 299

[38] ललमनियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 65

[39] ललमनियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 76

[40] मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम, डॉ. दया दीक्षित, पृ. 152

[41] ललमनियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 103

[42] ललमनियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 104

[43] मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम, डॉ. दया दीक्षित, पृ. 149

[44] मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 30

[45] ललमनियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 120

[46] ललमनियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 299

[47]गोमा हँसती है, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 45

[48] गोमा हँसती है, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 46

[49] मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम, डॉ. दया दीक्षित, पृ. 141

[50] गोम हँसती है, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 78

[51] मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम, डॉ. दया दीक्षित, पृ. 135

[52] गोमा हँसती है, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 128

[53] गोमा हँसती है, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 129

[54] मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 289

[55] मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 290

[56] मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 290

[57] मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 294

[58] मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम, डॉ. दया दीक्षित, पृ. 154

[59] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 16

[60] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 17

[61] मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम, डॉ. दया दीक्षित, पृ. 153

[62] मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम, डॉ. दया दीक्षित, पृ. 166

[63] मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम, डॉ. दया दीक्षित, पृ. 166

[64]पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 50

[65] आधुनिकता के आईने में दलित, सं. अभय कुमार दुबे, पृ. 240

[66] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 51

[67] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 56

[68] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 56

[69] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 55

[70] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 60

[71] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 126

[72] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 126

[73] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 126

[74] मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम, डॉ. दया दीक्षित, पृ. 133

[75] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 140

[76] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 141

[77] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 142

[78] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 142

[79] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 144

[80] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 145

[81] मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम, डॉ. दया दीक्षित, पृ. 164

[82] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 150

[83] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 150

[84] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 151

[85] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 153

[86] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 184

[87] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 185

[88] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 188

[89] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 189

[90] मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम, डॉ. दया दीक्षित, पृ. 147

[91] विविध संवाद, त्रैमासिक पत्रिका, सुरेन्द्र बीनू, पृ. 17

[92] मेरे साक्षात्कार, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 43

[93] समकालीन साहित्य समाचार, अप्रैल 2010, सत्यव्रत, पृ. 26

[94] हंस जनवरी, 1997, अरविन्द जैन, पृ. 67

[95] हंस, अक्तूबर 2004, संपादक–राजेन्द्र यादव,, पृ. 67

[96] इदन्नमम की भूमिका से, मैत्रेयी पुष्पा

[97] मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 127

[98] मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 38

[99] चाक, मुख पृष्ठ से

[100] चाक, मुख पृष्ठ से

[101] चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 8

[102] चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 16

[103] गोदारण, अंक–7, जनवरी–2009, सं–भरत सिंह, पृ. 316

[104] मैत्रेयी पुष्पाः स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 64

[105] मैत्रेयी पुष्पाः स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 46

[106] झूलानट, मैत्रेयी पुष्पा, भूमिका से

[107] मैत्रेयी पुष्पाः स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 170

[108] मैत्रेयी पुष्पाः स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 184

[109] अगन पाखी के पुनर्ववा से, मैत्रेयी पुष्पा

[110] मैत्रेयी पुष्पाः स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 46

[111] हंस, अप्रैल 2002, राजेन्द्र यादव

[112] मैत्रेयी पुष्पाः स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 47

[113] संकल्प जनवरी–मार्च, 2013 पृ. 40

[114] मैत्रेयी पुष्पा, स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 244

[115] मैत्रेयी पुष्पा, स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 247

[116] कस्तूरी कुन्डल बसै, भूमिका से, मैत्रेयी पुष्पा, पृ.

[117] मैत्रेयी पुष्पा, स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 243

[118] कस्तूरी कुन्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ.10

[119] कही ईशुरी फाग मुख्य पृष्ठ से, मैत्रेयी पुष्पा

[120] मैत्रेयी पुष्पा, स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 209

[121] मैत्रेयी पुष्पा, स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 266

[122] मैत्रेयी पुष्पा, स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 270

[123] मैत्रेयी पुष्पा, स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 270

[124] मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम, डॉ. दया दीक्षित, पृ. 109

[125] चर्चा हमारी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 17

अध्याय –3

मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास साहित्य : नारी जीवन मूल्य

3.1 सामाजिक

3.2 शैक्षणिक

3.3 आर्थिक

3.4 राजनीतिक

3.5 सांस्कृतिक

3.6 विद्रोही स्वर :

3.6.1 सामंती परिवारिक नारी विरोधी मूल्यों का ध्वस्त

3.6.2 विवाह संस्था के नारी विरोधी मूल्यों का ध्वस्त

3.6.3 पितृसत्तात्मक नारी विरोधी नैतिक मूल्यों का ध्वस्त

3.6.4 पितृसत्तात्मक नारी विरोधी संस्कारों का ध्वस्त

3.1 सामाजिक :

हिन्दी कथा साहित्य की वरिष्ठ कथाकार मैत्रेयी पुष्पा का समूचा लेखन, उनके विचारों का आधार सतर्क निर्भीकता लिए हुए है। उनमें सड़ी–गली पुरातन और मानव विरोधी मान्यताओं का सीधा विरोध तो है ही, साथ ही नए और खुले विचार का स्वागत भी उन्होंने किया है। वे निर्भीक लेखिका होकर अपनी कमजोरियों, अंतरंगताओं व स्नेह के प्रगाढ़न को अपनी लेखनी के जरिए अभिव्यक्त करते हुए उन तमाम खतरों से खेल जाती है, जिसकी कल्पना मात्र से आम स्त्रियों के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। मैत्रेयी डरती नहीं आंखों से आंखे मिलाकर पुरूषों से, पुरूष सत्ता से प्रश्न करती है। कहीं किसी समाज का विनाश नहीं करती है। कहीं पर भी औरत औरत के लिए दुश्मन नहीं बल्कि उसको बढ़ावा देने वाली, उसकी मदद करने वाली सहकारनी के रूप में दिखायी देती हैं। जैसे पति से बेवफाई नहीं करती है वैसे ही प्रेमी का सम्मान करना भी नहीं छोड़ती। वह जीती है, पूरी ताकत से, जुल्म से थककर आँसू नहीं बहाती...जूझती है, सामना करती है।

स्त्री की सच्चाई से पुरूष वर्चस्व डरता है। इनकी नायिका पुरूषवादी पदावली का भरोसा नहीं करती बल्कि अपनी 'स्वतंत्रता' के नए अर्थ का प्रकाश फैलाती दिखाई देतीहै। यह प्रकाश जितना स्त्री–आजादी के लिए जाने वाले विद्रोह का है उतना ही उस नई सामाजिक संरचना का भी है जिसमें वर्चस्वकारी ताकतें मर्यादित की जा सकेंगी और सामाजिक संबंधों का आधार लिंगभेद न होकर मानवतापरक और सहज होता है। मैत्रेयी पुष्पा का लेखन इसी रूप में स्त्री–विमर्शवाद का अतिक्रमण करता है। पितृसत्ता द्वारा समाज में स्त्रियों पर थोपी हुई बहुत सारी अनैतिकताएँ एक शाश्वत मूल्य बनकर सामने आती है। इस नये मूल्य की स्थापना बेशक त्रिया चरित्र से अपमानित की गई स्त्री करती है। असभ्य या सभ्य समाज में जंगल राज के अनकहे, अनलिखे नियम लागू हैं, तब स्त्री स्नेह, लगाव और संवेदनाओं को इस तरह प्रवाहित करती है कि खुलने पर पुरूष को लगता है, उसके द्वारा सदियों से लागू किया आतंक बेमानी है यह भी सच है कि इस सच्च को पर्दे पर लाने के लिए पूरा एक युग लगता है। मैत्रेयी पुष्पा का स्त्री–विमर्श, परिवार–विमर्श भी है और समाज विमर्श भी। वह परंपरा–विमर्श अगर है तो आधुनिक और इतिहास विमर्श भी है। वे समाज की नाइंसाफी, औरत–पुरूष से भी बदतर बनाए जाने से उनका जी दुःखता है।

मैत्रेयी पुष्पा अपने लेखन में औरत के आदिम मन और उसके चकित कर देनेवाले पौरूष को लेकर आई, अपने जबरदस्त स्त्री चरित्रों के साथ सोचती–विचारती, नही मन संकल्प–सी करती। मैं क्या हूँ? ग्रामीण मिट्टी की सजीव छवि। पुराणों में भी स्त्री ही अधिक शक्तिरूपेण संस्थिता मानी गई है। अपने स्वार्थों के लिएव्यवस्थावादी चालाक पुरूषों ने उसे मर्यादाओं के नाम पर अपने हिसाब से नियम बना कर विकसित कर लिया। स्टुवर्टमिल के अनुसार आज की स्त्री का स्वभाव एक नकली चीज कहा जाता है और कुछ दिशाओं में अप्राकृतिक फैलाव का परिणाम है। उनके शब्दों में आज स्त्री की स्थिति उस वृक्ष जैसी है जिसकी आधी शाखाओं को भाप–स्नान दिया जा रहा है, जबकि बाकी आधी बर्फ में ढकी है। इसी बात की सफलता सही मायने में इस प्रकार कहनेवाले विजय बहादुर सिंह जी कहते हैं कि ''मैत्रेयी ने अगर कुछ किया है तो यही कि बर्फ में ढ़के इस हिस्से को अपने असाधारण बौद्धिक तेज और साहसपूर्ण पहल से एक ऐसे जीवन–प्रवाह में रूपांतरित कर दिया है। जिसे स्त्री का भविष्य कहा जाना चाहिए।''[1] मैत्रेयी पुष्पा अपने साहित्य में पारंपरिक पुरूष समाज द्वारा स्त्री पर थोपी गई नैतिक शर्तों को मानने से इनकार करती हैं। अपनी इसी सोच के अनुकूलपात्र गढती हैं कि ''अब तक अनुपस्थित रहे पात्रों का अनुपस्थित–सी मान ली गई भाषा में खरा बयान, और दूसरी ओर पुरूष–वर्चस्वी गाँव समाज की ये हिदायतें''[2] मैत्रेयी पुष्पाअपनी लेखनी ईमानदारी के साथ लोक परंपरा को, रीति–रिवाज को नकारते हुए आजादी के गीत के द्वारा इस जड़ समाज में चेतना लाना चाहती है। समाज की सच्चाइयों और यथार्थों को छूना चाहती है। अपने लेखन में उसी बेबाक शैली का प्रयोग किया है, जैसा की उनका व्यक्तित्व है उनके विचार है। चिकने–चुपड़े अभिजात लेखकों के रेशमी पर्दे वाले शब्दों का प्रयोग नहीं करती है। इसके बरक्स उनके साहित्य में चौका डालने वाला तेज और आक्रामक सच्चाई जरूर नजर आती है।

3.1.1 नारी के पारिवारिक जीवन मूल्य :

भारतीय समाज में परिवार एक महत्वपूर्ण इकाई है जिससे समाज और व्यक्ति का विकास निर्भर है। यह आम बात है कि हमारे परिवार पितृसत्ता की संस्था है। पुरूष संपूर्ण पूँजी का स्वामी और अधिकारी है यहसमाज और परिवार का नियम है। स्त्री के लिए पुरूष

द्वारा बनाए गए धार्मिक और सामाजिक नियम है कि नियम के अनुसार वहव्रत, उपवास, पूजा–पाठ कर जीवन बिताएगी,अंत में अगर चाहिए तो त्याग और प्राण त्यागकर परिवार में पिता, भाई, पति के लिए जीती रहेगी।न कोई आजादी न कोई स्वतंत्रता है। मैत्रेयी पुष्पा अपने पहले के उपन्यासों में पात्रों द्वारा स्त्री की दशा को दिखाती हैं, बाद मेंस्त्री पात्र चेतना के द्वारा लड़ाई लड़ना सीखती है, जूझती है आखिर में परिवार, समाज में रहकर ही विद्रोह करती है और नये नैतिकता के द्वारा समाज में बदलाव लाती है।

माँ के जीवन मूल्य : माँ के लिए सबसे अहम है उसकी ममता। स्त्री माँ बनने के बाद सम्मानपूर्वक दर्जा हासिल करती है। माँ केवल अपने बच्चे को हीनहीं बल्कि हर बच्चे को अपना बच्चा समझती है इसलिए वहमाँ कहलाती है। मैत्रेयी पुष्पाअपने उपन्यासों में माँ के सभी संदर्भों के सही स्थितियों में उसके मनोभावों कास्पष्टतः वर्णन करती है। सफल और असफल पक्षों को विस्तार से समझाती है। कहते हैं कि पुत्र कुपुत्र हो सकता है परंतु माँ कुमाता नहीं होती। योग्य, अयोग्य, मेहनती–निकम्मे, प्रेम रहित संतान होती हैं लेकिन माँ उनके प्रति अनुकूल या प्रतिअनुकूल परिस्थितियों में वात्सल्य भरे भाव से भरी होती है। 'बेतवा बहती रही' उपन्यास में उर्वशी पति के मृत्यु के बाद उसके भाई के द्वारा दूसरे के साथ शादी कर जाकर भी अपनी पहली शादी की संतान देवेश के प्रति माँ के प्रेम से तड़पती है। वात्सल्यके कारण उसकी याद में बिलकती रहती है। और जहाँ दूसरी शादी कर दी जाती है वहां उस पति के संतान केलिए भी माँ बनकर अपनी जिम्मेदारी निभाती है।

वैसे ही 'झूलानट' में बालकिशन की माँ बेटा अयोग्य होने पर भी उसको प्रेम करती है। 'विजन' में पति के शोषण के बावजूद संतान के लिए नेहा की माँ अपनी जिम्मेदारी निभाती है। 'चाक' की सारंग भी पहले अभागी माँ केरूप में बच्चे कोअपने से दूर भेजती है, लेकिन पति से झगड़ा कर चुपके से बेटे को घर बुलवाकर अपनी ममता की छाया मेंरखकर प्रफुल्लित हो उठती है। 'कस्तूरी कुंडल बसै' में ममता के कारण कस्तूरी देवी अपनी बेटी के उज्वल भविष्य के लिए अनेक प्रयत्न करती है। बिना पिता के बेटी को सबकुछ देना चाहतीहै। अपने सुखों को दरकिनार कर बेटी की खुशी के लिए हर तरफ से तत्पर रहती है। 'कही ईसुरी फाग'उपन्यास की नायिका ऋतु की माँ भी विधवा होने के बाद भी ममता के साये मेंबेटी को हर सुविधा देने के लिए सिलाईकर कड़ीमेहनत के साथ हर समय उसकासाथ देती

रहतीहै।अपनी माँ केप्रेम से मैत्रेयी पुष्पा चिड़ती थी लेकिन जैसे ही वह अपने बच्चों की माँ बनती है माँ के प्रेम का अर्थ समझकर कृतज्ञता भाव के साथ माँ की मेहनत, प्रेम के यादों में अपनी रचना 'चाक' उपन्यास भी माँ कस्तूरी को अंकित करती है।

पत्नी के जीवन मूल्य :

कहा जाता है कि पत्नी परिवार की आधारशिला है। गृहिणी के बिना परिवार की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। जिस घर में स्त्री शांत और सुव्यवस्थित एवं पति के अनुकूल रहती है वह परिवार स्वर्ग बन जाता हैं। यही परिवार का पारंपरिक रूप है। मैत्रेयी पुष्पा की स्त्री भी पारंपरिक, आदर्श पत्नी के रूप में दिखाई देती है। अपना आरंभिक उपन्यास 'बेतवा बहती रही' की नायिका उर्वशी घर के कामों में प्रवीण रहती है। घर के कामों में उर्वशी को लेकर कोई शिकायत नहीं है। चाहे ससुराल में हो या मायके में पति सर्वदमन की मृत्यु के बाद भी ससुराल में रहते हुए बिना किसी शिकायत के जीवन बिताती है। दाऊ और जिज्जी कुछ काम न करने पर भी संयुक्त परिवार में रहते हुए उर्वशी सारा दिन काम में निकाल देने का प्रयत्न करती है। कभी मायके में भाभी की तबीयत खराब हो जाने पर वहाँ भी जाकर काम निपटाती है। दूसरे पति की बेटी और अपनी बचपन की सहेली मीरा की शादी के समय में भी उर्वशी ही सारा काम संभाल लेती है।

चाक की सारंग भी एक आदर्श पत्नी का रूप है। पति रंजीत के साथ हृदय से प्रेम करती है। जीवन में होनेवाली प्रत्येक समस्या का समाधान ढूंढ निकालती है। शंका और अनुमानों को अपनी कुशल बुद्धि के द्वारा निवृत्त करती है। जहाँ कहीं भी अन्याय में अनजाने से फसनेवाले पति से लड़ाई लड़कर भी पति को बचाती रहती है। इतना ही नहीं गाँव विकास के लिए श्रीधर के साथ शारीरिक संबंध बनाकर भी पति के बारे में हमेशा चिंतित रहती है। पति से घर से नाता तोड़ती नहीं। सारंग और रंजीत के बीच जब झगड़ा–पिटाई होती है तो घर में बाबा और साधजी आते हैं। साधजी दोनों को समझाते हैं कि ''रंजीत! तू बेटा पढ़ा–लिखा और ऐसी गँवरई! ऐसी उम्मीद नहीं थी तुमसे हमको। बहु पर हाथ उठाता है।..... बेटी तू समझदार है गम खा। बाबा ने अपनी जलती हुई निगाहों से रंजीत को झुलसा डाला।''[3] इससे हम समझ सकते हैं कि सारंग समझदार पत्नी है। रंजीत और सारंग का दाम्पत्य कायम रह जाता है। 'झूलानट' की नायिकाशीलो गाँव कीअनपढ़ और साधारण

स्त्रीहै। पति उसे छोड़कर जाता भी है तो वह अत्महत्या कर अपने आपको खत्म करनेका प्रयत्न नहीं करती है। पति से कितना भी तिरस्कार, अपमान और उपेक्षा मिलती है वह पानी की तरह पीकर निडर रहती है। जब पति द्वारा गाली सुनती है तो वह सास से पूछने लगती है कि ''तुम अपने बेटा को जानती हो, हमें मायके से क्यों बुलाया?''[4]वह पति की गलतियों पर प्रश्न करना भी जानती है। वशीकरण के सारे तीर–तरकश टूट जाने के बाद उसके पास रह जाता है जीने का निशब्द संकल्प और श्रम की ताकत–एक अडिग धैर्य और स्त्री होने की जिजीविषा। वह ससुराल नहीं छोड़ती है लेकिन उसे ही बदलकर भाग्य रेखा खींचती है।

शीलो पत्नी के रूप में पति की निरंकुश्ता का खंडन होशियारी से करती है। जैसे पति सुमेर ने शहर में एक और स्त्री रखलेता है बिन ब्याहे, उसी तरह शीलो ने भी गाँव में बिन ब्याहे ही बालकिशन कोरख लेती है। और संपत्ति के विषय में पति से कहती है कि जमीन जायदाद की बात यह रहने दो कि यह मामला तो अब भी हमारे–तुम्हारे बीच ही है। बालशिन सिर्फ अपने हिस्से का वह मालिक है। पति के अतिरिक्त स्त्री भी यौन संबंध रखती है, बछिया को जन्म नहीं देती है। आजादी के बाद जन्मी शीलो बिरादरी से भी न डरते हुए अपने स्वतंत्रता के हक का अनुभव करते हुए शोषण करने नहीं देती है। वह बराबरी हासिल कर लेती है।

बहन के जीवन मूल्य :

पितृसत्ताक परिवारों में लड़की या स्त्री का संरक्षण पिता के बाद भाई पर ही निर्भर होता है। भाई बहन कासंबंध स्नेहशील, प्रेमऔर आदरमयी होता है। परिवारों में लड़की अपने पिता के बाद भाई के आदरयोग्य जिंदगी के लिए अपनी जीवन से सतर्क रहती है, त्याग भी करती है। पिता–भाई की भलाई आजीव चाहती है। ऐसे ही चाहनेवाली बहन उर्वशी 'बेतवा बहती रही' उपन्यास में है। इसमें उर्वशी–अजित और मीरा–उदय के बीच भाई बहन का प्रेम पूर्वक संबंध है। उर्वशी, मीरा दोनों भाइयों के भलाई और विकास चाहकर हमेशा उनके प्रेम में बंधी हैं। लेकिन उर्वशी से उसका भाई अजीत कभी प्रेम नहीं करता। पैसे के लिए विधवा बहन कीशादीएक बूढ़े के साथ कर देता है। लेकिन उर्वशी भाई के हर तरह के दुःखों से चिंतित और चिंतित रह जाती है।

बहू के जीवन मूल्य :

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री बहू के रूप में अपने सारे कर्तव्यों का निर्वाह करती है। पारंपरिक जिम्मेदारियों को निभाते हुए नवीन जीवन मूल्यों को गड़ती हुई दिखाई देती है।इनकी बहू रूपी नायिका न केवल आदर्श कहलाने के पीछे भागती है बल्कि अपना अस्तित्व भी कायम रखती है। बहू के रूप में 'झूलानट' की नायिका शीलो से बालकिशन की माँ सामाजिक दर्जे में ऊपर है, फिर भी एकाध अवसरको छोड़कर शीलो उसे अपने ऊपर कभी हावी होने नहीं देती। शीलो बहू के रूप में सावधान ही नहीं तत्पर भी है कि परिवार में उसका रोब रहे, बूढ़ी ज्यादा उछल–कूद नहीं करे, और बालकिशन की तरह उसके साथ रहे, स्वयं वह भी उसके इशारे पर चले।

'विज़न' उपन्यास की नायिका नेहा आदर्श बहु के रूप में डॉक्टर होकर भी हमेशा कोशिश करती रहती है कि ससुर की हर बात चाहे वह सही हो या गलत मानने से पीछे न हटे। वह योग्य डॉक्टर होनेकेबावजूद घरवालों की बात मानती है। फिर भी उनके द्वारा उपेक्षापूर्ण बर्ताव को बिना कुछ कहेसहनपूर्वक झेलती है। यहाँ भारतीय नारी की सहनशीलता कादर्शन होता है। वैसे ही 'बेतवा बहती रही' उपन्यास की नायिका दो–दो घरों में बहु बनकर जाती हैऔर आदर्श बहू के रूप में मेहनतकर सारे जिम्मेदारियों को विनयपूर्वक निभाती है। 'चाक' की सारंग भी प्रेम और चेतना एवं समझदारी रूपी बहू के रूप में दिखाई देती है।

भाभी के जीवन मूल्य :

भारतीय परिवारों में माँ का स्थान भरनेवाली के रूप में भाभी को मानते हैं। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नायिका माँ की ममता बाँटते हुए दिखाई देती है। कहीं देवर के साथ कठोर व्यवहार करती है तो कहीं देवर के साथ यौन संबंध भी रख लेती है। इनकी नायिका जैसे वह चाहती हैवैसा जीवन जीतीदिखाई देती है। बने–बनाये नियमों को नकारती है। इसलिए भाभी के रूप में जैसे वह बर्ताव करना चाहती है और स्वतंत्रता के साथ वैसे ही जीती रहती है।

इनके उपन्यासों में ज्यादातर भाभी के रूप में दिखाई देनेवाले पात्र पति से उपेक्षित, प्रेम रहित है। जबपति से प्यार नहीं मिलता है तब वह जहाँ प्रेम मिलता है वहाँ जल्दी ही झुकजाती है। प्रेमी जब पति बनता है तोवह तुरंत स्वामी बनकर प्रेम रहित होकर पत्नी को दासी के रूप में तब्दील कर देता है। ऐसी ही स्थितियों में 'झूलानट' की शीलो भाभी या

'इदन्नमम' की कुसुमा भाभी अपने पति से उपेक्षा की स्थिति में रहती है। पर शीलो पति सुमेर से हठकर देवर बालकिशन की ओर झुक जाती है।'कुसुमा भाभी' भी 'इदन्नमम' में जीवन के प्रति स्वस्थ–साहसी नजरिया रखनेवाली है। स्त्री जीवन के प्रति वह भी उपेक्षित स्थिति में ही चचेरे ससुर के साथ प्रेम रखकर शारीरिक संबंध बनालेती है। वह वायवीय प्रेम नहीं ठोस प्रेम है। इसकी निशानी अपने बच्चे को डंके की चोट पर पालती है–चुपचाप गर्भपात का आश्रय नहीं लेती। यह स्थिति गाँव की अपनी पीड़ाओं और उसके बदलते हुए मूल्य–बोध को दर्शाते हैं।

3.2 शैक्षणिक :

मैत्रेयी पुष्पा अपनी अस्मिता पहले अपनी माँ से, अपनी पढ़ाईऔर ज्ञान के द्वारा पहचान पाती है। वे बचपन में पढ़ाई के महत्व को न जानती थी, फिर भी माँ कस्तूरी देवी चाहती थीं कि पढ़–लिखकर मैत्रेयी नौकरी करें। पति के मृत्यु के बाद छोटी बच्ची को छोड़कर स्कूल जाती थी।पढ़–लिखकरकाम के लायक बनकर बेटी के पालन–पोषण के लिए नौकरी करती है। वे अपनी बेटी को भी यही सिखाती है कि पढ़ो, सोचो और अपने पाँव पर खड़ी हो जाओ। वह अपनी बेटी को ऊँची शिक्षा दिलाना चाहती थी मगर मैत्रेयीपुष्पा स्पष्ट घोषणा कर देती है कि वह नौकरी करना नही चाहती, पढ़ाई नहीं विवाह करना चाहती है। मैत्रेयी पुष्पा माँ सोची थीं कि अपनी बेटी उच्च शिक्षा पाकर अफसर बनेगी और उनके तथा उन जैसियों के साथ कदम–दर–कदम चलकर प्रशासनिक व्यवस्था से उन तमाम परेशानियों को उखाड़ फेंकेगी, जो जूझती, आगे बढ़ती और रूकावटों के कारण गिरती औरतों की टोली से सहज सामान्य जीवन जीने का हक छीनती रहती है। माँ को आशा है कि ''वह स्त्री के सशक्तिकरण की मशाल अपने हाथ ले लेगी। लोग कहेंगे, कस्तूरी माँ के रूप में धन्य है। जीवन संघर्ष का मतलब होता, जीवन–दर–जीवन संघर्ष।''[5]मैत्रेयी पुष्पा की माँचाहती थीं कि वह स्वावलंबी बने। जीवन के हर मोड़ पर संघर्ष करे और कइयों केलिए आदर्श बने।

'चाक' उपन्यास में सारंग खुद गुरूकुल में पढ़ती है और चेतना संपन्न, संघर्षमयी होती सारंग उसके विरोध में खड़ी होती है। गाँव में सामंती पुरूष व्यवस्था द्वारा जाति और स्त्री को लेकर संघर्ष चल रहा था। सारंग शिक्षित स्कूल मास्टर श्रीधर जो ज्ञान का प्रतीक हैउसकी ओर आकर्षित होती है। पति तो ज्यादा पढ़ने नहीं देता है। इसलिएश्रीधर शिक्षक आकृष्ट

करताहै। इससे उससंघर्ष कोनई ताकत मिलतीहै। मास्टर सामाजिक–राजनीतिक अधिकार पाने के लिए लड़ने के दौर में मार खाकर भी डटा रहता है। इसके लिए शिक्षा के माध्यम से बच्चों से लेकर महिलाओं और अन्य तबकों में नई चेतना फैलाता है। शिक्षा के महत्व को कदम बाई, भूरीबाई आदि पात्र अच्छे से जानते हैं। क्योंकि शिक्षा के माध्यम सेही वह आत्मनिर्भर होकर कज्जा लोगों के स्तर तक पहुँच पाती थी। 'अल्मा कबूतरी' में आरंभ से अंत तक औरत तथा शिक्षा को बदलाव के बुनियादी हथियारों के रूप में पेश किया गया है। विद्यारतन के आगे देह की पवित्रता को भी भूरीबाई चुनौती देकर कहती है कि "पतिविरता लुगाई अपनी आदमी के संग सती होती है। मैं अपने मर्द की ब्याहता खुद को तब मानूँगी, जब रामसिंह को पढ़ा–लिखाकर इसी कचहरी के दरवाजे खड़ा कर दूँगी। भले इस सफर में मुझे दस मर्दों के नीचे से गुजरना पड़े।"[6] जो विद्या भूरीबाई का बेटा रामसिंह और राणा के काम नहीं आई उसी ने मास्टर रामसिंह की बेटी अल्मा के लिए रास्ता बनाया। इसी विद्या ने उसे श्रीराम शास्त्री की जरूरत बनाया और उसी श्रीराम की डोर पकड़करवह अल्मा कबूतरी की जगह श्रीमती अल्मा शास्त्री की तरह प्रतिष्ठित हुई। उसी सभ्य समाज की हिस्सा बन गई जहाँ मवाद भरे घावों पर पर्दा डालना ही तो समाज कल्याण का काम है।

'बेतवा बहती रही' उपन्यास की नायिका उर्वशी आर्थिक विपन्नता के कारण पढ़ नहीं पाती अपनी दोस्त मीरा के प्रोत्साहन से बेतवा के किनारे पर रेत में अक्षर काढ़ती और पढ़ना–लिखना सीखती है।विजन उपन्यास में लेखिका उच्च शिक्षा के महत्व को आभा के द्वारा नेहा को कहलाती है कि उच्च शिक्षा के महत्व समझो और जानो। यह समस्या भारत देश की गंभीर समस्या है जहाँ हर रात में शिक्षा के लिए परिवार में नारी की ही बलि चढ़ाई जाती है। जब नेहा का पति विदेश जाना चाहता है और उसके कारण उसकी पढ़ाई बाधित होती है तो वह प्रश्न करती है कि सारे समझौते नारी को ही क्यों करने पड़ते हैं? मैत्रेयी पुष्पा भी नेहा की तरहमध्यवर्गीय शैक्षिक समस्या को स्वयं झेला है। 'कही इशुरी फाग' उपन्यास में भी ऋतु उच्च शिक्षा और शोधकार्य के महत्व को समझकर अपने कठिन परिस्थितियों में प्रेमी माधव बीच–बीच में छोड़कर जाने पर भी साहस दिखाते हुए आगे बढ़ती है। अकेले ही शोध संबंध सामग्री इकट्ठा करती है।

3.2.1 सबल नारी :

मैत्रेयी पुष्पा जैसी विमर्शवादी लेखिका का हृदय उस समूचे लेखन से अलग है, जो स्त्रीवाद के नाम पर किया जा रहा है। मैत्रेयी पुष्पा स्त्रीवादी लेखिका नहीं हैं। वे उस न्यायसंगत सामाजिक और पारिवारिक जीवन की माँग कर रही हैं, जहाँ पुरूष शासक नहीं, स्त्री की सखा हो। वे न विवाह–संस्था के विरोध में है, न घर–परिवार की सुखद–समुन्नत गृहस्थी के। वे खुद एक सद्गृहिणी हैं, पत्नी, माँ और नानी वगैरह है। न कि पुरूष दुश्मन लेखिका।आजादी के बाद भारतीय समाज के अभेद्य दुर्ग में सेंध लगाने वालों में एक है डॉ. बी. आर. अम्बेडकर जो दलित–मुक्ति का प्रश्न लेकर आते हैं। दलितों की, दलित स्त्री की पीड़ा और उसके प्रति उपजी करुणा का व्यवहारिक सोपान राजा राममोहन राय, दयानंद, ज्योतिबा फूले और सावित्री बाई फूले के सत्कर्मों में भी दिखाई देता है। स्त्री सती न बन जाए, उसे शिक्षा के अधिकार से वंचित न किया जाए, उसे भी पुरूष के समकक्ष मान सामाजिक राजनीतिक अधिकार दिए जाए, यहाँ तक कि वैधानिक भी। यह लड़ाई जीती जा रही है, धीरे–धीरे ही सही। ढेर सारी उलझनें, बाधाएँ उसका रास्ता रोके आज भी खड़ी हैं। परंपरा रूढ़ीवादी मानस आज भी उसकी मुक्ति के रास्ते में खड़ा है।

लेखिका के पास 'मैं' का एकल रूप है जो एक युवा, छात्रा, बिन्दास युवती, परंपरागत पत्नी और माँ का भी 'मैं' है। आमतौर पर हिन्दी में लेखक के 'मैं' पर जब भी बातें हुई हैं तो उसके एकल रूप की चर्चा हुई हैं। खासकर छायावादी लेखकों के संदर्भ में जो बहस चली है। रामविलास शर्मा से लेकर नामवर सिंह तक सबके नजरिए में छायावाद के लेखक का एकल 'मैं' है। मैं के प्रति असंपूर्ण नजरिया है। इसके कारण एकल मैं की स्टीरियोटाइप समझ बनी है। मैं महज भावों की अभिव्यक्ति नहीं है बल्कि उसकी अस्मिता की अभिव्यक्ति है। इसमें व्यक्ति और समाज, समुदाय और व्यक्ति, लिंग और साहित्य घुले–मिले होते हैं। इसके कारण लेखिका की जेण्डर पहचानने के अंदर अनेक अस्मिताएँ होते हैं जिनमें अस्मिता का उप–पाठ बनता है। इनके उपन्यासों में उन तमाम भारतीय स्त्रियों को लेकर लिखा गया है जो सनातन पुरूष–प्रधान व्यवस्था में सदियों से तरह–तरह से अधिकार–वंचित और काम शोषित रहती आई हैं।

प्रेम करने का साहस एवं माँ बनने का हौसला :

मैत्रेयी पुष्पा स्त्री के लिए प्रेम एक नैसर्गिक चीज मानती है। जैसे हरेक इन्सान में जन्म से ही समाया हुआ है। मनुष्य का बुनियादी भाव होने के कारण ही प्रेम इतना ताकतवर है। मूलतः प्रेम तो एक नैसर्गिक चीज है जो नैतिक है, न अनैतिक, न पवित्र, न अपवित्र उसे अश्लील, अपवित्र या अनैतिक हम बनाते हैं। हमारा समाज बनाता है। वे मानती है कि प्रेम एक ऐसा माध्यम है, जहाँ स्त्री–पुरूष एक–दूसरे को स्वतंत्र करने का जरिया है। स्वतंत्र व्यक्ति आदर के योग्य होता है। मैत्रेयी पुष्पा प्रेम करने के साहस को स्त्री की ताकत और कुशलता मानती है। कहा जाता भी है कि आजादी चाहने वाली स्त्रियाँ कुलीनताओं का कलंक होती है। प्रेम कभी भी हो सकता है। यानी शादी से पहले और बाद भी। वह स्त्री के जीवन में निभानेवाली कई तरह की भूमिकाओं के रूप समझाती हैं। उनके उपन्यासों में कई संदर्भों में प्रेम करने की स्वतंत्रता को हासिल कर दिखाया गया है। शादी के पहले प्रेम ही नहीं बच्चों की माँ बनने के लिए भी हिम्मत रखती है।

इदन्नमम की नायिका मंदा बाल्यावस्था केप्रेम को आजीवन निभाती है। पढ़ाई के चलते दूर जाने से भी उसी का इंतजार ही नहीं करती बल्कि उसे अपना जीवन साथी के रूप में भी मान कर चलती है। प्रेमी के लिए हर पल इंतजार एवं आशा रख लेती है। ‘अगन पाखी’ की भुवन मोहिनी अपने भतीजे के साथ प्रेम करनेवाली साहसी स्त्री के रूप में दिखई देती है। जो रीति–रिवाज, समाज–संस्कृति परंपराओं को तोड़ती निडर प्रेमिका है। वह वही तकनहीं रूकती भतीजे के साथ शारीरिक संबंध भी बनाती है। पागल पति विजय सिंह जो नामर्द है, मर जाने पर वह सती होने से भागकर फिर से भतीजेके साथ ही मिलकर रहती है। अपने प्रेम को जीवित रखती है अपने जीवन के साथ ही। फिर भी भुवन मोहनी पति के हिस्से के लिए भी दावा करती है कि मैं अपने पति के चल–अचल संपत्ति की हकदार हूँ। ‘कई ईशुरी फाग’ की ऋतु भी माधव और अपने प्रोमी के साथ प्यार औरशारीरिक संबंध में बनी रहती है। ‘अल्मा कबूतरी’ उपन्यास की नायिका अल्मा भी अपने बचपन में ही राणा की प्रेमिका बन जाती है। इन दोनों के प्रेम प्रसंग खुला हुआ भेद जैसा है। एक युवक–युवती के बीच प्रेम के मार्मिक और रति को गहराई के साथ वर्णन किया गया। जब अल्मा गर्भवती बनती है, तब वह माँ बनने के लिए हौसला दिखाती है। पत्नी बने बिना माँ बनने का निर्णय लेती है।

'गुनाह–बेगुनाह' उपन्यास में भी इला जो कानिस्टेबलहै शादी के पहले जयंत के साथ एक घर में रहतीहै। जैसे ही शादी की बात आती है। तब जयंत नौकरी छोड़ने के लिए कहता है।यह बात इला को पसंद नहीं आती है तो इला ही जयंत से शादी करने के लिए इन्कार कर देती है। वैसे ही सविता पाँचवी तक पढ़ी–लिखी लड़की होने के बावजूद अपनी शादी पसंद न होने के कारण वह अपने ं बाप–दादाओं से सवाल कर उनका विरोध करती है।

मैत्रेयी पुष्पा मानती हैं कि जिस चीज की कमी होतीहै उसी कीमाँग होती ज्यादा है। उसी क्रम में स्त्री के लिए प्रेम की कमी है जो उसे नहीं मिलता है। यह एक आकर्षण नहीं, वह एक श्रेष्ठ भाव है, जिसे स्त्री बनी होती है। वे अपने साक्षात्कार में कहती हैं कि ''प्यार से लबरेज आँखे लिए ही मैं जीवन में आनेवाली आँधियों का सामना कर सकी हूँ और पुस्तक–रचना में जता रही हूँ कि स्त्री प्रेम की मिट्टी से बनी होती है। उसके प्यार को अवैध कहना औरत की जिन्दगी का अपमान है। देखिए कि वह अपने प्रेम में उस पति को भी शामिल कर लेती है, जो उसके जीवन में उसकी मरजी से नहीं आया।''[7] पत्नी बने बिना औरत का प्यार गुनाह है। ऐसे ही धर्मपत्नी बने बिना माँ बनना पाप। प्रेम स्त्री के लिए बड़ी चीज है। प्रेम अंदरूनी ताकत देती है। विवाहेतर संबंध को लोग व्यभिचार के खाते में डाल देते हैं। कन्या की कुवारेपन को तो लांछित किया जाता है। यदि वास्तव में स्त्री जीवन में प्रेम है तो वह कभी नहीं भूलती है। यह बात अलग है, डर, आतंक, इज्जत और मर्यादा, जो उस पर लादी गई है, के कारण वह खुल न सके। प्रेम के संसार में देह का समर्पण मामूली चीज है। वे मानती हैं कि ''देह क्या है, देह आत्मा से ऊपर तो नहीं है।''[8] इसी क्रम में उनके उपन्यासों में विवाहोपरांत प्रेम में डूबी नायिका अपने प्रेमी के साथ शरीरिक संबंध स्थापित करते दिखाई देती हैं।

'झूलानट' की शीलो भी प्रेम की भूख के कारण पति से मिलने की कोशिश करती है, लेकिन वह नहीं मिलता। तब वह अपने देवर बालकिशन की ओर झुक जाती है। जिसके पास उसे भरपूर प्यार मिलता है। वह तनमन से संतुष्ट हो जाती है। 'चाक' की सारंग भी श्रीधर मास्टर से प्रेम करती और शरीर को समर्पित करती है। पति से भयंकर ताड़ना मिलने पर भी श्रीधर के प्रेम से अलग नहीं हो पाती है। खुद मैत्रेयी पुष्पा भी डॉ. सिद्धार्थ के प्रेम में प्रसन्न हो जाती हैं। 'कही इशुरी की फाग' रजऊ विवाहिता होते हुए भी सभी के सामने ईशुरी के

कोठरी में जाती है। वह पति से प्रताड़ित होने के लिए भी तैयार हो जाती है। ऐसे जाने में न उसे कोई झिझक या शर्म, संकोच है।

लेखिका उर्पयुक्त संदर्भों के द्वारा प्रेम को शाश्वत मूल्य के रूप में देखती हैं। संस्कृति, परंपरा के घूँघट में जो स्त्री मन और शरीर के लिए बंधनों में फंसी हैं उन्हें तोड़देती हैं और स्वतंत्रता दिलाती हैं। जहाँ समाज में इंसान के लिए नैसर्गिक हक जीने के लिए होता है, वहाँ स्त्री के लिए भी समाज में कई भूमिकाएँ निभानी होती हैं।

विधवा या परित्यक्ता जीवन में स्वतंत्रता :

पुरूष हमेशा स्त्री से सेवा, प्यार, ममता, लगाव चाहता है। कम से कम स्त्री के बारे में यह सोचनाभी नहीं चाहता कि स्त्री भी एक इंसान है जिसमें जान, जिस्म और आत्मा है। पुरूष स्त्रियों को हमेशा माँ जैसी ममता, मंत्री जैसे सलाह–मशविरा देना, सेवा करते समय योग्य सेवक जैसे और शैया पर रंभा जैसी चाहता है। पत्नी की परिभाषा इस प्रकार माननेवालों को लेखिका दोगला, पाखंडी और स्वार्थी पुरूष मानती हैं। जो अपने सिवा किसी के बारे में सोचता ही नहीं। सृष्टि में प्रकृतिदत्त वस्तुएँ पुरूष हैं, जिनमें स्त्री भी शुमार है। स्त्री देह का भरपूर आनंद करनेवाले स्त्री देह पर बात नहीं करना चाहते हैं। जैसे ही स्त्री पुरूष अधिकारों से इन्कार करती है और जागरूकता, चेतना संपन्न होकर अपना अधिकार मांगती है तो घर, परिवार या समाज में उस पर तरह–तरह के ताड़नाएँ शुरू हो जाती हैं। पति किसी न किसी बहाने पत्नी पर इल्जाम लगाकर तिरस्कार करता और त्याग भी देता है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में परित्यक्ता जीवन कींघटनाएँहम देख सकते हैं।

'इदन्नमम' की कुसुमा भाभी अपने पति यशपाल द्वारा त्याग दी जाती है। वह जीवन को निराशा में न डुबोकर उस परिवार से दूर होती है, और दूसरे व्यक्ति जो ससुर लगनेवाला जो विधुर था उसके साथ रहने लगती है। वह कुसुमा के हर कष्ट–सुख में साथ देता है। दादा चाहते हुए भी कुसुमा को आर्थिक रूप से भविष्यकी सुरक्षा के लिए कुछ नहीं कर सकता है। क्योंकि उसके लिए कई पारिवारिक दबाव रहते हैं। सिर्फ अपना (दादा का हिस्सा) कुसुमा को दिलाकर संतुष्ट हो जाता है। इस रिश्ते को कुसुमा या दऊ अपराध नहीं मानते हैं। 'विजन' उपन्यास में भी आभा अपने पति द्वारा त्याग दी जाती है जिसके कारण परिवारवालों को दुःख, तनाव होता है। और समाज से कई रूपों में संघर्ष करना पड़ता है। आभा की

अमीरीपन ही उसके पति में हीनता का भाव पैदा कर उसे अलग होने के लिए मजबूर कर देती है। पति द्वारा प्रताड़ित होकर जीनेवाली परंपरा से आभा मुक्त हो जाती है, कहती है कि ''तमाम स्त्रियाँ मार खाते–खाते जीवन यापन करती रहती हैं, मगर मुकुल न तो तुम उन पतियों जैसे जाहिल थे, न हीमैं उन पत्नियों जैसी लाचार... मैं तुम्हारे उस खूँख्वार पौरूष पुरूषार्थ को नहीं झेल पाई। सॉरी डॉ. मुकुल! वेरी सॉरी।''[9] सामूहिक ठहाकों ने आभा नाम की डॉक्टर को कुचल डाला जैसा कि डॉ. छोपड़ा कहता है–''डॉ. आभा ईज मैड। शी इन सिनिकल। आभा पागल है, सनकी है। फ्रस्ट्रेटिड वुमैन। साली ने पति क्या छोड़ा, पुरूषों की दुश्मन हो गई। आई फेमिनिज्म की नानी।''[10] यह सारी यातनाएँ आभा के लिए मानसिक तनाव पैदा करते हैं। 'अल्मा कबूतरी' की अल्मा भी बिना शादी के गर्भवती होने पर भी हौसला दिखाती है। राणा उसे छोडकर चले जाने के बाद भी वहजीवनमें संघर्ष करते हुए आगे बढती है।

'इदन्नमम' उपन्यास में भी जगेसर अपनी पत्नी को त्यागकर मजदूरिन अहिल्या के साथ बितारहा था। एक दिन वह अचानक चिल्लाने लगता है और अहिल्या को गंदी, भद्दी गाली देने लगता है कि ''साली हराम की औलाद! छेख हमारी बाँहें। हमारे हाथ! हमारे होंठ! जे बीमारी कितै से आयी? कौन से यार ने दिया है जे रोग? तेरे कित्ते खसम.... दूध पियसिन ही सीख लिया सब कुछ...''[11] आखिर उसे मारा, पीटा और लात का भरपूर भारी प्रहार करके उसे भी त्याग कर नाते–रिश्ते तोड़ दिया। उसे न पैसा देता है, न डॉक्टर को दिखाता है उससे दूर भागता है। 'झूलानट' की शीलो पति सुमेर द्वारा त्याग दी जाने के बाद सास से विनती करती है कि ''अपने चरणों से अलग न करना अम्मा। इस घर में पड़ी रहने दो, मैं खेत कीघास... बुरी घड़ी में जनमी तुम्हारी चाकरनी रहूँगी। बालू की दुल्हन की टहल करूँगी। उनके बच्चे पालूँगी रूखी–सूखी खाकर घड़ी काट लूँगी। मायके में क्या सवाल जवाब नहीं होंगे? दिन–रात की सूली''[12] माँ भी बेटे के दुष्क्रम पर दुःख होती है और बहु शीलो को मोह–ममता रोटी के बदले में थाली परोसती और हिम्मत दिलाती रहती है।

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में मंसाराम भी पत्नी आनंदी को त्यागकर कदमबाई के पास आकर रहता है। आनंदी दो बेटों के साथ कई रूपों से मंसाराम की ध्यान खींचने के लिए कदमबाई और राणा को यातनाएं देती रहती है। 'कही ईशुरी फाग' की शोध छात्रा ऋतु की

माँ को भी अपने पिता उस पर चरित्रहीनता का आरोप लगा कर त्याग देता है।'गुनाह–बेगुनाह' उपन्यास की सुरिन्दर कौर अपनी नौकरी न छोड़ने के लिए परित्यक्ता हो जाती है। सहेली इला के जन्मदिन पर अपनी मनमर्जी से अपना वेतन खर्च करने की कीमत रिश्ते के अंत में चुकानी पड़ी समीना को ''अब्बू भी अब जान गए होंगे कि आसिफ साहब दहेज माँगने वाले शौहर नहीं, बीवी की कमाई को अपनी कमाई मानकर अपने खाते में जब्त करने जाने वाले शरीफ आदमी हैं।''[13] एस.आई. लक्ष्मी मैम भी वेतन न देने से ही परित्यक्ता हो जाती है।

विधवा जीवन भी स्त्री जीवन का एक रूप है। वह दुःखमय अकेली जीवन के लिए बाध्य हो जाती है। सामाजिक स्थितियों के कारण अशुभ, असुरक्षा और दया का पात्र, निस्साहाय हो जाती है। विधवा जीवन के बारे में भी मैत्रेयी पुष्पा अपने उपन्यासों में वर्णन करती हैं। कहीं विधवा होकर दूसरे पुरूष का आश्रय लेती है तो, कहीं विधवा होने पर पुरूष आश्रित न होकर अपनी बुद्धि, श्रम को आधार बनाती है। शिक्षा का सहारा लेकर दुःखमय जीवन को, अपने सारे भावनाओं को मारकर, पुरूष से कोई भी सहारा लिये बिना संघर्ष कर जीती हैं। सामान्य रूप से विधवा स्त्री को परिवारवालों से, समाज के पुरूष से भी कई रूपों में खतरनाक परिस्थितियाँ झेलने के लिए बाध्य करती रहती हैं।

'बेतवा बहती रही' उपन्यास में विवाह उपरांत एक बच्चे को जन्म देने के बादउर्वशी का पति गुजर जाता है। तब से वैधव्य जीवन बिताती रहती है। वह इतनी अबोध थी कि पति मरने के बाद वैधव्य ढोना भी नहीं जानती है। रोना भी नहीं जानती है। घर–परिवार वाले भी इस हालत को सहन नहीं कर पाते हैं। उसकी प्राणमयी दोस्त मीरा भी बहुत परेशान हो जाती है। बाद में उर्वशी का भाई आर्थिक स्वलाभ के लिए विधवा बहन को मीरा के पापा के साथ ब्याह कर देता है।

विधवा होकर दूसरे पुरूष से नफरत और दूर भागनेवाली कस्तूरी की कथा बिल्कुल अलग है, एक छोटी बेटी होते हुए भी वह पुरूष पर आश्रित हुए बिना शिक्षा और आगे बढ़ने के लिए किताबों का सहारा लेती है। बचपन में कस्तूरी की सहेली रामश्री ही उसकी गुरू है। कस्तूरी को प्रोत्सह देती है–कि 'पढ़ो, सोचो और अपने पाँव पर खड़ी हो जाओष्यही गुरुमंत्र वह आगे चलकर मैत्रेयी पुष्पा को देती है। रामश्री और किताबों की संगति में ही कस्तूरी

धीरे–धीरे मर्दों की इस दुनिया में खड़े होने के लायक बन जाती है। पढ़–लिखकर काम करने लायक हो जाती है, एक मात्र संतान मैत्रेयी पुष्पा के पालन–पोषण के लिए वह नौकरी करती है।

'चाक' की रेशम विधवा होकर गर्भधारण करने की हिम्मत रखती है तो उसे हत्या कर दी जाती है। मैत्रेयीपुष्पायहाँ नया प्रश्न उठाती हैं कि विधवा कागर्भधारण करना क्यों अपराध है? क्यों वहबच्चों को जन्म दे नहीं सकती? ऐसे ही कुसमा भी अपने दाऊ के कारण गर्भधारण करती है।मैत्रेयी पुष्पा की नायिका अगर विधवा होती भी है तो सती होने के लिए ढोंग तो करती है, मृत्यु के लिए अनुमति नहीं देती है। इसीलिए लेखिका ने जब भुवन मोहिनी सती होने के समय आया तो मंदिर में पूजा करने के नाम से जाकर अपने पूर्व प्रेमी के साथ भाग जाती है। विधवा होने के बाद पारिवारिक, सामाजिक रूढ़ियाँ जो विधवा के जीवन में थमा दिये थे उन सभी को लेखिका खंडन करती है। और अपने नायिका को फिर से औरत रूपी, जीवन की आकाँक्षा, खान पान, वेष–भूषा, शारीरिक इच्छाएँ जो स्त्री जीवन में महत्व रखती उन सभी के लिए स्वेच्छा देती है। जैसे शारीरिक जरूरतें, माँ बनने की लालसा आदि।

मातृत्व की स्वतंत्रता :

मैत्रेयी पुष्पा स्त्री स्वतंत्रता की पक्षधर हैं। अनेक स्वतंत्रताओं में माँ बनने का निर्णय लेनागर्भधारण की स्वतंत्रता भी स्त्री की स्वतंत्रता के अधिकारों में सेएक है। इसलिए माँ बनने के लिए पति के साथ विवाह में बाँधकर माँ बनती है।विधवा होकर जिससे शारीरिक संबंध रखती है उनके साथ भी बच्चों को जन्म देकर माँ बनाती है। और बड़ी बात तो यह है कि बिना शादी की कुंवारी को भी माँ बनाकर स्त्री की नैसर्गिक प्रजनन शक्ति को अपने अनुसार उपयोगकर माँ बनने के बाद मातृत्व की मधुरता का अहसास नायिका को दिलाती है। जबकि पितृसत्तात्मक समाज ने माँ के मिथक को शारगीय और आदर्शवाद बनाकर रखा है। माँ बनकर सम्मानपूर्वक जीवन जीने के लिए स्त्रीको किसी पुरूष की पत्नी होना चाहिए। लेखिका इस पुरूषवादी मान, मर्यादा को ध्वस्त करती है। माँ बनने की स्वतंत्रता गर्भधारण करने का निर्णय पूर्णतः स्त्री को ही देती हैं। इस बात को महत्व देती हुई लेखिका कहती है कि ''किसी की अचल संपत्ति होकर रहने से इन्कार करने वाली स्त्रियाँ जाहिर है कि पुरूष सत्ता को जहर की जात लगती है; लेकिन जब वे किसी सत्ता को स्वीकार ही नहीं करना चाहतीं तो अपने ढंग

का ही समाज बनाएंगी।''[14] जो स्थापित नियमों में नहीं बँधती, उसे माँ की श्रेणी में रखना दुविधाग्रस्त रहता है। ऐसे समूह में आनेवाली है कुँवारी माँ, परित्यक्ता माँ, विधवा माँ आदि। इनकी नायिकाओं में ऐसे नियमों, रीति, नीतियों का अतिक्रमणकर माँ बनने वाली 'इदन्नमम' की कुसुमा भाभी परित्यक्ता के रूप में दाऊजी के द्वारा गर्भधारण कर अवांछित मातृत्व को अंजाम देती है। विधवा के रूप में माँ बनने के लिए 'चाक' की रेशम गर्भधारण कर पारिवारिक संस्थाऔर उसके नियमों का उल्लंघन करती है, परिणामतः उसकी हत्या कर दी जाती है।लेखिका एक नया प्रश्न उठाती है कि विधवा को भी गर्भधारण करके संतान पैदा करने और जीने का अधिकार क्यों नहीं मिले? भारतीय नारी के जीवन के लिए यह नयी स्वतंत्रता है। जीवन में आज भी शायद ही कोई इसे स्वीकार करे, लेकिन सन 1853 इं में महात्मा फूले दंपत्तियों जैसे मानवता वादियों ने इस प्रकार के विधवा विरोधी क्रूर कुरूपताओं के खिलाफ खड़े होकर विधवा माँ और बच्चों के संरक्षणार्थ एक आश्रम खोले थे। उन्होंनेविधवा एवं बच्चों का संरक्षण, पोषण, पढ़ाई का बोझ अपने कंधों पर लिया। स्त्री–विरोधी अत्याचारों केविरोध में पत्रों को हर गली में बाँटते थे। इसके कारण उस समय के ब्राह्मण लोग इन दोनों के शत्रु बन गये थे। इसी क्रम में इन दोनों ने एक विधवा के बेटे को भी गोद लेकर अपने वारिस के रूप में स्वीकार किया थाउसका नाम है यशवंत।

मैत्रेयी पुष्पाभी फूले दंपत्तियों जैसे मानवतावादी दृष्टिकोण का समर्थन करती है। विधवा माँ बनने की स्त्री कीस्वतंत्रता को महत्व देती है। 'चाक' की बनिया की बहू भी पति के नामर्द होने के कारण केलाश सिंह के साथ यौन संबंध बनाती हैऔर माँ बनने की इच्छा पूरी कर लेती है। स्त्री पर थोपी जानेवाली रीतियों का वे अतिक्रमण करती हैं। कुँवारी माँ बनने का साहस 'अलमा कबूतरी' की अल्मा में भीबनकर दिखाती है। इस प्रकार लेखिका स्त्री के लिए स्वतंत्रता चाहती है और कहती हैं कि स्त्री शरीर की यौवनिकता पुरूष को स्वामी मानकर उसके अनुसार तबाह करने, वंश चलाने के लिए नहीं बल्कि स्त्री अपनी सहज प्रकृति प्रजनन शक्ति को अपनी इच्छा के अनुसार माँ बनकर अपने स्त्रीत्व की, ममत्व की भावना को महत्व देने मेंही स्त्री की स्वतंत्रता है।

अस्तित्व और अस्मिता के प्रति जागरूक नारी :

'अस्मिता' शब्द वस्तुतः दर्शन और गणित शास्त्र से संबंधित है। जर्मनी के प्रसिद्ध गणितज्ञ लीबिनित्ज ने बताया कि ''प्रत्येक वस्तु का अपने या अन्य वस्तुओं के साथ समानता का संबंध नहीं होता। सभी व्यक्ति समान, शारीरिक संरचना से निर्मित होने पर भी पृथक्–पृथक् का संबंध रखते हैं और वहीं उनकी पहचान या अस्मिता होती है।''[15] आधुनिक युग की बीसवी शताब्दी में हुए दो विश्व युद्धों की विभीषिका ने व्यक्ति के जीवन एवं चिंतन को प्रभावित किया। वह अपनी पहचान खोने लगा, जिससे जीवन–मूल्य विघटित होने लगे। अस्तित्व ने क्षणवादी मनोवृत्ति को जन्म दिया। यह क्षणवादी विचारधारा को बल देती है, इससे मनुष्य कुण्ठाग्रस्त होकर शांति की खोज करने लगा। इसी खोज से आवश्यकता हुई 'अस्मिता की तलाश' की। अस्मिता का प्रश्न परिवेश के साथ अलगाव की भावना से उभरता है। इसमें निजता एवं आत्मनिर्णय का भाव प्रधान रूप से रहता है। वर्तमान समय में समाज एवं समूह आदि संस्थाओं का वर्चस्व बढ़ा। इस स्थिति में व्यक्ति अपनी पहचान बनाने की कोशिश में लगा। अस्मिता की अवधारणा सामाजिकता और सामूहिकता के विरोध में सामने आयी।

स्वतंत्रता के पश्चात भारत में 'अस्मिता' का प्रश्न मात्र विचारधारा के रूप में ही नहीं अपितु आंदोलन के रूप में सामने आया। जातीय, क्षेत्रीय, भाषायी, दलित, स्त्री, ये सभी अस्मिताएँ अपनी लड़ाई लड़ रहे हैं। अस्मिता संघर्ष की पहचान से तात्पर्य है–दलित और स्त्री पात्र समकालीन हिन्दी उपन्यासों में कहाँ अपने को मनवाने की कोशिश कर रहे हैं। इक्कीसवीं सदी की नारी अब अबला, पराश्रिता, सुकोमला नहीं रही। वर्तमान चुनौतियों और संकटों में उसकी रचनात्मक तथा शक्ति–रूपा छवि उजागर होने लगी है। दया, क्षमा, स्नेह, वात्सल्य तथा महत्व की प्रतिमूर्ति होते हुए भी परिवार, समाज तथा राष्ट्र के निर्माण और विकास में भी सक्रिय एवं समाहित है। एक समय था जब स्त्री चार दीवारों में बंधी थी। उसके पास कोई अधिकार नहीं थे। विगत दशकों में हुए अस्मितापरक आंदोलनों की भाँति ही स्त्री भी अपने अधिकार, अपने अस्तित्व एवं अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक हुई है। हजारों वर्ष से नारी और मुक्ति नदी के दो किनारे रहे हैं। सदियों से पुरूष समाज स्त्री की अस्मिता को कुचलता आ रहा था, परंतु स्त्री स्वावलंबन एवं आत्मसम्मान की भावना प्रस्फुटित होने के कारण एक चुनौती के रूप में पुरूष व्यवस्था के सम्मुख खड़ी हो रही है।

बीसवीं शताब्दी में आरंभ से आधुनिक नारी ने अपने अधिकारों के लिए जिस नारी मुक्ति आंदोलन तथा अस्मिता के लिए संघर्ष की, उसके चलते नारी सदियों की गुलामी की जंजीरों को तोड़कर विश्व क्षितिज पर उदित हुई। इसी सजगता ने आदर्शवादी संस्कारों की जकड़ को शिथिल कर दिया जिससे व्यक्ति स्वातंत्रता का विकास हुआ और नारी अपनी अस्मिता के प्रति सजग हुई। नारी अस्मिता से तात्पर्य एक नारी की अपनी विशिष्टता अथवा पहचान को बनाने वाले मूलभूत तत्वों से हैं। नारी को पुरूष के समान ही सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि अधिकार प्राप्त हो। नारी के अधिकारों का हनन, नारी अस्मिता का हनन है और इन अधिकारों की प्राप्ति नारी–अस्मिता की प्रतिष्ठा की द्योतक हाती है।

मैत्रेयी पुष्पा के सभी पात्र व्यक्ति की अस्मिता और अस्तित्व का ही पहचान के लिए प्रयासरत रही हैं। इनके उपन्यास 'चाक' में हर तरह से स्त्री का दृष्टिकोण दिखाई देता है। अपनी जिंदगी पर जो पितृसत्तात्मक व्यवस्था संस्कार हावी है, जो उसको तोड़ते, काटते, छीजते हैं, उनको बदलने का प्रयास करती हैं। स्त्री अपनी संस्कृति में बदलाव लाती चली जाती है और कैसे चौखट से निकलकर पंचायत तक पहुँचती है। चाक में जहाँ पिछड़ी जाति के द्वन्दों को उभारा गया है, औरत को बदलाव की वाहिका और शिक्षा का सहयोग शास्त्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'अल्मा कबूतरी' में भी आरंभ से अंत तक औरत तथा शिक्षा को बदलाव के बुनियादी हथियारों के रूप में पेश किया गया है।

आज भी ग्रामीण भारत में दलितों के रूप में अनगिनत कदमबाई, राणा, अल्मा, भूरी बाई, रामसिंह, मलिया जैसे पात्र मिल जाते हैं। राणा को स्कूल में अपमान, निरुत्साह मिल जाता है। पानी तक पीने नहीं देते हैं। यह आज के वैज्ञानिक, तकनीकी युग की भी सच्चाई यथार्थ है। सवर्ण औलादों और शिक्षकों को यह मंजूर नहीं कि कबूतरा उनके ज्ञान के अस्त्र–शास्त्रों को प्राप्त करें। कज्जा लोग यह सहन नहीं कर सके कि कबूतरा शिक्षित हो, वे बैद–डाकघर के पास जाएँ। नौकर करें, सफेद कपड़ा पहने, घड़ी बाँधें। सवर्ण जाति के पुलिस को भी यह बर्दाश्त नहीं है। यदि कोई कबूतरा ऐसा करता है तो पुलिस की नजर में एक षड़यंत्रकारी बन जाता है।

मैत्रेयीपुष्पा के तमाम नारी–पात्र अपनी ताकत के लिए ही प्रसिद्ध हैं। वे बदलाव का माध्यम बनने की कोशिश करते हैं, लेकिन नायिका अल्मा से कहीं ज्यादा प्रभाव छोड़ती है

अनपढ़ कदमबाई और भूरीबाई। संभव है इसका एक कारण यह हो कि कदमबाई, भूरीबाई और अल्मा कबूतरी, तीनों एक ही किरदार के विभिन्न अवस्थाओं के रूप हैं, जहाँ शुरूआती नायिका कदमबाई बदलाव की हताशाभरी छटपटाहट को खोलती है, वहीं भूरीबाई विद्रोह का अंकुरण करती है। कदमबाई वैकल्पिक रवैया अपनाती है, लेकिन उसे तार्किक बिन्दु तक पहुँचाती है अल्मा। जाहिर है हर पीढ़ी का अपना तरीका होता है स्थितियों को देखने और उनपर प्रतिक्रिया करने का। तीनों स्त्रियाँ अलग–अलग पीढ़ियों का प्रतिनिधित्व करती है अल्मा तक पहुँचते–पहुँचते अस्मिता बोध एक स्थापना की अवस्था में बदल जाता है। यह वह अवस्था है जहाँ हक के लिए मनुहारे नहीं हैं, संघर्ष और अधिकार सत्ता की उपलब्धि का आनंद है।

सामाजिक रूप में दरअसल जब तक लोगासिरी, कलावती, रेशमी, सारंग जैसी स्त्रियों को श्रीधर, भंवर, स्कूली बच्चे, गजाधर सिंह (ससुर) भँवर जैसे सहयोगी पुरूष नहीं मिलेंगे तब तक वैसा सभ्य समाज बन ही नहीं सकता, जिसमें स्त्री–पुरूष में तुला का संतुलन हो या सामाजिक न्याय सभी के लिए हो। ऐसे ही 'बेतवा बहती रही' की उर्वशी भी अस्मिता बनाये रखती है। लेखिका ने सर्वदमन, बैरागी, उदय शत्रुजीत सिंह, विसंभर सिंह यादवजैसे मनुष्यत्व से भरपूर पात्रों को सृजित कर यह संदेश दिया है कि किसी भी देश के जीवन, समाज, सभ्यताओं के समुन्नत होने के लिए ऐसे ही पुरूषों की दरकार है, जो स्त्री को सुरक्षा, आसरा, सम्मान और सहयोग दे सकें। 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में भी मैत्रेयी पुष्पा बेहद साहसी, सरल प्रतिभावान, सुंदर कस्बाइ लड़की जो अपने गुणों की ऊष्मा से कुँवारेपन में ही एक खास पहचान बना चुकी थी। जब ब्याह के बाद दिल्ली शहर में आती है तो बात–बात पर उसे गँवार कहकर उसके व्यक्तित्व हनन के सायास–प्रयास किए जाने लगते हैं। एक तरह से उनकी पहचान को मिटा देने पर तुले थे। उनकी बातों में हम देखते हैं कि ''मैं नाच रही थी किसी के साथ–साथ, अनगढ़ और आदिम–सा नाच... जैसे मेरी जीवन मूल्यों का हिस्सा यह भी हो। जब–जब मेरा पाँव डॉ. सिद्धार्थ के पाँव पर पड़ जाता, वे मुस्कराकर मुझे संभाल लेते।''[16] वे आत्मसम्मान के साथ कहती हैं कि ''मैं नाच के लिए नहीं उठी थी अपने हकों के लिए खड़ी हुई थी जिनसे मेरी जिन्दगी के सम्मान का वास्ता था।''[17]

3.3 आर्थिक :

अर्थ जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। इसे अर्जित करने के लिए पुरूषार्थ की आवश्यकता है। इस पुरूषार्थ केशुचिता पर नीतिशास्त्र का ध्यान कम ही गया। इस शुचिता केसंबंध में कथन है कि " 'यो अर्थ शुचि'–अर्थात् जो अर्थार्जन की दृष्टि से पवित्र है वास्तव में पवित्र है। साम्यवाद के अनुसार अर्थार्जन की स्थिति योग्यता के अनुसार काम और आवश्यकता के अनुसार दाम।"[18] इस स्थिति में शोषण की समस्या नहीं रहती।

संसार में अर्थ का मूल परिश्रम है, यह परिश्रम बौद्धिक या शारीरिक भी हो सकता है। परिश्रम के बिना आवश्यक पदार्थों को प्राप्त करना चोरी है। इसी को शोषण कहा जा सकता है। आर्थिक शोषण का प्रभाव पारिवारिक जीवन पर पूर्णतः पड़ता है। पारिवारिक सुख–शांति, नैतिकता आदि बहुत हद तक अर्थ की धुरी पर चक्कर काटते हैं। आज गाँवों में सबसे अधिक स्त्रियाँ खेती में लगी है। उनमें भी भूमिहीन मजदूरिनों की तादात अधिक है, जबकि जमीन पर स्वामित्व रखनेवाले अधिकहै। इसी तरह शहरों में काम करनेवाली ज्यादातर अनियोजित सेक्टर में ही है जहाँ हको और कानूनी संरक्षण का सवाल ही नहीं है। उच्चपदस्थ स्त्रियों की संख्या अभी भी बहुत कम ही है, और अंतर सिर्फ इतना है कि मध्यवर्गीय कामकाजी स्त्रियाँ जो नियोजित सेक्टर में है, उन्हें भरपूर आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त है। उच्च वर्गीय नारियाँ घर बैठकर पति की कमाई पर आश्रित है उन की स्थिति बाहरी तौर से उतना स्पष्ट नजर नहीं आता है। 'काम धंधा' जैसे शब्द कामकाजी पुरूष के संदर्भ में उसकी मर्दांनगी, अकड़ और सम्मान को ध्वनित करता है। वही एक कामकाजी स्त्री के संदर्भ में अपमानसूचक बन जाते है–"वह धन्धे पर निकली है–यानी कि वेश्या है। अंग्रेजी में अलबत्ता कुछ हद तक शब्दों के वनज बदले हैं–यानी आज से चालीस साल पहले 'दि प्रोफेशनल वूमन' का सीधा अर्थ था–वेश्या। आज वह उस कामकाजी महिला का सीधा सूचक है जो वकील, डॉक्टर, प्रोफेसर, इंजीनियर, किसी सम्मानीय विशिष्ट पेशे से जुड़ी। प्रोफेशनल का तर्जुमा 'पेशेवर' शब्द भी वेश्यावृत्ति की ध्वनी लिये है"[19] समाज में स्त्री के प्रति जो मानसिकता बनी हुई है उसका रूप इस कथन में दिखता है।

मैत्रेयी पुष्पा की स्त्रियाँ काम–काज वाले संसार से चलकर आती है। इन कामगार स्त्रियों की मुक्ति उनके काम–काज रोजमर्रा के संघर्षों से जुड़ी है। वह चाहे 'इदन्नमम्' की

मंदा हो या 'चाक्' की सारंग, 'अल्मा कुमारी' की अल्मा, कदम या भूरी बाई हो। ये वे स्त्रियाँ हैं जो जीवन के प्रत्यक्ष कुरूक्षेत्र में हैं। लेखिका सोचती हैकि ''मैं चट्टानों से टकरा–टकराकर पानी की तरह रास्ता बनाने निकली हूँ।''[20] इनकी नायिका भी संकल्पबद्ध है कि जहाँ व्यवस्था चट्टान की तरह खड़ी है, उससे टकरा–टकराकर अपनी राह निकलने को है।
शहरी और पढ़ी लिखी उच्च शिक्षा प्राप्त कर काम करनेवाली स्त्रियों की शोषण को भी स्पष्ट रूप से चित्रित किया है। यहां तक कि जहाँ पुलिस के रूप में थाने में नियुक्त इला, समीना जैसी लड़कियाँ संघर्षकरते हुए कैसे पुरूष विरोध व्यवस्था से जूझती है इसकीयथार्थ स्थिति को उजागर करती है। कामकाजी स्त्री का शोषण परिवारवाले कैसे करते हैं और वह उन स्थितियों का कैसे सामनाकर समाधान देती है ये समझाती है। लेखिका की माताजी कस्तूरी देवी खुद चाहती थी किहै औरत भी पढ़–लिखकरखुद कमाएं, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बने, जिससे औरत अपने आपमें निश्चित रहती है। बेरोजगार स्त्री अपने हाथ–पाँव को आजीविका का आधार बनाकर बाहर निकलती है। मैत्रेयी पुष्पा आर्थिक स्वतंत्रता के लिए केवल उन्हीं को नहीं लेती है जो दफ्तरों में अधिकारी, विद्यालयों में शिक्षिका, अस्पताल में डॉक्टर या नर्सहै, इनके अलावा किसान–बेटियों किसान–पत्नियों, किसान–मालिनों, कुंजडिनों, धोबिनों जैसी स्त्रियों को भी आर्थिक रूप सेस्वतंत्र कमाऊ स्त्रियों में गिनती हैं।

इसलिए वे गृहस्थी करती औरत को निठल्ली नहीं और नाहीं फसल की सुरक्षा में लगी किसान की पत्नी के श्रम को बेकीमत समझती हैं। पढ़ी–लिखी लड़की को किसान से ब्याह करने से नकारती है, बल्कि प्रोत्साहित करती है कि पढ़ाई के जरिए कृषि विज्ञान के साथ हरितक्रांति में भाग ले। ऐसी स्त्री आर्थिक रूप से पराधीन रहनेवाली नहीं है। शारीरिक श्रम में जहाँ पहले स्त्री पुरूष दोनों बराबर से शरीक होते थे। किसान उन तथाकथित सभ्यशिक्षित नौकरीपेशा या कस्बाई मानसिकता वाले पुरूषों के मुकाबले ज्यादा लिबरल होते है। कृषि के द्वारा आर्थिक स्वतंत्रता पाने वाली स्त्री है शीलो। जब से बालकिशन उसके जीवन में आया था उसका मन किसानी में कुछ ज्यादा ही लग गयाथा। अब खेती से जुडे हुएऐलकार अफसरों का प्रिय किसान बनगयीथी। पति को पैसों के मामले में सावधानी से व्यवहार करने के लिए समझाती है कि''ओ रेंगटा अम्मा के सीसा में रुपइया भर–भरकर कुछ न पाओगे। माँ की महिमा चोर–चकार नहीं मानते। छिन जाएगी सारी दौलत। ऊपर से मोह–ममता में गोती

खाती बूढ़ी... पुलिसिया भइया ही निथार ले जाएगा रकम''[21] 'चाक' का रंजीत भी कृषि विज्ञान पढ़ता है दोनों सारंग–रंजीत शारीरिक श्रम करते हैं।

'गुनाह–बेगुनाह' उपन्यास की पुलिस कर्मी कॉनस्टेबल समीना अपनी कमाई को पति के खाते में डालती है, वही सीनियर पुलिस कर्मी एस.आई लक्ष्मी मैम की तनख्वाह मिलते ही हर महीना ससुर जी आकर ले जाते। इतना भी नहीं छोड़ते थे कि उनका खर्चा तो निकल जाये। पुलिस कर्मी समीना और इला जब शादी की बात को लेकर चर्चा करते हैं तब शादी निभाने के विचार में वे बीसियों तरह के डर व्यक्त करते हैं। लक्ष्मी मैम सच ही कहती हैं कि ''उसके मन में रूपये–पैसेवाला हक कभी नहीं आना चाहिए नही ंतो वह फाहशा...।''[22] पढ़ी–लिखी आभा काम करने की जगह पर पुरूष अहंकार के कारण कई तरह से शोषित की जाती है। मरीज 'सरोज' जो पच्चीस साल की उम्रवाली हैउसे डॉ. अनुज बलात्कार करताहै तो आभा उसके विरोध में एफ.आई.आर. दर्ज कराती है। लेकिन हेड आफ द डिपार्टमेंट से मिलकर डॉ. अनुज 'सरोज' के पति को पैसा देकर झूठा केस बना देता है।वह आभा से सीधा कहकर डराता है कि ''नौकरी करना है कि नहीं डॉ. आभा''[23] और बयान बदलाकर कमीनगी की हद तक गिर जाता है। कहता है–''डॉ. आभा ईज मैड। शी इज सिनिकल। आभा पागल है, सनकी है। प्रस्ट्रेटिड वुमैन (कुंठित औरत)।''[24]जहाँ पर पुरुष मानसिकता हावी है वहाँ पर स्त्री का विरोध करना भी उसी के लिए नुकसान दायक हो जाता है।

गाँवों में कामकाजी औरत खेती–बाड़ी, धंधे कर कमाती है तो शहरों में भवन निर्माणों में, घरों में नौकरानी का काम या मशीनों में मजदूरी आदि का काम करती है।ऐसे जगहों पर कहीं न कहीं उनका शारीरिक, मानसिक शोषण होता हीहै। क्रैशर का काम करनेवाली मजदूर स्त्रियों को, उनकी बेटियों को ठेकेदार और शराब के ठेकेदार, उन्हें रात–दिन काम कराते हैं और ज्यादा पैसों की लालसा दिखाकर शारीरिक शोषण करते हैं। जिसके कारणवहाँ कीस्त्रियाँ अनेक रोगों से पीड़ित होती हैं और पतियों से मार भी खाती हैं। अहल्या इसका उदाहरण है, जो ठेकेदार जगेसर से शारीरिक संबंध रखने से रोग पकड़लेताहै। उस स्थिति मेंअहिल्याकी माँ लाचार होकर जगेसर सेकहती है कि ''अरे हमारी तो बेबसी है ठेकेदार, हमें पेट के लाने दिन में ही पथरा नहीं तोड़ने पड़त, रात में देह भी ... हमें बिना रौदे–चीथे तुम्हारी बिरादरी के लोग पत्थरों से हाथ नहीं लगाने देते। बिटियाँ का करे, बूढ़ी मताई को, बाप को काम नहीं देता

कोई... और जनी की जात मरद बिरोबर काम नहीं कर पाती सो सहद के छत्ता की तरह निचोरत है मालिक लोग। फिर हमारी बिटिया कैसे रहें कुँआरी? कैसे रहे निरोग? हम का जाने कि की ने दई जा बीमारी''[25] लाचार निस्साहाय और बेबस औरत होने का नतीजा यहीं होता है,जिसका मार्मिक चित्रण इस कथन से स्पष्ट हो जाता है।

अल्मा कबूतरी की कदमबाई और बिरादरी के लोग अपने जीवन यापन के लिए दारू, शराब बनाकर बेचते रहते हैं। जब भी पुलिस बस्ती में आकर छापा मारतीहै तब पुरूष लोग जंगल में भागजाते हैंऔर स्त्रियाँ, बच्चे बच जाते हैं। पुलिस कबूतरी स्त्रियों को क्रूर रूप से शोषण करते हैं। गर्भवति स्त्रियों तक को नहीं छोड़ते। गरीबी, अभाव, विवशता के कारण वे पुलिस के हाथों में शारीरिक शिकार बन जाती है। जीवन यापन के लिए अपने बच्चे और पतियों का पालन–पोषण करने के लिए वेश्या बनकर पैसा कमाती हैं। शरीर को बेचकर धंधा चलाती हैं।यहाँ पर भी पुलिस छापा मारती है। पुलिस के हाथ पकड़ी जाती तो पुलिस इनकेसाथ जानवर से बढ़कर व्यवहार करते हैं। इस विषय को मैत्रेयी पुष्पा गुनाह–बेगुनाह उपन्यास में बहुत ही मार्मिक ढंग से वर्णन करती हैं। जैसे ही वेश्या पकड़ी जाती हैकान्स्टेबल अपना डंडा रेशमी के स्तनों पर चलाता है बारी–बारी वह डंडा और स्तनों का खेल खेलने लगता है। ये सब एक महिला कांस्टेबल की आंखों के सामने होता है। इला सहकर्मियों के नफरत और फटकार को झेलती हुई खड़ी हो जाती तो मुजरिम वेश्य रेशमी उम्र 26 सालवाली इला से कह देती है कि '' 'दीदी आप... इन लोगों ने तो आपके आने से पहले ही तलाशी ले ली। सारे कपड़े उतार लिये, अब फिर...' सटाक से डंडा टूटा रेशमी की बाँह पर। साली, हरामजादी, यारों के सामने कपड़ा खोलते नहीं झिझकती, न घबराती। हमें लाजवंती बनकर दिखा रही है। इतना कहकर खुद एस.आई. ने रेशम का कुर्ता ऐसे फाड़ा कि उसमें छिपानेवाली चीजें ही सबसे ज्यादा उघडीं।''[26]

समीना, इला या सुरिंदर कौर अपनी प्रखर भावात्मकता के बावजूद टूटकर भी झुकती नहीं। अपनी मनमर्जी से निर्णय खुद लेती है। जब पुलिस नौकरी में प्राणांतक घटना को देखकर सुरिंदर कौर का गर्भपात हो जाता है तो पति बहुत प्यार के साथ समझाताहैकि''यह नौकरी छोड़, इस्तीफा लिख, इसमें अपनी जिन्दगी मत गँवाओ।''[27]''अब बात यह है कि पंद्रह दिन इंतजार करूँगा कि तू इस्तीफा देकर आती है या नहीं। नौकरी नहीं छोड़ती तो फिर मुझे

छोड़''[28] जुल्मी व्यवस्था से टूटी हारी सुरिंदर अपनी नौकरी न छोड़ने का ही निर्णय लेती है। अमृत सिंह (पति) को मोबाइल पर एस.एम.एस. में भेजती है कि ''तुम्हीं तो कहते थे जिन चीजों से पहले धक्का लगता है, सदमा होता है, उनकी फिर आदत पड़ जाती है। आदत नहीं पड़ती तो यह निश्चित हो जाता है कि उस व्यवहार में बदलाव लाना जरूरी है। अमृत, अब थर्ड डिग्री का चलन ज्यादा नहीं टिकने वाला। मगम यह क्या कि तुम ही अपनी बात से मुकरने लगे।''[29] इसमें लेखिका दिखाती है किमुश्किलों का सामना करना सीखें आज की स्त्रियाँ। और वह मानती है कि व्यवस्था और कानून में जरूर बदलाव आएगा।

पुलिस नौकरी में स्त्रियाँ स्वयं पुलिस, सहकर्मियों के अभद्र बोलों, गालियों, अन्याय, और अत्याचार से लडती हैं। कभी जीत हुई है, उसकी तो कभी ट्रॉंसफर कर दिया गया। कैरियर की चीर–फाड करने से इनसान खत्म हो जाए, यह नामुमकिन है। अंतरमन से उठते ज्ञान प्रकाशन के संकल्पों के खातिर बड़ी से बड़ी बगावत, विद्रोह, दुस्साहस जैसी गतिविधियों को अंजाम दिया है। पुरूष व्यवस्था स्त्री को जितना दबाने के लिए कोशिश करेगा उतनी तेजी से ऊपर उठती है। यही आज की बदलाव की रवैया है।

3.4 राजनीतिक :

राजनीति एक ऐसी शक्ति है, जो शासन के सभी नियमों को चलाने, बनाने में समर्थ है। लोकतंत्र और गणतंत्र होते हुए भी हमारे देश में कोई भी लड़ाई लड़ने के लिए पोजीशन और पावर जरूरी है।स्त्री–विरोधी राजनीति तो हरेक संस्था में चलती है। अनपढ़, अशिक्षित, कमजोर, पिछड़े हुए लोगों को राजनीति के लोग अधिक धोखा देते हैं। सत्ता के बिना पत्ता नहीं हिल सकता है। पूर्व राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल के अनुसार हैं–''स्त्री की सत्ता ही बराबरी का दर्जा दे सकती है। किसी को राष्ट्रपति बनाया जाता है, तो उसका पुरूष या महिला होना मायने नहीं रखता। तब जेंडर की तरफ शायद किसी का ध्यान नहीं जाता। असल में सत्ता जेंडर से आगे की चीज है। जेंडर का मसला घर की चारदीवारी में टकराता है। यह समस्या सत्ता के साथ नहीं आती।''[30] राजनीति ही आजकल सब ताकतें चलाने का केंद्रबिन्दु है। उसके बिना न राज्य, न लोग।

मैत्रेयी पुष्पाके 'इदन्नमम', 'चाक' और 'अल्मा कबूतरी' उपन्यासों में नारी स्वतंत्रता, नारी–मुक्ति, नारी–शक्ति के विकास और उसकी राजनीतिक सत्ता कायम करने के संघर्ष का साक्षात्कार होता है। इन उपन्यासों में चित्रित संस्कृति तथाकथित 'भारतीय संस्कृति' यानी यथास्थिति की रक्षा करने के लिए अतीत का गौरव–गान करने वाली संस्कृति नहीं बल्कि पिछड़ेपन और शोषण–उत्पीड़न से मुक्त मानवीय संबंध की स्थापना करने वाली आधुनिक संस्कृति है। 'चाक' नारी की मुक्ति और उसकी सत्ता कायम करने के विकट संघर्ष की कथा है फिर भी यह नारीवादी कथा नहीं। आधार भी है कि सारंग लड़ती है तो पुरूषों की प्रभुता के खिलाफ, बराबरी का हक पाने के लिए, लेकिन वह पुरूष मात्र को दुश्मन नहीं मानती, इसलिए नारी–मुक्ति के लिए नारीवादी सिद्धांत स्थापित नहीं करती। समाज में नारी की सत्ता कायम करने में श्रीधर प्रजापति और भँवर उसके प्रेरणा स्रोत होने के साथ ही शक्ति के भी स्रोत हैं। और बाबा गजाधर सिंह उसके संरक्षक उसका पति रंजीत कभी उसके साथ होता है, कभी उसके खिलाफ क्योंकि पत्नी के रूप में साथ रहने वाली नारी की स्वतंत्रता और सत्ता कायम करने का संघर्ष सापेक्ष रूप से व्यक्ति और चरित्र को जटिल या पेचीदा बना ही देता है। नारी–स्वतंत्रता या किसी की भी स्वतंत्रता, एकदम निरपेक्ष नहीं हो सकती। नारी–मुक्ति के जागरण के साथ ही गाँव में नया सामाजिक जागरण भी आया है, जिससे समाज में जातीय संघर्ष भी छिड़ा हुआ है। गाँव में पूँजीवाद कई रूपों में पहुँचा है। ट्रैक्टर और हारवेस्टर कंबाईन और पूँजी बाजार तथा नए कारोबार के जरिए पूँजी जमा करने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है।

प्रधान का सरकारी फंड हड़पने के लिए तरह–तरह की युक्तियाँ भिड़ाना, नाकाम रहने पर घाघ कृटिल राजनीतिज्ञ की तरह धूर्ततापूर्ण पाला बदल देना!रंजीत को उकसा कर एक ओर जातिवादी राजनीति फैलाना, दूसरी ओर श्रीधर को पिटवाने के रूप में शत्रु को धूल चटाना और तीसरी तरफ प्रधानी को लालच दे रंजीत को अपना लठैत या बिना पैसे का गुलाम बना लेना। ऐसे ही कुचक्र हैं, जिनकी जड़ में फँसी गाँव–देश का राजनीति खून के आँसू रोती इन धूर्तों से अपनी मुक्ति के लिए छटपटा रही है। इन्हीं कुचक्रों के आक्रोश से जन्म लेती है, नई चेतना जिसके जागरण के प्रवाह में अनायास ही स्त्रियाँ एकजुट हो उठती है। गुलकंदी, हरिप्यारी नाइन, और गाने–बजाने वाला विसुनदेवा–ये लोग तीन भी कहीं न

कहीं घर–घर के स्त्री सारंग से जुड़े थे, तभी तो इनकी नृशंस मृत्यु ने उन्हें विचलित कर दिया था–औरतें चली आ रही हैं। ठठ के ठठ औरतें। गली भर गई। प्रधानिन, हुकुमकौर, बैकुंठी जो कभी नहीं आई वे भी...।

सारंग अपनी चेतना संपन्न बुद्धि, दूरदर्शिता, तत्वदृष्टि से पति रंजीत को समझाती है कि वह प्रधान की चालों का मुहरा न बने। मगर रंजीत को यह पसंद नहीं, बर्दाश्त नहीं कि उसी की औरत (भले ही वह ज्ञानवान क्यों न हो) इस तरह प्रबोधित करे, वह भी राजकाज की बातों में। गुस्से से सारंग दुनाली बंदूक से धनादन फायर कर देती है। अकूत हिम्मत और साहवाली सारंग सज्जन और सीधी है, वह खुद शांति के लिए कृत संकल्प। रामराज को नकारती जो राज्य सीता को पृथ्वी में समा जाने को मजबूर होती है।

श्रीधर के कहने पर सारंग एकलव्य नाटक लिखकर बच्चों के द्वारा मंचन कराती है। उसके द्वारा गाँव की युवचेतना को तत्कालीन राजनीतिक चेतना से जोड़ उन्हें सरकारी विकास नीतियों से अवगत कराती भी है। एक तरफ श्रीधर तो दूसरी तरफ भँवर और बाबा उसे चुनावी महाभारत में शस्त्र (पर्चा भरने/खड़ा होने) तरह–तरह के सच्चे तर्क देकरहाथ में लेने के लिए प्रेरित करते हैं। सारंग चुनावी महाभारत में कूद पड़ती है। उसकी सामर्थ्य, साहस और सज्जनता का ही कमाल कहे या ज्ञान के चाक के चक्र का प्रभाव। अंततः रंजीत को भी यह समझ आ जाता है कि उसकी सारंग के समष्टिगत हित का निर्णय ही सबके लिए कल्याणकारक है।

'इदन्नमम' की कथा भी पूँजीपतियों के खिलाफ किसान मजदूरों की एकता और संगठन की गाथा है। स्त्री के सबल रूप और उसके विवेक की कथा है। यह उपन्यास प्रजातांत्रिक या लोकतांत्रिक प्रणाली की सांसों से परिचालित है। मंदाकिनी मेधा और प्रतिभा संपन्न, संगठन या लोकशक्ति या प्रजातांत्रिक मूल्यों या सहकारिता भरी व्यक्तित्व की नारी है। उसके सदाचरण से तथा अस्पताल के लिए की भागदौड़ से गाँववासियों तथा प्रधानों में उसकी लोकप्रियता बढ़ गई थी। मंदा स्वयं ग्रामवासियों के दुःख–दर्द में सहभागिता रखती थी। सहारिया जाति और भील जातिके लोग शिकार के धनी माने जाते थे। उन्हें मजदूर विकास के नाम पर जिन्हें उनके जंगलों जमीनों से खदेड दिया गया था।

अभिलाख सिंह जैसे अय्याश दुर्बुद्धि वाले पूँजीपति के लिए मजूर सर्व रूपेण शोषण के पात्र हैं। वह उनसे कोल्ह बैल की तरह हचककर काम ही नहीं लेता, उनकी मजूरी भी दाबे रहता है। वह उनकी स्त्रियों का यौन शोषण करता है और उनकी औरतों को गायब करवा कर बेचता रहता है। मंदा जब से सोनपुरा के लोगों को संगठित करके चंदा से ट्रैक्टर खरीद कर सिंधी भौजायी के क्रैशर पर लगवा दिया था, तब से अभिलाख बुरी तरह खार खाता था मंदा से। मंदा उससे बचते हुए गाँववासियों में जागरूकता भर रही थी। मगर मंदा कायर या डरपोक नहीं थी। मंदा को अभिलाख शत्रु मानकर बुरी तरह से गाली–गलौज किया करता था।

मंदा गाँव में सुविधा जैसे, सड़क, बिजली, अस्पताल आदि विषयों में राजनेताओं की लापरवाही के बारे में लोगों को समझाकर उनमें चेतना जाग्रत करतीहै। लोगों को यह समझाती है कि नेता लोग हमें जीवित आदमी नहीं केवल वोट समझते हैं। हम सोचने–समझने का माद्दा रखने वाले इंसान नहीं। इनकी निगाह में कागज पर ठुकी मोहर हैं। यही नहीं मंदा ने गाँववासियों के साथ ही मजूरों को भी जोड़ दिया। अब सब एक–एक बात से चैतन्य होने लगे। आश्चर्य की बात हैकि निर्धन किसान मजदूरों को न तो अफवाहें डिगा सकी और न ही बोतल। रूपया का लालच, बल्कि कुछेक ने तो चुनाव को ही बहिष्कार कर दिया था, वह अनपढ़ जरूर हैं, मूर्ख नहीं हैं। पप्पू जैसे हम उम्रके लड़कों ने बैनर लगा दिये कि हम वोटों का बहिष्कार करते हैं। चुनाव का बहिष्कार करते हैं।

लेखिका का उद्देश्य है कि चुनाव बहिष्कार पूरे देश में होने से तस्वीर पलटने में देर नहीं लगेगी। लोभ और जड़ता तो हमें ही त्यागनाहोगा। आज नेता नहीं सर्वभक्षी नरपशु हैं, जिनका कोई ईमान नहीं, वे स्वभाव से मधुर और स्वाभिमान से स्निग्ध होते हैं। 'इदन्नमम' और 'चाक' का समाज जाना–माना समाज और परिवार है। लेकिन 'अल्मा कबूतरी' का थीम और उसके पात्र नितांत अजनबी है। यह अपराधी जनजाति कबूतरा का समाज के मुख्यधारा में शामिल होने की प्रक्रिया पर आधारित उपन्यास है। गहरी पड़ताल करने पर समाज और औरत दोनों का बदलाव एवं सशक्तिकरण परस्पर सहयोगी धाराओं के रूप में उपन्यास में उभरते हैं। आरंभ से अंत तक औरत तथा शिक्षा को बदलाव के बुनियादी हथियारों के रूप में पेश किया गया।

दरअसल कबूतराओं के आगे बढ़ने के इरादों और सभ्य समाज द्वारा उन्हें बार–बार कुचलकर बहिष्कृत, तिरस्कृत करके पीछे धकेलने का वह द्वन्द्व उपन्यास में चित्रित है जो सामाजिक न्याय के रास्ते मेंअभिशाप की तरह है। सभ्य समाज में मिल जाने के खातिर कबूतरा जाति की स्त्री भूरी का दुस्साहस ही है कि वह अपने बेटेरामसिंह को पढ़ाकर प्राथमिक विद्यालय का शिक्षक बनाती है। इसके लिए जात–बिरादरी तो क्या हर संकट से जूझने को तैयार हो जाती है, यहाँ तक कि विद्या रतन के आगे शारीरिक पवित्रता को तुच्च समझती है।मैत्रेयी पुष्पा कहती हैंभूरी के बाद कदमबाई मेंऐसी हिम्मत है जो समूची दुनिया के खिलाफ जाकर राणा के लिए नई जिंदगी बना सकती है। कदमबाई सबसे ज्यादा संघर्ष करती है, क्योंकि उसका संघर्ष सामाजिक है, जो हमारे यहाँ ज्यादा जटिल है। कज्जा लोगों से संघर्ष करने से भी हार नहीं मानती है, वह राणा के विषय में उसे पढ़ा–लिखाकर बढ़ा करती है।

अल्मा कबूतरी उपन्यास का अविस्मरणीय पात्र और मील का पत्थर है नायिका अल्मा कबूतरी। पद्मिनी के समान सुंदर अल्मा निश्चित रूप से कदम और भूरी के आगे का प्रस्थान बिन्दु रचती है। अल्मा पढ़े–लिखे कज्जा परिवारों की बेटियों की तरहथी किंतु उसमें अपनी दादी भूरी का स्वप्नदर्शी साहसनजर आता है। इस अर्थ में उसका संघर्ष कबूतरा स्त्री की पीढ़ियों का संघर्षथा। इस संघर्ष ने उसे उस स्थान पर ले जाती है, जहाँ से सत्ता का सर्वोच्च केन्द्र 'राजनीतिक क्षेत्र' उसका स्वागत करने को तैयार हो जाता है। पर यहाँ तक का सफरकाँटों भरा है। सत्ता के दलाल सूरजभान के हाथों से अफसरों के आगे परोसी जाती है। वहाँ से मुक्त होकर श्रीराम शास्त्री के समीप पहुँचती है जो सूरजभान का प्रबल राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वी है।

जब श्रीराम शास्त्री को गोली लगती है, तब वह 'कबूतरीपन' का इस्तेमाल करके परिस्थितियों एवं व्यक्तियों को सीढ़ी की भाँति इस्तेमाल करती है। अंततः अल्मा सत्ता प्रतिष्ठान के सर्वोच्च केन्द्र 'राजनीति' में पहुँच जाती है। इससे कबूतराओं और कज्जों में भेद लगभग समाप्त हो जाता है। वह सारी दुनिया के सामने श्रीराम की धर्मपत्नी हो जाती है और सिर्फ श्रीराम की चिता को ही अग्नि नहीं देती– मानो परंपरा की कुल संचित रूढ़ियों को भस्मीभूत कर डालती है। धर्म और अधर्म, पाप–पुण्य की सारी बाडे पल भर में ध्वस्त कर देती है। देश

की असरवादी लोलुप, भ्रष्ट राजनीतिक दशा का यथातथ्य अंकन उपन्यास का बेहद सशक्त पक्ष है। मैत्रेयी पुष्पाने श्रीराम शास्त्री के माध्यम से राजनीति का व्यग्यपूर्ण चित्रण किया है।

राजनीति पर निस्संदेह वर्चस्व पुरूषों का है। राजनीति स्त्रियों के लिए सर्वाधिक उदासीन क्षेत्र है, क्योंकि हमारी सरकार सबसे पहले व्यक्तिगत सत्ता का शासन है। महिला पात्र को राजनीतिक तौर पर सशक्त बनाना समय के साथ चलना है। 'गुनाह बेगुनाह' उपन्यास में सुरिंदर गाँव की सरपंच होने के बावजूद उसका बेटा डकैती डालने के कारण उसे गिरफ्तार कर जेल में डालकर उस पर थर्ड डिग्री का प्रयोग करते हैं। जिसके चलते उसकी जान चली जाती है।

पुरूष व्यवस्था औरत को ताकतवर बनाने के नाम पर उन्हें कुत्तों की तरह ही पाली जाती है ताकि हर कदम पर मर्दों से वफादारी निभाएँ। पुरूषों के इशारों पर वह व्यभिचार भी कराती है, अन्याय करती है, पैसा कमाकर पुरूष को खुश करती है। सुरिन्दर सही कहती है कि ''औरत प्रधान हो या सरपंच उसको फँसाना और नंगा करना मर्दों का पुराना नुस्खा है।''[31] यहाँलेखिकापुरूषवादी मानसिकता पर खरी चोट करती हैं।

3.5 सांस्कृतिक :

प्रभा खेतान मानती हैं कि ''इस नव औपन्यासिक काल में संस्कृतवाद स्त्रियों पर नियंत्रण रखने का प्राचीनतम माध्यम है।''[32] संस्कृति व्यक्ति की सचेत क्रिया का प्रतिफल है। संस्कृति खुद को सामाजिक सम्बन्धों में व्यक्त करती है। स्त्री इसलिए इन सांस्कृतिक मूल्यों को अपनाना चाहती है, क्योंकि इन प्रतीकों और चिन्हों के माध्यम से जगत में उसका होना प्रतिफलित होता है। कुल मिलाकर समुदाय की समग्र गतिविधियों की वैचारिक अभिव्यक्ति का नाम ही संस्कृति है। स्त्री पुरुष से भिन्न है और पुरुष संस्कृति के माध्यम से स्त्री का दमन करता है।

संविधान के अनुच्छेद 29 एवं 30 में भारत के सभी नागरिकों को सांस्कृति एवं शिक्षा संबंधी स्वतंत्रता का अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद 29 के अंतर्गत भारतीय जनता के प्रत्येक वर्ग को अपनी भाषा, लिपि अथवा संस्कृति को सुरक्षित रखने का पूरा अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद 30 धर्म एवं भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्याक वर्ग को अपनी रूचि की

शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना एवं प्रशासन का अधिकार देता है। ''सांस्कृतिक संश्लिष्ट हमारा ज्ञान, विज्ञान, आस्थाएं, कथाएं, नैतिकताएं, विधि, रीति रिवाज, सभी प्रकार के क्षमताएं संस्कृति में निहित हैं।''[33]

मैत्रेयी पुष्पा संस्कृति के बारे में कहती हैं कि ''संस्कार शब्द अपने आप में इतना गरिमापूर्ण है कि जिसे धारण करके मनुष्य अपनी अंदरूनी कलुशाताओं पर विजय पा सकता है। सदियों से यह मान्यता रही है कि संस्कारी लोग सुसंस्कृत समाज के हिमायती होते हैं। क्या यहां व्यहारगत संस्कार को देखा जाना जरूरी नहीं है। अब आजाद देश में लोकतांत्रिक व्यवास्था से उम्मीद रखते हुए तो लगता है कि हमारे संस्कारों में कहीं गड़बड़ है।''[34] यहां मैत्रेयी पुष्पा स्त्री केलिए संस्कृति के जो मानदंड है, उन्हें अपने नायिकाओं में दूर कर विज्ञान, विकास की ओर ले जाती है। जबकि औरत की शिकायतों को गायन और रुदन में ढालकर देखने केलिए पुरुष सत्ता अभ्यस्त है। स्त्री की चेतना ने जब सिर उठाया तो संस्कारों के मातृशक्ति स्त्री केलिए ही संबोधन किया गया है। यह महिमा कम तो नहीं। लेखिका महिमा नहीं चाहती हैं, बल्कि जगह चाहती हैं, जो मनुष्य के लिए जरुरी है। क्योंकि स्त्री भी मनुष्य है। देवीदृसती वाला संस्कार जितना पवित्र और पूज्य है, उतना ही औरत को अपाहिज बनाने का कारण है। अपाहिज करते–करते यह संस्कार स्त्री का खत्मा कर डालता है, क्योंकि निष्क्रिय बनाना इस संस्कार का काम है। ''मनुष्य होने के नाते वह क्या महसूस करती हैं, इसके बारे में सोचने की जरूरत नहीं समझी जाती, तो औरत के लिए आपने संस्कार बेमानी हैं।''[35] औरत के प्रति किए गए अपराध दंडनीय कही नहीं है। वे तो सब हमारे सुसंस्कारों की देन हैं। विरासत में मिली भाषा और प्रवृत्ति का सिलसिला है। कोई गाली दे या तमाचा मारे या कि चौराहे पर अपमानित करे, यह सब तो मर्दानी सभ्यता की निशानी है।

लेखिका उस समाज व्यवस्था के प्रति अपना विद्रोह प्रकट करती हैं, जिसने मनुष्य को मनुष्य जैसा जीवन जीने से वंचित किया और उसकी जिन्दजी को अन्याय, अपमान, अत्याचार, बेबसी, गरीब और गुलामी का पर्याय बना दिया था। मनुष्य को तुच्छ समझनेवाली परंपरावादी शक्तियों के खिलाफ वह आवाज उठाती हैं। और मानव को व्यर्थ न समझकर मानव की महानता को स्वीकारती हैं। अतः इनके कथा साहित्य इस विषमतापूर्ण समाज–व्यवस्ता के प्रतिविद्रोह करता है। इस सन्दर्भ में लेखिका की बातें महत्वपूर्ण हैं जो अपने एक वक्तव्य में

कहती हैं–''यह तो कोशिश है जो लगातार जारी है स्त्री को अपनी पहचान स्थापित करने के लिए मैं जो भी उपाय दे रही हूँ, देती रहूंगी। भले ही हमारे मर्यादित समाज को यह रस न आए। एक स्त्री होने के नाते मैंने यह महसूस किया है कि हर संघर्ष में हमे एक नया रास्ता बनाना पड़ता है। जबकि पुराने नियम हमें एक ही ढर्रे पर चलने की बात करते हैं। पर हम उन्हें निश्चित ही तोड़ेगें। जब ये टूटेंगे तभी कुछ नया बन सकेगा। मैं हमेशा से ही दी गई मर्यादाओंध्मान्यताओं को तोडने की दोषी मानी गई हूँ। इस बात का मैं बुरा नहीं मानती, क्योंकि जब भी कुछ नया किया जाता है तो उस पर दोषारोपण होते हैं, अवरोध भी लगाए जाते हैं।''[36]

लेखिका अपने उपन्यास में पुरुषों व्दारा बनाये गए मर्यादाओं को तोडती हैं। इसका उदाहरण 'इदन्नमम' की कुसुमा भाभी को लिया जा सकता है, जहाँ वह 'बहु के चचिया ससुर से शारीरिक संसर्ग' और बेटा पैदा होने की घटना से गुजरती है। ऐसा क्यों होता है? इस 'क्यों' का जवाब ही संस्कृति का लीक तोडने का होता है। जहां पति यशपाल दूसिरी औरत को घर में लाकर पत्नी के सामने ही उसके साथ रहता है और उसको तरह तरह से प्रताडित करता है। उसके लिए कोई दोष नहीं मानने वाले कुसुमा को क्यों दोषी ठहराते हैं? खोखली एवं जर्जर मान्यताओं का विरोध कर जीवन के पक्ष में खड़े होती हैं। ऐसे ही 'चाक' की सारंग के विषय में भी हमें दिखाई देता है। रंजीत का व्यवहार और सारंग का साहस धीरे–धीरेउसको विद्रोही बना देता है। इस घटन का सही कारण देते हुएदया दीक्षित कहती हैं कि–''विवाह तथा परिवार संस्था की अवधारणा के आधारों में अनुशासन, प्रेम, मर्यादा, सुरक्षा जैसे सरोकार अहं है। यहां सारंग के पति से न सुरक्षा मिलिती है, न सहारा और साधन! छत है मगर ससुर की! यहां तक कि भावनात्मक सहयोग भी नहीं। वैसे देखा जाय, तो सारंग की लडाई/प्रतिरोध उसके स्वयं के हितार्थ नहीं, जिस आतताई हत्यारी दुर्व्यवस्था के खिलाफ था, कायदे दे वह पूरे समाज की लड़ाई थी, जिसमें स्त्री तथा पुरुष दोनों का ही हस्तक्षेप होना चाहिए था।''[37] मगर एक तो पितृसत्तात्मक व्यवस्था, दूसरे अन्याय अनाचार का प्रतीकार न करने की प्रमाद या जड़ता या यथास्थितिवादजन्य मनस्थिति के कारण प्राचीन रवैये में कोई भी सुखपरस्त तब्दील नहीं लाना चाहता। यही पर सारंग की चौतन्यता या कथाकार की चेतना उसे अन्यों से अलग करती है, यही चौतन्यता उसे विशिष्ट बनाती है। एक 'स्त्री', 'स्त्री' होने की सीमाओं,वर्जनाओं

के साथ ही सही,मगर साहस करती है प्रतिकार का। यहाँ यह ध्यान देना होगा कि यहां इस सन्दर्भ में '''मास्टर' श्रीधर की एंट्री 'पुरुषवत' नहीं इसी गुरुसत्ता के रूप में होती है, जिसकी सीखों, सलाहियतों पर चलकर गाँव अपना कायांतरण कर लेता है। यहाँ वह चाणक्य या कौटिल्य या विष्णुगुप्त की तरह अपनी नीतियों से बदलाव का वायस बनता है।''[38] खुद लेखिका ने अपने जीवन में जिन परिस्थितियों का सामना की है जैसे पति का प्रेम राहित्य से भावात्मक खालीपन काहोना।इसी का चित्रण 'गुडिया भीतर गुडिया' में वर्णित है–

''तुम अल्पभाषी अंतर्मुखी हो। मैं तुम्हारी भावनाओं को ग्रहण करने की कोशिश में इतनी थक गई कि गला सूखने लगा, आंखे जमने लगीं। प्रेम और दर्द, धर्म और मन से उठती विरोधी भावनाएँ जलते–बुझते जीवन में कभी छुटीं, कभी मिटीं। मेरा जीवन साथी इस महानगर में सीखी हुई सभ्यता को मेरे लिए क्यों भुला देता है? तू नहीं सुन पाओगी कि डां.सिद्धार्थ में मेरे भावात्मक खालीपन में प्रवेश किया। मेरे अध सोए वजूद को संकेत मिला कि यह प्यारी–सी पहल और दिलकश पहचान सभी पुरुषों के पास नहीं होती।''[39]

'अगनपाखी' की भुवन को 'सती' बनाए जाने का षड्यंत्र को लेखिका खिल्ली उड़ाती हैं। इस सन्दर्भ में डां.दया दीक्षित कहती हैं कि–''भुवन की अपनी आग में जलकर, उसी से फिर पैदा हो जाती है। मर कर (सती) भी फिर पैदा हो गई। संघर्ष की जिस आग से झुलसी, उसी संघर्ष अग्नि ने ही तो उसे जीने का हौसला दिया। और जेठ के फैसले पर 'उज्रदारी' के लिए प्रेरित किया।''[40]

झूलानट की शीलो भी परिवार और व्यवस्था के चूले हिला देती है। जैसे पति पुलिस बनाकर शहर में दूसरे स्त्री के साथ रहता है, वैसे ही शीलो भी अपने देवर बालकिशन के साथ रहने लगती है। बिना बिछियों के और बिना बछियों के। क्योंकि पति के साथ हिस्सा बाँटने के लिए नहीं छोडी है। बालकिशन के साथ जीवन साथी के रूप में जीवन जीती है। घर की रानी के रूप में सुखद जीवन जीती है। उसे पत्नी रूपी संस्कृति को नष्ट कर अपने नयी संस्कृति के साथ सुखी जीवन मंजूर है। यह सास की मदद के बिना संभव नहीं हो पता। 'कही ईसुरी फाग' की रजुऊ विवाहिता ईसुरी की प्रेमिका है। स्वतंत्रता, शक्ति या सबल या चेतना देने वाले प्रेम को ईसुरी तथा रजुऊ की प्रेम कथा केमाध्यम से मैत्रयी पुष्पा ने निष्टता

और तत्परता से निरूपित किया है। इस उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा सास और बहू के मनस्थिति को खोलती है।

प्रताप की पत्नी रज्जो और उसकी माँ के द्वारा लेखिका स्त्री की दुविधापूर्ण मानसिकता को दिखाना चाहती हैं कि–''कभी सास अपनी बहु रज्जो परपुरुष से लगाव को (अपनी जगह रखकर) उचित समझती बहू का साथ देती है, तो कभी पुत्र और कभी लोकमर्यादा के कारण उस से क्षुब्ध भी होती है। और कभी यह देखा सोचकर कि उसकी वृद्धावस्था में पुत्र से दो हाथ आगे बढ़कर, बहु उसकी सेवा में रातदिन तत्पर है, उस के सुख–दुःख की साथी है, पुनः रज्जो पर अपना स्नेह बरसाती है। तो कभी प्रताप व्दारा उत्पीड़ित–प्रताड़ित रज्जो को बचाने केलिए चिल्लाती गुहराती है।''[41] यहाँ स्त्री केलिए स्त्री शत्रु नहीं बल्कि एक दूसरे का सहारा बनते हैं। सास बहु दोनों भी मनुष्य होने के नाते एक दूसरे को समझते समझाते हुए भी पुत्र केलिए बहु से गुस्सा करती है। यहां लेखिका का वक्तव्य सठीक बैठता है कि ''औरत ही औरत की दुश्मन हैं, यह एक साजिश–भर नारा है, जो पुरुष–वर्ग ने बनाया है। यदि यह नारा सही होता तो माँ और बेटी के संबंध में इतनी अंतरंग नहीं हो सकती थी। असल में यह नारा, सास–बहु और ननद –भाभी को ध्यान में रखकर दिया है। मगर इस विवादित रिश्ते के केंद्रे में भी पुरुष ही होता है। पुरुष सत्ता की यह चालाकी है कि वह स्वयं को इतना महत्वपूर्ण बनाए रखता है कि माँ, बहिन, पत्नी सभी उसके पीछे लगी रहती हैं। स्त्री का स्त्री के प्रति संघर्ष भी पुरुष मात्र केलिए ही होता है।''[42] पुरुषवादी मानसिकता ने जिस प्रकार के षड़यंत्रकरके स्त्री के प्रति स्त्री की बेरुखी को दर्शाने का प्रयास किया है। उसे लेखिका एक गलत मानसिकमा का उदाहरण बताती है।

अल्मा कबूतरी की नायिकाएं कदमबाई, भूरीबाई और अल्मा तीनों एक ही किरदार के विभिन्न अवस्थाओं के रूप हैं। पहली बदलाव केलिए कबूतर समाज की आतंरिक तड़प और बाह्य प्रयास, दूसरी औरत का आतंरिक और बाहरी सशक्तिकरण। समाज और औरत दोनों का बदलाव एवं सशक्तिकरण परस्पर सहयोगी धाराएँ हैं। औरत को बदलाव केलिए शिक्षा को माध्यम बनाना अल्मा के जीवन में देख सकते हैं। ग्रामीण भारत में दलितों के रूप में अनगिनत कदमबाई, राणा, अल्मा, मालिया रामसिंह हैं। जीवन जैसा भी हो उसे जीने केलिए यह तैयार है। उनका सफर निजी अस्तित्व तक सीमित नहीं, वह स्त्रीत्व की जिजीविषा की अंकन यात्रा

हैं, किसी एक देह पिंजरे की कैद नहीं। वह संघर्ष करती है और स्त्रीयों के जौहर व्रत या सती को लेकर कहती हैं कि ''आत्मघात या आत्महत्या, सभी नैतिक और पवित्र पुस्तकों में परम निंदनीय और स्त्रियों के लिए जौहर का महिमागान..., जिजीविषा की तन को बेच कोई क्यों तोड़े, जिंदगी की मधुर उशना रागिनी को कोई क्यों बंद करे? आत्म घात जो पुरुषों के लिए पाप है जौहर के रूप में, सती के रूप में, स्त्रीयों केलिए कैसे महापुण्य हो जायेगा....स्त्री नहीं मानेगी इस विधान को कथाकार भी नहीं मानेंगीं क्योंकि अब स्त्री जान गई है। इस नग्न सत्य को मर्द औरत केलिए नहीं अपने लिए लडते हैं।''[43]

पद्मिनी की परंपरा जिजीविषा की तान और जिंदगी की अविकल रागिनी की परंपरा है। हर दिन पीड़ित बलात्कार क शिकार होने वाले, देह व्यापार कर किसी रूप में जीवन जीने वालों केलिए संस्कृति के बारीक शब्द जैसे पवित्रता, नैतिकता, देह–शुचिता का कोई मायना नहीं रखता। कबूतरी स्त्रीयों के लिए यह सब बेईमान ही है–''हम जियेंगे अदम्य भाव से दुर्दांत स्त्रीयों में भी, आत्महंता होना अनैतिक, प्रातिव्रत्य और नैतिकता की नयी परिभाषा खड़ी करेंगे, जिस का रास्ता देह की शुचिता से होकर नहीं जाएगा, आत्मा की दिपदिपाती गरिमा से होकर जायेगा, जौहर कुंड में राख नहीं होगा, जीवन के लबालब भरे जलकुंडों में नए जीवन राग रचेगा।''[44]

'विजन' उपन्यास की नायिकाएं नगर के पढे–लिखे सभ्य समाजस से हैं। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हैं। ग्राम्य–केंद्रित उपन्यासों की मंदा, सारंग, शीलो तथा अल्मा सरीखी नारी पात्र से अधिक स्वतंत्र, निर्द्वंन्द तथा लिबरेटेड है। वहीं 'विजन' की नेहा और आभा आत्मनिर्भर, उच्च्च शिक्षित नारियाँ हैं जो पुरुष सत्ता–तंत्र की बंदी हैं। स्त्री शिक्षा व आर्थिक स्वावलंबन भी स्त्री–मुक्ति के लिए प्रश्नों के घेरे में खड़ा करती है। अभी भी स्त्री–नियति से मुक्त होना है। इस उपन्यास के नारी पात्रों को लेकर वीरेंद्र यादव कहते हैं कि ''अपने इस उपन्यास में स्त्री–मुक्ति को देह मुक्ति तक रिड्यूस करने की अपनी उसरूढ़ी से भी मुक्त हुई हैं, जो 'चाक' तथा 'अल्मा कबूतरी' विमर्श को एकायामी बनाता था। 'विजन' के माध्यम से पितृसत्ता के प्रत्याख्यान की जो विश्वस्त आधार–भूमि मैत्रेयी पुष्पा ने तैयार की है, वह उनके दृष्टि–विस्तार तथा परिपक्व नारी–विमर्श के प्रति आश्वस्त करता है।''[45]

'आत्मकथा' दो खंडों के व्दारा भी सामजिक स्थिति के स्तर पर स्त्री जीवन मूल्यों को बढ़ाना चाहती हैं। कस्तूरी देवी कहती हैं ''अगर संस्कार, संस्कृति, परंपरा जो पुराने पड गये थे, उन्हें छोडना है, नहीं तो वे फफूंदें पड जाते हैं, इसमें बदलाव की मूल स्वर है।''[46] कस्तूरी देवी सती होना नहीं चाहती हैं, विधवा जीवन जीने के लिए तैयार नहीं। वह पढ़कर, नौकरी करती है। एक सश्क्त आधुनिक संघर्षशील स्त्री है। घर–परिवार की जिस कैद को तोड़कर कस्तूरी की 'नई नारी' के रूप में व्यक्तिवान्तरण हुई है, वह रास्ता मैत्रेयी पुष्पा को अपनी आजादी का नहीं, बल्कि कैद का रास्ता लगता है। मैत्रेयी पुष्पा स्त्री नियति या नैतिकता, शादी की बात को लेकर सीमा अतिक्रमण करती हैं। क्रांति कुमार जैन के अनुसार ''यहाँ कस्तूरी अपनी सारी क्षमताओं के बावजूद स्वयं से छल करती हुई परंपराबद्ध नारी है और मैत्रेयी इस छल–पोषित परंपरा से मुक्त होने केलिए विद्रोह करती हुई नई पीढ़ी की सुशिक्षता युवती। इस विद्रोह में रूढ़ियों के, परम्पराओं के, लांछन के, लोकाचार के कुंडल टूटते हैं। इन के टूटने में बहुत समय लगता है।''[47]

'गुनाह–बेगुनाह' उपन्यास में भी स्त्री संस्कारों में दरार उत्पन्न होते देखा जा सकता हैं। ''स्त्रियों या महिला पुलिस की जिंदगी में यह साहस और सिपाहीपन बने/बचे यही इस उपन्यास का ध्येय है। यह ध्येय इला के व्यक्तित्व में कूट–कूटकर भरा है, भले ही इसके लिए उसे 'लडकीपन' की तिलांजलि देने पड़े बखुशी वह यह करती है।"[48] बदलते समय में बदलते हुए स्त्री जीवन मूल्य भी हम इला की बातों से समझ सकते हैं कि '' 'मोटर बाईक फाईनेंस कराई जाए' आज के समय में लड़की की तरह रहकर सीधी–सज्जन तो मानी जाऊँगी, आगे जाने के रास्ते नहीं बनेंगे तो गति भी दुर्गति में बदल जाएगी।' हम नाटक की वीरांगना भर हैं या जिंदगी में भी कुछ करेंगे।"[49] अपने प्रेमी जयंत दूर होने से भी इला किसी प्रकार का अभाव या तनाव को महसूस नहीं करती है। वह संघर्ष कर जीना सीख जाती है। वह सोचती है–''वह अनगढ़ हीरा है, खुद ही खुद को तराशोगी और अब दिखा देगी कि न उसे मर्द की चाहत,न प्यार की भूख, बस चाहती है कि जुल्म और जुर्म की दुनिया में बदलाव भरी दस्तक दे। उसका कैरियर अपने आप में मिसाल हो। इसके लिए उससे हर हाल में तनावमुक्त और हमदर्दी से लबरेज रहना है। खुद को सतर्क किया– इला, अब खुलकर काम करो, तुम अकेले ही इस दुनिया में निकली हो।''[50] जिन चीजों से पहले धक्का लगता है, सदमा होता है, उनकी

फिर आदत पड़ जाती है। आदत नहीं पड़ती तो यह निशिचत हो जाता है कि व्यवहार में बदलाव लाना जरुरी है। स्त्री संस्कृति को ध्वस्त करके नये जीवन मूल्यों को इला के द्वारा लेखिका रचती हैं।

3.6 विद्रोही स्वर :

3.6.1 सामंती परिवारिक नारी विरोधी मूल्यों का ध्वस्त :

मूल्य या तो नैतिक होते हैं या भौतिक। नैतिक मूल्यों की स्थिति आदर्श की है। आदर्श स्वयं मूल्य है। साहित्यकार न केवल आदर्श या नैतिक मूल्यों की स्थापना करता है अपितु वह भौतिक मूल्यों की आवश्यकता को प्रतिपादित करता है। आज साहित्य के संदर्भ में स्वीकृत जीवन–मूल्य की समसामायिकता पर बल दिया जा रहा है। अस्तित्ववादी दर्श के प्रभाव के कारण प्रत्येक क्षेत्र में मूल्य वरण की स्वतंत्रता पर बल दिया जा रहा है। वस्तुतः ज्यों–ज्यों व्यक्ति की मौलिक चिंतन–शक्ति का विकास होता जाता है, वह परंपरा से चले आ रहे जड़ मूल्यों को छोड़ता जाता है और उनके स्थान पर नवीन मूल्यों का निर्माण करता है।

मानव समानता, व्यक्ति–स्वतंत्रता, सामाजिक दायित्व, नारी–स्वतंत्रता, नारी–समानता मातृत्व एवं वात्सल्य आदि मूल्यों की स्थापना की गयी है। सामाजिक क्रांति को चरम मूल्यों के रूप में स्थापित करने का प्रयत्न है। इस जीवन दर्शन में प्राचीन नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को कोई सथान नहीं दिया गया। सुधारवाद समाप्त हो गया। आज के साहित्यकार प्राचीन मूल्यों का इसलिए कभी विरोध करता है, क्योंकि वह उन्हें आरोपित समझता है। वह स्वयं किसी भी प्रकार के दर्शन और विचार को स्वीकार न करके स्वयं अपने परिवेश के प्रति अपने को प्रतिबद्ध पाता है। प्रतिबद्धता का कारण द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका, राष्ट्र का विभाजन, संप्रदायिक दंगे, बेकारी, बेरोजगारी आदि के कारण एक उद्देश्यहीन भाटकाव आदि।

विवाह, शील, त्याग उदारता, दया आदि प्राचीन मूल्य स्वतंत्रता से पूर्व ही रूढ़ी बन चुके थे। मैत्रेयी पुष्पा किसी स्थापित जीवन–मूल्यों को स्वीकृति नहीं देती हैं। यों तो नैतिक मूल्यों का ह्रास सन् 1936 पश्चात का कथा साहित्य में ही प्रारंभ हो गया था आधुनिक साहित्यकार ने स्थापित मूल्यों को तोड़ना प्रारंभ कर दिया।

विजय बहादुर सिंहकहते हैं कि ''मैत्रेयी पुष्पा ने बीसवी सदी के हिन्दी लेखन में नारी के अबलत्व और उसकी निरीह 'राममयता' के अंध स्वीकार और बेशर्म समर्पण को नकारते हुए

राष्ट्रकवि और कामायनीकार दोनों को ही काफी पीछे छोड़ दिया है। सुकुम और दाऊजी (अमर सिंह) के अनैतिक संबंधों के प्रसंगों में मानसकार की बहुपरिचित पंक्तियाँ–अनुज वधु भगिनी सुत नारी। सुनि सठ कन्या, सम ये चारी– से भिड़ते और टकराते हुए जिस तरह के तर्क मंदा और कुसुमा के बहाने दिए हैं, उससे पुरूष प्रणीत व्यवस्था और वर्चस्व पर सीधा हमला होता है।''[51]

जब कुसुमा ने बिन्नू से पूछने लगी कि ''बिन्नू, हमें एक बात समझाओ, अरथाओ कि रिस्ते–नाते संबंध और मरजाद किसने बनाई? किसने सिरजी है बंधनों की रीति? जो नाम लेती हो उनने? मनु व्यास ने? रिसियों–मुनियों ने? देवताओं ने कि राच्छसों ने?मंदाकिनी पढ़ना रोककर भाभी को गौर से देखने लगी। क्या उत्तर दे इन सवालों का? 'भाभी, ये रीति रिवाज तो उन्होंने बनाए हैं, जिनने ये किताबे लिखी हैं, जिनके ऊपर ये किताबें लिखी गयी है'

'''गलत बनायी है मंदा। एकदम पच्छपात से रची हैं।'

'बताओ तो अगिन साच्छी धरके गाँव बाँधने का क्या मतलब?'

'पति और पतनी को साथी–सहचर कहे तो विरथा है कि नहीं?'

'कितके उलटा है बिन्नू, बेअरथ! यह संबंध बड़ा थोथा है।'

'लो,एक तो खूँटे बाँधा पाँगुर, दूसरा सरग में उडता पंछी!'

'दोर और पंछी सहचर नहीं हो सकते मंदा'......''[52]

उपर्युक्त संभाषण में मैत्रेयी पुष्पा आधुनिक स्त्री की बदलती सोच और पुरूष प्रधान समाज–व्यवस्था के प्रति उसके विद्रोह को प्रकट करती है। मैत्रेयी पुष्पा व्यवस्था में लिंग समानता के विरोध, संस्कृति, संस्कारों के रीति–रिवाज के विरोध, विवाह, नैतिकता और इतिहास के स्त्री–विरोधी नियमों के विरोध में सवाल करती है। मैत्रेयी पुष्पा विवाह को स्त्री–जीवन के विकास और स्वतंत्रता का रोड़ा मानती है।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास'इदन्नमम' की विद्रोही स्त्रियाँ कुसुमाँ, मंदाकिनी की माँ प्रेम और सुगना है। कुसुमाँ जैसे चरित्रों के मार्फत लेखिका भारतीय स्त्री की जिस स्वाधीनता का सपना देख रही है, वह समाकलीन भारतीय बहस का मुद्दा हो सकता है। परिवार और खून क रिश्तों बीच जो मर्यादा की रेखाएँ खिची हुई हैं, उनपर बहस करने से मुँह नहीं मोड़ा जा सकताहै, पर बगैर बुनियादी–विमर्श के सिर्फ 'देह की भूख और प्यास का तर्क' समूची

सामाजिक और पारिवारिक व्यवस्था को तहस–नहस कर डालेगा। शायद लेखिका भी ऐसी परिवार–व्यवस्था को स्वीकार न करे। लेखिका को अपनेअभिव्यक्त करने अधिकार अपने 'दृष्टि' प्राप्त है।

'इदन्नमम' उपन्यास में परिवार में रहकर ही कुसुमा पति की सब क्रूरताएँ सहती है। दूसरी स्त्री को घर लाने से सही यह मानसिक, शारीरिक यतना सहतीहैऔर जहाँ दाऊ जी (चचेरे ससुर) का प्रेम मिलता हैउसके साथ एक बच्चे को भी जन्म देने को तैयार हो जाती है। उसके गर्भ धारण करने से पति यशपाल और सास लड़ते हैं। उस समय कुसुमा लाज–लिहाज त्यागकर चीख डठती है कि ''ओ नकीले! खैर मना कि बच्चा दाऊ का है नहीं तो यह किसी का भी होता, जात का, आन जात का।गैल चलते आदमी का। तुम होते कौन हो हमारी, नाकेबंद करने वाले? तुम्हें क्या हक... कुत्ता की जात नहीं गिनते हम तुम्हें नहीं जाऊँगी। कभी नहीं आकास–पाताल एक हो जाए तो भी नहीं''[53] यह पुरूष और परिवार व्यवस्था के प्रति कुसुमा भाभी की विद्रोही ताकत है, अपनी आजादीस्वर है।

'चाक' की सारंग को भी रेशम की हत्या की खबरमिलने पर उसकेमन को भी कुचलडालता है। उसी से उसका संघर्ष पूरे उपन्यास में जारी रहता है। अपने खुद के परिवार में भी वह कभी–कभी अपनी अस्मिता को खो देती है। पति से ताड़ना, प्रताड़ना और उदासीनता मिलती हैं तो वह मानसिक रूप से शोषण का शिकार होती है। अपना बेटा चंदन को आगरा भेजती है। पति रंजीत क्रोधित होकर उसे रोकने जाता है, लातों, घूँसों से सारंग को पीटता है।सारंग प्रतिरोध की मूर्ती बनउठ खड़ी होती है–''पागल विक्षिप्त की भाँति दौड़कर खूँटी से बंदूक उतारी और बिजली की सी फुर्ती से चला दी दोनाली–धाँय! धाँय! यह भी न सोचा कि निशाना किधर... असल मर्द है तो छू चंदन को। छू? रणचंडी बनी खड़ी है सारंग।''[54] पति को बताए बिना बेटे को आगरा से गाँव बुला लेती है और गाँव के स्कूल में दाखिल करा देती है।परिवार में बेटे के प्रति अधिकार को सारंग प्राप्त कर लेती है। 'बेतवा बहती रही' की बरजोर सिंह की माँ भी अपने बुढापे में बेटे के प्रति विद्रोह मन को व्यक्त कर कहती है कि ''जिज्जी के दर्शन की आज्ञा अपने ही पुत्र से। अपनी इच्छा, अपना हक कुछ भी नहीं... यह कैसी विडंबना! कैसी त्रासदी।''[55] उनके अंदर बेटे के विरूद्ध दृढ़ क्रांति–भाव जन्म ले रहा था। 'अगनपाखी' की भुवन मोहिनी भी अपने पागल पति से थककर ससुराल जाने से

इनकार करती है। भुवन की माँ, जिज्जी और नानी उसे तरह–तरह से समझाते हैं, पति कैसे भी होपति के नाम से ही स्त्री जीवन की इज्जत होती है। उनके लाख समझाने पर भी वह उन तमाम धारणाओं, मूल्यों, पारिवारिक व्यवस्था के नियमों को नकारने पर उतरती है। तब वह विद्रोह की प्रतिक्रिया स्वरूप अपनी नानी से कहती हैकि ''डुकरियाँ, तू मरने पर तुली रहती है। नाक नहीं बची तो जिंदगी का भी क्या करेगी? ला घोंट दू तेरा गला। कहकर भुवन नानी की गर्दन कस ली–मर जा। किसी का क्या जाएगी?... ले मर मर मर–कहकर दो तीन झटके दिए।''[56]

'अल्मा कबूतरी' की आनंदी जो मंसाराम की पत्नी है वह मानसिक रूप से शोषित और अपमानित की जाती है। पति तो रात–दिन कदमबाई के आँगन में पड़े रहता है। पति–पत्नी में अपने–अपने दुःख और अलग–अलग चिंताए है। आनंदी अपने पति मंसाराम को संदेश भेजती है कि ''मजा–मौज ही करना था तो मेरे पास क्यों आया था? कबूतरी के पास ही रहता उस रात, तो जोधा का जनम तो न होता। खानदान का पगह छीन रहा है कि तू खूँटा ही उखाड़ ले गया?... बाप नाम का दुमछल्ला लटका रहता है और कटे नाखून–सा उलझ–उलझकर दुख देता है।''[57] ये सारी बातें आनंदी अपने बड़े बेटे की शादी के चलते दुःख के साथ कहती है।यह आनंदी कापति के विरोध में विद्रोही स्वर है।

'झूलानट' की शीलो अपने पति सुमेर से उपेक्षित कीजा चुकी है। क्योंकि पति नौकरी मिलनेसे पहले उसके साथ विवाह किया था।वह काली है, पढ़ी–लिखी नहीं है। नौकरी के चलते सुमेर शहर में रहने लगता है। वहशहर मेंसुंदर स्त्री के साथ बिना कानूनी शादी करके रहने लगा।वह गाँव आने परशीलो कोमानसिक, शारीरिक, आर्थिक रूप से प्रताड़ित़करता है।जैसे ही सुमेरकी माँ को उसकी शहर वाली पत्नी का समाचार मिलता है,वह अपने छोटे बेटे बालकिशन को शीलो के पास ले जाकर कहती कि 'लोयह आज से यह तेरा'। यह एक स्त्री और सास का साहसिक निर्णय है, साथ–साथ शीलो की समस्या का मर्यादित समाधान भी।
जब जमीन जायदाद की बात आती है तो शीलो उत्तर देती है कि ''जमीन–जायदाद की बात यह रहने दो कि यह मामला तो अब भी हमारे–तुम्हारे बीच ही है। बाबूजी, बालकिशन सिरफ अपने हिस्से का मालिक है। वह कौन होता है हमारे–तुम्हारे हिस्से में टाँग अड़ाने वाला? बिलकुल ऐसे ही, जैसे तुम्हारी वह बिचारी कोई नहीं होती हमारे–तुम्हारे बीच। ये जर–जमीन

के मामले बड़े (कठिन) हैं बाबूजी।''[58] ये बातें एक तरह से प्रताड़ित और उपेक्षित करनेवाले पति से शांतिपूर्वकविद्रोही जवाब ही है। पति पत्नी के बीच की पारिवारिक बंधन को पहले पति खतम करता है। बाद में पत्नी भी उसे अपने जीवन से निकाल देती है। उतना ही नहीं जमीन–जायदाद से भी बेदखल कर अपना अधिकार प्राप्त करती है। पारंपरिक मूल्यों के विरोध में एक अनपढ़ गँवार नारी पति के स्वीकृति के बिना बच्चे को जन्म देकर नवीन मूल्यों को स्थापित करती है।

3.6.2 विवाह संस्था के नारी विरोधी मूल्यों का ध्वस्त :

मैत्रेयी पुष्पा का मानना है–स्त्री को अब तक विवाह की गलत व्याख्याएँ पढ़ाकर पुरूष की गुलामी कराई जाती रही है। विवाह संस्था पूर्णतः पुरूषवादीहै। वे मानती हैं कि विवाह की पवित्रता जिंदगी का सबसे बड़ा धोका है, मन का बंधन है।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में विवाहव्यवस्था के विरोध में विद्रोह करने वाली नायिकाएँ हमें दिखाई देती हैं। वह विवाह या पुरूष को नकारनेवाली विद्रोह नही है।वह चाहती हैं पति एक सच्चा साथी और उसे समझने वाला हो। लेकिन वह पति बनकर उस पर अधिकार जमाना चाहता है। उसे गुलाम बनाकर उसकी स्वतंत्रता का हनन करना चाहता है।लेकिन वह स्त्री पति और विवाह व्यवस्था का विरोध कर स्वतंत्र जीवन जीने केलिए कितने ही संघर्षों से झूझकर आगे बढ़ने लगती है। 'आंगन पाखी' की भुवन मोहनी शारीरिक व मानसिक रूप से विवाह प्रथा को मानती है। पागल पति के साथ अपना जीवन खराब करना नहीं चाहती है।वह विवाह बंधन से छुटकारा पाना ही उचित समझती है और माँ से पूछती है कि ''अम्मा ब्याह करना पाप नही ंतो ब्याह छोड़ना क्यों पाप है? तुम अपने ऊपर पाप मत चढ़ाओ, तुम्हें तो वर के बारे में कुछ पता ही नहीं था। अब मैं अपनी अक्ल के हिसाब से जो भी करूँ। नरक स्वर्ग मेरे लिए बनेगा।''[59]

'कस्तूरी कुन्डल बसै' में लेखिका की माँ कस्तूरी देवी भी विवाह का विरोध करती है क्योंकि उनके मन में एक डर बैठ जाता है कि वह पति के मरने के बाद सती होना पड़ेगा। माँ से कहती है कि ''मुझमें सती होने की हिम्मत नहीं है। मुझे मरने से डर लगता है।''[60] 'कस्तूरी' के पिता उनकी माँ को जवानी में छोड़कर ही भाग गयेथे। 'बेतवा बहती रही' की नायिका उर्वशी विवाह व्यवस्था में अपना जीवन बिताती है।उसके पतिके मरने के बाद वह

अपने बेटे के साथ ससुराल में ही रहना चाहती है।जब उसका भैया अजीत चार बच्चों के पिता के साथ उसकी शादी कराना चाहता है तो वह उस से पूछती है कि ''काहे को करते हो ऐसा अन्याय? क्या बिगड़ रहा है तुम्हारा अजीत भइया? मैं कोई ढोर नहीं, जिसे खूँटे रस्से से बाँधकर रखना लाजमी है''[61] 'इदन्नमम' की कुसुमा भाभी विवाह व्यवस्था को निरर्थक थोथा ही समझती है, क्योंकि जो बंधन, समझौता, पवित्रता स्त्री (पत्नी) के लिए है वह पुरूष के लिए नहीं है। लेखिका कुसुमा के द्वारालिंग समानता का प्रश्न उठाती है।

3.6.3 पितृसत्तात्मक नारी विरोधी नैतिक मूल्यों का ध्वस्त :

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री का शरीर ही सबसे बड़ी समस्या है। सारे नियम और नैतिकताएँ, संस्कृति, सभ्यताओं को स्त्री अपने देह के भीतर ही पाल रही है। जिस स्त्री की देह को लेकर इतनी साजिशें चल रही है, उसी देह में रहनेवाले दिमाग को एकदम नकार दिया गया है। उसे पनपने ही नहीं दिया गया है। मैत्रेयी पुष्पा शीलता के नाम पर स्त्री की जिन्दगी को तबाह होने की अनुमति नहीं देती हैं। उनका उद्देश्य है स्त्री जीवन के पक्ष में खड़े होना।शीलता की बनी–बनाई लकीर विशेष तौर पर स्त्रियों के लिए अधिक बाधा पैदा करती है क्योंकि अपने लिए फैसला लेना उसे गलत लगता है। उसके मन में अपराधबोध जगाता है। यहीं से उसका जीवन पराधीनता के हवाले हो जाता है।

मैत्रेयी पुष्पाकी नायिकाएँअपनी नैतिकता खुद बनाती है। उनकी नायिकाएँ दूसरों के फैसलों को अपने शरीर पर नहीं चलने देती है।वह स्वयं अपने दिमाग से निर्णय लेना जानती है। लेखिका अपनी नायिकाओं के बारे में लिखती हैंकि–''मेरी नायकाएं कमजोर नहीं हैं। वे अपनी उसी जमीन पर खड़े होकर लडाइयाँ लड़ती हैं, जिसमें उनकी जड़े है। मेरी नायिकाओं ने अगर देह की परिधी को लांघा है तो सिर्फ देह से साकारात्मक मूल्यों को बचाने के लिए, उन्होंने अपनी देह की कीमत पर सच्चाई को मरने नहीं दिया''[62]

'इदन्नमम' की कुसमा भाभी अपने विवषता और अकेलेकपन से मुक्त होना चाहती है।अपनी आवश्यकताओं के पूर्ति के लिए वह नैतिक मूल्यों से चुटकारा पाना चाहती है।जिसके चलते वह चचेरेससुर से शारीरिक संबंधस्थापित करती है। और फिर बेटेको भी को पैदा करती है। बिन्नू से कुसुमा शरीर शुचिता को लेकर पूछती है कि ''बिन्नू यह जल निरमल है या मैला? पवित्तर या पाप का? इमरत है कि बस? नहीं जानते हम। तुम्हारी रामायन में लिखा भी

होगा तो लिखने वाला यह नहीं जानता कि आदमी को जब प्यासा होता है, प्यास से मर रहा होता है, तो कहा देखता है, कहाँ सोचता है, कहाँ करता है कोई भेद? कोई अंतर? अकेले थे हम मंदा। निपट अकेले झुलस–झुलस कर मर रहे थे। प्यास से तड़प रहे थे। दाऊजी आ गये हमारे बीहड में। सीतल झरना होके बहने लगे। उजाड़ जिन्दगानी के टूटे–फूटे मंदिर में ज्यों पिरभू देवता का रूप धरकर खड़े हो गये हों। बस... साई हम उनकी सरन में जा गिरे जोगिन–तपसिन की तरह।''[63] 'अगन पाखी' की भुवन मोहिनी भी नैतिका का अतिक्रमण कर विवाह से पहले अपने बहनोई के साथ शारीरिक संबंध बनाती है। वह पति के मरने के बाद उसके साथ भाग जाती है। सारंग भी पति के रहते हुए स्कूल का मास्टर श्रीधर से शारीरिक संबंध स्थापित करती है।

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास की नायिकाएँ अपने समाज एवं संस्कृति की नैतिकता के उन मूल्यों को भली–भांती जानती हैं और उन्हें तोड़कर अपना अस्थित्व बनाना भी जानती हैं। कदमबाई, अल्मा जैसी बहादुर स्त्रियाँ सत्ता और उसकी ताकत का कीमत अच्छी तरह से जानती हैं।उन्हें प्राप्त करने के लिए वे अपने सामाजिक नैतिकताओंऔर शरीर की शुचिता को भूल जाती हैं। वह सत्ता प्राप्ति के लिए अपने शरीर को दांव पर रखने के लिए तैयार हो जाती हैं। पवित्रता क्या होती है वे नहीं जानती है। वे औरतपन को ही भूल जाती है। कदम भाई सामाजिक संघर्ष करती है वहीं, भूरी विद्या प्राप्ति के लिए और अल्मा अपने विषम परिस्थिति और शारीरिक शोषण सेअपना जीवन व्यतीत करती है। इस जीवन स्थिति में रहते उसने से कितने मर्दों को उसके शरीर कक साथ भोगने की लालसा रखते हुए देखा है। फिर भी वह हारनहीं मानती है। अंत में वह कहती है ''पाप के खिलाफ लड़ने के लिए अपने देह से पाप को गुजार देना कितना जरूरी थी।''[64] अल्मा उस समाज से बदला लेना चाहती है, जिसने उसे इस स्थिति में छोड़ा हैं। वह इस उद्‌देश्य से अपनी बुद्धि का उपयोग करके राजनीती में प्रवेश करती है और वह विधेयिका बनकर अपनी जाति का कल्याण करने में सफल हो जाती है।

'चाक' की रेशम भी विधवा के लिए समाज के द्वारा जो नैतिकताएँ बनाई गई हैं उनका अतिक्रमण करके गर्भधारण कर बच्चे को जन्म देना चाहती है। अपनी सास से कहती है–''अम्माँ तुम तो बिरथा ही दाँत किटकिटा रही हो। तुम्हारे पुत्र की चिता ठंडी हो जाने से

क्या मेरी देह की आग बुझ जाती? जीतों–मरतों का भेद भी भूल गई तुम? बेटा के संग मैं भी मरी मान ली।''[65] यहाँ रेशम देह स्वतंत्रता को चाहकर मृत हो जाती है। इसके विपरीत 'गुनाह–बेगुनाह' उपन्यास में स्त्री अपने पति के द्वारा ही अनैतिक बनकर उसे कई मर्दों के साथ सोना पड़ता है। पति अर्जुन ही पत्नी शीतल को वेश्या का मुखौटा पहनाता है। प्रेम विवाह के बाद भी पति स्वामी बनकर उस पर अधिकार चलाता था। उसके विरोध में शीतलअपने पति को जिंदा जलाकर अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करती दिखाई देती है।''शराब के नशे में धुत अर्जन पर मिट्टी का तेल छिड़कती हुई उसकी धर्मपत्नी और दियासलाई की एक तीली से स्वाहा करनेवाली सुहागिन शीतल। दृश्य, कि आग की लपटों को साक्षात् देखा? चीख मारकर उठ पड़ी थी इला। क्यों चीखी? अर्जन को जलते हुए देखकर? भयानक दृश्य का नजारा।''[66] शीतल जैसी विद्रोही स्त्री को न्याय प्रक्रिया में उम्र कैद की सजा होगी। उसका तर्क, प्रार्थना और पुकार कोई नहीं सुनेगा। माता–पिता के घर में वह अपने प्रेम के लिए लड़ी थी और पति के घर आकर अन्याय, अत्याचार और यातनाओं के खिलाफ लड़ी है। जहाँ अपने मन के विरोध में नैतिकता का अतिक्रमण स्वयं पति द्वारा हो रहा हो तो पत्नी विद्रोह करके उसकी हत्या कर डालती है।

3.6.4 पितृसत्तात्मक नारी विरोधी संस्कारों का ध्वस्त :

स्त्रियों के सामने दो तरह केरास्ते हैं एक वे परंपरओं को बचाएँ, संस्कृति की रक्षा में हमेशा की तरह खुद को झोंकती रहें या फिर अपने अधिकार और स्वतंत्रता के प्रति सजग हो, जाने, समझे और आगे बढ़ें। संस्कार जीने की तरीके को जो सिखाता है और वह जो व्यक्ति का पहचान बनता है। सारे नियम, परंपराएँ, रीति–रिवाज स्त्रियों के ही खाते में आतेहैं। घर के कामकाज, पूजा, अर्चना, व्रत–उपवास, सबके सब स्त्रियों के हिस्से मेंहोते हैं। स्त्री घर की जिम्मेदारियों को पूरा करते हुए अपना जीवन होम कर देती है। परिवार जनों की इच्छाओं का पूर्ती ही उसका दायित्व रहा।

पुरूष देश–दुनिया की बात करता हैं, वहीं औरतें साड़ी, गहनों और व्यजनोंकी बातों में रूची लेती है। पुरूष वर्ग का अधिकांश भाग उनके सौंदर्य या पाक कला में गुजरता है। यह कला दिखते हुए भी डांस–बार और होटलों में जाकर वह संतुष्टहै। स्त्री घर के भीतर ही सोचती और व्यस्त रहती है। इनको लेखिका सती युग की सी कहती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नायिका अपने हक के लिए लड़ती है, अन्याय के विरोधमें लड़ती है और उसके ऊपर मढे गये सारे सांस्कृतिक रीति–रिवाज, परंपराओं को धार्मिक संस्कारों को कुछ हद तक ढोती दिखाई देती है। वह उन सबके खिलाफ खड़ी होती है। उनका विद्रोह भी करती हैं।

'इदन्नमम' उपन्यास में कुसुमा भाभी का पति यशपाल अपनीपत्नी के रहते हुए भी दूसरी औरत को अपने घर ले आता है।कुसुमा को छोड़ देता है।एक तरह से यहाँपति अपना संस्कार भूलकर जी रहा था तो कुसमा भाभी अपने चचेरे ससुर के साथ शारीरिक संबंध बनाकर एक बच्चे को जन्म देती है।और पति के संपत्ति में सेहिस्सेकाभाग मांगती है और उस बच्चे को घर का वारिस घोषित कर देती है। मंदा की माँ विधवा होकर अपने जीजा रतन सिंह के साथ भाग जाती है। मंदा अपनी उत्पीड़न अम्मा को लेकर जैसी जिरह अपनी बऊ से करती है, वह बहस एक स्त्री के संदर्भ में सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण और उदारता की माँग करती है। बऊ परंपरागत पुराने ख्यालों वाली हैं तो मंदा स्त्री की ऐतिहासिक यातना, सनातन निर्वासन और पुरुष दिमाग की सांस्कृतिक चालाकियों और सामाजिक बदमाशियों की पीड़ा और व्यथा से भरी और सचेत है। उसमें माँ के प्रति अपार सहानुभूति और अगाध करूणा है। माँ का समर्थनकरते हुए कहती है–''गाँव में छः–आठ ऐसे जोड़े हैं, जिन्होंने दूसरा विवाह किया है। माना कि पुरूष हैं, तो क्या अम्मा स्त्री होने के नाते दंड की, मखौल की, हेय दृष्टि की भागीदार है? यदि ऐसा नहीं है तो उन पुरूषों से अटपटे प्रश्न क्यों नहीं पूछता कोई? उन्हें क्यों नहीं निकाल देता घर से कोई? उनकी निगाह नीची क्यों नहीं होती? वे अस्पताल जैसी सार्वजनिक जगह में रात काटने को क्यों विवश नहीं किये जाते''[67] मंदा पुरूष और स्त्री संस्कारों सेप्रश्न करती है। माँ की अनैतिकता, गैर जिम्मेदार काम पर वह चिड़चिड़ नहीं होती। ऐसे ही 'झूलानट' उपन्यास में शीलो का पति सुमेर शहर में दूसरी पत्नी के साथ बिना शादी केरहता है। माँ घर की इज्जत बचाने के लिए शिलो कोबालकिशन के हवाले कर देती है। निर्भय और दबंग शीलो सास, पति का बेहद सम्मान करती है। लेकिन अनावश्यक तथा कुपरंपराओं को संपोषित करने की आदत के कारण जमकर उन्हें बातें सुनाती है–''बेटों के चलते रसम–रीत भूलकर बहुओं की पीठों के लिए कोई लिए फिरती हो तुम बूढ़ी जनी।''[68] 'अगनपाखी' की भुवन पागल पति के साथ बिना प्रेम से जीते हुए भी बहू का व्रत पूरी तरह

निभाती है, कुछ कोताही होने नहीं देती है। इतना करने पर भी जब विजय सिंह पागलखाने में दाखिल होता हैतो नहा–धोकर सजने पर सास कड़वी बातें सुनाती है –''रंडी वेसा, किस यार को नहा–धोकर दिखाएगी? खसम को काले कोसों फेंक आई किस खसम को रिझाएगी? नये कपड़े नहीं पहन सकती। तेल डालकर चोटी नहीं गूँ सकती... मौका मिलते ही झपट मारती है।''[69] 'कही ईशुरी फाग' की रज्जो को भी पति के यादों में रहने के लिए विवश किया जाता है। लेकिन रज्जो पति को याद करते हुए सब कुछ खोना नहीं चाहती है। अपने जीवन की खुशी ईशुरी के साथ ढूँढती रहती है।

****

संदर्भ ग्रंथ :

[1] मैत्रेयी पुष्पा, स्त्री होने की कथा, पृ. 279

[2] मैत्रेयी पुष्पा, स्त्री होने की कथा, पृ. 280

[3] चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 167

[4] झूलानट, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 50

[5] कस्तूरी कुंडल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 66

[6] अल्मा कबूतरी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 74

[7] मैत्रेयी पुष्पा, स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 15

[8] चर्चा हमारा, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 63

[9] विजन, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 119

[10] विजन, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 154

[11] इदन्नमम्, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 241

[12] झूलानट, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 57

[13] गुनाह–बेगुनाह, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 86

[14] आवाज, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 71

[15] नारी अस्मिता की परख, डॉ. दर्शन पांडेय, पृ. 21

[16] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 14

[17] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ.17

[18] हिन्दी कहानी में नारियों की पारिवारिक समस्याएँ, डॉ. वनमाला चौधरी, पृ. 186

[19] स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, मृणाल पांडे, पृ. 42

[20] चर्चा हमारा, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 63

[21] विजन, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 119

[22] विजन, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 154

[23] इदन्नमम्, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 241

[24] झूलानट, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 57

[25] गुनाह–बेगुनाह, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 86

[26] गुनाह–बेगुनाह, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 19

[27] गुनाह–बेगुनाह, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 210

[28] गुनाह–बेगुनाह, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 211

[29] गुनाह–बेगुनाह, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 211

[30] हिन्दुस्तान (पटना) 12 मई, 2013

[31] गुनाह–बेगुनाह, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 208

[32] उपनी वश में स्त्री, प्रभा केतन, पृ. 80

[33] स्वातंत्रोत्तर महिला उपन्यासकारों के उपन्यास में नारी संदर्भ, कल्याणी कुसुम सिंह, पृ. 66

[34] आवाज, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 99

[35] आवाज, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 100

[36] मेरे साक्षात्कर, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 29

[37] मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम,डॉ. दयादीक्षीत पृ. 75

[38] मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम,डॉ. दयादीक्षीत पृ. 75

[39] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 16

[40] मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम, डॉ. दयादीक्षीत, पृ. 90

[41] मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम, डॉ. दयादीक्षीत, पृ. 64

[42] मेरे साक्षात्कर, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 27

[43] मैत्रेयी पुष्पा : स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 181

[44] मैत्रेयी पुष्पा : स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 181

[45] उपन्यास और वर्चस्व की सत्ता, वीरेंद्रयादव, पृ. 193

[46] मैत्रेयी पुष्पा, स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 245

[47] मैत्रेयी पुष्पा, स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 245

[48] मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम, डॉ. दयादीक्षीत, पृ. 113

[49] गुनाह–बेगुनाह, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 244

[50] गुनाह–बेगुनाह, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 245

[51] मैत्रेयी पुष्पा, स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 117

[52] इदन्नमम, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 83

[53] इदन्नमम्, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 124

[54] चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 412

[55] बेतवा बहती रही, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 86

[56] अगनपाखी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 79

[57] अल्मा कबूतरी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 170

[58] झूलानट– मैत्रेयी पुष्पा पृ–108

[59] आगन पाखी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 77

[60] कस्तूरी कुन्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 10

[61] बेतवा बहती रही, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 117

[62] चर्चा हमारा, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 30

[63] इदन्नमम्, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 81

[64] अल्मा कबूतरी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 368

[65] चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 19

[66] गुनाह–बेगुनाह, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 104

[67] इदन्नमम, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 271

[68] झूलानट, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 80

[69] अगन पाखी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 136

अध्याय – 4

मैत्रेयी पुष्पा का कहानी साहित्य : नारी जीवन मूल्य

4.1 सामाजिक

4.2 शैक्षणिक

4.3 आर्थिक

4.4 राजनीतिक

4.5 सांस्कृतिक

4.6 दलित नारी

4.7 विद्रोही स्वरः

4.7.1 सामंती पारिवारिक नारी विरोधी मूल्यों का ध्वस्त

4.7.2 विवाह संस्था के नारी विरोधी मूल्यों का ध्वस्त

4.7.3 पितृसत्तात्मक नारी विरोधी नैतिक मूल्यों का ध्वस्त

4.7.4 पितृसत्तात्मक नारी विरोधी संस्कारों का ध्वस्त

मैत्रेयी पुष्पा का कहानी साहित्य : नारी जीवन मूल्य

समकालीन स्त्री–लेखन ने पुरूष समाज द्वारा स्त्री के ऊपर थोपी गई मूल्यों का खंडन करनेवाली कहानियाँ लिखी है। आज की कहानी में छूट गए सच को भरने की कोशिश देखनी हो या कहने का खूबसूरत अंदाज समय से टकराहट देखनी हो या बेखौफ स्त्री की जबान और हिम्मत, मैत्रेयी पुष्पा एक प्रतिनिधि कथाकार का रोल निभाती नजर आती हैं। वे पुरूषवादी विचार में, पदावली में भरोसा नहीं करती, यौन शुंचिता से वृहत्तर सरोकारों के विषय में उनके पात्र सोचते हैं। तब उनके लेखन में हमें 'स्वतंत्रता' के नए अर्थ का प्रकाश फैला दिखाई देता है।

पुरूष के अनुसार नारी के मूल्य किस प्रकार होते हैं, इसके संदर्भ में शरतचंद्र लिखते हैं कि "सेवा–परायण, स्नेहशील, सती और दुःख तथा कष्ट सहन करते हुए मौन रहती है, अर्थात उनके द्वारा पुरूष को कहां तक सुख और सुभीता हो सकता है और कहां तक वे रूपसी हैं? पुरूष की लालसा और प्रवृत्ति को वे कहां तक निबद्ध तथा तृप्त रख सकती हैं? हम यह बात पृथ्वी का इतिहास खोलकर प्रमाणित कर सकते हैं कि स्त्रियों के मूल्य निश्चित करने के लिए इसके सिवा और कोई मार्ग है ही नहीं"[1] समकालीन भारतीय समाज में नारी जाति, वर्ण, वर्ग, प्रांत धर्म भेद के बिना उपेक्षित स्थिति ही भोगती है। कहीं पर भी छूट नहीं। स्त्री को मानवाधिकारों से पहचानकर सम्मान देनेवाले पुरूष को उंगलियों में गिने जा सकते हैं। मैत्रेयी पुष्पा का समूचा लेखन सबसे पहले इसी घुटन से दो चार होता है। इसके लिए पुरूष को दोष लगाती है कि "मर्दों का दिमाग भी एक दिन का तो बना हुआ है नहीं। उसमें भी सदियों का कूड़ा–कचरा रूढ़ियों और खाजों के रूप में बगैर किसी कोशिश के भरा और जमा है।"[2] मैत्रेयी पुष्पा थोड़े ही समय में अपनी अलग पहचान बनानेवाली नई पीढ़ी की वह चर्चित हिन्दी कथा–लेखिका है। उनकी कहानियों का परिवेश एक निश्चित परिवेश है, यानी ग्रामीण भी है और नगरीय भी, पर एक कथा–लेखिका के रूप में जो छवि मैत्रेयी पुष्पा ने अर्जित की है, उस पर आंचलिकता की मोहर तो लगी ही है। इनके चार कहानी संग्रह 'चिन्हार', 'ललमनियाँ', 'गोमा हँसती है' और 'पियरी का सपना', 'फाइटर की डायी' (रिपोर्ताज) हैं, वे सब यही साबित करती हैं। विषय वैविध्य के बावजूद इन कहानियों में एक साम्य है कि एक दो को छोड़कर लगभग सभी कहानियाँ स्त्री को केन्द्र में रखकर लिखी गई हैं। ज्ञानरंज इनकी कहानियों के

बारे में कहते हैं कि ''बेशक कहानियों में व्यक्त–ये दुःख नए नहीं। ग्रामीण स्त्रियों की भूमिकाएँ, देवर, ग्राम–प्रधान आदि का व्यवहार भी नया नहीं, लेकिन यहां स्त्रियां अपने दुःखों को महसूस करने और पुरूष–समाज के निरंकुश व्यवहार को समझने की चेतना जरूर है।''[3] राजेन्द्र इनकी कहानियों को महाश्वेता देवी की आदवासियों की जंगल कथाएँ जैसे धूम मचाई तो नहीं लेकिन छोटे पैमाने पर ऐसी ही प्रभावको मानते हैं।

मैत्रेयी पुष्पा कहानियों में नारी जीवन मूल्य के संदर्भ में कई प्रश्न उठाते हैं कि सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, मानसिक ऐसे सामान्य तौर पर मानव मूल्य, स्त्री जीवन के लिए अवश्य मांगकर स्त्री जीवन में स्थापित करना चाहती हैं। स्त्री को वस्तु से व्यक्ति बनाने की चाह रखती हैं। मैत्रेयी पुष्पा अपनी कहानियों में नारी की स्वतंत्रता की पक्षधर दिखाई पडती हैं। वे नारी को अस्तित्व से व्यक्तित्व तक ले जाने केलिए प्रयत्नशील है। वे कहती हैं कि ''जहाँ हमारी स्वतंत्र दृष्टि का निषेध होता हो, उसे हम साहित्य कैसे मानें? यहीं से रचनात्मक तनाव के क्षण शुरू होते हैं। इसी प्रक्रिया में सामाजिक अनुकूल से स्वाभाविकता का टकराव होता है। निश्चित ही इस टकराव में बहुत कुछ टूटता है, लेकिन नया भी कुछ बनता है। अनदेखा सच, अमान्य रही प्रकृति के नए–नए पक्ष सामने आते हैं। हाँ, बहुत संभव है कि नए पक्ष को परंपरावादियों से मान्यता न मिले। फिर भी रचनाकार की निष्ठा के बिन्दुओं का दायरा खत्म नहीं होता''[4] इनके अनुसार प्रतिरोध दर्ज करना ही साहित्य है। परंपरागत रूप से चली आ रही पुरूष सत्ता के द्वारा स्त्री के लिए बनाई गई जीवन मूल्यों से प्रतिरोध करती हैं इनकी नायिका। आधुनिक परिदृश्य को अनिवार्य बनाकर पुनर्विचार के लिए प्रेरित करती है। स्वतंत्रता, आर्थिक आत्मनिर्भरता, शिक्षा–सामाजिक जागृति, परिवेशगत परिवर्तन, पारिवारिक संबंध, समाज में संघर्ष करती, टूटती–बिखरती तो, कहीं अपने–आपको स्थापित करती नारी का रूप कहानियों में उभरता है। मैत्रेयी पुष्पा उस वर्ग की नारी के प्रति ध्यान दिया है जिसको अधिकांश लेखिकाओं ने ध्यान नहीं दिया था। उसमें उन्होंने ग्रामीण परिवेश में पली बढ़ी हुई नारी को अपनी कहानियों का पात्र बनाकर उन्हीं की भाषा में उनकी जीवन व्यथा, सुधारवादी रूप, विद्रोह रूप, विद्रोह रूप के आत्मसात करती नारी पात्र को चित्रित किया है।

4.1 सामाजिक :

समाज में कई परिवारिक इकाइयाँ ही है। आज व्यक्ति मात्र एक सामाजिक या पारिवारिक इकाई न होकर अपनी स्वतंत्र अस्तित्व रखता है। वह परिवार में कोई एक रिश्ते में बंधने से पहले पुरूष या स्त्री जो इन आरोपित संबंधों में अपने व्यक्तित्व को खोना नहीं चाहता, अपितु उसकी रक्षा के लिए सतत् प्रयत्नशील रहता है। परिवार में व्यक्ति और व्यक्तियों के बीच संबंध बहुत ही महत्वपूर्ण है। नारी का महत्व तो परिवार में सर्वविदित है। उसके बिना परिवार की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। लेकिन स्त्री के लिए व्यक्ति, व्यक्तित्व के लिए कोई मूल्य या महत्व नहीं है। परिवार में संस्कृति, नैतिक मूल्य, आदर्श के नाम पर स्त्री पर थोपी गई जीवन मूल्य के द्वारा आजन्म शोषण करके उसे कोई मूल्य नहीं दिया जाता है। वस्तुतः पुरूष सत्तात्मक मूल्यों और व्यवस्था को तोड़ना ही महिला लेखन का मूल उद्देश्य रहा है। मैत्रेयी पुष्पा पुरूष समाज द्वारा आरोपित दोहरी नैतिकता का पर्दाफाश करती हैं। लिंगभेद, दांपत्य जीवन में सह अस्तित्व, स्वतंत्र व्यक्तित्व की चाह आदि विषयों का मुख्य आघात विषय बनाया। मैत्रेयी पुष्पा के अनुसार स्वतंत्रता या मुक्ति का अर्थ देह प्रदर्शन नहीं बल्कि समाज में पुरूषों के समान विकास होने के लिए अधिकारों का सही उपयोग ही है।

नारी जन्म की स्वतंत्रता :

इस संदर्भ में उनका मानना है—अपने स्त्री जन्म के हक का हनन करना भी पुरूषानुकूल मानसिकता वाली स्त्रियों का काम ही है। इसे कायरता मानकर मैत्रेयी पुष्पा व्यग्य ही करती है। 'तुम किसकी हो बिन्नी' कहानी में बिन्नी की माँ शहरी, पढ़ी—लिखी औरत होने पर भी आरती गुप्ता तीन बार बेटी के पेट में ही हत्या कर देती है। एक बारआरती गुप्ता को बेटी होने पर वह डॉ. भार्गव के लिए डिफिकल्ट—पेशेन्ट बन रही थी। डॉ. भार्गव का आक्रोश उफनने लगा, उन्होंने आरती से पूछा कि ''एक बात का उत्तर दीजिए मिसेस आरती गुप्ता। गिव एन आंसर ओनेस्टली! आपकी कोख से वास्तव में ही लड़का पैदा हुआ होता तब भी क्या ऐसे संदेह में पड़ सकती थीं? कह सकती थीं कि मेरे तो बेटी हुई थी, आपने लड़के से बदल दी डॉक्टर। दे दो मेरी बेटी! मेरे सवाल का उत्तर दो मिसेज गुप्ता।''[5] लेखिका पुरूष मानसिकता से ग्रस्त पुत्रमोहित स्त्रियों पर आक्रोश करती है। स्त्रीत्व को महत्व देती है न कि पुरूषानुकूल मानसिकता वाली स्त्रियों को। यह बात सही है कि पुरूषों की तुलना में स्त्रियों

का कम प्रतिशत इस बात का भी साक्षी है कि जन्म के बाद या इस प्रौद्योगिकी युग में जन्म के पहले गर्भ में ही मार दिया जाता है।

नारी पारिवारिक जीवन मूल्य :

सहज रूप से मैत्रेयी पुष्पा स्त्री द्वारा स्त्री शोषण के लिए दोष पितृसत्तात्मक समाज और उसकी मानसिकता से मानती है। उनके साहित्य में स्त्री के रूप में शोषण करने वालों में सास, ननद, जेठानी, देवरानी, भाभी माँ आदि दिखाई पड़ते हैं। किसकी हो बिन्नी कहानी में बन्नी की माँ आरती गुप्ता ने पुत्र प्रेम से ग्रस्त होकर तीसरी बार भी बेटी को जन्म देती है लेकिन उससे प्रेम नहीं करती यहाँ तक कि उसे दूध भी नहीं पिलाती थी। उसकी दादी ही उसकी देखभाल करती। बिन्नी नर्स का दिया हुआ नाम ही है। माँ तो नामकरण का उत्सव के लिए भी मना कर देती है। एक बार बिन्नी अंजू की फ्राक पहनने पर गुस्सा होकर बहुत कठिन और क्रूर रूप से बेटी को खूब मारती जिसका मार्मिक चित्रण इन पंक्तियें में प्रयुक्त होता है ''ढ़ीट कहीं की। कंजरिया थप्पड़ की दर्दीली बौछार! मम्मी के हाथ जब चोट से झनझना उठे तो बिन्नी की नरम बाँह पर उन्होंने मांस काटकर ले जानेवाली चिकोटी गाढ़ दी चीखों–भरा सदन घर में फैल गया। पड़ोसी भी जान गये वही तीसरी पिट रही होगी''[6]

'ताला खुला है पापा' कहानी में बिन्दो ब्रह्मण होकर नाई के बेटे से प्रेम करती है तो उसे पारंपरिक मानसिकता के कारण उसकी माँ बेटी को बहुत ही ताड़ना देती है। बिन्दे उस ताड़ना का इस प्रकार वर्णन करती है कि ''मुझे नहीं याद कि उन्होंने कहाँ–कहाँ क्या–क्या मारा। पीठ, बाँह, कमर, बाल, कंधे, गाल सब जगह दर्द ही दर्द। नील ही नील। मैं दाँत खींचकर झेल रही थी, पर रो नहीं रही थी। चुड़ैल मैंने अपने जीवन में कभी देखी नहीं। होती होगी तो अम्मा जैसी होगी।''[7] ऐसे ही 'मुस्कराती औरतें' कहानी में भी तेरह साल की मुरली बेपरवाह बारिष में भींगकर फोटो खिंचवाई तो लड़की का फोटो अखबार में देखकर उसकी माँ बेटी मुरली को आवारा कहकर बहुत बुरी तरह पीठती है। मुरली जरा ढीठ किस्म की लड़की थी क्योंकि अक्सर ऐसा कुछ कर जाती, जिसकी सजा पिटाई से कम नहीं होती। जवाब देने से''माँ ने अबकी बार मुरली को अपनी जूती से पीटा, क्योंकि उनके हाथों में चोट आ गई थी।''[8]

भारतीय परिवार में सास–बहू का संबंध बहुत ही जटिल संबंध है। सास अधिकतर बहू को अपनी प्रतिद्वन्दिनी ही समझती है। दूसरा कारण ससुर बहूका पक्ष लेकर मदद करता तो सहज रूप से ही सास शोषण करती है बहू के विरोध में। 'रास' कहानी में गौने की पहली रात ससुर की वासना का प्रतिरोध करने पर सास उसे ताना मारते हुए कहती है कि''काहे को गाया था रमढोल हमें इलम है कि हमारा बच्चा छोटा है। मरद–मानस क्या सोचे–समझे? यही कि तेरी जवानी''[9] नारी को 'घोडी–बछेडी' के स्तर पर गिराती जैमंती की माँ और सास, पितृसत्तात्मक समाज में नारी के मन में अभ्यंतरीकृत उस पुरूष वर्चस्व को रेखांकित करती है, जहाँ नारी स्वयं नारी के शोषण में एक इच्छुक कारक बन जाती है। 'बारहवीं रात' शीर्षक कहानी में नारी मन–मस्तिष्क में भी पितृसत्तात्मक मूल्यों के अनुकूल की अभिव्यक्ति है। बहू सीता को आत्महत्या के लिए सास ही विवश कर देती है। सास द्वारा सीता बहू पर किया गया अत्याचार को हम सीता के ससुर के मुँह से सुन सकते हैं कि ''बहू की खातिर दो पइस। खर्च कर दिये तो आसमान उठ लिया सिर पर! कि तुम माल–मिठाई उड़वा रहे हो बहू को, कि दूधन–अस्नान करा रहे हो! ऐसा किया होता तो अभागिन का गरभ न गिरता। पहला गरभ खंडित हुआ औरतें उसे भरपेट रोटी तक नहीं दे रही थी, साली कर्कशा।''[10] और 'मन नॉहि दस–बीस' कहानी में सास हमेशा बहू का पूर्व प्रणय के विषय को लेकर गाली, यातना–यंत्रणा दिया करती है। विवाह के डेढ़ साल बाद भी बन्धक बनी रही फिर भी वह प्रताड़नाओं का एक और दौर आरंभ था पुत्र के नपुंसकत्व को जानते हुए भी ताड़ना देती है और पोते की चाह रखती थी।तब वह चंदना का अपने देवर के हवाले कर देती है। इससंदर्भ में अपनी इस यातना के बारे में चंदना स्वराज से कहती है कि ''सास को पोता चाहिए था और देवर को ऐश–अय्याशी। दोनों की मिली–भगत से जो खेल चल रहा था– वह कितना बीभत्स! कैसा भयानक!''[11]'सहचर' नामक कहानी में छबीली न चलनेवाली अपंग बन जाती है तो ससुरालवाले छबीली से वास्ता छोड़ना चाहते और अपने बेटे की दूसरी शादी भी करना चाहते हैं। सास भी पुरुष मानसिकता के साथ सोचकर कहती है कि ''अरे अब वे घर का धंधा निपटा लेंगी? अब तो उलटे उनकी ही पहल करेंगे हम। सो क्या करते हैं? हम अपने मोंडा का दूसरा ब्याह तो कल कर लें बेटे हैं क्या''[12]

शिक्षित बहू के द्वारा भी सास शोषित की जाती है। सास–बहू में पीढ़ीगत अंतर रहता है तो शिक्षित बहू सास से अधिक आधुनिक होती है। दोनों के बीच नये–पुराने जीवन–मूल्य, संस्कारों, आचार–विचारों में ऐसे ही सहज अंतर या दूर पड़ता है। सास के सफाई, रहन–सहन अलगाव के कारण बहूत ही भेद भाव, तिरस्कार उत्पन्न होते हैं। ऐसे उदाहरण 'अपना–अपना–आकाश' कहानी में देख सकते हैं। तीनों बहुओं में एक अपनी गँवारी रहन–सहन के ढंग के कारण शीलो देवी को रखना नहीं चाहती थीं। पुत्रवधु थीं तीनों के तीनों शहरीवाली थीं इसलिए गँवार सास के साथ उनके व्यवहार को हम समझ सकते हैं–''अपनी पुत्रवधु थी जो खाने के प्लेट किसी तरह नौकरानी से उनके ही कमरे में पटकवा देती थी, क्योंकि उनमें डबल–मैनर्स नहीं थे।.... बहुओं से मिला तिरस्कार उन्हें इतना नहीं सालता था, जितना गमगीन करती थी बेटों से मिली उपेक्षा।''[13] यही नहीं एकल परिवार होने के कारण पुत्रवधु सास को जल्दी भी भेजने के लिए आतुर होते हैं। तब सास का मन दुःख में डूब जाता है''जब यहाँ से जाने का वक्त समीप आता जाता है तो बहू अति आर्द्र हो उठती है, यह बात वे जानती है। दो–चार रोज बहू की मुस्तैदी से उनकी आज्ञा का पालन करती है, चीजें पल–छिन में हाजिर कर देती है।''[14] 'साँप–सीढ़ी' में पढ़ी–लिखी बहू अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए पारिवारिक पुराने नियम के अनुसार सास के अधीन रहना नहीं चाहती है। पति के साथ एकल परिवार में खुशी के साथ रहना चाहकर सास से घृणा करती है।

स्त्री संबंधों में ननद–भाभी का संबंध भी इतने कटु है कि कभी ननद उनके लिए भोज बन जाएगी। इसलिए ननद की उपेक्षा की जाती है। शादी के बाद लड़की के माइके में इतना महत्व भी नहीं है जितना शादी के पहले होता है। 'भँवर' कहानी में पति द्वारा त्यागने पर ननद को ही जिम्मेदार ठहराकर ताने रोज देती है कि ''तुम कौन–सी कमती हो विरमा! रूठती–लड़ती होगी रोज–रोज तभी न ननदोई जी ने इस सिवाने में पाँव धरा। भूले से भी नाम नहीं लेते तुम्हारा।''[15] 'चिन्हार' कहानी में जब सरजू का पति चंद्रप्रकाश मर जाता है तो ननद विद्या सरजू से बच्ची को जन्माने के लिए ले जाती और जन्म होनेपर बच्ची को छूने तक न देती बल्कि ममता की मारी जीवन भर तड़पने के लिए भाभी को छोड़ देती है। बच्ची को अपना बनाने के खातिर माँ को दूध तक पिलाने न देती है इस करूणाकंद्र दृष्य को लेखिका इस प्रकार वर्णन करती हैं कि''विभिन्न तरह के खिलौनों से सजी कॉट में पड़ी बेटी हाथ–पैर

मारकर किलकारी भरती तो सरजू दूर से देखकर ही निहाल हो लेती। क्षुधा से व्याकुल कनक जब रो–रोकर घर की जिम्मेदारी सरपर उठा लेती तो सरजू की छातियों से दूध की धार स्वयं बह–बहकर जमीन पर गिरने लगती। लेकिन... वह दूध भरे स्तन लिए अपनी कोठरी की ओर भागती... विद्या देवी की हाँक घर में गूँजती और आया दूध का तापमाने बिना देखे ही जल्दी से बच्ची के मुह में रबड़ की निपिल ठूँसने का प्रयत्न करती तो कनक और जोर से चिंघड़ उठती। कैसी विकट स्थिति... पास ही क्षुधा से व्याकुल चीखता शिशु और भरे स्तन लिए दुग्धपान कराने को तरसती माता''[16] 'संबंध' कहानी में भाभी ननद को खारिज करती रहती है क्योंकि सास का गुस्सा सास की बेटी ननद पर ही भारी पड़ती है। तो सास सीधा कहती है कि ''हमारी बहन भौजाइयां यहां मुफ्त में नहीं खातीं, पहले मशक्कत करा लेते हो। इसी से हम भी अपनी औकात नाप लेते हैं। गौरी बिन्नू घड़ी–घड़ी चाय पीती है और अखबार में मूँड दिए रहती है। यही है उनका काम? बेटी की करतूतों को मां न ढंके तो कौन ढंके? तुम भी विचारी क्या करो?''[17] यहाँ लाचार और बेबस औरत की वास्तविक चित्रण दिखाई देता है। 'सफर के बीच' कहानी में बिरजू भाभी केलिए ननद–देवर भोज बन जातेहैं कि ''बिरजू और सरोज के लिए घर का आंगन सूना नहीं, बेगाना था। अपमान बिला गया। न जाने कहा दोनों दुरियाये–से धूल–भरी गली में डोलते रहते बाहर ही बाहर... सारा दिन। भूख लगने पर भी डरा–सहमा बिरजू भाभी से खाना न मांग पाता, सरोज बर्तन–झाड़ू करते–करते डरती। आस–पड़ोस से उपजी सहानुभूति भाभी की रौद्रता को अधिक प्रचंड कर देती''[18] यानी भाभी की कठोरता ने उन मासूम दिलों पर भय उत्पन्न करके रखा है। जिसके कारण वह डरे–सहमे हुए रहने लगते हैं। 'उज्रदारी' कहानी की नायिका शांति अपनी जेठानी के द्वारा शोषित की जाती है। शांति संयुक्त परिवार में विधवा होकर बेटे के साथ जेठ–जिठानी के अन्याय को सहती रहती है। अलग होकर जीने के लिए जेठ–जिठानी जमीन जायदाद को बँटवारा करना नहीं चाहते हैं। जिठानी तो शांति जैसी मुफ्त में काम करनेवाली नौकरानी को छोड़ने केलिए तैयार नहीं है। वह उसीको दोषी ठहराते हुए कहती है कि ''बीरू, देख तो। तेरे बाप ब्याह में आनगाँव क्या चलें गये, यह रंडी तो एकदम ही आजाद हो गई। कमाऊ देवर ने जीते–जी जुबान नहीं खोली। भइया के इशारे पर उठा–बैठा। यह राँड क्या हुई, छुट्टा हो गई। अलग न

बसेगी तो और कैसे आएँगे?''[19] विधवा स्त्री के साथ दूसरे स्त्री का बेरहम व्यवहार को दर्शाया गया है। इस कथन से समाज में विधवा स्त्री के प्रति रवैय्ये को देखा जा सकता है।

4.2 शैक्षणिक :

मैत्रेयी पुष्पा 'बेटी' कहानी में स्त्री शिक्षा से वंचित मुन्नी द्वारा शिक्षा के महत्व को समझाती है और वह शिक्षा को स्त्री का प्राथमिक हक और जन्मसिद्ध अधिकार मानती हैं, क्योंकि शिक्षा के द्वारा स्त्री ज्ञान प्राप्त कर अपना व्यक्तित्व बना सकती और अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़ सकती है। स्वतंत्र भारत में बेशक कुछ खुले विभागवाले बुद्धिजीवी लोगों ने स्त्री की दशा–दिशा को जाना–पहचाना और उनके लिए शिक्षा के द्वार खोले। मानवीयाधिकारों को समझनेवालों ने देश के गणतंत्र में स्त्री को भागीदार बनाया। ऐसे पुरूष मुट्ठी भर ही थे मगर वे समानता के पक्षधर और बुलंध आवाज के धनी थे। इस संदर्भ में मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं कि ''स्त्री पढ़ाई के लिए ज्यादातर परिवारों ने अपने कुछ इज्जत की दुहाई देते हुए समानता के पक्षधरों के आह्वान पर रोक लगा दी जबकि उन्हीं परिवारों ने बेटों को अनिवार्य रूप से शिक्षा का अधिकार दिया। स्त्री को दिए गए समान अधिकारों को व्यवहार में लाने से पहले उन्हें छीननेवाले आते रहे''[20] इस कथन से यह प्रतीत होता है कि पुरुषवादी मानसिकता ने किस तरह स्त्री को स्वतंत्र होने से रोकने का षड़यंत्र रचा। अपनी 'बेटी' कहानी में पुरूषानुकूल मानसिकता वाली समाज ने किस प्रकार से बेटी को शिक्षा दिलाने से रोक लगाती है यह बताते हुए कहती कि ''तू लड़कों की बराबरी करती है! बेटे तो बुढ़ापे की लाठी हैं हमारी, हमें सहारा देंगे। तू पराए घर का दलिद्दर। तेरी कमाई नहीं खानी हमें कह दिया। कान खोलकर सुन ले''[21] इसके बदले में वह मुन्नी के द्वारा मैत्रेयी पुष्पा की आवाज बुलंद होती दिखती है कि ''अम्मा, तुम मेरे साथ जो कर रही हो, वह कुछ अच्छा नहीं कर रहीं। तुम पाँच–पाँच लड़कों को पढ़ा सकती हो, लेकिन मेरे लिए तुम्हारे घर अकाल है।मेरी किताब–कापी के पैसे तुम्हें भारी हैं अम्मा!''[22] मुन्नी अनपढ़ लड़की होकर भी शिक्षा की स्वतंत्रता की मांग के लिए सजग होकर आवाज उठाती है। शिक्षा के अधिकार के प्रति सचेत नारी है।

'बहेलिये' कहानी की नायिका गिरजा भी शिक्षा स्वतंत्रता और अधिकार से सचेत रहती है। पिता मरने के बाद संयुक्त परिवार में उसे बिना बोले ही शादी की तैयारियँा करते हैं। तब

वह माँ के साथ परिवार से दूर जाकर सारा भार उठाते हुए आगे बढती चली जाती है।''उस दिन से गिरजा ने फिर पीछे छूटी पुस्तक हाथ में पकड़ ली। वे पढ़ने लगीं। शिक्षा और जागरूकता की बातें करने लगी, स्त्री शोषण के विरूद्ध आवाज दे उठीं। रात में सभाएं करतीं, रात्रि–पाठशाला में ग्रामीण बहनों को जोड़ लेती।''[23] गिरिजा ने शिक्षा को अपने जीवन विकास का दामन मानकर लोक कल्याण के लिए शिक्षा का प्रयोग करती है। वह शोषण से बचकर स्त्रियों को भी बचाती है। लेखिका मुन्नी द्वारा व्यक्तित्व विकास और गिरिजा द्वारा सामाजिक कल्याण करती दिखाई देती है। लेकिन, दोनों का माध्यम शिक्षा को ही चुनती है। 'अब फूल नहीं खिलते' कहानी की नायिका झरना के द्वारा लेखिका लड़कियों को लड़कों के साथ पढ़ाना चाहती है। सहशिक्षा के लिए जोर देती है। कोई अकेली रहकर नहीं पढ़ना चाहती।

यह प्रेरणा मैत्रेयी पुष्पा को अपनी माँ से मिली थी। क्योंकि मैत्रेयी पुष्पा की माँ कस्तूरी देवी भी पति मरने के बाद निराश न होकर बेटी रहने पर भी शिक्षा प्राप्त कर अपने व्यक्तित्व विकास पाकर, समाज कल्याण कार्य किये थे और अन्याय का विरोध, स्त्री–शोषण का विरोध किये थे। स्वयं लेखिका भी शिक्षा और लेखन के द्वारा ही अपनी अस्मिता स्थिर कर पाई है।

4.3 आर्थिक :

भारतीय समाज मूलतः वर्णगत असमानता से पीड़ित है। भारत में स्त्री भी वर्णगत जाल में फंसी हुई है। परिवार का मुखिया पुरूष होने के कारण आर्थिक विषयों में, परिवार के लिए निर्णय लेने में प्रमुख व्यक्ति होता है। स्त्री केवल घरेलू काम, बच्चे पैदा करने में ही लगी रहती है। महिला के बिना परिवार की कल्पना नहीं कर सकते मगर उसका महत्व परिवार जनों को नहीं महसूस होता है। उसकी उपस्थिति अस्थाई और गौण ही है। दूसरा दर्जा ही है।पितृसत्तात्मक समाज के आधार पर समाजिक संरचना और आर्थिक सामाजिक जगत में पुरूष वर्चस्व के कारण नारी अधीनस्थ स्थिति में रहने को बाध्य है। विवाह संस्था की दमनकारी संरचना स्त्री को आर्थिक सुरक्षा देने से इनकार करती है, क्योंकि यही आर्थिक आधीनता की स्त्री निर्भरता पितृसत्ता पर सुनिश्चित करती है। विवाह संस्था के दमनात्मक क्रूर पंजों से स्त्री को आजादी देने के उद्देश्य से डॉ. अंबेडकर 'हिंदू कोड़ बिल' ले कर आए थे। स्त्री को सुरक्षा बहाल करके पितृ सत्ता पर उसकी निर्भरता कम करने के उद्देश्य से बनाए

इस क्रांतिकारी बिल का उस समय के कट्टर हिंदुओं ने विरोध किया था। उस समय शिक्षित नारियां भी शामिल थीं, स्त्री द्वारा विरोध कराना भी पितृसत्ता की ही चाल थी जिसमें कुछ हद तक हिंदुओं को सफलता भी मिली थी। इस संदर्भ में विमल थोरात का कहना हैं कि–''डॉ. अंबेडकर की अथक कोशिशों और संसंद में बिल के पक्ष में प्रस्तुत अकाट्य युक्तियों के बाद अनेक विधेयकों के रूप में यह बिल पास हुआ। हिन्दू कट्टरवाद से लडते हुए, मंत्रीपद से इस्तीफा देकर भी डॉ. अंबेडकर स्त्री स्वाधीनता के इस बिल के पक्ष में अविचल खडे रहे।''[24] हिंदू कोड बिल में स्त्रियों को पैतृक संपत्ति में अधिकार वे दे चुके थे। परिवार में दूसरे दर्जो पर जीनेवालों के अधिकार संपत्ति तक नहीं हो पाती है। परिवारिक जन के रूप में स्त्री के लिए कोई आर्थिक उत्तराधिकार नहीं दिया जाता है। इसी कारण डॉ. अंबेडकर ने उन्हें समानाधिकार दिलाना चाहा।

स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से असमर्थ होने के कारण ज्यादातर स्त्रियाँ अभावग्रस्त होती हैं। इसलिए स्त्री अपने मूल्य समाज, परिवार में स्थापित करने के लिए लड़ना, संघर्ष करना पड़ता है। उसके लिए उत्तम माध्यम शिक्षा ही है। शिक्षा के बिना यह संभव नहीं है। शिक्षित होकर आर्थिक आत्मनिर्भरता को सब तक पहुँचाना है। स्वावलंब होनेवाली स्त्री ही जीवन के प्रत्यक्ष कुरूक्षेत्र में लड़ती रहती है। मैत्रेयी पुष्पा समर्थ वर्ग की स्त्री को स्वयं संघर्ष करने के लिए सलाह देती है। भारतीय स्त्री को व्यवस्था रूप चट्टान से टकरा–टकराकर अपनी राह निकलने के लिए संकल्पबद्ध तैयार करती है। आजकल के परिस्थितियों में आर्थिक स्वतंत्रता के बिना स्त्री समाज में पुरूषवर्ग के अन्याय, शोषण और दासता से मुक्त नहीं हो पाती है। स्वावलंबी बनकर ही अपने निर्णय लेने में सक्षम बन रही हैं।

मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में उनका प्रयास यही रहा है कि स्त्रियों को सामाजिक, आर्थिक विकास के लिए एक बराबर इंसान के अधिकारों को दिलाए। उनकी कहानियों में आर्थिक स्वावलंबी नायिका हमें 'रास' कहानी की जैमंती, 'राय प्रवीण' की नायका सावित्री; 'बहेलिये' की नायिका गिरजा वे अल्पायू में विधवा होती और राजनीति में प्रवेश करके स्वावलंबी बनती है। सावित्री गाँव के लिए खना बटोरने के लए अपने शरीर को बेचती है। इस दोष का कारण पितृसत्तात्मक व्यवस्था को दोष देते हुए ताराबाई शिंदे का कहना हैं कि ''अब सवाल है वेश्या कौन? उसकी तो सृष्टि विचित्र उत्पत्ति नहीं हुई, न किसी देव ने उन्हें

गढ़ा। वे तो तुम से ही उगाई गई और घर से निकाली गई औरतें हैं।... वे तो तुमसे ही उगाई गई और घर से निकाली गई औरतें हैं।.....किसी वेश्या से यदि उसकी पिछली जिंदगी के बारे में पूछा जाए तो आग–बबूला हो वह पुरुष की ही निंदा करेगी जो इस स्थिति तक ले आया।''[25] 'रिजक' कहानी में नायिका लल्लन छोटी जाति (मौहरो) की होकर बड़े घर में दायी का काम करती है। उस पेशे के कारण गाँव के बड़े लोगों में उनका नाम गिना जाता है। व्यवसाय कोई भी क्यों न हो छोटा–बड़ा नहीं होता। कर्मठता और लगन हो तो हर व्यवसाय आमदनी का अच्छा स्रोत हो सकता है। 'ललमनियाँ' कहानी में भी मोहरों का आर्थिकार्जन के रूप में लेखिका विख्यात पारंपरिक लोक–नृत्य ललमनियाँ को नए जमाने की वस्तु होते जाता हुआ दिखाती है। 'बिछुड़े हुए' कहानी की नायिका 'चंदा' का पति 20 साल पहले छोड़कर जाता है तो चंदा मेहनत मजदूरी को स्वावलंबी मार्ग बनाकर अपने स्वाभिमान का परिचय देती है। 'सेंध' कहानी की नायिका कलावती आर्थिक रूप से स्वावलंबी है। 'मुस्कराती औरतें' कहानी की नायिका कामकाजी औरत होने पर भी पति से प्रताड़ित होती दिखाई देती है। कामकाज करने वालि औरतें अपनी मेहनत का मूल्य समझना होगा और दूसरों को समझाना होगा।कामकाज करने वाली औरतें समानता की लड़ाई को दिखाते हुए उसे चित्रित किया है।इस कहानी के द्वारा मैत्रेयी पुष्पा यही संदेश देना चाहती है। ''चाहे नौकरी करती 'मुस्कराती औरतें' हो या घरेलू स्त्री सभी को अपने लिए लड़ना और संघर्ष करना होगा सामंती मालिक वृत्ति के विरुद्ध। अपनी दशा उसे स्वयं सुधारनी होगी, अपने हक की आवाज उठाकर आगे बढ़ना होगा।''[26]

मैत्रेयी पुष्पा अपने रिपोर्ताज 'फाइटर की डायरी' में स्त्री की स्वतंत्रता और समानता की लड़ई को दिखते हुए उससेबहदूर व्यक्तित्व के रुप में चिव्रत किया है। कोई–नौकरी करनेवालों के द्वारा नौकरी छोड़नेकी बात होती तो लडकी उस लड़के से शादी को ही नकारती है। जीवन में लड़कियाँ पारिवारिक कठघरों को तोड़कर मुक्ति की तलाश में...और ताकत हासिल करने के लिए उस एरिया में हस्तक्षेप करती है जिसमें अभी तक उनके लिए वर्जित क्षेत्र है, जिसके लिए सामाजिक मान्यता प्राप्त जगह नहीं थी, जिससे वे अपने मुक्ति संघर्ष को आगे बढ़ा सके।

4.4 राजनीतिक :

हर व्यक्ति जन्म से ही कुछ अधिकार लेकर आता है, चाहे वह जीने का अधिकार हो या विकास के लिए अवसर प्राप्त करने का हक। मगर इस पुरूषसत्तात्मक समाज में महिलाओं के साथ लैंगिक आधार पर किये जा रहे भेदभाव की वजह से महिलाएं इन अधिकारों से वंचित रह जाती है। देश तो सैंसठ साल पहले स्वतंत्रता पायी मगर स्त्री की स्वतंत्रता संग्राम अभी भी जारी है। इस वजह से महिलाओं के अधिकार को सुनिश्चित करने हेतु हमारे संविधान में अलग से कानून बनाए गए हैं और महिलाओं को अपनी जिन्दगी जीने में कानून भरपूर मदद कर सके, इसके लिए समय–समय पर इनमें संशोधन भी किए गए हैं।

गणतंत्र यानि नागरिक व्यवस्था में स्त्री ने अपने हक, तय कर लिए जिनको लिखित रूप में ही नहीं पहचाना जाता बल्कि व्यावहारिक रूप में भी प्रचलित होना जरूरी माना। स्त्रियाँ अच्छी तरह से जानती हैं कि उनके अधिकारों पर बड़ी चालाकी से डंडी मारी गयी है। जब जब स्त्रियाँ इन बातों को उठाती हैं, मर्द चतुर षड़यंत्रकारी के रूप में प्रगट होते हैं और औरत की ही बात कहते हुए जाति से जोड़कर मुद्दे को खटाई में डाल देते हैं। मैत्रेयी पुष्पा इस संदर्भ में कहती हैं कि ''यह कैसा गणतंत्र है कि महिला आरक्षण बिल कबसे लटका पड़ा है। पंचायती राज में महिलाओं को जो आरक्षण मिला है, उसके तहत आयी स्त्री अपने ही परिवार के पुरूषों द्वारा आयोग्य मान ली जाती है और सारे अधिकार छीन लिए जाते हैं।''[27] स्त्री सत्ता और सिंहासन को प्राप्त कर अपने ऊपर किए गए अत्याचार व शोषण का प्रतिरोध करती है। स्त्री का एक ही आग्रह है कि उसे भी मानव और स्त्री का स्थान दिया जाए। 'फैसला' कहानी में वसुमती के द्वारा मैत्रेयी पुष्पा स्त्री अपने व्यक्तिगत, परिवार प्रयोजनों, सुख–सुविधाओं को दरकिनार कर गाँव के विकास को लेकर सपना देखती है कि ''इस रूपयों को जिस दिन हस्ताक्षर करके लायी थी, उन दिनों स्वर्ग के सपनों में विचरा करती थी। चमचमाते स्कूल और पक्की गलियों की चाह थी मन में। वर्षा की रौ में ढ़हे झोपड़ों को सँवार देने की आकांक्षा की थी। हाथ पर हाथ धरे बैठे बेरोजगारों के घर दुर्दिनों में चूल्हा जलाने की बात सोची थी। बीमारों के दर्द को हरने के लिए कुछ दवा–गोली का साध थी। वसुमती देवी इन छः अक्षरों ने सपनों के घरौंदे का कण–कण आहत कर डाला।''[28] इंटर पढ़ी लिखी नेक, सज्जन, ईमानदार, चैतन्य युवती जो गाँव में भलाई के काम करना चाहते हुए भी पति के

बंधनों और वर्जानाओं में घटती हुई हमेशा ही उसके अन्यायों को मूक होकर सहन करती चली जाती है। वर्ष 1992 में 73वें एवं 74वें संवैधानिक संशोधन के बाद पंचायतों और स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए दिये गये आरक्षण के अनुसार अवसर पाकर वसुमति भी प्रधान बन पायी थी। लेकिन उसकी नियति आज की ग्राम प्रधानों जैसी ही है। सारा काम, सारे अधिकारों का प्रयोग पति करता है, केवल हस्ताक्षर पत्नी के। पत्नी के रबर स्टांप से ज्यादा हैसियत नहीं। यही तो है भारतीय स्त्री की नियती। बसुमती का अंतर्द्वंद्व अपनी चरम सीमा पर उभरा है। जैसे अपना अंतर्द्वंद्व को प्रकट करने का आखिरकार वसुमति को अवसर मिल ही गया कि ब्लाक प्रमुख का चुनाव लड़ रहे अपने पति को उसने बहुत सारे विचार कर अपना वोट नहीं दिया, उसी एक वोट से वह चुनाव हार गया। इस तरह उसने असत्य, अन्याय को ठुकरा कर न्याय का साथ देने का फैसला कर लिया था। वह स्त्री मन का अपना फैसला है पुरूष का कोई प्रवेश न था। यहां वसुमति पति को वोट देने से इंकार और पति को हराना नहीं चाहती है मगरवह ऐसा आदमी को हराना चाहती है जो अन्याय, अत्याचार करता है। वह सोचती है कमसे कम अपना वोट न दू पति हारेगा यह भी नहीं जानती है वसुमती, इस संदर्भ में रमेश तैलंग कहते हैं कि ''वसुमति जहाँ राजनीति की गंध में भी मूल्यों की रक्षा के लिए अपनी अंतरात्मा को सर्वोपरि रखती है।''[29] 'फैसला' कहानी मैत्रेयी पुष्पा जी की सबसे अच्छी और सशक्त कहानी है। बसुमती न वह अन्याय करती है, ना ही अत्याचारियों का साथ देती है, फिर भले ही उस जमात में उसका पति ही क्यों न हो।

'ग्राम्य प्रमुख' वोट पति के प्रत्यर्थियों को देकर वसुमति अपनी मानसिक स्वतंत्रता व्यक्ति करती है। तो ऐसा लिया गया फैसला बसुमति की आत्मा की आवाज का ही परिचायक है, जैसा कि वह स्वीकारती है ''लेकिन मैं क्या करती? अपने भीतर की ईसुरिया को नहीं मार सकी।''[30] इसमें संदेह नहीं कि स्त्री–सहनशीलता की प्रतिमूर्ति होती है, पर जब उसकी सहनशीलता की हर सीमा टूट जाती है तो उसके अंदर की विद्रोही आत्मा जाग उठती है। ईसुरिया बसुमती की अंतरात्मा ही है, वह जब जागती है तब वसुमती का चरित्र ही बदल देती है। 'फैसला' की बसुमती और ईशुरिया दो पात्र होते हुए भी ऐसे लगता है कि एक ही स्त्री के दो रूप हैं, जैसे बसुमति शरीर हो और ईशुरिया उसकी आत्मा। बसुमति तब वह राजनीतिक छल–छद्म और हर तरह के अनाचार के विरूद्ध खड़ी एक भीरू स्त्री नहीं एक शक्तिवान स्त्री

दीखती है, जो अपने विवेकाधार का इस्तेमाल अपने ही पति के विरूद्ध करने से नहीं हिचकिचाती।

राजनीतिक मूल्यों के टकराव को ही उभारती दूसरी कहानी 'सेंध' है। जिसकी नायिका बौहरी उर्फ कलावती, 'फैसला' की बसुमति के बरक्स एक कंट्रास्ट चरित्र के रूप में सामने आती है। जहाँ बसुमती मूल्यों की रक्षा के लिए अपनी अंतरात्मा को सर्वोपरि रखती है, वहीं बोहरी अपनी स्वार्थ सिद्ध के लिए सबसे पहले अपनी अंतरात्मा को ही मारती है। इसे बौहरी की धन–शक्ति और शतरंजी चालों के शिकार हुए गंगासिंह के आत्मपीड़ा तथा व्यंग्य–मिश्रित संवादों के रूप में देखा जा सकता है। कलावती विधायक के विचार के अनुसार नाचा करती है। वह अपने सोच के अनुसार कुछ नहीं करती है। आस–पास के गांवों में सबकलावती के बारे में कहते हैं कि ''बौहरी ने खूब सँभाला–समेटा। उसियार निकली, खूब चतुर।''[31] इस कहानी में कलावती का दिवंगत पति जोगी के दोस्त का नाम किसान गंगासिंह था। जोगी बौहरे की पत्नी को सारी जमीन चकबंदी में काटकर उसे उजरबंजर जमीन दे दी जाती है। वह सारी जमीन रिश्वत के रूप में जोगी की पत्नी कलावती को दिया जाता है तो गंगा सिंह कहता है कि ''किरपा बनाए रखना बौहरी... गंगा सिंह हाथ जोड़े खड़े थे।''[32] इस कहानी में स्त्री राजनीति में आकर भी मन में जो समा हुआ पितृसत्ता के मूल्य स्त्री के लिए जो अनुकूल है वह उस अवसर को स्त्री, समाज के कमजोर लोगों को शोषण करने लगती है। स्त्री राजनीतिक मूल्य को ध्वस्त कर देती है।

उसी प्रकार 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी में भी दिखायागया कि पुरूष अपने पत्नियों को पंचायत स्तर में अपने अधिकार, राज चलाने के लिए महिला आरक्षित सीटोंपरउन्हेंखड़ा करते हैं। पीतम सिंह ने भी अपनी पत्नी सुशीला देवी को चुनाव में खड़ा कर दिया। सुशीला देवी को चुनाव की न तो कोई जानकारी थी और न रूचि भी। उनके विरोध दल के रूप में धनपाल ने भी अपनी पत्नी कोमला देवी को भी खड़ा किया। ये दोनों औरतों के पीछे पुरूष थे जो अपनी पत्नियों के प्रधान पद के द्वारा राजनीतिक अधिकार को चलाना चाहते हैं। दोनों राजनीतिज्ञ एक दूसरे को पछाड़ने के लिए दिन रात षड़यंत्र बनाने लगे थे कि कोई आलटा, बिछुए, दारू तो कोई कपड़ा जैसे में लगे थे। धनपाल की पत्नी को बिछुए ब्लाउज पीस, बन्दी, आलता, पाउडर, बाँटनी थी घर–घर जाकर। धनपाल ऐसे बांटने के लिए कहने पर कोमला

देवी इनकार करती और कहती है कि ''हम नहीं जाएँगे। हजारों का सामान दूसरों को दे आये? हमारे लिए तो तुमने एक काँटा तक नहीं बनवाया... उन छछूँदरों के लिए ले आए सिंगार–दिमाका बहन को ब्याह आ रहा है, एक जंजीर तक नहीं है पहनने को। तुमही दे आओ।''[33] पति के स्वार्थ के लिए पत्नी को बिना कुछ खर्चे के कंजूसीपन को सफाई देती है और पत्नी को जैसे चाहे वैसे पति के अनुकूल रहने से विद्रोह करती है। लेकिन पति धनपाल सिंह पत्नी को चिरौती–विनती करता रहा तो कोमला छः सात घर घूमकर लौट पड़ी है।

पीतम सिंह तो पत्नी को घर बिठाकर ही सुसीला देवी को सुनाता है कि ''अरे तुम ठस्स मगज को कैसे समझाऊँ कि लोग जेल में बन्द रहने पर भी जीत जाते हैं।''[34] पत्नी सुसीला देवी घर–घर जाकर लोगों के दुःख दर्द सुनना चाहती है, क्योंकि चुनाव में जीतेगी तभी तो गाँव का विकास करने के लिए कहेगी। लेकिन पति उसे बाहर जाने नहीं देता तो पत्नी कहती है–''हम झूठ क्यों कहें उझककर किसी को देहरी नहीं देखी। अच्छा होता, कामता की जनी को खड़ी कर देते, डलिया धरके घर–घर जाती तो है। लोगों के संग मिल बैठती तो है। हम तो गीत–नाँद भी जैसे गये तैसे झूल डाले लौट आये। ठकुरास के मारे ही मैन नहीं''[35] 'आरक्षित' कहानी में भी मैत्रेयी पुष्पा ने दर्शाया है कि स्त्री आरक्षण के कारण गाँव के स्त्रियाँ चुनाव के लिए खड़ी कर दी गयी थीं। असल में औरत का नाम चाहिए था पुरूषों को। क्योंकि उत्तर प्रदेश का श्यामली गाँव की सीट महिला उम्मीदवार के लिए रिजर्व है। यह भी हुई कि एक घर में पिता–बेटा अपने बीवियों को खड़ा कर दिये थे। सास–बहू के बीच काँटे की टक्कर थी। पिता–बेटा वाद–विवादों में मार–पीट भी बुरी तरह से किये थे। बीच में सुलझने गये सास–बहूघायल हो गये थे। बाप को अपने महत्व की लालसा है और बेटे को प्रधानी से जुड़े धन का लालच है।

स्त्री उम्मीदवारों के साथ पुरूष का नाम इस प्रकार जुड़ा कि सुशीला देवी, माता रघुवीर सिंह, जानकी बाई काकी, गोविन्द सिंह को जिताइए। श्रीमती रामसिया देवी, दादी दीपक राय को अपना वोट दें। सास–बहू के संभाषण से चुनाव की मजबूरी को समझ सकते हैं कि ''अम्मा, हमें वोट मांगने भी जाना ही होगा, नहीं तो घर के आदमी जीना मुहाल कर देंगे। मांगो, छीनो, झपटो, लड़ो, बस इनके लिए।''[36] सास बहु दोनों ने अपने ही वोट काटे। चुनाव के नतीजे आए तो मटल्लू की बहूजीत गए।

सास बहु अपने वोट डाले बिना इसलिए रहे थें कि बाप–बेटे के लालचों को नष्ट करने के लिए, मन में बाप–बेटों का भ्रष्टाचार को नष्ट करने का ठान ली थी। मटल्लू की बहू साधना यादव ने अपने चेहरे से पर्दा उठाया कि रोशनी का द्वार खुल गया। शपथ समारोह में बाहर न बोल सकी लेकिन ये अनायास ही कहा कि अब हम घूँघट नहीं घोलेंगे यह भी तो शपथ हैं। पुरूष द्वारा बनाया गया घूँघट जैसे अनेक पर्दाओं को उठाने से ही स्त्री जीवन में रोशनी आती है।

4.5 सांस्कृतिक :

पितृसत्तात्मक समाज में पति का अर्थ होता है मालिक, तो मालिक अपने गुलाम से प्रेम नहीं शासन करता है। शासन प्रेम से नहीं भय से, इसीलिए विवाह में प्रेम कम भय अधिक है। विवाह में तो किसी अनजान व्यक्ति को पति परमेश्वर बना दिया जाता है। विवाह में जीवन साथी का चयन करने का हक स्त्री को आजकल है।

आजकल स्त्री पढ़–लिखकर पूर्ण स्वतंत्र हो गयी है कि उसको किस उम्र में, किससे कब शादी करनी है। एक ओर वैवाहिक संस्कार और दूसरी ओर लड़कियों की शिक्षा, दोनों आपस में टकराने लगे। अपने लिए फैसला लेने का अधिकार उसने अपने हाथ में ले लिया है, और अपने लिए गए निर्णय पर उंगली उठाकर उसने गुणवती कन्या होने के लक्षण खो दिए हैं, अब माता–पिता बेटी को ब्याहकर गंगा स्नान का पुण्य नहीं ले पाते।

जिस तरह पुरूष का रंग–रूप और उम्र नहीं, आमदनी देखी जाती है उसी तरह अब लड़कियां भी आर्थिक मजबूती हासिल कर रही है, तो उनका रंग, रूप और उम्र विवाह के आड़े नहीं आ जाते हैं। जिन लड़कियों ने विवाह की मान्यता प्राप्त उम्र को चुनौती दी है, विवाह का निर्णय अपने हाथ में लिया है, वे सब जानती है कि साथी और जीवन साथी में क्या अंतर होता है। अगर साथी समानता की भावना का विश्वास जगाता है, तो साथ में अस्थायी रिश्ते के खतरे भी रहते हैं। जीवन साथी के साथ जीवन–भर का भरोसा लगता है मगर वहां सामंती व्यवहारिकता का बोझ भी रहता है। स्त्री को अपने निर्णय से इन दोनों के बीच रास्ता बनाना पड़ता है।

जीवन साथी को चुनने में स्वतंत्रता चाहनेवाली लड़कियाँ यहाँ हमें 'ताला खुला है पापा' में बिन्दो, 'मन नॉहि दस बीस' में चंदना, और 'सफर के बीच' की हेमंती मिलती है। 'हेमंती तो आत्महत्या कर लेती है, पिता के पसंद किए हुए लड़के से शादी नहीं करती है। बिन्दो और चंदना की जाति अलग होने से शादी नहीं हो पायी थी। लेकिन 'पगला गई है भागवती' कहानी की अनुसूइया ने जाति परंपरा नियम का अतिक्रमण कर मन चाहे साथी से चुपके से शादी कर लेती है। जैसे ही पिता को पता चला तो वह चार मास का गर्भ होने पर भी जहर देकर मार डालता है। लेकिन जब बेटा अंतर्जातीय विवाह करता तो घर में स्वागत करता है। इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था में बेटा–बेटी के लिए अलग–अलग मानदंड के होनेविरेद में मैत्रेयी पुष्पा अपने आक्रोष को भागवती द्वारा व्यक्त करती है कि "ओ अधमरी, अन्यायी! ठाकुर माधो! आज बेटा–बहू के स्वागत में मरे जा रहे हो तुम? खुसी में उस पर भर गाँव जिंवा रहे। आज आँख मूँद लईं? बेटा की गलती दिखाई नहीं देती तुम्हें? याद करो माधो...जे ही गलती तौ मेरी अनुसुइया ने कर थी...बस जे ही! राच्छस...ज ही। नैने जो सराबी–जुआरी ढूँढो हतो सो बा ने पसंद नहीं करौ। मास्टर जी से प्रीत हती...हमें बताई हमाई बिटिया ने भगवान के अगाई मंदिर में ब्याह हतो और फिर गरभ। मास्टर आन–बिरादरी हतो सो का? भलौ मानस हतो। जा बहू जा की तुम आरती उतार रहे जा कौन सी असल ठाकुर की जाई है, जा तैं हिन्दू तक नइयां! और चार महिना गरभ! माधोफिर, आज दै दे बेटा को जहर जैसे मेरी अनुसुइया को"[37] इस प्रकार मैत्रेयी पुष्पा समाज में बने–बनाये खोखली मान्यताएँ और धारणाएँ जो पुरूषों द्वारा उन्हीं के हितों के लिए बनाये गये और स्त्री हर तरह से प्रताडित करनें वाली इस व्यवस्था पर कड़ा प्रहार करती है।

अब नारी शिक्षा से मिली जागरूकता और स्वतंत्रता की चेतना लेकर घर से बाहर निकली हैं। अस्पतालों, विद्यालयों, पुलिस विभागों और महिला संगठनों में काम करती हुई खूब जानती हैं कि आत्मनिर्भर होने के लिए औरत को किन खौफनाक रास्तों से गुजरना पड़ता है। घर और बाहर पुरूष वर्चस्व के दायरों से पैदा हुए भय और घृणाभाव का नतीजा है कि औरत को चारों ओर से घेरे में लेकर अपमान और अवसाद में डुबा दे।

स्त्री जन्म से लेकर वृद्धा होने तक पुरूष उसे बलात्कार अपमान, हिंसा, आरोपों को सहती और पुरूष के करतूतों की शिकार बनती है। उसे न घर में सुरक्षा है और न सड़क पर

न पढ़ाई की जगह, न काम करने की जगह। वह सिर्फ हाडमांस से बना शरीर मात्र है उसका व्यक्तित्व का कोई महत्व नहीं। इसिलिए स्त्री को बलात्कार का शिकार बनाता है और उसे शरीरिकप्रताड़नादेता है। निश्चित ही औरत पर गुजरती हिंसा पर बने कानून बेमानी हो रहे हैं क्योंकि कानून बलात्कारियें का कुछ बिगाड़ नहीं सकता, इसलिए कि लोकतंत्र में चुने हुए संसद के सभ्य लोग ही 250 बलात्कारी थे। वे खुद बलात्कार होकर, बलात्कार करनेवालों को भी बचाते रहते हैं। फैसला कठिन रूप से अमल नहीं कर सकते हैं। भारतीय संस्कृति, महानता के पर्दे में इस कृत्य को अंजाम दे रहा हैं। राजसत्ता आनंद भोग का दूसरा नाम है। इसलिए कुंडियों का नशा सबसे नशीला है। अब गठबंधन की मजबूरी का हवाला सबके सामने है कि अत्याचारियों, भ्रष्टाचारियों और बलात्कारियों के खिलाफ कुछ बोलना अपनी कुर्सी की टांगे तोड़ना है। 'लोकतांत्रिक व्यवस्था' में जिसके मन में जो आए, सो करे। 'राजा है चोरी करे न्याय कौन पै जाय' यह कहावत चरितार्थ हो रही है। मैत्रेयी पुष्पा अपनी कहानियों में बलात्कार की समस्या को बहुत ही गंभीर संवेदना के साथ व्यक्त किया है।

'केतकी' में केतकी की खूबसूरती के कारण अपने ससुर के मित्र गंधर्वसिंह के द्वारा बलात्कार की शिकार बन जाती है। बलात्कार में हमेशा स्त्री को दोष देते हैं। हमारी परंपरा यही सिखाती आयी है। लेकिन मैत्रेयी पुष्पा खोखले, घिनौने, झूठी परंपरा को केतकी के द्वारा साहस के साथ जिस व्यक्ति ने बलात्कार किया था उसे पंचायत और पूरी गाँव में सम्मान बुजुर्ग, आदरयोग्य था उसे दोषी ठहराकर कटघरे में खड़ा करती है। इस संदर्भ में लेखिका कहती हैं कि–''स्त्रियां जब अपने इस उत्पीडन में पुरुष को दोषी ठहराती हैं तो वे पुरुष विरोधी और परविार तोड़ने वाली जाती हैं; वह केवल यह चाहता है कि उसकी मनमानी झेलकर औरत मौन रहे। वह अपने शिकार को बदनामी और हत्या की धमकी देकर चुप किए रहता है, क्योंकि बदनामी औरतकी चारित्रिक हत्या का बदनुमा रोल बखूबी निभाती है। 'ब्लेम द विक्टिम' यानी पीड़ित को ही आरोपित बनाओ, यही इस देश की औरत के लिए रीती–नीती है।''[38] इस कहानी में दोषी को सही सजा दिलाने का साहस, न्यायपूर्ण फैसला अपनी नायिका द्वारा देती है।

'रास' कहानी में भी जैमंती अपने ससुर के बलात्कार को सबके सामने खोलकर परिवार की मर्यादा को तोड़कर मायके आकर आर्थिक स्वावलंबी होकर जीवन जीती रहती है। जैमंती

के माध्यम से लेखिका ने समस्त सामाजिक पुरुष द्वरा बनायी गयी स्त्री संस्कृति पर व्यंग्य किया है। जैमंती पारिवारिक कहानी की स्त्री नहीं है। वह कहती है–''माफी मँागेगी मेरी जूती... ''[39] वह इस संवाद के साथ नया अध्याय प्रारंभ करती है। अपने पैरों पर खडे हो जाने का रास्ता खुद तैय करती है। 'उज्रदारी' कहानी में भोली साहूकार के बेटे के द्वारा भोलीबलात्कार काशिकारा बन जाती है। जिसके कारण कुमारी माँ बनने जा रही तब इस आत्मग्लानी के साथ अपने आपको जलाकर आत्महत्या कर लेती है।'मन नाहि दस–बीस' कहानी में चंदना का पती नपुंसक होने के कारण सास संतान की चाह में चंदना को देवर के द्वारा बलात्कार की अनुमति देती है तो चंदना ससुराल में ही रहकर देवर के लिए आटे में जहर मिलाकर खिलाती है चंदना के मना करने के बावलूब वही खाना पति भी खाता है। अंततः दोनों भाई पागल बन जाते हैं। तो चंदना पुलिस के सम्मुख अपने आपको आत्मसमर्पण कर देती है।

'गुनहगार' कहानी में भी देवर अपने दोस्तों को घर लाकर भाभी पर बलात्कार करने की कोशिश करता रहता है। तब अवधबिहारी बहू, गुस्सा में आकर देवर को मना करती, पति को शिकायत करती है, मगर पति अपनी पत्नी को ही उसका जिम्मेदार टहराकर गुस्सा करता है। पत्नी समझलेती है कि लाख प्रेम प्रीति के बावजूद पति इस संबंध में उसे कोई सुरक्षा ना देकर अपने भाई का ही पक्ष लेता है। ''आत्मरक्षा का उपाय उसे खुद ही करना होगा! डसके सामने दो ही रास्ते थे, या तो वह अपने देवर के तथा उसके मित्रों की हवसका शिकार बने, या अपने ऊपर होने वाले इस अनाचार का प्रतिकार करे! और उसने दूसरा मार्ग चुन लिया!''[40] यहाँ अवधबिहारी की पत्नी ने अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए प्राणांतक संघर्ष करती है। लेखिका कहती हैं कि–''सुरक्षा वे दे नहीं सकते क्योंकि पुरुष से पुरुष डरता है। पुरुषों के भरोसे रहना झूठ में जीना है, जबकि जिंदगी खरी सच्चाई का नाम है।''[41] कहीं से भी मदद नहीं मिला तो बलात्कारी देवर से छुटकारा पाने के लिए वह आटे में, धतूरे के बीज पीसकर नमक जैसे मिलाकर, देवर को खिलाती है। वह उसे खाकर मर जाता है। फिर जो भी पंचायत में सजा है भोगने के लिए हिम्मत के साथ समर्पण कर देती है।

4.6 दलित नारी :

हमारे देश में जाति–प्रथा का खामियाजा स्त्री भुगतती है। स्त्री अपने स्त्री होने के कारण मर्दों के हमले झेलती है। स्त्री को घर रूपी बंधन में हिंसा करना, अपमान करना, नीचा दिखाना पितृसत्तात्मक समाज का लक्षण है।वही दलित स्त्री को अपमान और हिंसा के साथ–साथ मृत्यु होने तक उसे अपमान करना, शोषण शिकार बनाना समाज में असमानता का भावना उत्पन्न करना जातिगत पितृस्वम्य का लक्षण है। हिन्दु मंदिरों में यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।स्त्री पुरूष के लिए सुविधा–साधन का रूप होती है। सवर्ण परिवार में औरत को घर के भीतर रखकर अपना मान बढ़ाया जाता है, इज्जत बचाई जाती है। सवर्ण जाति की स्त्री की समस्या एक दबी–कुचली जाति की दलित स्त्री की समस्या से बहुत भिन्न है। सवर्ण स्त्रियों की लड़ाई केवल पितृस्वाम्य का विरोध कर अपना हक पाने तक ही है। मगर दलित स्त्री की लड़ाई शरीरिक, मानसिक, हृदय, श्रम, विद्या विज्ञान, व्यक्तित्व के विरोध में होने वाली निरंतर आक्रमणों से हैं। सवर्ण तबकों का आक्रमण दलित स्त्री पर हर दिन जारी है। इसमें भेदभाव जितना पितृसत्ता का है उतना जाति का भी दोष है। दलितों में स्त्री–पुरूष दोनों के एक जैसे हक माने जाते रहे हैं लेकिन दलित पुरूष भी स्त्री को बराबरी का दर्जा देने से इन्कार करते हैं कि मानो वे स्त्री ही नहीं। मैत्रेयी पुष्पा स्त्री मुक्ति को वेश्या के रूप दिखाती है। उनकी कहानी 'राय प्रवीण' में इस से एक दलित स्त्री की मानवता एवं साहसी रुप का चित्रण सावित्री के माध्यम से किया है। जब उस गाँव में बेतवा के बाढ़ राहत कैम्प से चीजें लेने जाती है, तब वह गाँव की रक्षा केलिए अपने शरीर के द्वारा ठेकेदारों को खुश करती है।

दलित अपनी भूख–प्यास मिठाने के लिए सवर्ण के काम वासना को तृप्त करते है। इसका चित्रण इस कहानी में दिखाते हैं''गाँव के बड़े लोगों ने मदद के लिए हाथ बढ़ाया। ट्रक्टर में ठिलिया लगा ली। वे हरिजन टोले से गरीब औरतों को ले जा रहे हैं, यह भी जरिया है राहत लेने का। भूख–प्यासी, मजबूर, कमजोर, बीमार औरतें कैम्प तक पहुँचने की भरपूरी कोशिश में जुटी है। वे अन्न नहीं, जिंदगी लेने जा रही हैं।''[42] निम्न जाति की स्त्री को नाममात्र राजनेता के रूप में लेखिका 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी में स्पष्ट करती है ''तुमही चाँपो उनके चरन। चरनों पर मुँडी धरे रहो, तब भी तुमको वे ऊँचा आसन देनेवाले नहीं, पुचकारेंगे, पुटियायेंगे, पर अपने समाज में शामिल नहीं करेंगे। उनके तो बीती ही ऐसी चली

आ रही है कि पुकारे तो गालियाँ देकर, दुत्कारो तो गालियों के संग। हत्यारे एक–दूसरे को गरियाते भी है तो हमारी जाति को उधाड़–खोलकर धरते हैं। हमें हमारे औकाम मालूम है। प्रधानी नहीं, वे हमें फरेब देंगे। हमारी छीछालेदर करायेंगे हमको उनके फंदा में अपनी बची (गर्दन) नहीं डालनी।''[43] ऐसी दलित स्त्री की व्यथाओं को लेखिका 'छुटकारा' रिजक, ललमनियाँ आदि कहानियों में सामंति वृत्तियों में गिरावट और गौरव को लेकर समझाती है। आधुनिक युग में हरेक पेशे को सम्मान, जीवनोपाधि कमाने का हक मांगती है।

4.7 विद्रोही स्वर :

पितृसत्तात्मक समाज में विवाह के संदर्भ में लिंग भेद के अनुसार जो परपंरा समाज में चलती है, उसी के विरोध में मैत्रेयी पुष्पा का आक्रोश है। इसी दोहरे मानदंड को कटघरे में खड़ा कर प्रश्न करती है कि ब्रह्मचार पुरूष क्यों पूजनीय और आदर पाता है उसी जगह एक आजीवन कुँवारी को देखकर दया प्रकट करते हैं। लड़की का विवाह न होने पर संवेदना बहकर 'बेचारी लड़की के विवाह नहीं हुआ' कहकर लड़की का आत्मविश्वास को कमजोर कर देते हैं।

इनकी कहानियों में 'बेटी' कहानी में माँ–बाप मुन्नी की शादी लेकर चिंता में पड़े रहते हैं। जबकि घर का सारा काम वह पूरा करती थी। पिता के साथ खेत का भी काम कर सहारा देती थी। 'राय प्रवीण' कहानी में भी सावित्री का पिता शादी करने के लिए चिंतित होकर अयोग्य वर के साथ बेटी की शादी कर देता है। ऐसे ही पिता बेटी की स्वच्छंदता को बदचलनी समझकर शादी का उपाय करता है। 'गोमा हँसती' कहानी में भी माँ–बाप गोमा का विवाह एक कुरूप किड़्ढ़ा से कर देते है। विवाह संस्थाने ही विधवा, बेमेल विवाह, आदि को उत्पन्न किया है।

इन कहानियों में माता–पिता अपनेबेटियों का विवाह करके गंगा नहाते हैं। लेकिन नारी–व्यक्तित्वांतरण के सकारात्मक मूल्य के रूप में प्रस्तुत करती है। 'राय प्रवीण' की सावित्री और 'गोमा हँसती है' की गोमा प्रेम–संबंधों के माध्यम से विवाह–संस्था की नारी–विरोधी परिपतियों को रेखांकित करती है।

4.7.1 सामंती पारिवारिक नारी विरोधी मूल्यों का ध्वस्त :

मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में परिवार में कई नारी केपात्र जैसे माँ, बहन, बहू, ननद आदी मिलाती है।इनके माध्यम से वह दिखाती है कि स्त्री उपेक्षिता की जाती है और अन्याय सहती है। एक दो कहानियों को छोड़कर वह स्त्री अनपढ़, कम पढ़ी लिखी होते हुए भी सहज रूप से अपने ढंग से विरोध करती है। पितृसत्तात्मक मूल्य जो स्त्री पर मढ़ा है उसे नकारने का ढंग दिखाई देती हैं।

'अपने अपने आकाश' कहानी में तीन बेटे ने माँ और चाचा के हिस्से की जमीन हड़पने के लिए प्यार और ममता के नाम पर धोखा देकर दूर के आश्रम में भेजने का इंतजाम करते हैं। यह सुनकर वह अपने बेटों से बिना बोले ही अपनानौकरी का सहारा लेकर अपने घर जहाँ उनके सम्मान देनेवाले व्यक्ति देवर और देवरानी थी आ पहुँचती है। यह विरोध अपने सहज ढंग से, परिवेश के अनुसार विरोध करती हुई यह स्पष्ट करती है कि अपनी उपेक्षा करनेवालों से दूर जाकर अपना अस्तित्व स्थापित करती है।

'बेटी' कहानी में भी बेटे के द्वारा माँ बुढ़ापे में उपेक्षित अन्याय भोगती है। अपनी बहन को भी घर में आने से ध्यान देनेवाले कोई नहीं थे। इस कहानी में माँ–बेटी दोनों भी अन्याय सहते हैं चुपचाप। 'छाँह' कहानी में भी बचपन में माँ की मृत्यु होती है तो पिता और तीन बड़े भाइयों केलिए माँ बनकर गृहस्थी चलाती है बहन रेशम। बेटी रेशम शादी कर बच्चे को जन्म देकर मर जाने परबिना माता–पिता के भांजे को बहन का हिस्सा देने से इंकार करते हैं उनके मामा रेशम के बेटेका घर में रोटी देने के लिए भी कोई तैयार नहीं रहता है। लेखिका इस संदर्भ में लड़की के लिए भी पौत्रिक संपत्ति में हिस्से के लिए एक पुरूष–पात्र विश्वनाथ ठाकुर के द्वारा आवाज उठाती है। पिता विश्वनाथ गुस्से के साथ कह देता है कि ''कान खोल के इतनी सुन लेउ बेटा, कि जमीन के चार हिस्सा होंगे। दो तुम्हारे और एक–एक मेरौ और बेटू कौ।''[44]

'रिश्ते का नक्शा' कहानी में पौत्रिक संपत्ति विधवा माँ की अकेली संतान होने के नाते बेटी के ही आना चाहिए। लेकिन दो कारण दिखाकर पितृसत्तात्मक समाज ने सामाजिक मूल्य के षडयंत्रों द्वारा उस गाँव के लोग संपत्ति छीनने को तैयार थे। इसका एक कारण था वह विधवा माँ की अकेली बेटी थी, दूसरा वह शादी शुदा है जो घर–गाँव छोड़कर चली गई थी।

इसलिए उसके नजदीकी रिश्तेदार और गाँव वाले लड़की की संपत्ति के लिए हक मारने लगे तो वह लड़की उनसे विरोध कर कहती है कि ''कह देना गांव वालों से, मेरी जगह–जमीन के बारे में सोचना भूल जाएं। वे मेरे होते कौन हैं? क्या वे लोग अपनी जमीन की बिक्री करते समय मुझे पूछने आते हैं, जो टांग अड़ा रहे हैं, बता देना कि जमीन के सारे हक मेरे पक्ष में है। कागजात इसका सबूत है।''[45] इस कथन से लेखिका स्त्री के अधिकारों के प्रति उनमुक्त दिखाई देती है।

इन कहानियों में मैत्रेयी पुष्पा पौत्रिक संपत्ति का हिस्सा चाहे वह अकेली हो या भाइयों के साथ हो स्त्री के लिए हिस्से की मांग करती है। माध्यम उनका साहित्य ही क्यों न हो। उनकी स्त्री पितृसत्तात्मक मूल्यों के अतिक्रमण पर अपनी स्वतंत्रता पौत्रिक संपत्ति के अधिकार के लिए सजग, चेतना संपन्न है। इसके आधार पर नया मूल्य ही जन्म लेते हैं। 'बहेलिये' कहानी में पति की मृत्यु के बाद देवर द्वारा शोषित स्त्री अपने दो बेटियों के लिए उसका देवर बेमेलविवाह करने की कोशिश करनेपर गिरजा की माँ गुस्सा होकर देवर का विरोध करती है कि ''बाप की उम्र के आदमी से हमारी लड़की की शादी तय करने वाले तुम कौन हो?''[46]

'उज्रदारी' कहानी में भी पति मर जानेपर नायिका शांति अपने बेटे के साथ संयुक्त परिवार में जेठ–जिठानी के साथ रहते हुए अन्याय का विरोध करती है। पति के रहते उँगली न दिखानेवाले जेठ को अंगूठा दिखाने की सोचती है। गुस्से के मारे आग बबूला होकर जिठानी के विरोध में कहती है कि ''रहूँगी और अपने बेटे को गरम पानी से नहलाऊँगी। जैसे तुम नहाते–धोते हो। कंडा कौन पाथता है? लकड़ी कौन तोड़कर लाता है? हमारा तो पूरा–पूरा हक है''[47] वह जानती है कि दुबारा गरम पानी से नहलाने में जिठानी को अपनी ताकत बता रही है। उसका हक समझा रही है।

4.7.2 विवाह संस्था के नारी विरोधी मूल्यों का ध्वस्त :

परिवारिक मूल्यों का विवेचन विवाह–संबंधी धारणाओं के बिना अपूर्ण रह जाता है, क्योंकि परिवार का संबंध पति–पत्नी का संबंध है। और इस संबंध का स्वरूप निर्धारण विवाह पद्धति के अनुसार निश्चित हेता है। ''स्वतंत्रोत्तर भारत में सामाजिक व्यवस्ता के परिवर्तन के साथ–साथ वैवाहिक मूल्य भी बदल रहे हैं। किंतु अभी भी सामाज में परंपरा की जटिलता इतनी विध्यामान है कि विवाह पध्दति की रूढ़ीता ही अधिक प्रचलित है। जहाँ विवाह में

व्यक्ति का म हत्व न होकर खानदान जाति तथा सामाजिक परंपरा का महत्व होता है।''[48] मैत्रेयी पुष्पा विवाह व्यवस्था में पुरुष वर्चस्व को लेकर सवाल करती हैं कि ''पति और पत्नी उसी पुरुष का आधा–आधा अंग होते हैं। देनों अंशों के मिलकर ही पूर्ण पुरुष बनाता है। धर्मशास्त्र भी यही कहता है कि जब तक पुरुष को स्त्री प्राप्त नहीं होती, वह अधूरा ही रहता है। पति–पत्नी दोनों पारस्परिक संबंधों में अपने आपको आधे अंग की भांति समझें ंतो यह संबंद सुख–शांति का प्रधान कारण बन सकता है। लेकिन यह भी सत्य है कि दो प्राण, दो ह्रदय मिलकर एक हो जातो हैं, मगर बनता पुरुष का ही रूप है। 'पुरुष का रूप' इस रूप व्यवस्था में भारतीय गृहस्थ धर्म को मान्यता मिली है।''[49] यानीस्त्री–पुरुष के संगम से ही सृष्टी का उद्‌भव होता है, वह एक–दूसरे के बिना पूर्णता नहीं बन पाता है। इसके बावजूद स्त्री को उपेक्षित किया गया है।

साहित्य समाज का आईना होता है। तो पौराणिक ग्रंथों से लेकर धार्मिक साहित्य, जो समाज के कार्यकलापों के सही–गलत का लेखा–जोखा है, विवाह व्यवस्था के इर्द–गिर्द ही घूमता है। विवाह संस्था सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से ऐसा न्यायाधीश है जहां लड़कियों की जिंदगी पर अपना कानून कड़ाई से लागू करती है, क्योंकि सनद भी वही देती है–कुंवारी, विवाहिता, परित्यक्ता, तलाकशुदा, विधवा जैसे संबंधन, जिनके तहत औरत को जीवन निर्वाह करना पडता है। अर्थात स्त्री की स्थिति विवाह द्वारा दिए गए पति रूपी स्वामी की उपस्थिति या अनुपस्थिति, उसकी स्वीकृति या अस्वीकृति से तय होगी। शादी–ब्याह के लिए ही सभी चिंताएं, सारे भय हैं।

मैत्रेयी पुष्पा विवाह में चिंताए और भय छोडकर पति–पत्नी के बीच विश्वसनीय, ईमानदारी और बराबरी चाहती हैं। विवाह व्यवस्था के विरोधी नहीं है। मगर स्त्री एक इंसान और नागरिक होने के नाते उसकी बराबरी चाहती हैं। उसके बगैर जो ं स्त्री के लिए खोखली एवं जर्जर मान्यताएं आज दकियानूसी कही जाती हैं। मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में ऐसे खोखले मान्यता के रूप में साबित होने वाले स्त्री विरोधी मूल्यों पर जरूर विद्रोह करती हुई दिखाई देती हैं। ऐसे कहानियों में 'गोमा हँसती है' की नायिका गोमा वैवाहिक जीवन की पतिव्रता धर्म को खरिज कर विवाह व्यवस्था के मूल्यों पर विद्रोह करती है। अनुगामिनी–अर्द्धांगिनी जैसे शब्द ठगी के काम आते हैं। अतः मैत्रेयी पुष्पा उन्हें स्त्री विरोधी

मानती हैं। पति रहते हुए भी गोमा अपने बेमेल विवाह की विवशता का प्रतिकार करके बलीसिंह से विवाहेतर संबंध बनाकर पत्नी के लिए पुरुष व्यवस्था के द्वारा बनाये गये मूल्यों का सीमातिक्रमण कर लेती है। मैत्रेयी पुष्पा स्त्री मुक्ति देह मुक्ति में ही मानती हैं। वीरेंद्र यादव की बातों में हम इसे जान सकते हैं कि–''मैत्रेयी पुष्पा के कथा–सहित्य में फिमेल सेक्सुवालिटी का विमर्श बिना किसी लाग–लपेट के उपस्थिति है। उनकी दृष्टि में स्त्री पुरुष की समानाता देह की समानता के बिना निष्प्रभावी है। स्त्री की मुक्ति को वह पुरुष दासता से मुक्ति का साधना मानती है।''[50]

'रास' कहानी की जैमंती, 'राय प्रवीण' कहानी की सावित्री पतिव्रता दर्म को ध्वस्त करती हैं। 'बिछुडे हुए' कहानी में नायिका चंदा का पती सन्यासी बनकर घर से भाग जाता है। 20 साल के बाद जब पत्नी केलिए वह वापस आता तो पति को चंदा तिरस्कार कर अपना स्वाभिमान बचाते हुए विवाह व्यवस्था की मान्यताएं जैसे पतिपारायण नियम को ध्वस्त करती है। यहाँ तक कि अपनी बेटी के कन्यादान की जिम्मेदारी से खारिज कर पिता के हक का तिरस्कार करती है। यह कहानी औरत की दिलेरी की निस्संगता की अद्‌भुत दास्तान है।

4.7.3 पितृसत्तात्मक नारी विरोधी नैतिक मूल्यों का ध्वस्त :

स्त्री के संबंध में मैत्रेयी पुष्पा हर अन्याय का विरोध करती है। उस राह में आड़े आनेवाली सामाजिक परंपराओं व मान्यताओं का भी खंडन करती है। मैत्रेयी पुष्पा स्त्री नैसर्गिक इच्छा व अस्मिता बोध का सम्मान करती है। बदलते परिवेश के साथ निरंतर स्त्री की भूमिका में परिवर्तन आया है। मैत्रेयी जी अन्यायी, अमानवीय मूल्य जो स्त्री देह की शुद्धता, व पवित्रता के लिए बनाए गए, स्त्री–नैतिकता से जुड़े तमाम पाखंड इन्हें विचलित करते हैं। मूलतः पितृसत्तात्मक समाज की संरचना में नारी के सामने मुद्दे है, जो नैतिकता–अनैतिकता के बीच आकर नारी के लिए वह श्रृंखला की कड़ियाँ बने हुए हैं। मैत्रेयी पुष्पा सोचती है कि बदलाव नहीं आते व्यवस्थाएँ सज जाती है। इस संदर्भ में मैत्रेयी पुष्पा उदृत करती है कि ''मैंने स्त्री के लिए मनुष्य के स्तर पर जीने की स्थिति ही तो खोजी है कि मैने पुरूष के समकक्ष अपनी भावनाओं को बराबरी से रखा है, कि मैंने अपने समाज में लोकतांत्रिक विधान की घोषणा की है कि 'औरत को हर तरह से सहनागरिक का दर्जा चाहिए।''[51] लेकिन हमारे बने–बनाए, सुविधाजनक दिमाग और उससे जुड़ी सोच के लिए परेशानी खड़ा कर देता है।

हमारे देश में धार्मिक मूल्यों के आधार पर ही नैतिक मूल्य बने हैं। विवाह के बिना स्त्री–पुरूषों का एक साथ रहना, संबंध बनाके रखना अनैतिक माना जाता है। हमारे देश में आज दो तरह के जैसे विवाह के पूर्व और बाद भी ऐसे संबंध स्त्री–पुरूषों के बीच बिना भय से चल रहे हैं। विदेशों में यह संस्कृति उनके लिए सहज जीवन सरली है जबकि हमारे देश में यह बड़ा अपराध, अनैतिक के रूप में देखा जाता है। हमारे भारतीय धार्मिक व्यवस्था में तो नैतिक मूल्यों का बोझ स्त्री पर थोपी गई है। इस बात को लेकर मैत्रेयी जी अपनी नायिकाओं के द्वारा इस नैतिक बोझ का अतिक्रम कराती है। क्योंकि एक स्वस्थ और लोकतांत्रिक समाज के निर्माण में दोनों की ही भूमिका होनी चाहिए। केवल एक को लेकर समाज का निर्माण नहीं हो सकता है।

मैत्रेयी जी का स्पष्ट आरोप है– विवाह व्यवस्था पूर्णतः पुरूषवादी है। वे पूछती हैं कि–''कोई बताए, विवाह की इस, धुँधली भरी मर्यादा में स्त्रियाँ अपना जीवन आँखे मूँदकर क्यों झोंके? अब तो मान लीजिए कि विवाह की पवित्रता जिंदगी का सबसे बड़ा धोखा है। पवित्रता पुरूष के लिए अनिवार्य ही नहीं, स्त्री भी इससे गुरेज क्यों न करे? अतः व्यभिचार शब्द हमारे लिए बेमानी है''[52] विवाह की गलत पवित्रता के नाम पर स्त्री से पुरूष की गुलामी कराई जाती रही है। मैत्रेयी पुष्पा विवाह को धार्मिक और स्वर्ग में बंधी गाँठ नहीं, मन का बंधन मानती है। ''इस बंधन को उसी मानसिक गहराई से परिपुष्ट करना होगा। अंततः यह सोशल कॉन्ट्रैक्ट है, इसलिए पुरूष को भी छूट लेने का सुअवसर हरगिज नहीं।''[53] इस विाह व्यवस्था में लिंग–समानता का पालन नहीं हो रहा है। पुरूष ने स्त्री का आकलन अनुभवों के आधार पर नहीं करता, वह कल्पना से काम लेता आ रहा है उसके मन के मुताबिक होता है। घर की मर्यादा तो स्त्री–पुरूष दोनों का है। वह जैसे भी रहे लेकिन स्त्री की शालीनता, कोमलता मर्दानी उद्दंडता को ताकत देती और महिमा मंडित करती है। लेकिन ''चेतना–संपन्न स्त्री शालीनता और शुद्धता की परवाह करना छोड़ देती है। यहीं से विवाह विरोधी विचार जन्म लेता है। घर की सलामती कोई कहां तक मनाए आखिर? सुरक्षा छत्र के नीचे सबसे ज्यादा, असुरक्षित... वह डरते–डरते निडरता का दामन थाम लेती है।''[54] मैत्रेयी पुष्पा ऐसी पुरूष सत्ता व्यवस्था में जो सदियों से सामाजिक जीवन के खूँटे बने हुए हैं, लिंग पक्षपात, असमानता, अमानवीय क्रूरताएँ स्त्री के विरोध में जरूर सवाल उठाती है। पुरूष व्यवस्था द्वारा

निर्मित स्त्री छवी को अपने लेखन के द्वारा तोड़ती है और नये स्त्री नई मूल्यों के साथ नयी मानसिकतावाली स्त्री को बनाती है। यही स्त्री का सशक्तिकरण बनाने की कोशिश करती है। वह समाज में धर्माधांनुसर का, पारंपरिक रूढ़ियों का विरोध करना सिखाती है। अतः समाज के नियमों के बने–बनाए मूल्यों के विरोध में संघर्ष करती दिखाती है। ना कि शारीरिक सुख के लिए नैतिकता का अतिक्रमण। उसके व्यक्तित्व के विकास के लिए जो बाड़, बंदिशें थीं, उनको तोड़ा है।

'गोमा हँसती है' कहानी की नायिका अपने बेमेल विवाह की विवशता का प्रतिकार बली सिंह से विवाहेत्तर संबंध बनाकर करती है। 'परिवार और विवाह' दोनों ही संस्थाओं के छदम को उनके भीतर ही रहकर तोड़ती है। मैत्रेयी पुष्पा की नायिकाएँ तिल–तिलकर समाप्त होती, सुबकती, शरतचंद्री भावकता में सरोबोर दम तोड़ती नायिकाएँ न होकर हाड–मांस की सैसी स्त्रियाँ है, जो पारंपरिक समाज की कैद में रहते हुए भी अपना अलग रास्ता तलाशती हैं। ऐसी नायिकाएँ उनकी कहानियों में 'रास' की जैमंती हो, 'राय प्रवीण' की सावित्री हो या 'गोमा हँसती है' की गोमा भी क्यों न हो नारी–मुक्ति की यह चाह अकसर स्वीकृति नैतिक मानदंडों का अतिक्रमण करती है। जैसे विवाह तथा परिवार जैसी सामाजिक संस्थाओं में वह नया रास्ता तलाशती है।

'राय प्रवीण' कहानी की वेश्या सावित्री स्वतंत्रता और हक की धनी है। तो वह राजा से कहती है कि ''महाराज मुझे आजाद करो। मैं आपकी रानी नहीं, वेश्या हूँ। वेश्या स्त्री होती, मगर आजाद स्त्री। मेरा हक मत छीनिए''[55] इस कहानी में देह–मुक्ति, स्त्री मुक्ति दिखाई देती है।

यौन मुक्ति की तलाश हम 'उज्रदारी' कहानी में भी देख सकते हैं। विधवा शांति नैतिकता के मानदंड को तोड़कर प्रधान के साथ अपना संबंध स्थापित करती है। वह अपनी मुक्ति में ही यौन–मुक्ति भी पाती है। प्रश्न पूछती है कि ''औरत पुजती है घर के भीतर। घर की दहलीज लाँघते ही लुटती है। मैं लुटी कि लूट लिया प्रधान लाला को।''[56] और भी अपने आप समाधान देती जाती कि ''मैं एक–एक हथियार जुटा रही हूँ जिंदगी जीतने के लिए। भले हार जाऊँ, पर जंग की तैयारी।''[57] शांति प्रधान के साथ इसलिए रहती है कि वह अपनी

जिंदगी जीने के लिए और पारिवारिक, सामाजिक अन्यायों के विरोध में लड़ने के लिए भी अपने आपको तैयार करती है।

'रास' कहानी की नायिका जैमंती के साथ विवाह होने के बाद अपने ससुर द्वारा उस पर हमला होता तो पति को छोड़कर माइके में आकर रहती है और बाद में 'रास' खेलने आए मनसुखा महाराज से प्रेम पाकर उसके साथ संबंध स्थापित करती है। 'ताला खुला है पापा' कहानी की नायिका बिन्दो किशोरवय प्रेम के माध्यम से पुरूष के उस दोहरे मापदंड को बेपर्दा करती है, जो अपने पापा युवावस्था में अपनी प्रेमिका के घर से भगाकर ले जाने का फैसला रखता है, लेकिन अपनी बेटी को 'घर की इज्जत–आबरू और माता–पिता की नाक' के तर्क पर ताले में बंद रखकर प्रेम से वंचित करता है।

4.7.4 पितृसत्तात्मक नारी विरोधी संस्कारों का ध्वस्त :

भारतीय आदमी उस अलौकिक अमूर्त शक्ति की बाट देख रहा है, जिसे संत–महंत–स्वामी जोगियों ने परमात्मा कहा था, रक्षक माना था और कृपालू बताया था। वह कृपालू मनुष्य के दिल में निवास करता है, यही धारणा लेकर व्यक्ति धर्म से प्रेम करता है। लेकिन यहां हम देखते हैं कि प्रेम नहीं, भय ने जनमानस जकड़ लिया। धर्मी में स्त्री केलिए जो कुछ बताया गया है उसे मैत्रेयी पुष्पा 'श्रृंखला की कड़ियां' मानती है। उनकी कहानियों में वे सहज रूप से समाज में धार्मिक, संस्कृतिक परंपरा और संस्कारेंका वर्णन करते हुए विशेष संदर्भों में अपनी स्त्री–पात्रों द्वारा तर्कसंगत विद्रोह करती दिखाई देती हैं।

'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी में स्त्री को घर में ही रहकर जीवन बिताना या चुनाव के लिए घर–घर घूमना मना करती है। क्योंकि चुनाव के जरिए ही अपना सहज स्वतंत्रता चाहती है। इस कहानी में एक रूढ़ियों का विरोध करते हुए घर से बाहर आना चाहती है तो दूसरा घर–घर पर जाकर चुनाव का प्रसार नहीं करना चाहती है। 'ताला खुला है पापा' कहानी में बिन्दो विद्रोही तेवर न अपनाकर याथार्थ स्थिति के स्वीकार द्वारा भी नारी–विरोध स्थितियों का मार्मिक उदघाटन करती है। 'बिछुड़े हुए' कहानी में चंदा का पुत्री शादी के पूजन की कोई रस्म होने के बावजूद घर से बाहर निकलती है तब उस रूढ़ि को तोड़ती है। 'उज्रदारी' कहानी में शांति नामक पात्र विधवा की रूढ़िगत परंपराओं का झेलना पड़ता है, लेकिन शांति

रंगीन कपड़े पहनकर घर के बड़ों का विरोध कर सामाजिक नीति का तिरस्कार करती है। पराई पुरूष केसाथ जीती है।

****

संदर्भ ग्रंथ :

[1] नारी का मूल्य, शरत्चंद्र, पृ. 9

[2] मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, सं.विजय बहादुर सिंह पृ. 274

[3] मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, सं.विजय बहादुर सिंह, पृ. 294

[4] मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम, डॉ.दया दीक्षित, भूमिका से

[5] ललमनियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 126

[6] ललमनियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 130

[7] गोमा हँसती है, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 76

[8] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 9

[9] गोमा हँसती है, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 128

[10] गोमा हँसती है, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 140

[11] चिन्हार, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 65

[12] चिन्हार, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 33

[13] चिन्हार, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 17

[14] चिन्हार, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 9

[15] चिन्हार, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 97

[16] चिन्हार, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 138

[17] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 110

[18] चिन्हार, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 112

[19] गोमा हँसती है, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 107

[20] शब्दांकन पत्रिका, भरत तिवारी, 22 जनवरी 2014

[21] चिन्हार, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 21

[22] चिन्हार, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 21

[23] चिन्हार, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 38

[24] दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, विमल थोरात, पृ. 68

[25] स्त्री लेखन समय के सरोकार, हेमलता महिश्वर, पृ. 74

[26] मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम, डॉ. दया दीक्षित, पृ.154

[27] शब्दांकन, जनवरी 22, 2014

[28] ललमनियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 13

[29] मैत्रेयी पुष्पा, स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 298

[30] ललमनियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 20

[31] ललमनियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 47

[32] ललमनियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 48

[33] गोमा हँसती है, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 24

[34] गोमा हँसती है, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 25

[35] गोमा हँसती है, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 25

[36] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 144

[37] ललमनियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 104

[38] आवाज, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 31

[39] स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार, डॉ. वैशाली देश पांडे, पृ. 61

[40] मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम, डॉ. दया दीक्षित, पृ. 132

[41] सुनो मालिक सुनो, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 95

[42] गोमा हँसती है, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 42

[43] गोमा हँसती है, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 20

[44] ललमनियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 115

[45] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 33

[46] चिन्हार–मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 36

[47] गोमा हँसती है, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 102

[48] हिन्दी उपन्यास और जीवन–मूल्य, डॉ. मोहिनी शर्मा, पृ. 116

[49] आवाज, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 142

[50] मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, सं. विजय वहादुर सिंह, पृ. 241

[51] मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, सं. विजय वहादुर सिंह, पृ. 320

[52] सुनो मालिक सुनो, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 71

[53] मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, सं. विजय वहादुर सिंह, पृ. 321

[54] सुनो मालिक सुनो, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 72

[55] गोमा हँसती है, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 37

[56] गोमा हँसती है, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 116

[57] गोमा हँसती है, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 116

अध्याय – 5

मैत्रेयी पुष्पा का आत्मकथा साहित्य : नारी जीवन मूल्य

5.1 आत्मकथा लेखन की पृष्ठभूमि एवं परिभाषा

5.2 हिन्दी आत्मकथाएँ और जीवनी

5.3 दलित आत्मकथाएँ

5.4 दलित महिला की आत्मकथाएँ

5.5 हिन्दी महिला की आत्मकथाएँ

5.6 हिन्दी के आत्मकथात्मक उपन्यास

5.7 मैत्रेयी पुष्पा का आत्मकथा साहित्य : नारी जीवन मूल्य

5.7.1 सामाजिक

5.7.2 शैक्षणिक

5.7.3 आर्थिक

5.7.4 राजनीतिक

5.7.5 सांस्कृतिक

5.7.6 साहित्यिक

5.8 विद्रोही स्वर :

5.8.1 सामंती पारिवारिक नारी विरोधी मूल्यों का ध्वस्त

5.8.2 विवाह संस्था के नारी विरोधी मूल्यों का ध्वस्त

5.8.3 पितृसत्तात्मक नारी विरोधी नैतिक मूल्यों का ध्वस्त

5.8.4 पितृसत्तात्मक नारी विरोधी संस्कारों का ध्वस्त

5.1 आत्मकथा लेखन की पृष्ठभूमि एवं परिभाषा :

आत्मकथा जिये गये अतीत को रूपायित करती है। इस प्रक्रिया का केन्द्र 'स्व' हुआ करता है, परिवेश नहीं। सृजन की स्थिति में परिवेश के सारे संदर्भ व्यक्तित्व की पहचान प्रस्तुत करते हैं। उत्कृष्ट आत्मकथा की अनिवार्य शर्त ही यह है कि "आत्मकथाकार का समय–बिन्दु यानी वर्तमान–बोध सार्थक हो। इस सार्थक दृष्टिकोण का संबंध मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बहुधा मनुष्य की उम्र से रहा करता है।"[1] भारत के चिंतक, मनीषी कवि और कलाकार जीवन के प्रति आध्यात्मिक दृष्टिकोण की प्रधानता के कारण वे उन तत्वों की खोज को महत्व देते थे, जो शाश्वत और अमर हों। इसलिए इस देश में अवतार पुरूषों और महामानवों की आदर्शीकृत गाथाएँ तो लिखी गयीं, किंतु जनसाधारण का जीवन–वृत्त उपेक्षित रहा। तो आधुनिक युग में वैज्ञानिक और बौद्धिक जीवन दृष्टि के विकास के साथ ही जीवनी–साहित्य लेखने की परंपरा पल्लवित हुई और अब तो जीवनी–साहित्य–गद्य की एक पृथक विधा के रूप में मान्य है।

5.2 हिन्दीं की आत्मकथाएँ और जीवनी :

जीवनी–साहित्य के मुख्यतः दो रूप होते हैं। आत्मकथा और पर–कथा। आत्मकथा को स्ववृत्तांत भी कहते हैं। इसी को अंग्रेजी में Autobiography कहते हैं। केमब्रिड्ज डिक्टनरी में लिखा हुआ है कि 'book about a person's life, written by that Person' और हिन्दी अंग्रेजी डिक्टनरी मे ं& Pertaining to self, one's own, personal'

पर–कथा का अर्थ जो अपना नहीं दूसरों का होता है। एक व्यक्ति का जीवन दूसरों द्वारा लिखा जाता है। अंग्रेजी में इस शब्द को Biography कहा जाता है कि 'An account of a person's life written,composed or produced by another' उदाहरण के लिए आधुनिक युग में कुछ ऐसे मध्यकालीन संतों का जीवन वर्तमान परिस्थितियों में प्रेरणा का स्रोत सिद्ध हुआ तो उनकी जीवनियॉ लिखी गईं। इस दृष्टि से लिखी गयी जीवनियों में मन्मथनाथ गुप्त कृत 'गुरूनानक' (1938 ई.), बलदेव उपाध्याय कृत श्री शंकराचार्य (1950) और 'डॉ. शिवप्रसाद सिंह' कृत–'उत्तरयोगी :श्री अरविंद' (1972) उल्लेखनीय है। अमृतलाल नागर द्वारा लिखित 'चैतन्य महाप्रभु' (1975) और 'डॉ. रघुवंश' द्वारा लिखित 'मानव पुत्र ईसा : जीवन और दर्शन' (1985) उसी परंपरा की महत्वपूर्ण कड़ियाँ हैं।

विषय के आधार पर जीवनी–साहित्य के अनेक भेद हो सकते हैं। डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने विषय की दृष्टि से जीवनी–साहित्य की निम्नलिखित कोटियाँ निर्धारित की हैं– (क) आत्म चरित्र (ख) संतचरित्र (ग) ऐतिहासिक चरित्र (घ) राजनैतिक चरित्र (ड़) विदेशीय चरित्र और (च) स्फुट चरित्र। हमें आत्मकथा की चर्चा करने से पता चलता है कि–

जीवन–चरित्र के दो रूप हैं– जीवनी और आत्मकथा। लेखक के अपने जीवन से संबंधित ब्यौरेवार विवरण, संस्मरण, डायरी, पत्रावली आदि सभी आत्मकथा के अंतर्गत आती हैं, पर आत्मकथा प्रायः उसी पुस्तक को कहते हैं जिसमें लेखक स्वयं अपने संपूर्ण जीवन का ब्यौरा प्रस्तुत करता है, भले ही उसमें आंतरिक जीवन या चरित्र पर अधिक बल दिया गया हो। कार्लाइल के शब्दों में–''सफल चरित्र का लिखना उतना ही कठिन है जितना सफल जीवन का अपने जीवन में निभाना; आत्मकथा लिखना तो और भी दुष्कर है, क्योंकि प्रथम तो व्यक्ति की स्मृति सदा विश्वसनीय नहीं होती; दूसरे कटु सत्यों का उद्घाटन करना, अपने दुःखों, दोषों और चारित्रिक छिद्मों को प्रस्तुत करना कठिन है; और तीसरे अपना पौरुष और महत्व जताने का लोभ संवरण करना दुष्कर होता है। फिर भी विश्व–वाड्मय में अनेक प्रामाणिक आत्मकथाएँ, जैसे–रूसो तथा गांधी की आत्म कथाएँ– लिखी गयी है, जो रोचक होने के साथ–साथ प्रमाणिक भी हैं।''[2]

आत्मकथा हिन्दी गद्य की नवीन विधाओं में से एक है। यह विधा गद्य विधाओं में विशिष्ट भी कही गयी है। इस विधा का आगमन हिन्दी साहित्य में मूलतः पश्चिम के साहित्य लेखन के प्रभाव से ही हुआ है। हमारे यहाँ आत्मकथा लेखन की परंपरा आदिकाल में या मध्यकाल में या प्राचीन काल में नहीं थी। लेकिन पाश्चात्य चिंतन या साहित्य से ही यह परंपरा भारतीय या हिन्दी भाषाओं भी दिखाई देने लगती है। लेखक या रचनाकार के अलावा कोई सामान्य व्यक्ति भी अगर आत्मकथा लिखता है तो वह विशिष्ट हो जाता है। इस दृष्टि से 'जब व्यक्ति अपनी जीवनी, जीवन चर्या, उपलब्धियाँ, संघर्ष या जीवन–यात्रा आदि के विभिन्न पड़ाव आदि सबके विषय में जब वह स्वयं लिखता है तो वह आत्मकथा सामान्यता कहलाती है।' और 'जब कोई अन्य रचनाकार किसी व्यक्ति के विशेष के जीवन, व्यक्तित्व, कृतित्व अथवा जीवन चर्या आदि पर लिखता है तो उसे जीवनी कहा जाता है।' वह आत्मकथा से सैद्धांतिक

रूप से, तात्विक रूप से भिन्न हो जाती है। आत्मकथा तथा जीवनी की रचना प्रक्रिया में पर्याप्त अंतर है।

जीवनी को आत्मकथा से भिन्न एक स्वतंत्र किन्तु रोचक गद्य विधा के रूप में देखा गया है। आत्मकथा एक व्यक्ति की स्व–रचित कथा होती है। कथात्मक तत्व इसमें भी विद्यमान रहता है। इसीलिए जब तक उसमें कथा, गति या प्रवाहमान नहीं होगा, तब तक उसमें पाठक को अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता नहीं होगी। आत्मकथा सामान्यतः रोचक शैली में लिखी जाती है। साहित्यकार की आत्मकथा में कुछ कलात्मकता, साहित्यिक संस्पर्श रहता है। साहित्यिक संस्पर्श के साथ–साथ उनकी अपनी प्रस्तुति की विशिष्ट शैली रहती है। भाषा के अधिकार के प्रमाण उसमें बकायदा दिखाई देते हैं। उम्र भी आत्मकथा लिखने में महत्वपूर्ण बात हो जाती है। आत्मकथा जो है वह एक मील का पत्थर बन जाती है। क्योंकि इसको छोट, बड़े, विद्वान, कम शिक्षित सामान्य, विशिष्ट आदि सभी पढ़ते हैं। वह एक उदाहरण बनकर पढ़ने वालों के जीवन में आती है। स्वाभाविक है कि समझदारी जो होती है जवानी में नहीं होती। प्रसाद ने लिखा भी है समझदारी आने तक जवानी चली जाती है। आत्मकथा लेखक की जो उम्र है वह बड़ी महत्वपूर्ण है। इसलिए सामान्यतः जो हिन्दी में लिखी गई आत्मकथाएँ हैं, लेखकों ने प्रौढ़ अवस्था में ही लिखी हैं। प्रौढ़ अवस्था के अभिप्राय से चालीस, पंतालीस से पचास के ऊपर जब व्यक्ति आ जाता है तो सारी चीजों का तटस्थ दृष्टि से कर सकता है। आत्मकथा सामाजिक, सांस्कृति, राजनीतिक दृष्टि से एक बोध होते हैं। आत्मकथा में लिखने के समय जीवन मूल्य भी काम करता है। अपने जीवन की कौन–कौन सी घटनाओं को इसमें शामिल करना है, कौन–कौन सी नहीं करना है, इसका निर्णय रचनाकार जीवन–मूल्यों के अनुसार करता है।

आत्मकथा में संस्मरण भी शामिल रहता है, कहीं–कहीं उसमें लेखकीय चित्रात्मकता भी शामिल हो जाती है, कहीं–कहीं उसमें डायरी लेखन का पुट भी समाहित हो जाता है और कभी–कभी यात्रा वृत्तांत के अनुभव भी आत्मकथा में शामिल हो जाते हैं। इस तरह से कहानी की शैली, नाटकीयता, रोमांच, संस्मरणात्मकता, रेखा चित्रात्मकता, जीवनी–लेखन के गुण, डायरी लेखन, यात्रवृत्तांत आदि के गुण, ये सब चीजें भी इसमें कहीं न कहीं शामिल हो सकती हैं, लेकिन वहाँ पर वो एक अलग विधा रूप में नहीं आती बल्कि इस विधा का एक हिस्सा या

एक अंश बनकर आती हैं और इस विधा को वह इस तरह मजबूत करती हैं। आत्मकथा की वर्ण वस्तु स्वानुभूत होने के कारण प्रामाणिक होती है। आत्मकथा, जीवनी की तरह खोजपरक नहीं होती है। सामान्यतः प्रसिद्ध व्यक्ति ही अपनी आत्मकथा लिखते हैं और उसकी ही की पठनीयता, लोक स्वीकृति भी बन पाती है। ऐसी ही आत्मकथाएँ प्रेरक बनती हैं और पाठकीय जनता बार–बार उनका उल्लेख भी करती है।

हिन्दी में आत्मकथा लेखन के अंतर्गत रचनाकारों ने कथ्य और शिल्प के रूप में अनेक नये और रचनात्मक प्रयोग किये हैं। आत्मकथाकारों ने उसमें शिल्प की दृष्टि से, कथ्य की दृष्टि से और भाषा शैली की दृष्टि से भी कुछ नये–नये प्रेरक प्रयोग किये हैं। हिन्दी में डॉ. रामचंद्र तिवारी के अनुसार प्राचीनतम आत्मचरित्र बनारसीदास जैन लिखित 'अर्द्धकथा' (1641 ई.) है। इसके संबंध में संपादक का दावा है कि ''कदाचित समस्त आधुनिक आर्यभाषा–साहित्य में इससे पूर्व की कोई आत्मकथा नहीं है।''[3] इसी अर्द्धकथा को हिन्दी की पहली आत्मकथा माना जाता है। आत्मकथा (आत्मचरित्र) लिखनेवालों में जिस निरपेक्ष और तटस्थ दृष्टि की आवश्यकता होती है, वह निश्चय ही बनारसी दास में भी थी। उन्होंने अपने सारे गुण–दोषों को सच्चाई के साथ व्यक्त किया है। यह आत्मकथा पद्य में लिखी गयी है। इसके अतिरिक्त पूरे मध्यकाल में कोई अन्य आत्मकथा उल्लेखनीय नहीं मिलता। आत्म चरित्र या आत्मकथा लिखने की परंपरा का विकास आधुनिक युग में ही हुआ है। इन सारे गुणों के कारण हिन्दी की पहले वाली आत्मकथा में तथ्य या कथ्य ही तटस्थ रूप में मिलता हैं तो यह एक बड़ी उपलब्धि है। पद्य में लिखा जाना इस पहली आत्मकथा की दूसरी बड़ी उपलब्धि है। पद्य में आत्मकथा लिखना बहुत कठिन काम है यह काम बनारसी दास ने किया है। इसके अतिरिक्त पूरे मध्यकाल में कोई अन्य आत्मकथा उल्लेखनीय नहीं मिलती। सं. 1375 से सं. 1900 तक लगभग सवा–पाँच सालों तक अन्य कोई आत्मकथा नहीं है।

आधुनिक काल में हिन्दी में विधिवत् आत्मकथा का लेखन आरंभ हो गया। जिसतरह की उसकी तकनीकी है, पद्धति है, जिस तरह का उसका तत्व है, उनको ध्यान में रखकर लिखने का सिलसिला आधुनिक युग में ही प्रारंभ हुआ। हिन्दी में सन् 1910 में 'सत्यानंद अग्निहोत्री' कृत दूसरी आत्मकथा है 'मुझमें देव जीवन का विकास'। स्वामी दयानंद ने जो आत्मकथा लिखी वह 'जीवन चरित्र' है। सवत् 1917 में उन्होंने इस रचना का सृजन किया।

यह 'जीवन चरित्र' हिन्दी में तीसरी आत्मकथा है। जिनको हम वर्ग और श्रेणी में रखते भी हैं लेकिन वो बहुत उल्लेख या विशिष्ट नहीं है।

भारतेन्दु युग तथा द्विवेदी युग में अन्य कोई महत्वपूर्ण आत्मपूर्ण परक रचना देखने को नहीं मिलती है। कुछ रचनाएँ जिनको हम वर्ग और श्रेणी में रखते भी हैं, वे बहुत उल्लेखनीय या विशिष्ट नहीं हैं। छायावादी युग में आकर अनेक आत्मकथाएँ लिखी गईं– साहित्य में परमानंद की आत्मकथा 'आपबीती' (1921 ई.), गाँधी जी की 'आत्मकथा' 1923 तथा नेताजी सुभाषचंद्र बोस द्वारा लिखी गयी 'तरुण के स्वप्न'– 1935 आदि उल्लेखनीय हैं। इन तीनों ने पूरे देश धारा को, दिशा को बदला जो एक नेतृत्व क्षमता का साक्षात प्रतिमान है। ये तीनों ने बहुत बड़े व्यक्तित्व के लोग हैं, देश और समाज के संदर्भ हैं। इन तीनों ने आत्मकथा पाठकों को बहुत प्रेरणा दी। भाई परमानंद कृत 'आपबीती' को छोड़कर शेष दोनों रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद किया गया है। गांधीजी की 'आत्मकथा' का अनुवाद गुजराती से हिन्दी में 'श्री हरिभाऊ उपाध्याय' ने किया तथा उसका प्रकाशन (1927 ई) में हुआ। सुभाषचंद्र बोस की आत्मकथा का अनुवाद गिरीशचंद्र जोशी ने किया। ये दोनों ग्रंथ पर्याप्त प्रेरणाप्रद है और पाठकों को कर्मक्षेत्र में होने के लिए उत्साहित करते हैं।

हिन्दी में साहित्यकारों ने, सामाजिक, सांस्कृतिक कार्यकर्ताओं ने, राजनीतिज्ञों ने तथा समाज सुधारकों ने अपनी–अपनी आत्मकथाएँ समय–समय पर लिखीं, लेकिन प्रचुर मात्रा में ऐसी आत्मकथाएँ अब इस दौर तक आते–आते मिलने लगीं। सर्वाधिक आत्मकथाएँ साहित्यकारों ने लिखी; इसलिए सर्वाधिक आत्मकथाएँ भाषा और साहित्यकारों को मिलती हैं। बाबू श्याम सुंदर दास, राहुल संस्कृत्यान, वियोगी हरि, यशपाल, शांति प्रिय द्विवेदी, देवेन्द्र सत्याथी, चतुर सेन शास्त्री, देवराज उपाध्याय, पदुमलाल पुन्ना लाल बख्शी पांडेय, बेचन शर्मा उग्र, भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र, माधव, हरिवंश राय बच्चन, बृंदावनलाल वर्मा, कृष्ण चंद्र, रामविलास शर्मा, हंसराज रहबर, धर्मवीर भारती, डॉ. नगेंद्र, रामदरश मिश्र, इस तरह एक के बाद एक धुरंधर विव्दानों ने भाषा और साहित्य की अच्छी सूझबूझ रखनेवाले महानुभावों ने, समालोचकों ने समय–समय पर अपनी आत्मकथाएँ लिखकर हिन्दी आत्मकथा लेखन को समृद्ध किया है। बहुत सारे पाठकों को अपनी आत्मकथा से, अपनी जीवन चर्या, घटनाक्रमों से प्रेरित भी किया, उनका मार्ग प्रशस्त किया।

आधुनिक काल के प्रारंभिक युग में जब हम भारतेन्दु पर दृष्टि डालते हैं तो स्वयं भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने 'कुछ आपभीती कुछ जगभीती' इस शीर्षक से एक आत्मकथात्मक रचना लिखी, यह रोचक काव्यात्मक घटनाओं से परिपूर्णित आत्मकथात्मक रचना है जो पद्यात्मक है पर दो पृष्टों से आगे न बढ़ सकी। भारतेन्दु मंडल के अनेक लेखकों ने भी अपने जीवनवृत लिखे हैं। उनमें से भाई परमानंद, स्वामी श्रद्धानंद, आचार्य रामदेव, बालमुकुन्द गुप्त आदि की आत्मकथाएँ भी प्रकाशित हुई हैं।

इन आत्मकथाओं में अधिकांश संक्षिप्त आत्मवृत्तांत मात्र है तथा इन्हें आत्मकथा नहीं कहा जा सकता। लेकिन महत्वहीन भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि साहित्य में यह ऐसा पड़ाव था जहां स्व की अभिव्यक्ति को महत्व दिया जाने लगा था। हिन्दी भाषा में विविध गद्य विकास जो प्रारंभ हुआ था आगे जाकर द्विवेदी युग में और भी आगे बढ़ा। द्विवेदी युग के साहित्यकारों ने गद्य के विविध रूप को आगे बढ़ाया। इस युग में आत्मकथा से अधिक जीवनियाँ लिखी गईं। द्विवेदी ने भी स्वयं अपनी आत्मकथा 'अधूरी कहानी' नाम से सरस्वती पत्रिका में निरंतर प्रकाशित की थी।

इस प्रकार हिन्दी आत्मकथा साहित्य के इतिहास में यह विकास जहां बनारसीदास जैन की आत्मकथा 'अर्द्धकथानक' (1641) से लेकर दयानंद सरस्वती की आत्मकथा 'जीवनचरित्र' (1917) तक तीन शताब्दियों में आत्मकथा विधा का इतन संवर्धक नहीं हुआ, वहीं सन् 1900 से लेकर 1930 तक तीस वर्षों में बहुत सी आत्मकथाएँ लिखी गयीं तथा दूसरी भाषा में भी अनूदित हुई।छायावाद युग 1918 से ही प्रारंभ हो गया था। इस काल के आरंभ में आत्मकथा विशेष दृष्टिगत नहीं होती है। छायावाद काल में, जिसके चार स्तंभ माने गए— प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा तथा पंत, इन चारों में और इस युग के अन्य साहित्यकारों का आत्मकथा लेखन में कोई योगदान नहीं रहा। पंत ने अवश्य बाद में 'साठ वर्ष : एक रेखांकन' नामक श्रृंखलित आत्मकथा लिखी। इसी दौरान प्रेमचंद ने 1932 में 'हंस' का एक विशेषांक 'आत्मकथांक' अवश्य निकालकर आत्मकथा लेखन को प्रोत्साहित किया।

हिन्दी में आत्मकथा को इस 'हंस' पत्रिका द्वारा प्रेमचंद ने आंदोलन के रूप में चलाया था। इन आत्मकथाओं के कथाकारों के नाम— ठाकुर दत्त शर्मा, हरिदास, जैनेन्द्र, धीरेंद्र वर्मा, गोपाल दास गहमरी, जगन्नाथ आदि। आत्मकथांक अंक में 50 से ऊपर रचनाएँ छपी थीं।

1939 ई. देवदत्त शास्त्री ने आत्मकथाओं का संग्रह निकाला जिसका नाम– 'साहित्यकारों की आत्मकथा' है। इसमें बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', अंबिका प्रसाद वाजपेयी, कृष्णदत्त, पात्रीवाल, महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद की आत्मकथाएँ छपीं। जगन्नाथ रत्नाकर और श्यामसुंदर दास की वृहत्त आत्मकथाएं भी क्रमशः हंस और सरस्वती में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुई।

1941 ई. में श्याम सुंदर दास की 'मेरी आत्मकहानी' भी प्रकाशित हुई। 1942 में बाबू गुलाब राय की विश्रृंखलित आत्मकथा 'मेरी असफलताएँ' प्रकाशित हुई थी। 1944 में मूलचंद अग्रवाल की 'एक पत्रकार की आत्मकथा' प्रकाशित हुई। 1947 में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की आत्मकथा छपी। रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार भी ''बाबू श्यामसुंदर दास कृत 'मेरी आत्मकहानी' (1941) हिन्दी की पहली प्रसिद्ध आत्मकथा कही जा सकती है। यह आत्मकथा हिन्दी भाषा और साहित्य के एक पूरे युग को प्रतिफलित करती है, और प्रकारांतर से नागरी प्रचारणी सभा, काशी का इतिहास बताती चलती है। इसी दशक में प्रकाशित भारत के प्रथम राष्ट्रपति देशरत्न 'राजेन्द्र प्रसाद' की 'आत्मकथा' (1947) स्वतंत्रता संग्राम के चरम बिन्दु पर लिखी गई थी, जों अपनी शैली की सरलता और सादगी के लिए विख्यात है। एक आत्मकथा हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास का आख्यान है तो दूसरी देश–दशा का। प्रधान चरित्र के माध्यम से परिवेश के साथ–साथ पुनर्सृजन–जो आधुनिक आत्मकथा लेखन की एक विशिष्टता कही जा सकती है– इसका एक आरंभिक रूप यहाँ द्रष्टव्य है।''[4]

प्रसिद्ध राजनेता और दार्शनिक 'आचार्य नरेन्द्रदेव' ने भी एक संक्षिप्त आत्मवृत्त अपने ग्रंथ 'बौद्ध धर्म–दर्शन (1956) में प्रकाशित किया। फिर कई पत्रकारों तथा हिन्दी साधकों की आत्मकथाएँ आईं, उनमें उल्लेखनीय है– 'मेरा जीवन प्रवाह' : वियोगी हरि; 'साधना के पथ पर' : हरिभाऊ उपाध्याय तथा 'पत्रकार की आत्मकथा': मूलचंद अग्रवाल। कई प्रसिद्ध गद्य–लेखकों ने भी आत्मकथाएँ लिखीं– 'शांतिप्रिय द्विवेदी' की 'परिव्राजक की प्रजा' (1952); देवेन्द्र सत्यार्थी की 'चाँद–सूरज के बीरन' (1953); तथा तीन खंडों में प्रकाशित यशपाल की रचना 'सिंहावलोकन' (1951–55) है।

आत्मकथाएँ :

सन् 1980 तक आते–आते हिन्दी आत्मकथा लेखन का जो दौर है वह और तीव्र होता है, गति पकड़ता है। हिन्दी के जो प्रतिष्ठित रचनाकार हैं, साहित्यकार हैं वह भी आत्मकथा

लेखन की ओर अग्रसर होते हैं। जैसे 'तपती पगडंडियों पर पद यात्रा' (1989 ई.)– कन्हैया लाल मिश्र 'प्रभाकर' 'आत्म परिचय' शीर्षक आत्मकथा (1988)। 'फणीश्वरनाथ रेणु, 'टुकड़े टुकड़े दास्तान' (1986); अमृतलाल नागर, 'अर्धकथा' (1988) डॉ. नगेन्द्र; तथा 'सहचर है समय' (1991) – रामदरश मिश्र की आत्मकथाएँ विशेष रूप से चर्चित हुई हैं। 'गर्दिश के दिन' (1980) शीर्षक से कमलेश्वर के संपादक में हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के बारह रचनाकारों का 'आत्मकथ्य' एक साथ प्रकाशित हुआ है। यह एक नया प्रयोग ही है। इनमें रचनाकारों ने अपने जीवन की संघर्ष–कालीन मानसिकता का उदघाटन किया है। इन आत्मकथाओं में रचनाकारों का अलग–अलग व्यक्तित्व और अलग–अलग मिजाज व्यक्त हुआ है। कुछ ने जीवन से अधिक अपने रचना–संघर्ष को व्यक्त करने की कोशिश की। किसी विशिष्ट रचनाकार की रचनाओं, उसके संपर्क में आनेवाले मित्रों के संस्मरण तथा उसके द्वारा लिखे गये पत्रों को आधार बनाकर किसी दूसरे आलोचक द्वारा उस विशिष्ट रचनाकार की आत्मकथा लिखने का प्रयत्न भी दूसरे नये प्रयोग के रूप ही हैं। श्री विष्णुचन्द्र शर्मा द्वारा लिखी गयी 'मुक्तिबोध की आत्मकथा' (1984) इसी तरह का प्रयोग है। अपनी शैली के विषय में वे कहते हैं–''स्व. पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास बाणभट्ट की आत्मकथा ने मुझे 'मुक्तिबोध' के रचनाकार की भीतरी और बाहरी तथा चेतना के स्तर पर त्रिभूजाकार संश्लिष्ट प्रक्रियाओं के कौशल को पहचानने का गुण सिखाया हैं। प्रेमचंद के उपन्यास 'रंगभूमि' से एक व्यक्ति कैसे देशव्यापी चरित्र में रूपांतरित होता है, यह मैंने सीखा है। फ्रांसीसी जीवनी लेखक हेनरी ट्रायट की जीवनी तोलस्तोय ने मुझे 'मुक्तिबोध' की लक्ष्य के प्रति एकाग्रता और जीवन को बदलने की रचना–प्रक्रिया का पाठ पढ़ाया है। इसका यह अर्थ नहीं कि मैंने मुक्तिबोध की आत्मकथा के रूप में उपन्यास लिखा है। जैसे परंपरा से हटकर मुक्तिबोध की विश्वसनीय जीवनी लिखने की ही कोशिश की है''[5] हिन्दी जगत में हरिवंश राय बच्चन की आत्मकथा ने जो मानक स्थापित किया वह हिन्दी आत्मकथा लेखन के लिए वरदान सिद्ध हुआ है। उन्होंने अपनी स्पष्टवादिता, रोचकता, तथ्यात्मकता, संक्षिप्तता, प्रामाणिकता ऐसे गुणों के साथ हिन्दी आत्मकथा को प्रतिष्ठित मुकाम तक पहुँचाया है।

आत्मकथा आत्मकथाकार की सच्ची कथा या कहानी है। डॉ. वीर भारत तलवार के अनुसार ''पं. जवाहर लाल नेहरू ने डिस्कवरी ऑफ इंडिया लिखकर हिन्दी क्षेत्र से आत्मकथा

लेखन प्रारंभ किया था।''[6] यह मान्यता गलत ही है। इसके अलावा आधुनिक हिन्दी साहित्य में सबसे पहले डॉ. श्यामसुंदर दास ने अपनी आत्मकथा 'मेरी आत्मकथा' (1941) लिखी थी। अंग्रेजी की पुस्तक डिस्कवरी ऑफ इंडिया का कथ्य–स्वरूप व नामकरण आत्मकथा प्रवृत्ति के एकदम विपरीत हैं। हिन्दी में रूपांतरित करने से 'भारत एक खोज' एक ऐतिहासिक ग्रंथ है' आत्मकथा नहीं। यही प्रवृत्ति रामविलास शर्मा की आत्मकथा के द्वितीय खंड 'अपनी धरती अपने लोग' में दिखाई देती है। उनकी इसी शीर्षक से तीन खंडों में आत्मकथा निकली है। दूसरे खंड का मूल विषय दास और स्वामित्व के संबंध के उदय व विकास की विवेचना करना है, जो मार्क्सवादी ऐतिहासिक भौतिकवाद का अध्ययन जैसा है। उसमें का एक प्रसंग–''समाज के उत्थान में आदिम साम्यवाद के पश्चात दास व्यवस्था का आगमन नहीं वरन् सीधे सामंती व्यवस्था आई। कम से कम भारत में दासता व्यवस्था कभी नहीं थी।''[7]

रामविलास शर्मा ने भारत व्यवस्था को अपमान से बचाते हुए भारत व्यवस्था को गौरवशाली इतिहास व्यवस्था के रूप में रखने की कोशिश की है। पाश्चात्य देशों में दास व्यवस्था है तो हमारे देश में जाति–व्यवस्था दास–प्रथा से कम अमानवीय नहीं रही। जाति अस्पृश्यता दास व्यवस्था से लेश मात्र भी कम नहीं, और भी भयंकर है। अंतर यही है कि देश की सामाजिक भिन्नता के कारण व्यवस्था का नाम भिन्न हो गया है। दलित जाति आज भी सामंती व्यवस्था के अत्याचारों की शिकार है कि प्रतिदिन जानवरों से बदतर हिंसा झेल रही है। अछूत की दांसता केवल इतिहास का कोई अध्याय मात्र नहीं है, बल्कि आज भी उनकी आत्मकथाएँ सामाजिक भेदभाव या ज्वलंत प्रमाण हैं। वे दासता का ही एक रूप हैं।

5.3 दलित आत्मकथाएँ :

दलित आत्मकथन दलित साहित्य की सबसे सक्षम विधा के रूप में दलित जीवन की त्रासदी का आईना बन चुकी है। दलित लेखकों ने अपने आत्मकथन लिखकर पूरे समाज को यह बता दिया है कि ''हमारा जीवन जानने के लिए किसी रची हुई कहानी या आख्यान की नहीं, स्वयं हमारे जीवन को देखना जरूरी है।''[8] आत्मकथा के माध्यम से उन्होंने साहित्य को समाज का वर्णन होने का विश्वास दिया है। इसमें शक नहीं कि दलितों ने हिन्दी साहित्य के मानक बदल दिए हैं।

हिन्दी दलित साहित्य जातिगत भेदभाव के कारण सदियों तक, समाज के हाशिए पर रखे गए दलित समुदाय के शोषण, अपमान, अवहेलना, घृणा और तिरस्कार से उभरे आक्रोश की रचनात्मक अभिव्यक्ति है। वास्तव में यह शोषण, उत्पीड़न और वेदना को झेलते आ रहे मूक वर्ग का समाज व्यवस्था से विद्रोह है। आज का दलित लेखक समाज की वह इकाई है जिसने शिक्षा तथा नौकरियों में मिले संवैधानिक अधिकारों के कारण अपनी बौद्धिक और सांस्कृतिक क्षमता का विकास किया है। यह पीढ़ी अपने समाज की दयनीय स्थिति को शब्द दे रहा है। महाराष्ट्र में दलित साहित्य आंदोलन सन् 1960–65 के दौरान शुरू हुआ था हिन्दी प्रदेश में भी यद्यपि इसकी मौजूदगी सातवें दशक के आस–पास से ही मिलती है, जब उत्तर भारत के इक्का–दुक्का स्थानों पर दलित रचनाकारों ने अपनी पीड़ा को अंबेडकर चेतना से जोड़ना प्रारंभ किया किन्तु एक संगठित आंदोलन के रूप में यह नौवें दशक से शुरू होता दिखाई देता है। दोनों की चिंताएं एक जैसी हैं।

दलित अस्मितावादी साहित्य का शुरूआत डॉ. अम्बेडकर से मानते हुए डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे' कहते हैं कि ''दलित अस्मितावादी साहित्य की नींव में डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर जी की वैचारिकी है– इस पर विवाद की संभावना ही नहीं है। जिस प्रकार मार्क्सवादी विचारों की प्रेरणा से विश्वभर के साहित्य में जनवादी साहित्य का सृजन शुरू हुआ। ठीक इसी प्रकार इस देश की विभिन्न भारतीय भाषाओं में जिस दलित साहित्य का विस्फोट हुआ है, उसकी नींव में डॉ. बाबा साहेब की वैचारिकी है, इसे अलग से प्रमाणित करने की जरूरत नहीं है।''[9] डॉ. बाबा साहेब ने अपने मार्गदर्शक तथा गुरू के रूप में तीन महापुरूषों के नाम लिए हैं। ये हैं महात्मा बुद्ध, महात्मा कबीर और महात्मा ज्योतिबा फूले। इन तीनों के विचारों और संस्कारों के कारण ही उन्हें एक नई दृष्टि मिली। इन तीनों के विचारों का गहरा प्रभाव उनकी सोच पर हुआ था। संत कवि नंददास, रैदास और चोखामेल के साहित्य के साथ वे प्रखर बौद्धिकता की दृष्टि को अपनाते हैं। क्योंकि संत साहित्य का आंदोलन 'ब्राह्मण श्रेष्ठ' अथवा 'भक्त श्रेष्ठ' इस पर केन्द्रित था। वे लिखते हैं कि ''संत साहित्य 'विद्रोही साहित्य' है क्रांतिकारी नहीं। विद्रोह कभी भी समाज–व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन नहीं कर पाता। विद्रोह समाज–व्यवस्था में हलचल पैदा कर देता है, वह उस पर आघात करता है, परंतु परिवर्तन नहीं।''[10] क्रांति अलबत्ता परिवर्तन की बात ही नहीं करती, वह परिवर्तन को साकार भी करती है और इसी

कारण विद्रोह हमेशा असफल होता है, पराजित हो जाता है। क्रांति मूल्यों का निर्माण करती जाती है। वह पुराने मूल्यों को ध्वंस कर देती है और नये मूल्यों को प्रस्थापित करती जाती है। इस दृष्टि से देखें तो संतों का विद्रोह क्रांति नहीं। इसलिए चातुरवर्ण की विध्वंस की दृष्टि से इसका कुछ भी उपयोग नहीं, संत ने वर्ण–व्यवस्था पर कहीं भी आघात नहीं किया है। हिन्दी में कबीर ने वर्ण–व्यवस्था पर जमकर प्रहार किए हैं और कबीर तो डा. बाबा साहेब की प्रेरणा के प्रस्थान ही रहे हैं।

भारतीय साहित्य में दलितों पर केन्द्रित रचनाएँ न सिर्फ आधुनिक काल में मिलती हैं, बल्कि भारतीय साहित्य के आरंभ से ही दलित जीवन की अभिव्यक्ति होती रही। संस्कृत, पालि और प्राकृत साहित्य में दलित जीवन से संबंधित रचनाएँ मिलती हैं। संस्कृत के आदिकवि वाल्मीकि को दलित जीवन का व्यापक अनुभव था तो मध्यकाल में संत व भक्त कवि कबीरदास, रैदास, तुकाराम, नामदेव, चोखोमाल दादू, पीपा, सेन आदि भी दलित जीवन की पीड़ाओ, संघर्षों से परिचित थे। इन दलित कवियों ने कोई आत्मकथा नहीं लिखी किन्तु उनकी कविता उनकी आत्माभिव्यक्ति ही तो है।

दलित आत्मकथा लेखन भारत में पहले–पहल मराठी भाषा में शुरू हुआ। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर की आत्मकथा 'मी कसा झाला' (मैं कैसे बना) से मराठी दलित आत्मकथाओं की शुरुवात मानी जाती है। ''जब 'अस्मितादर्स' के दीपावली विशेषांक में 'मैं और मेरा लेखन' शीर्षक से रा. शैडे, केशव मेश्राम, बंधु माधव, राजा ढाले, नामदेव ढसाल, योगीराज बाघमारे, बाबू राव बागुल आदि मराठी दलित लेखकों के संक्षिप्त आत्मकथ्य प्रकाशित होते हैं।''[11] इन आत्मकथाओं की ही प्रेरणा से कालांतर में स्वतंत्र रूप से दलित आत्मकथाएँ अस्तित्व में आई हैं। 1960 के बाद समाज के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत दलित व्यक्तियों ने अपनी आत्मकथाएँ बड़ी बेबाक शैली में लिखनी आरंभ की। इनमें विभिन्न दलित जातियों के शिक्षित युवकों ने अपनी आत्मकथाएँ लिखकर अपनी जातीय पीड़ा को अभिव्यक्ति दी है। इन सभी की अनुभूति अलग होने पर भी, समान इसलिए है कि 'समाज की विषम व्यवस्था के शिकार हैं'।''दया पवार का बतूल मराठी साहित्य की पहली आत्मकथा है जो सन् 1978 में प्रकाशित हुई जिसका हिन्दी अनुवाद 'अछूत' नाम से राधाकृष्ण प्रकाशन से सन् 1980 में प्रकाशित हुआ। जो

दलित साहित्य में आत्मकथा लेखन का न केवल आरंभिक बिन्दु है बल्कि हिन्दी में भी मराठी आत्मकथा की पहली अनूदित रचना है।''[12]

'अछूत' के द्वारा दया पवार ने दलित लेखकों को अपने जीवन को समाज के सामने प्रस्तुत करने की प्रेरणा दी जिसके कारण वे केवल मराठी साहित्यकार ही नहीं बल्कि भारतीय दलित साहित्य के भी ऐतिहासिक पुरूषबन गए हैं। कई राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित 'अछूत' आत्मकथा में समाज के हाशिये पर धकेल दिये गये महारों के जीवन का चित्रपूर्ण सजीवता एवं मार्मिकता के साथ उभरता है। नारकीय जीवन जीने को अभिशप्त, मृत पशुमांस को खाने के लिए विवश नंगे, भूखे दुतकारे हुए बेबस मानव जो दुःख यातनायें झेलते हुए भी जिजीविषा को लिए हुए है का चित्रण आत्मकथा में हुआ है। दलित समाज की वास्तविकता और भोगे हुए यथार्थ को बयान के कारण अनेक आत्मकथाएँ पुरस्कृत भी हो चुकी हैं।

हिन्दी में दलित आत्मकथा की शुरूआत डॉ. भगवान दास की 'मैं भंगी हूँ' से मानी जाती है। उसके बाद लंबे समय के बाद मोहनदास नैमिशराय की 'अपने–अपने पिंजरे' (1995) दूसरा भाग (2000); ओम प्रकाश वाल्मीकि 'जूठन' (1997); डी.आर. जाटव की 'मेरा सफर मेरी मंजिल' (2000); माता प्रसाद की 'झोपड़ी से राजभवन' (2002); सूरजभान चौहान की 'तिरस्कृत' (2002), दूसरा भाग (2006) में 'संतप्त' नाम से प्रकाशित है। श्यौराज सिंह बेचैन की आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' (2009); 'मुर्दहिया' – डॉ. तुलसी राम। अन्य दलित लेखकों में – प्र.ई. सोनकांबले की 'यादों के पंछी', 'लक्ष्मण माने कृत उपरा'; लक्ष्मण गायकवाड की 'उठाईगीर'; शरण कुमार लिंबाले की अक्करमासी, दयापवारकृत 'अछूत' डॉ. किशोर शांताबाई काले की 'छोरा कोल्हाल का' (1997) तथा कुसुम वियोगी की आत्मकथाओं के कुछ अंश पत्र–पत्रिकाओं में छपकर चर्चित हुए हैं।

इन दलित लेखकों की आत्मकथाओं में उनके शताब्दियों से शोषित–दमित मन का दर्द, तल्खी और क्षोभ के रूप में व्यक्त हुआ है। ये कथाएँ साक्षी हैं कि आज भी हमारे समाज में सामंतीय संस्कार हावी हैं। जनतांत्रिक व्यवस्था और सामाजिक समरसता की बात करनेवाले हमारे देश के कर्णधारों की आँखें समय रहते न खुलीं तो इन लेखकों का दर्द शोला बनकर दहक सकता है। दलित जीवन के सरोकार को समेटती ये आत्मकथाएँ भारतीय

जाति–व्यवस्था, हिन्दू धर्म, जन्म सिद्धांत पर प्रश्नचिन्ह लगाती हैं। दलित आत्मकथाओं में अभिव्यक्ति चेतना सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक शोषण के विरोध में अपनी आवाज बुलंद करते हुए शोषक वर्ग को सोचने के लिए बाध्य करती हैं।

5.4 दलित महिला आत्मकथाएँ :

दलित महिला आत्म चरित्र और आत्मकथन भी मराठी से शुरू होते हैं। इस विधा ने मराठी साहित्य को बहुत संपन्न बनाया। दलित स्त्री लेखिकाओं ने स्त्री–जीवन त्रासदी की अभिव्यक्ति के लिए आत्मकथन का माध्यम चुना। इसलिए दलित स्त्री के तिहरे शोषण को आत्मकथन के विस्तृत पटल पर चित्रित करना दलित लेखिकाओं के लिए संभव हो सका। ''स्त्री होने के कारण लिंग आधारित, दलित होने के कारण जाति आधारित और गरीबी के कारण वर्णगत शोषण के चलते तिहरे शोषण को झेल रही दलित स्त्री ने अतीत की घटनाओं को कभी क्रमबद्ध तरीके से तो कभी प्रसंगानुरूप संदर्भ के रूप में बड़े ही अनोखे ढंग से अभिव्यक्ति दी है।''[13] दलित मराठी साहित्य में आत्मकथाओं ने अपने लोमहर्षक यथार्थ के कारण जल्दी ही दुनियाभर में लिखी जा रही बेहतरीन आत्मकथनों के समकक्ष अपने को खड़ा कर दिया। दलित पुरुषों के आत्मकथनों में गरीबी और जातिवंश एक केन्द्रीय विषय हैं, तो स्त्रियों की आत्मकथाओं में इनसे कुछ कदम आगे के विषय है। खास तौर से स्त्री होने के कारण झेल तकलीफें इन आत्मकथनों का एक बड़ा आयाम है। अभी तक छपी आत्मकथाओं में सबसे अधिक ध्यान जिन आत्मकथाओं ने खींचा उनमें बेबीताई कांबले की 'जीवन हमारा', शाताबाई कांबले की 'माइया जल्माची' चित्तरकथा, मुक्ता सर्वगोड की 'मिटलेनी कवाडे', कुमुद पावडे की 'अंतःस्फोट', कौशल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप' तथा जानाबाई की 'मरणक' (मरण वेदना) नामक छह आत्मकथन हैं।

उपर्युक्त पुरूष आत्मकथाओं में 'स्त्री–विमर्श' का निर्वाह प्रभावपूर्ण ढंग से हुआ है। इन आत्मकथाओं में दलित स्त्री का शिक्षित होने के लिए संघर्ष करना तथा आर्थिक सबलता के लिए कठिन प्रयास करने के प्रसंग प्रमुख रूप से चित्रित हुए हैं। पुरूष सत्तात्मक समाज में स्त्री का निरंतर शोषण, उसके अस्तित्व और अस्मिता का कुचला जाना और इनके विरोध में स्त्री का संघर्ष दलित साहित्य की मुख्य उपलब्धि है। दलित स्त्री, वह नौकरपेशा हो अथवा

गृहिणी या मजदूर, वह दलित होने के साथ–साथ स्त्री होने की पीड़ा भी झेलती है। अन्याय दरिद्रता और वंचना में स्त्री के जीवन की दीनता को यहाँ मार्मिक ढंग से उभारा गया है।

दलित–स्त्री आत्मकथाओं में अभिव्यक्ति संदर्भ, परिवेश, समस्या और संघर्ष का स्वरूप बहुस्तरीय है। दलित स्त्री मध्यवर्गीय हो अथवा निम्नवर्गीय, मजदूर हो अथवा सामाजिक कार्यकर्ता या कॉलेज में अध्यापिका, उसे दलित और स्त्री होने की पीड़ा साथ–साथ झेलनी पड़ी है। यह तथ्य लगभग सभी लेखिकाओं के यहां समान है। पूर्वजों के साथ हुए जातिगत शोषण और उत्पीड़न की वेदना की लकीरें सभी में एक समान है। अन्याय, गुलामी, दरिद्रता, वंचना ने स्त्री के जीवन को एक सी भयावहता, दीनता, लाचारी और कुचले जाने की पीड़ा से भर दिया।

बेबीताई कांबले ने 'जीवन हमारा' में शिक्षा की प्राप्ति को ही बेहतर और सम्मानपूर्ण जीवन का रहस्य माना है। जेजुरी में डॉ. बाबा साहेब के भाषण से प्रभावित होकर बेबीताई की नानी माँ लौटीं तो उन्हीं विचारों के प्रचार–प्रसार में जुड़ गई। वे अम्बेडकर के विचारों से प्रभावित होकर समाज की पथ–प्रदर्शन बनती हैं। 'बंद दरवाजे' में मुक्ता सर्वगौड़ की आत्मकथा में भी आधुनिक विचारों की नारी का चित्रण किया गया। 'मरण वेदना' में दलित स्त्री की शिक्षा प्राप्ति से उत्पन्न चेतना चित्रित है। कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' स्त्री विमर्श की पहल है। वे दलित स्त्रियों को भी अपनी दर्दभरी दास्तान से मुक्ति पाने के लिए शिक्षा का मार्ग बताती हैं। 'जूठन' में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने चूहड़े जाति की स्त्रियों के प्रगतिशील विचारों को व्यक्त किया है। दलित स्त्री अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए और सामाजिक, पारिवारिक और आर्थिक पीड़ा से मुक्ति केलिए क्या चाहती है इसे सबको लेखक अपनी आत्मकथा में अपनी माँ के संदर्भ को लेकर समझाते हैं। 'तिरस्कृत' में सूरजपाल चौहान ने गाँवों में दलित स्त्रियों पर होने वाला शोषण और अपमान का वर्णन भी मर्मस्पर्शी है।

हिन्दी दलित आत्मकथा साहित्य क्षमता, स्वतंत्रता और न्याय की स्पष्ट मांग है। इनमें मुक्ति आंदोलन की ताप और ताकत है। इन आत्मकथाओं में वास्तव में स्त्री मुक्ति की आवाज है। दलित तत्व से मुक्ति, ऊँच–नीच के भेदभाव से मुक्ति, शोषण और पीड़ा से मुक्ति की माँग हुई है।

'उर्मिला पंवार' की 'आयदान'; 'कुमुद पावड़े' की 'अंतस्फोट', सुशीला टाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द'; शांताबाई कृष्ण कांबले की 'मांझी जन्माची चित्र कथा' ये सारी मराठी लेखिकाओं की आत्मकथाएँ नहीं है बल्कि यह दलित स्त्रियों के जीवन और उनके समाज की दुःख–दर्द पीड़ा की अभिव्यक्ति के मार्मिक दस्तावेज भी हैं। 'रमणिका गुप्ता' ने अपनी आत्मकथा 'हादसे' (2005) में प्रकाशितकी है वे अपने पति से भी विद्रोह करके मजदूरों के जीवन–संघर्ष में हाथ बटाती हैं। रूढ़ियों को तोड़ती हैं।

5.5 हिन्दी में महिला आत्मकथाएं :

आजकल महिला लेखिकायें भी मुक्त मन से अपनी आत्मकथा लिखने लगी हैं। स्त्री लेखन की खूबी है कि यह न केवल आशा का संचार करता है बल्कि जीवन का अनुसरण करते हुए जीवन का विस्तार भी करता है। विशेष तौर पर स्त्री आत्मकथा जीवन का अनुसरण करती है। स्त्री अब आत्मकथा लिखती है तो वह अपनी निजी हानियों से उबरने के लिए लिखती है। वह दया, करुणा आदि भाव को जगाने के लिए नहीं लिखती है। समाज में स्त्रियों की जो नारकीय अवस्था है वह किसी भी चेतना संपन्न स्त्री को परेशान कर सकता है। ऐसे में स्त्री–आत्मकथा कोई ट्रेंड सेट करने, वाद चलाने या इतिहास में अमर होने के लिए नहीं होती, बल्कि इस नारकीय अवस्था के मूल्यांकन और पड़ताल के लिए होती है। इसमें वह आत्म सेल्फ को परिभाषित करने के संघर्ष से गुजरती है।

स्त्री–आत्मकथा के इतिहास, भूगोल या परंपरा से मुक्त होने के पीछे कारण यह कि स्त्री वर्तमान में रहना चाहती है। इतिहास उसके वश में नहीं, उसकी शक्तियाँ उसके वश में नहीं, वह कभी किसी भी तरह के इतिहास लेखन के केन्द्र में नहीं रही। ऐसे में स्त्री आत्मकथा में जो कुछ आएगा वह वर्तमान केंद्रित होगा। वर्तमान से लड़ना, संघर्ष करना, उसे बदलने के लिए स्थितियाँ तैयार करना उसके वश में है। स्त्री के दुख–दर्द और अनुभव का संसार अभिव्यक्ति का कोई भी रूप हो सकता है। लोकगीतों से लेकर मीरा और महादेवी की कविता में स्त्री आत्मकथा व्यक्त हो सकती है। मुश्किल यह है कि पाश्चात्य साहत्य में आत्मकथा का आरंभ ही तब माना गया, जब सब्जेक्ट के रूप में 'मैं' केन्द्र में आया। स्त्री आत्मकथा लेखन प्रेम और संवेदना के विस्तार का लेखन है।

''हिन्दी में पहली स्त्री आत्मकथा 'सरला : एक विधवा की आत्मजीवनी' है। इसका धारावाहिक प्रकाशन 'स्त्री–दर्पण' पत्रिका के जुलाई 1915 से 1916 तक के अंकों में हुआ था।''[14] इसकी लेखिका 'सरला' नामक एक बाल विधवा है। सरला की यह आत्मकथा पुरूषवादी सोच को प्रकट करती है जिसमें बालिका का कोई दोष न होने पर भी उसे ही दोषी मानकर कुलक्षिणी, अभागिन आदि नामों से संबोधकर मुँह की वाचालता से प्रताड़ित कर उस में निम्नभाव पैदा किया जाता हैं।

डॉ. मनीष कुमार मिश्रा कहते हैं कि ''सुधा सिंह का एक आलेख ''रामसुन्दरी दासी के बहाने स्त्री–आत्मकथा पर चर्चा'' नामक शीर्षक से www.deshkaal.com पर पढ़ने को मिला। उसमें वे लिखती हैं कि राससुन्दरी दासी की आत्मकथा 'मेरा जीवन' नाम से सन् 1876 में पहली बार छपकर आई। जब वे 60 बरस की थी तो इसका पहला भाग लिखा था। 88 वर्ष की उम्र में राससुन्दरी देवी ने इसका दूसरा भाग लिख था।''[15] उस समय स्त्री–शोषण पर टिप्पणी करना या उसका मूल्यांकन करना स्त्री के लिए लगभग दमनात्मक माहौल मे आवाज उठाने का बड़ा साहस करना है। स्त्री अभिव्यक्ति के लिए ऐसे दमनात्मक माहौल में रामसुन्दरी देवी का अपनी आत्मकथा लिखना कम महत्वपूर्ण बात नहीं है। यह आत्मकथा कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। सबसे बड़ा आकर्षण तो यही है कि यह एक स्त्री द्वारा लिखी गयी आत्मकथा है। स्त्री का लेखन पुरूषों के लिए न सिर्फ जिज्ञासा और कौतूहल का विषय होता है वरन् भय और चुनौती का भी। इसी भाव के साथ वे स्त्री के आत्मकथात्मक लेखन की तरफ प्रवृत्त होते हैं, प्रशंसा और स्वीकार के साथ नहीं। क्योंकि स्त्री का अपने बारे में बोलना केवल अपने बारे में नहीं होता बल्कि वह पूरे सामाजिक परिवेश पर भी टिप्पणी होती है। समाज को बदलने की इच्छा स्त्री–लेखन का अंडरटोन होती है। इस कारण स्त्री की आत्मकथा चाहे जितना ही परंपरित कलेवर में परंपरित भाव को अभिव्यक्ति करने वाली क्यों न हो, वह परिस्थितियों का स्वीकार नहीं हो सकती वह परिस्थितियों की आलोचना ही होगी।

हाल ही में यह जानकारी पत्रिकाओं और अंतर्जाल के माध्यम से सामने आयी है कि आधुनिक हिन्दी की प्रथम स्त्री–आत्मकथा लेखिका 'स्फुरना देवी' रही हैं और उनकी आत्मकथा का शीर्षक है 'अबलाओं का इंसाफ'। इसका प्रकाशन वर्ष 1927 ई. है। इस संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह की बातें महत्वपूर्ण हैं कि ''इस आत्मकथा का प्रकाशन मेरे लिए आंख खोलने

वाला है। मुझे इस बात की खुशी है कि यह काम मेरे विश्वविद्यालय की एक छात्रा (नैया) ने किया है। उन्होंने प्रकट करते हुए कहा कि स्त्रियों द्वारा किया गया लेखन कैसे आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी से ओझल रह गया।''[16]

मूलतः आत्मकथा न होने पर भी निजी एवं आत्मीय प्रसंगों के भरमार के कारण 'सीमंतनी उपदेश' 1982 में एक अज्ञात हिन्दू औरत द्वारा लिखी गई पुस्तक है जिसे डॉ. धर्मवीर भारती ने संपादित किया था। उसे भी आत्मकथा की श्रेणी में रखा गया है। इसमें लेखिका ने विधवा समस्या को लेकर गंभीर चर्चा की है। विधवा स्त्री पुनर्विवाह के लिए जोर दिया है। लेखिका स्त्री पवित्रताधर्म के विरूद्ध आवाज उठाती है लेकिन उसे पुरूष के विरूद्ध खड़ा नहीं करती, वरन् पुरूष के सहयोग से स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए प्रेरित करती है। वे कहती हैं कि ''आदमी को ईश्वर ने पैदा किया फिर आदमी क्यों कर परमेश्वर हो सकता है।''[17] लेखिका उस समय की परिस्थितियों के हिसाब से बहुत आक्रामक स्त्री–विमर्श प्रस्तुत करती है।

''देहरी भई विदेश' (2005) श्री राजेन्द्र यादव द्वारा अर्चना वर्मा और बलवंत कौर के सहयोग से संपादित इस आत्मकथात्मक कृति में 20 लेखिकाओं के आत्मकथ्य संकलित हैं। पूरी कृति 'दस्तावेज', 'आत्मकथांश' और 'आत्मकथा' शीर्षकों में विभक्त है। दस्तावेज में 'मीराबाई'; 'एक अज्ञात हिन्दू औरत'; 'दुःखिनी बाला', 'महादेवी वर्मा' और 'शिवरानी देवी' के आत्मकथ्य संग्रहीत है। इनमें 'एक अज्ञात हिन्दू औरत' और 'दुःखिनीबाला' के जीवन–संदर्भ अज्ञात हैं। शेष सभी लेखिकाएं हिन्दी की मान्य रचनाकार हैं।''[18]

काल क्रम की दृष्टि से कुछ हिन्दी महिला लेखिकाओं के नाम देखें तो 'प्रतिभा अग्रवाल' की आत्मकथा सबसे पहले आती है। पहला भाग 'दस्तक जिन्दगी की' (1990); दूसरा भाग 'मोड जिन्दगी का' (1996); हैं जिसमें लेखिका के व्यक्तिगत जीवन के सुख–दुःख, और मर्म–क्षणों के चित्रों में रंग भरने वाले अनेक साहित्यक, गैर साहित्यिक व्यक्तियों एवं संस्थाओं की गतिविधियों से निर्मित सघन संश्लिष्ट सांस्कृतिक बिम्बों की एक सूत्र–श्रृंखला भी आद्योपान्न विद्यमान है।

'कुसुम अंसल' की आत्मकथा 'जो कहा नहीं गया' (1996) है। इसमें इन्होंने अपने देशी–विदेशी जीवन–संदर्भों एवं अनुभवों के बीच व्यक्तिगत दुःख–दर्द को तो आकार दिया ही है, स्त्री होने की पीड़ा का इज़हार भी किया है।प्रसिद्ध कथा–लेखिका कृष्णा अग्निहोत्री की

आत्मकथा 'लगता नहीं दिल मेरा' (1997)है इसमें उन्होंने अपने जीवन के अच्छे–बुरे अनुभवों को दो–टूक शब्दों में साहस के साथ व्यक्त किया है।'पद्मा सचदेव' की आत्मकथा 'बूँदबावड़ी' (1999) में उनके दुःख–दर्द और सुख के बिन्दुओं से निर्मित एक ऐसी रेखा है, जिसे उन्होंने अपनी अपराजेय जिजीविषा के बल पर स्वयं खींचा है।'शीला झुनझुनवाला' की आत्मकथा 'कुछ कही कुछ अनकही' (2000) में इन्होंने अपने बचपन से आरंभ करके अपने पति की मृत्यु तक की घटनाओं का वर्णन किया है। इसे खुद लेखिका की ओर से उनके पति टी.वी. झुनझनवाला की संयुक्त आत्मकथा कहा जा सकता है। ''इस आत्मकथा में संस्मरण, रेखाचित्र, डायरी, रिपोर्ताज, यात्रावृत्त आदि कई गद्य विधाओं का स्वाद एक साथ मिलता है।''[19]

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'कस्तूरी कुंडल बसै' पहला भाग, और दूसरा भाग 'गुड़िया भीतर गुड़िया' (2008) में आई है। 'कस्तूरी कुंडल बसै' में माँ और बेटी के अतर्द्वन्द व टकराहट के कई आयाम हैं, यह टकराहट एक विधवा स्त्री और कुँआरी युवती के भिन्न स्त्री–परिप्रेक्ष्य की भी है। यह नारी–मुक्ति की भिन्न चेतना का भी सवाल है। मैत्रेयी पुष्पा की माँ कस्तूरी देवी अपने समय की एक ऐसी जीवट वाली महिला थीं, जिन्होंने अपने बलबूते पर अपना रास्ता बनाया था। विद्रोह संस्कार मैत्रेयी पुष्पा को विरासत में अपनी माँ से मिले हैं। इसे लेखिका के साथ–साथ उनकी माँ की संघर्ष–गाथा भी कह सकते हैं। पारंपरिक जड़ता को तोड़नेवाली इस कथा में माँ–बेटी के बीच लगाव–बिलगाव, लाड़–गुस्सा ममता–निर्भयता के उलझे संबंध–सूत्र की विद्यामानता ने पूरी रचना को अतिरिक्त सर्जनात्मक सघनता प्रदान की है। अनेक दृष्टियों से यह आत्मकथा हिन्दी–आत्मकथा लेखन को नई दिशा प्रदान करने वाली कही जा सकती है।

मैत्रेयी पुष्पा ने आत्मकथा के दूसरे खंड 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में अपने कौशोर्य, वैवाहिक जीवन और लेखक बनने की कथा लिखी है। इस कथा में पन्ने पर दुःखों की गठरियाँ–सी खुलती चलती हैं, चुनौतियों के रूप में, पर मैत्रेयी है ंकि न थमना जानती हैं, न मुड़ना। इनकी आत्मकथा के बारे में जब चर्चा हुई तो विशेषकों की राय है कि ''उनके पास न बगावत की किताब थी, न ही बगावत के कोई साधन। इसलिए उनकी बगावत किताबी किस्म की नहीं हो सकती थी। वह धीमी आँच पर सदबदाती जिंदगी की तरह पकती रही.... इस धीमी गति के कारण उन्हें भी प्रौढ़ावस्था तक प्रतीक्षा करनी पड़ी''[20] लेकिन बात उल्टी है

क्योंकि लेखिका के पास वे किताबें उनके बचपन से ही उनके साथ थी–रामश्री चाची, कलावती चाची, खुद माँ कस्तूरी और खेरापतिन दादी, इसलिए यह,आत्मकथा अकेले मैत्रेयी पुष्पा की नहीं, इन सबकी है, एक और अर्थ में समूची स्त्री–जाति की है।

5.6 हिंदी के आत्मकथात्मक उपन्यास :

युवा आलोचक अभिषेक दुबे ने अपनी आलोचनात्मक पुस्तक 'आत्मकथात्मक उपन्यासों की रचना–प्रक्रिया' (राका प्रकाशन इलाहाबाद) के द्वारा आत्मकथात्मक उपन्यासों के स्वरूप एवं विकास के परिचय के साथ–साथ हिन्दी के प्रमुख आत्मकथात्मक उपन्यासों का मूल्यांकन भी किया है। उपन्यास विधा में आत्मकथा के गुणों का समावेश करके लेखकों ने आत्मकथात्मक उपन्यासों का सृजन किया। पर यह ध्यान में रखना होगा कि आत्मकथात्मक उपन्यासों में प्रयुक्त आत्मकथा लेखक की निजी न होकर उसके सृजित पात्रों की है। इसके आधार पर लेखक ने ''स्त्री–विमर्श से संबंधित तीन रचनाओं को लिया–कृष्ण बलदेव वैद की 'एक नौकरानी की डायरी'; प्रभा खेतान की 'छिन्नमस्ता'; एवं मैत्रेयी पुष्पा की 'कस्तूरी कुंडल बसै' का मूल्यांकन भी किया है।''[21] प्रमुख आत्मकथात्मक उपन्यासों के अंतर्गत लेखक ने इक्कीस उपन्यासों का चयन किया है, जिसमें अधिकांश उपन्यासों की प्रसिद्धि को मूल्यांकन का आधार बनाया गया है। लेखक ने 'ठाकुर जगमोहन सिंह' के 'श्यामा स्वप्न' को हिन्दी का पूर्ण एवं प्रथम आत्मकथात्मक उपन्यास माना है। इससे पहले कतिपय आलोचकों ने बाबू बृजनंदन सहाय के 'सौंदर्योपासक' को पहला आत्मकथात्मक उपन्यास माना था।

''महत्वपूर्ण आत्मकथात्मक उपन्यास की शुरूआत 'देहाती दुनिया' से मानी जाती है, जिसके लेखक शिवपूजन सहाय ने इसमें आंचलिकता के बिखेर दिया है।''[22]इलाचंद्र जोशी के 'घृणामयी' एवं जैनेंद्र कुमार के 'त्यागपत्र' अज्ञेय के 'शेखर एक जीवनी,' द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का लेखक के द्वारा जबर्दस्त मूल्यांकन समीक्ष्य पुस्तक में हुआ।

मन्नू भंडारी अपनी आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' (2007) अपने पति राजेन्द्र यादव की आत्मकथा 'मुड़–मुड़ के देखता हूँ' के जवाब में लिखा जिसमें व्यक्तिगत, साहित्यिक जीवन के साथ पारिवारिक जीवन का भी वर्णन है।

कृष्णा अग्निहोत्री की आत्मकथा– 'लगता नहीं है दिल मेरा' में लेखिका ने व्यक्तिगत जीवन के कडुवे अनुभवों को व्यक्त किया है।उन्होंने साहित्यिक समाज और सामाजिक जीवन के जो अनुभव प्राप्त किये, बिना डरके अपनी आत्मकथा में लिखा है। वे सामंती समाज के दृष्टिकोण के कारण प्रताड़ित और पीड़ित हैं। इसलिए अपनी आत्मकथा की भूमिका में लिखती हैं कि ''प्रगति के नगाड़े बजाकर इक्कीसवीं सदी तक पहुँच आने वाला पुरूष समाज अब भी बुद्धिजीवी कहलाकार प्रतिभाशाली महिला और साहित्यकार को वास्तविक दृष्टि से नहीं देखता समाज की दृष्टि में हमें चरित्रहीन करार करने का हर अंदेशा छिपा रहता है।''[23]

प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' है। इस रचना ने उन्हें साहित्यिक बहसों के केन्द्र में रख दिया है। वस्तुतः वह आत्मकथा नहीं, डॉ. सर्राफ के साथ अपने संबंधों को लेकर विस्तार से दिया गया ट्रैजिक प्रेम–प्रसंग है कि, कैसे वह उनके निकट आईं। इस प्रकार आत्मकथा में लेखिका ने निःसंकोच अपने और डाक्टर के संबंधों का विश्लेषण करने की कोशिश की है, यहां तक कि डाक्टर के आग्रह पर गर्भपात की बात भी नहीं छिपाई। 'दूसरी औरत' का दर्द हर पंक्ति में झलकता है..... छिन्नमस्ता शब्द वस्तुतः उसकी सारी जिंदगी को परिभाषित करता है कि–

''सीस उतारै भुंई धरै, ता पर राखै पांव
यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहि।''[24]

छिन्नमस्ता काली के उस रूप को बताता है जहाँ वह स्वयं अपने एक हाथ में अपना कटा हुआ सिर लिए खड़ी है। इस आत्मकथा में लेखिका की ईमानदारी को लेकर हंस संपादक राजेन्द्र यादव कहते हैं कि ''मेरी जानकारी में 'अजीत कौर' की आत्मकथा 'खानाबदोश' के बाद भारतीय साहित्य की यह दूसरी आत्मकथा है जिसे सच्चे अर्थों में खतरनाक साहस के साथ लिखा गया कहा जा सकता है। खानाबदोश में अजीत ने दबंगई से स्वीकार किया है कि 'वह जिस से प्यार करती है या जिससे उसके बच्चे हैं वह 'दूसरा आदमी' है– पति नहीं। इधर हिन्दी में तीन आत्मकथाओं को लेकर काफी हंगामा है। एक तो 'अन्या से अनन्या' दूसरी है मन्नू भंडारी की 'एक कहानी यह भी', तीसरी है मैत्रेयी पुष्पा की 'गुड़िया भीतर गुड़िया'। तीनों को एकसूत्र में समझाना चाहें तो कहेंगे, 'अन्या से अनन्या' में नायिका की सारी तकलीफ है कि वह प्रेमिका है, पत्नी नहीं बन पाई। मन्नू पत्नी है, प्रेमिका नहीं बन सकी।

'गुड़िया भीतर गुड़िया' में कौशल यह है कि मैत्रेयी स्वतंत्र दोस्त भी है, पत्नी भी। मैत्रेयी मानती हैं कि जिसे हम हिकारत से 'तिरिया चरित्र' कहते हैं वह वस्तुतः पुरूषों की खूँख्वार दुनिया में अपने को बचाए रखने की कला या स्त्रीवादी रणनीति हैं। पुरूष सत्ता के व्यापक जात के भीतर की क्रूर दुनिया में हर औरत इस रणनीति के सहारे ही अपने को बचाती है।''[25] 'पिंजरे की मैना' 2008 चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की आत्मकथा है। इसमें लेखिका कामकाजी स्त्री की संघर्ष, सुख–दुख में सहनशीलता और घर को बनाये रखने के लिए कौशल प्रामाणिक विवरण है। यह आत्मकथा जब छपकर आयी थी उस समय 'अन्या से अनन्या' और 'गुड़िया भीतर गुड़िया' इन दोनों की चर्चा चल रही थी। लेकिन उस समय जब उन्होंने आत्मकथा लिखा था तब स्त्री–विमर्श जैसा नाम कुछ नहीं जानती थी फिर भी उसमें नारी चरित्र ऐसी भूमि तैयार करती है, जहाँ आगे जाकर निश्चम ही आवाज उठाना है। यह आत्मकथा भी जरूर स्त्री आत्मकथाओं में चर्चित रही है। प्रमाणिक रूप से उस समय की स्त्री आत्मकथा है।

5.7 मैत्रेयी पुष्पा का आत्मकथा साहित्य : नारी जीवन मूल्य :

चाक इदन्नमम् और अल्मा कबूतरी उपन्यासों की बहुपठित लेखिका अपने आत्मकथा के दो भाग–'कस्तूरी कुण्डल बसै' और 'गुड़िया भीतर गुड़िया' द्वारा निश्चय ही हिन्दी के आत्मकथात्मक लेखन को एक नई दिशा और तेवर दिया है।हर आत्मकथा एक उपन्यास है हर उपन्यास एक आत्मकथा। दोनों के बीच सामान्य सूत्र फिक्शन है। उपन्यास की निरवैयक्तिक्ता और आत्मकथा की वैयक्तिक्ता मिलकर उपन्यासों का नया शिल्प रचती हैं। आत्मकथाएं व्यक्ति की स्फुटित चेतना का जायजा होती हैं, जबकि उपन्यास व्यवस्था से मुक्ति–संघर्ष की व्यक्तिगत कथाएं। जो तत्व किसी आत्मकथा को श्रेष्ठ बनाता है वह है उन अंतरंग और लगभग अनछुए अकथनीय प्रसंगों का अन्वेषण और स्वीकृति जो व्यक्ति की कहानी को विश्वसनीय और आत्मीय बनाते हैं। लेखन कर्म से जुड़े किसी भी व्यक्ति का जीवन पटरियों पर चलने वाली रेल सरीखा नहीं होता कि जो समाजसम्मत निर्धारित स्टेशनसे चलकर तयशुदा स्टेशन पर जाकर समाप्त हो जाए। रचनाकार की जिन्दगी में सैकड़ों मोड़, उतार–चढ़ाव और पड़ाव होते हैं। उसका जीवन संबंधों की प्रयोगशाला होता है। उसे अपने

मानसिक कद के अनुरूप रिश्ते की तलाश निरंतर यत्नशील रखती है। उसकी इस यत्नशीलता को दुनिया कभी अय्याशी, कभी चरित्रहीनता तो कभी समाजद्रोह कहती है, लेकिन उसकी यह तलाश दरअसल दांपत्य के वर्तमान घुटन भरे परिवेश से मुक्ति और खुले हवादार रिश्तों के निर्माण की एक रचनात्मक प्रक्रिया होती है। कहानी या उपन्यास की अपेक्षा आत्मकथा लेखन में हम इस सच्चाई को ज्यादा गहराई से जान और समझ सकते हैं।

'कस्तूरी कुण्डल बसै' के संदर्भ में यही बात स्पष्ट करते हुए अमरीक सिंह दीप कहते हैं कि–''तीन सौ बत्तीस पृष्ठों और नौ प्रसंग–क्रमों में फैली इस आत्मकथा में स्त्री के अंतर्जगत के कई ऐसे अछूते स्थलों, कई ऐसे गुप्त गृहों और उनमें रखे बक्से, 'पिटारियों और पोटलियों' से पाठक का साक्षात्कार होता है जहां अभी तक कोई कोलंबस नहीं पहुँचा। कुल मिलाकर यह आत्मकथा लेखिका द्वारा पाठकों की अदालत में उठाई गई सच की शपथ पर पूरी तरह से खरी उतरती है। क्योंकि इसमें लेखिका ने अपनी कमजोरियों से जमकर मुठभेड़ की है।''[26]

लेखिका की आत्मकथा के दूसरे खंड 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में उन्होंने अपनी किशोरावस्था, वैवाहिक जीवन और लेखक बनने की कथा लिखी है। बचपन में ही प्रेम किया। प्रेम से उल्लासित हुई। प्रेम का दुःख भी झेला और बेवफाई का दर्द सहा। जब पढ़ने के लिए गुरुकुल गईं, तो वहां उन्होंने देखा कि पढ़नेवाले लड़कों से कई–कई गुना खतरनाक शिक्षक और प्रिंसपल थे। वे पी.एच.डी. करना चाहती थीं, पर कर न पाईं। लेखिका इसमें पुरूष के स्त्रीविरोधी विचार, घर परिवार और दांपत्य के अन्यायों को न सिर्फ दर्ज करती नजर आती है बल्कि अपने तरीके से किए मुखालफ़त का वर्णन भी करती है। उन्होंने विवाह इसलिए किया कि एक पुरूष साथी मिलने से उन्हें सुरक्षा का वातावरण मिलेगा। विवाह स्त्री की युवा उम्र को सुरक्षा देता है। लेकिन धीरे–धीरे उन्हें विवाह संस्था से विरक्त होने लगत है। उन्होंने कलम थाम ली। लिखकर उन्होंने पाया कि वे तथाकथित सामाजिक व्यवस्था से खुद को मुक्त कर रही हैं।

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा सामाजिक मूल्यों में हस्तक्षेप करती है तो कहीं उसके समर्थन की मुद्रा में खड़ी हो जाती है। आत्मकथा के बहाने इन्होंने नए मूल्यों को गढ़ा हैं। लेखिका उन्हीं मूल्यों को स्वीकार करती है, जो वर्तमान संदर्भों में भी प्रासंगिक हों। आधुनिक

युग के समाज में मूल्य परिवर्तन की प्रक्रिया गुजर रही है। इस मूल्य प्रक्रिया में व्यक्ति की चेतना ही कार्य करती है। व्यक्ति के शिक्षित तथा प्रबुद्ध होने पर समाज का विकास होता है, जिससे जीवन–मूल्य निरंतर विकसित होते रहते हैं। आज के वैज्ञानिक तथा तकनीकी और औद्योगिक विकास के युग में मूल्य विकास की प्रक्रिया में यांत्रिक सभ्यता का विशेष हाथ है। प्रत्येक वस्तु का वैज्ञानिक परीक्षण होने के कारण भावात्मक संबंध तथा मूल्य टूटने लगे हैं। मूल्य विज्ञान की सीमा से परे नहीं समझे जा सकते हैं क्योंकि मूल्यों का उद्‌भव तथ्य या सद्‌वस्तु से होता है, जो विज्ञान का परिचायक है। सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के कारण ये मूल्य विकसित होते रहते हैं।

नारी को गुलाम बनाने वाले मूल्य शनैः शनैः सामाजिक मूल्यों में सम्मिलित होते चले गये। नारी को प्रकृति और पुरूष को संस्कृति के संदर्भ में देखे जाने की प्रवृत्ति है। इसलिए मैत्रेयी पुष्पा को ''पहला और बुनियादी रोड़ा मिलता है संस्कारों के रूप में। सभी संस्कार नहीं अपितु वे संस्कार जो अपना स्वरूप गवां चुके हैं, वीभत्स बन चुके हैं और समाज में सड़े–गले विचारों की दुर्गन्ध फैलाते रहते हैं।''[27] रामचंद्र ओझा के अनुसार स्त्री पर थोपा हुआ मूल्य है कि–''स्त्रियों को प्रकृति की संज्ञा देने का खेल मूल्य बोध और सामाजिक मानदंडों का है। जैसे हमारे मूल्यबोध और मानदंड होंगे उसी अनुरूप हमारा समाज होगा।....जब स्त्रियाँ पुरूषों के लिए व्रत रखने लगें तथा पति सेवा मूल्य पर आदर्श बन जाए तो हुक्मपरस्ती का शाश्वत रूप धारण करना स्वाभाविक है।''[28] किन्तु स्त्री चूँकि चेतन है अतः वह प्रकृति के समान नहीं हो सकती, कारण प्रकृति में भाव–बोध का न होना। नारी पर सामाजिक मूल्य का यह आरोप उसमें चेतना का प्रस्फुटन नहीं कर पाता। समय का बदलता चक्र और नारी की समग्र शक्ति उसकी चेतना के प्रस्फुटन का कारण बन गई।

मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी आत्मकथा वास्तव में समाज को परिवर्तन करने के उद्देश्य से लिखा है। 'कस्तुरी कुंडल बसै' स्त्री के हक में कस्तूरी और मैत्रेयी का अविश्रांत युद्ध है। दूसरा भाग ''गुड़िया भीतर गुड़िया सभ्यता में निहित असभ्यताओं का एक ऐसा दर्दनाक दस्तावेज है, जिसके पन्ने सदाचार के खून से लाल हैं, लेकिन जिसकी लाली (मैत्रेयी पुष्पा) एक नए सूर्योदय की अरुणिमा की ओर इशारा करती है''[29] स्त्री को अपने 'स्व' को स्थापित करने के लिए इस समाज से लड़ना होगा। लेखिका की आत्मकथा समाज को यही संदेश देती

है। इनकी आत्मकथा मूल्यों की नहीं बल्कि जीवन मूल्यों की बात करती है। ऐसे मूल्य, जो जीवन को गतिशीलता दे, न कि उसे जड़ बनाएँ। वे इस आत्मकथा में ऐसे ही मूल्यों के स्वीकार और अस्वीकार के प्रश्नों से उलझती हैं– उनकी आत्मकथा में सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, साहित्यिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक मूल्य के रूप को देखा जा सकता है।

5.7.1 सामाजिक :

सामाजिक मूल्यों के अंतर्गत प्रेम, समाज सेवाभाव, कल्याण, मानवता, त्याग, जनहित की भावना, मैत्री आदि आते हैं। ये समस्त जीवन मूल्य हमें सामूहिक जीवन पद्धति, परंपरा, रीतिरिवाज तथा व्यवस्था में प्राप्त होते रहते हैं। सामाजिक मूल्य केवल व्यक्ति तक ही अवरूद्ध न होकर समाज तथा राष्ट्र की सीमा को गतिशीलता प्रादान करते हैं। इन मूल्यों में मानवीय कार्यकलाप, संवेग, आदर्श तथा मानवता के व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। अतः कहा जा सकता है कि सामाजिक मूल्य एक मानदंड होते हैं, जो समाज के प्राणियों की इच्छाओं, संवेदनाओं, आवश्यक्ताओं व अभिरूचियों को प्रभावित करते हैं। एक व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण व विकास समाज से कट कर नहीं हो सकता है इसलिए वह समाज से शिष्टाचार तथा सामाजिक मान्यताओं को ग्रहण करता है और अपने दायित्व का पालन करता है। इसलिए अनिवार्य रूप से ग्रहणीय है।

यह बात सच है कि 'सामाजिक मूल्य' शब्द उन नियमों को परिभाषित करता है, जिन्हें मनुष्य जीवन के हित में रखा जाता है। समाज ने जो नियम बनाए हैं, वे सभी ऐसे व्यवहारगत नहीं हैं, जो प्रत्येक मनुष्य के लिए सुखदायी या कल्याणकारी हों। समाज द्वारा निर्धारित मूल्य मनुष्य–जीवन के अनुकूल भी हो सकते हैं और प्रतिकूल भी। मैत्रेयी पुष्पा समाज के उन नियमों को बदलना चाहती हैं, जो स्त्री को एक सजी–सँवरी गुड़िया मानते हैं। लेखिका की आत्मकथा एक स्त्री की कथा भर नहीं, बल्कि बंधनों और वर्जनाओं से जूझती एक स्त्री का आत्मीय संवाद भी है।

'कस्तूरी कुंडल बसै' की प्रमुख जटिलता माँ और बेटी का प्रतिपक्ष है। यह अजब विरोधाभास है कि दोनों पक्षों का निर्धारण पुरूष वर्चस्ववाद की प्रतिक्रिया का ही परिणाम है, फिर भी दोनों एक दूसरे के आमने–सामने हैं। माँ और बेटी का यह मन मनोगत न होकर

जिस सामाजिक परिस्थितियों की देन है, मैत्रेयी पुष्पा उसका खुलासा बखूबी करती हैं। इस प्रक्रिया में वे माँ को भी खोलती है और स्वयं को भी। माँ और बेटी के अंतर्द्वन्द्व व टकराहट के कई आयाम हैं, यह टकराहट एक विधवा स्त्री और कुँआरी युवती के भिन्न स्त्री परिप्रेक्ष्य का भी है। ''बेटी के मन का सच माँ के मन का भी सच हो, यह जरूरी तो नहीं। दोनों स्त्रियाँ है फिर भी? दो उम्र भी तो हैं।''[30] स्त्रीत्व के नकार और स्वीकार का मसला भी यहाँ दरपेश है। स्त्री–देह को अनुपस्थित मानने के पाखंड के विरूद्ध यहाँ देह चेतना का विमर्श भी उपस्थित है। युवा होती मैत्रेयी में अदम्य आकांक्षाओं का स्रोत कहाँ से फूटता है कि मन थमता नहीं, चाहे जितनी लगाम खींचो! आठ सौ चांदी के सिक्कों में बिककर पति के घर वालों द्वारा 'खरीदी हुई घोड़ी' का दर्जा दिए जाने के बाद स्वयं कस्तूरी को असमय वैधव्य की यातना से गुजरना पड़ता है। कस्तूरी देवी गौरा से कहती हैं–''हम विधवा हैं तब क्या प्यार–प्रीत की बातें नहीं जानते? इस रास्ते जाना मना है, पर बचने के लिए भी तो इन्हीं गलियों से गुजरना पड़ता है। वहाँ होकर गुजरने और बचने में अंतर कितना है?''[31]

कस्तूरी और गौरा की सच्ची साथिन होने के देह रहस्य का खुलासा करके मैत्रेयी पुष्पा विधवा जीवन के उस पाखंड को भेदती है, जहां देह की उपस्थित पर कड़ा पहरा है। विधवा के जीवन में देह के दमन तथा देह की उपस्थिति के इस द्वन्द्व पर लेखिका प्रश्न करती है–''विधवा को प्यास नहीं लगनी चाहिए तो क्या लगती भी नहीं? भूख–प्यास अच्छे कपड़ों की ललक सब निषेध है। निषेध तोड़ने की इच्छा नहीं हुई?''[32] वैधव्य की वर्जनाओं को तोड़ती माँ को बेटी के देह –मन पर पहरेदारी के अधिकार से तो वंचित होना ही था। माँ और बेटी के बीच रही–सही पर्देदारी भी तब टूट जाती है, जब नंद किशोर के साथ प्रणयलीन मैत्रेयी की माँ और गौरा से आमना सामना होने पर वह गौरा की हैसियत का आकलन 'माँ की रंडी' के रूप में करती है कि ''राँड लुगाई, बच्चा बन्धन लगता है। आजाद बछेड़ी गौरा के संग मौज कर रही है। खसम–लुगाई हो गई दोनों.... माताजी की खाट से उसे गौरा ही उठाकर दूसरी खाट पर डाल देती थी। नींद टूटने पर दिखता कि उसकी जगह गौरा माताजी के संग सो रही है। मैत्रेयी के छोटे से सीने में गौरा साँपिन बनकर रोज उतरने लगी।''[33]

यहाँ माँ और बेटी दोनों का खोला गया है तो कहना न होगा कि एक स्त्री लेखिका के लिए यह एक अतिरिक्त साहस के बिना संभव नहीं। इस संदर्भ में वीरेंद्रय ादव का कहना हैं

किं –''दरअसल कस्तूरी और मैत्रेयी का यह टकराव माँ और बेटी का टकराव नहोकर दो स्त्रियों की अस्मिता का टकराव है।''[34] यहाँ विधवा माँ के प्रसंग के द्वारा लेखिका व्यक्तित्व के उस अंतर्विरोध को भी उजागर करती है जो पुरूष सत्ता द्वारा प्रदत्त विधवा इयत्ता के प्रति तो अपना आक्रोश व्यक्त करती है, लेकिन विधवा जीवन की सारी कठोरताओं को अपने व्यक्तित्व में आंतरिक्त कर लेती है। विधवा जीवन के नियमों को माँ तोड़ती है। वह चीख–चीख कर कहती हैं कि नारी कोई वस्तु नहीं बल्कि जीति–जागती इंसान है। परंपरागत मूल्य को बदलने के लिए जी–जान से लड़ती है जिसके तहत स्त्री को देह के घेरे में कैद कर उपेक्षा भरी निगाहों से देखा जाता है। यहां परिस्थितियाँ महत्वपूर्ण हैं, जहाँ स्त्री समलैंगिकता का मार्ग अपनाने को बाध्य है।

यहां इस संदर्भ में गीतांजलि श्री का उपन्यास 'तिरोहित' है, ''कठगुलाब (मृदुला गर्ग)में अगर मर्द–औरत के बीच का रिश्ता शोषक–शोषित का रिश्ता है, तो क्या उसका विकल्प लैस्बियनिज्म है। तिरोहित जो सामाजिक संदर्भ प्रदान करती है, वह कई दृष्टियों से मौलिक व महत्वपूर्ण है''[35] कस्तूरी की यौनाकांक्षा के माध्यम से लेखिका एक नया विमर्श खड़ा करती है। स्त्री को अपने–अपने जीवन के मानदंड तय करने का पूरा अधिकार होना चहिए।

समाज में रहते हुए लेखिका पुरूष विरोधी नहीं है बल्कि पुरूष दृष्टि का विरोध करती है। परिवार में तो कस्तूरी के ससुर, दादा चिमन सिंह और मैत्रेयी पुष्पा के पति डॉक्टर साहब ऐसे ही सहयोगी हैं, जो कस्तूरी और मैत्रेयी की बराबर मदद करते रहते हैं। कस्तूरी अपनी बेटी को अपने ससुर की मदद के बारे में समझाती है–''तेरे बाबा मेरे पिता तो नहीं थे, मगर पिता की तरह कवच थे। तेरे बाप के मरने के बाद मैंने हिम्मत नहीं हारी, क्योंकि उन्होंने हिम्मत साधी थी। मैं रोती न थी, मरने की बात सोचती थी। जिन्दगी से मोह छोड़ देनेवाले को संतान का, घर का और दुनिया का मोह क्या होगा? तेरे बाबा अनपढ़ थे, पर थे अकल के पुतले। क्या कहकर मोह जगाया– अरी कस्तूरी, मरना था तो हीरा की चिता से चढ़कर मर जाना था, लोग तुझे सती कहते। अब तो कहेंगे कायर। बेटी के पालन–पोषण और पति के लिए हुए कर्ज से मुँह छिपाकर भागनेवाली डरपोक। मौत के साए में चाल–चलन पर भी शंका करेंगे, क्योंकि तू औरत है।''[36] मैत्रेयी पुष्पा के पति–विवाह के समय 'खांड–कटोरा' प्रसंग पर डाक्टर, पत्नी का साथ देते हैं, अपने घरवालों का नहीं। कस्तूरी देवी और मैत्रेयी पुष्पा दोनों

भी पुरूषों के सहयोग से अपना विकास करती हैं। यहाँ लेखिका की दृष्टि पुरूष विरोधी नहीं, बल्कि सहयोग की माँग करती है। अतः उनका स्त्री विमर्श भी पुरूष विरोधी नहीं बल्कि सहयोगी है।

मैत्रेयी पुष्पा विवाह की समानता चाहती हैं। दरअसल लेखिका असुरक्षा, असुविधा और दर–दर भागते ही रहने की नियत से छुटकारा पाने के लिए ही शायदविवाह करती है या अन्य कारणों के अलावा विवाह का एक अहं कारण यह भी था। वे यह प्रश्न करती हैं कि– विवाह स्त्री–पुरूष के काम–संबंधों का अगर एक मर्यादाशील समानुबंधन है तो फिर पुरूष के लिए इतने चोर दरवाजे यहाँ कैसे खुले हुए हैं? लेखिका कहती हैं ''मैं तो पहले ही माँ के सपनों को रौंदती हुई वैवाहिक जीवन चुनकर खुद उनसे अलग हुई थी। मक़सद भी साफ था, एक पुरूष साथी मिलने से मेरे रात–दिन सुरक्षित हो जाएंगे।''[37] लेकिन विवाह उनके लिए विरक्ति का कारण बन जाता है और बंधन लगने लगते है। स्त्री द्वारा अपने ब्याह की बात करना न केवल लज्जाजनक है, बल्कि अपराध भी माना जाता है। लेखिका समाज के इनपुराने नियमों में बदलाव लाना चाहती और अपने ब्याह की बात खुद करती है। यहां मुद्दा समानता और सहभागिता का है। ब्याह में दहेज के बदले में योग्यता को महत्ता देना, समाज के नये बिन्दु पर नियम बनता । लेखिका पत्नी के रूप में समर्पण करना जानती है, लेकिन तभी तक, जबतक उसकी भावनाओं का सम्मान, व व्यक्ति रूप में उसकी पहचान की जाए। समाज निर्धारित मूल्य, स्त्री के लिए 'समर्पण' के नए और व्यापक अर्थ को लेखिका हमारे सामने रखती है। उनके अनुसार 'समर्पण' का अर्थ स्त्री–पुरूष का एक दूसरे के प्रति सम्मान और सहयोग है। वे स्त्री को वस्तु के रूप देखने की मान्तया तोड़ देना चाहती हैं। जैसे पति उसकी इच्छा से उसके जीवन में आया ंतो प्रेम कर सकती है तो पुरूष क्यों नहीं कर सकता है? मैत्रेयी पुष्पा विवाह के बाद आधुनिक होड़ में गाँव की लड़की को पति अपने साथ पार्टी में ले जाते हैं तो वहां वह अपने जीवन मूल्य और सम्मान के रूप में दूसरे पुरूष सिद्धार्थ के साथ नाचती हैं बिना पति की अनुमति से कि–''मैं नाच रही थी किसी के साथ–साथ, अनगढ़ और आदिन सा नाच... जैसे मेरे जीवन मूल्य का हिस्सा यह भी हो। जब–जब मेरा पाँव डॉ. सिद्धार्थ के पाँव पर पड़ जाता है, वे मुस्कराकर मुझे सँभाल लेते।''[38]

लेखिका अपनी आत्मकथा के माध्यम से स्त्री की स्वतंत्रता जैसी इच्छा और अस्मिता जैसे नए मूल्यों को समाज के समक्ष खड़ा करती है। स्त्री के अस्तित्वहीन व्यक्तित्व को प्रमुख और निर्णायक व्यक्तित्व में बदलने के लिए वह समाज से लड़ती है। स्त्री को दोयम दर्जे में रखने की बात को लेकर प्रश्न करती है कि यह कैसा मूल्य है जहाँ स्त्री को बेटे की माँ होना अनिवार्य माना जाता है। स्त्री की पारिवारिक और सामाजिक स्थिति पुत्र के होने पर ही क्यों निर्भर करती है? बेटा वंशवृद्धि का कारक बन जाता है और बेटी कुलविनाश का प्रश्न। लेखिका ऐसे समाज के बने–बनाये मूल्यों का विरोध करती है और नये मूल्यों का और निर्माण करती है तीन बेटियों को दीक्षा के साथ डाक्टरनी बनाती है। समाज जिसे अपराध कहता है, उसके जीवन मूल्य समझ रही हैं। बेटे को जन्म न देने के कारण डॉक्टर को गाँव वालों के व्दारा दूसरी शादी का इंतजाम करने केलिए कहने पर कस्तूरी देवी अपनी आवाज उठाती है कि–''मेरे दामाद का दूसरा ब्याह किसके भले में है? इसमें बुरा भी किसी का नहीं। मेरी लड़की मर नहीं गई।''[39] यहाँ लेखिका वैज्ञानिक बात को साबित कर सकती है लेकिन यहाँ परंपरा वंशावली को लेकर स्त्रियों का अन्याय ही होता रहा है। कस्तूरी देवी उस परंपरा मूल्य को तोड़ती हैं।

5.7.2 शैक्षणिक :

शैक्षणिक मूल्य मैत्रेयी पुष्पा अपनी माँ से ज्यादा प्राप्त करती हैं। कस्तूरी देवी पति के मर जाने के बाद जमीन–जायदाद के साथ असमर्थ वृद्ध ससुर तथा नन्हीं–सी बेटी। और परंपराओं के साथ अशिक्षा और पिछड़ेपन के डर में रहने लगती है। देश के नेताओं की आवाज कस्तूरी को सुनाई पड़ती है–स्त्री शिक्षा। कस्तूरी को पढ़ने जाने के लिए ससुर बहू की हर तरफ से मदद किये थे। जिस गाँव के लड़के ढाई कोस दूर की पाठशाला न जा सके वहाँ पढ़ने चली कस्तूरी! यह कांटों की राह थी। रिश्ते, पड़ोस के ताने मिले। छोटी बच्ची को छोड़कर सुबह से निकल कर रात तक आना, तन मन का परिश्रम, कष्ट, यंत्रणा... राह में रोड़े बनना चाहते थे, मगर कस्तूरी का साहस था या दुस्साहस कि कंटकाकीर्ण कंटक गैल को पार कर शिक्षारत्न हस्तगत कर लिया। पढ़ाई के लिए की गई इग्लास तक की दौड़–भाग रंग लाई और कस्तूरी की ग्राम्य विकास खंड में नौकरी लग गई।

एक स्त्री के लिए शिक्षा प्राप्त करना कितना कठिन और संघर्ष से भरा होता है मैत्रेयी पुष्पा उसे बखूबी सामने रखती हैं। परंपरा तो यही कहती है कि स्त्री अपना जीवन चूल्हे–चौके में ही खपा दे। समाज में आमतौर पर ज्ञान का अधिकारी पुरूष है, स्त्री इस क्षेत्र से कोसों दूर है। कस्तूरी और मैत्रेयी पुष्पा इस चली आ रही परंपरा को तोड़कर समाज के सामने अपने साहस का परिचय देकर शिक्षा के प्रश्न को नए संदर्भों से जोड़ती हैं।

जमाने की अजब चाल है कि जो औरत जात की इस कुढंगी चाल से क्षुब्ध है, आज कस्तूरी के घर उसे बधाई देने जुट रहा है। कस्तूरी इन सबको प्रणाम करती हैं, क्योंकि ये लोग उनके आदरणीय हैं। ये इल्म के केंद्र में आए हैं। ''ससुर लाठी के सहारे एक ओर झुके खड़े थे। सबको द्वार आया देखकर चमत्कृत हुए। विभोर से बोले, देख लो, बनवारी लाल, भगवानदास, हमारा बेटा कैसा था! दुख देता रहा, बस। बहू के हाथों सुख मिलेगा, कौन जानता था''[40] नौकरी लगी कस्तूरी की, परिवार सहित गांव समाज का मान बढ़ा, किन्तु नन्हीं मैत्रेयी की अनकही मुश्किलें भी बढ़ीं।

आत्मकथा में पढ़ाई के मूल्य प्रमुखता के बारे में कस्तूरी कहती हैं–''शिक्षित दुनिया का रहस्य क्या है, उसकी निरंतरता की शर्त क्या है? प्रगति की खुशनुमा के पंख लगाकर गौरा जैसी औरतें उड़ना सीख रही हैं। बदलाव का बसर इस दुनिया से संभाल रही हैं''[41]पढ़ाई की परंपरा घर संभालने तक नहीं बल्कि प्रगति मार्ग है। और शादी के बाद अपनी बेटी को पढ़ाई जारी रखने की सलाह देती है कि–''बच्चे देने की मशीन में तब्दील हो जाना है तुम्हें। जिन्दगी भर सिर नहीं उठा पाओगी। बच्चे का पालन और पति की खिदमत, यही तो स्त्री–धर्म माना गया है। तुम्हारी शिक्षा का यही मतलब निकलता है तो फिर इस मोहल्ले की अनपढ़ औरतें क्या बुरी है? उम्मीद थी कि तुम यहां की अनपढ़ स्त्रियों को उनकी दशा के प्रति सचेत करोगी। औरत की बात औरत जल्दी समझ सकती है न?''[42]

5.7.3 आर्थिक :

मैत्रेयी पुष्पा एक ओर परंपरागत रीति–रिवाजों और शोषण से उबरने की बात करती हैं, वहीं दूसरी ओर आत्मनिर्भरता आर्थिक स्वावलंबी चेतना का प्रबल समर्थन भी करती हैं। कस्तूरी देवी अपने पति की मृत्यु पर रोती नहीं है, बल्कि उसे तो अपने भविष्य की चिंता है कि कैसे

विकास किया जाए? सिकुर्रा वासियों का नजरिया धीरे–धीरे बदलने लगता है, जब कस्तूरी को नौकरी मिल जाती है। सरकारी सर्विस पाते ही गाँव में वाहवाही होने लगी, जिस पर कस्तूरी नाम की स्त्री खुश ही नहीं हो रही थी, बल्कि कह रही थी कि–''पढ़ने जाना लोगों की आँखों में कैसा खटकता था नौकरी मिलना उन्हीं लोगों को नियामत लग रहा है, क्योंकि यह आना–जाना पैसे से बँधा है।''[43]

फिर कामकाजी औरत के साथ जो मुश्किलें थीं वे सब कस्तूरी के साथ भी थीं कि बेटी को पोषण के अतिरिक्त अपनी अंतरंग आत्मीयता शायद ही नहीं दे पायी थीं। बाबा की मृत्यु के बाद बच्ची अकेली हो जाती है। गाँवों में नौकरी करनेवाली माँ बेटी को पढ़ाई के लिए दूसरों के घरों में अनाज और धन देकर रखती है तो वे लोग लड़की द्वारा बालश्रम करवाते हैं। वह युवा और वृद्ध जैसे धूर्त पुरूषों की नोचा–खसोटी से जूझती रही हैं। बचपन में यह यातना काल था। अंत में चिमन सिंह, वे यहाँ गई तो आज भी उस घर से नाता रिश्ता बना हुआ था। कस्तूरी पढ़ी–लिखी औरत है फिर भी बेटी की लड़कों से बात करना उसे पसंद नहीं है, सिनिमा देखना पाप है उनकी नजर में। बेटी को पढ़ा–लिखाकर नौकरी कराना चाहती है, इसलिए वह इंतजाम भी करती है, लेकिन बेटी नौकरी की नहीं शादी करने की स्पष्ट घोषणा कर चुकी है।

कस्तूरी देवीप्रगतिशील विचार वाली औरत है। 'दहेज समाज का कोढ़ है', 'विवाह पाँवों की बेड़ी है' समझाने वाली है। वर खरीदें या बेचें, मर्दों की सहायता ही करते हैं। ऐसा तो जानवर भी नहीं करता। हमारे कुटुंबों का ऐसा ही विधान है कि लड़की के माता–पिता को लूटकर भी उसे संपत्ति में शामिल नहीं करते। ऐसे पाठ पढ़ाते हुए बेटी को 'पढ़ो, सोचो और अपने पाँव खड़ी हो जाओ' समझाती माँ का पाठ बेटी के लिए झूठा है। बेटी नौकरी करने के लिए इच्छुक नहीं बल्कि विवाह गृहस्थी चाहती है। माँ और उनकी साथी गौरा साथ रहते हुए अलीगढ़ में घर बनाकर, नौकरी करती रहीं ''इन दोनों के सर्टिफिकेट में उम्र कम लिखी थी, अब तक नौकरी करती रही। बुढ़ापा तो तब आता जब उन्हें बूढ़े होने की फुरसत मिलती।''[44]

लेखिका के पति भी उनकी माँ की तरह हैं। एक बार गुस्सा होकर पत्नी की लिखी उपन्यास की पांडुलिपि के कागज चिन्दी–चिन्दी घर में उड़ा दये थे, और मैत्रेयी पुष्पा रो रही थीं। इस संघटना को फोन पर माँ से कहने से माँ फोन पर कुछ नहीं कहा पत्र लिखा कि

''तुमने जो कुछ फोन पर कहा, सुनकर मुझे बहुत दुख हुआ। गलती तो लाली वहीं हुई, जहाँ तूने नौकरी नहीं की। नेता ही बन जाती, अपने गाँव की प्रधान होती। गाँव के लोगों का विश्वास है कि तू किसी भी तरह अन्याय नहीं करेगी। मैंने तुझे ए.डी.ओ. (डब्लू) बनाना चाहा, नहीं बनी, बस कवि बन गई। इससे किसका भला होगा। तू कुछ कमाती तो पति तेरी वैल्यू समझता। आदमी को रूपया–पैसा औरत से भी ज्यादा प्यारा होता है।''[45]

लेखिका आत्मकथा में स्त्री के आर्थिक मूल्य का पतन होता दिखता है। शोषण के इस तंत्र में सामान्य जन पिस रहा है। अंग्रेजों के जाने के बावजूद समाज में स्त्री का शोषण करने वाले जमींदारों का चित्रण आज भी प्रासंगिक है। लगान वसूली का चित्रण आत्मकथा को वर्तमान समय से सीधे जोड़ देता है। साधनहीनता होते हुए भी कस्तूरी अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति से अपने परिवार की जिम्मेदारी अपने कंधों पर लेती है। कस्तूरी देवी पति मरने के बाद जिन्दगी से मोह छोड़ देने की और मर जाने की बात सोचती है तो उनके ससुर कहते हैं–''ऐसा खोटा समय तुझ पर ही नहीं, मुझ पर भी आया था, जब हीरा (कस्तूरी के पति) की माँ मरी थी। दुधमुँह बच्चा मेरे पास था। मगर माँ का दूध न था। रोकर आँसू तो नहीं पिला सकता था उसे। और न भागकर भगवान भरोसे छोड़ सकता था। जीना, मरने से ज्यादा मुश्किल है और मुश्किलों से निकलना आदमी ही जानता है। तू तो दिलेरी और बुद्धिमानी, दोनों की मालकिन है।''[46]

मरने वाला जवान बेटे का बूढ़ा, अपाहिज बाप जिस दमखम से खड़ा था कि कस्तूरी को अपने ऊपर शर्म आई। उसी दिन ठान लिया ' मरना है तो दूसरों का कर्जा उतारकर मरो' ताकि बेटी से कोई यह न कहे कि उसके माँ बाप बेईमान थे, कि उसके ऊपर कर्ज बरकरार है।इस आत्मकथा में ''भारत के अस्सी प्रतिशत हिस्से में से एक ग्रम्यांचल की कथा है, जहाँ विकास शैशवास्था में है। मगर यह भी क्या अजब है कि उस समय सभ्यतानुशासित नगरों के स्त्री समुदाय में वह कूवत न आ सकी, जो पिछड़े क्षेत्र की एक महिला ने इच्छाशक्ति के चलते हासिल कर ली थी। इतनी कूवत कि स्वंय भी संभली और औरों को रास्ता सुझाया तथा आजीविका दिलवाई।''[47]

कस्तूरी देवी चाहती थीं कि अपनी बेटी को पढ़ा–लिखाकर नौकरी दिला दे। उन दिनों बी.ए. पास करनेवालों को बहुत नौकरियाँ थीं। मगर बेटी बी.ए. पढ़ते समय ही समाज में

सुरक्षित रहने के वास्ते शादी करने के लिए तैयार होती है तो माँ बहुत ही दुःख में डूब जाती है और सोचती है कि ''इस लड़की को ऊँची शिक्षा दिलाकर अफसर बनाने की साध थी उनकी। सोचा था एक दिन मैत्रेयी उनके तथा उन जैसियों के साथ कदम–दर–कदम चलकर प्रशासनिक व्यवस्था से उन तमाम गड़बडियों को उखाड़ फेंकेगी जो जूझती, आगे बढ़ती और रूकावटों के कारण गिरती औरतों की टोली से सहज सामान्य जीवन जीने का हक छीनती रहती हैं। वह स्त्री के सशक्तिकरण की मशाल अपने हाथ लेलेगी। लोग कहेंगे, कस्तूरी माँ के रूप में धन्य है। जीवन–संघर्ष का मतलब होता है, जीवन–दर–जीवन संघर्ष।...लेकिन आदमी का मन चीता हो भी जाए, यह जरूरी तो नहीं।''[48]

5.7.4 राजनीतिक :

आत्मकथा में लेखिका स्त्री का राजनीतिक सशक्तिकरण भी दिखाती है। अंग्रेजों के जाने के बावजूद स्त्री का शोषण करने वाले जमींदारों का चित्रण आज भी प्रासंगिक है।'लगान वसूली' आत्मकथा को वर्तमान समय से सीधे जोड़ देता है। दुःख काल में जब कस्तूरी देवी पति हीरा लाल के मरने के बाद कर्ज काम लायक पढ़–लिखकर उस शोषण से छूट पाती है।

इस प्रकार लेखिका एक स्त्री की राजनीतिक सक्रियता के मुद्दे को भी उठाती है, साथ ही देश के राजनीतिक दाव–पेंच और शासन–व्यवस्था की पोल को काफी हद तक खोल देती हैं। मुख्यमंत्री द्वारा कस्तूरी देवी के पद और उसके आंदोलन को खत्म कर उसे जेल में बंदकरने संबंधी प्रसंग एक स्त्री के सच को हमारे सामने लाता है। स्त्री को औरत जात कहकर बहलाने की बात की जाती है, लेकिन कस्तूरी देवी समाज और शासन व्यवस्था की इन झूठी बातों में नहीं आती है। कस्तूरी देवी तो जीवन में बचपन से ही हरेक विषय में संघर्ष कर परंपरा की दृष्टि को नकारती हुई आई और उनकी कथा संघर्ष की कथा जहाँ आत्मकथा उत्तराधिकार या दायित्व निर्वाह के हस्तांतरण की कथा भी है जिस स्त्री मुक्ति संघर्ष को कस्तूरी देवी ने आजीवन जारी रखा, आज वही बिगुल मैत्रेयी पुष्पा के लेखन में हैं।

ग्रामीण सेविकाओं की सर्विस खत्म करने की बात को लेकर मुख्यमंत्री कहते हैं, औरतों को मूर्ख, नादान और कमजोर मानकर कि ''औरतों का दफ्तरों में, रूरल डेवलपमेंट डिपार्टमेंट में क्या काम? चलो मास्टरनी, नर्स, मिडवाइफ़ या जनानी डॉक्टर हो जाओ। नहीं तो घर में

रहो। घरेलू काम कौन करेगा? बच्चे कौन पालेगा?''[49] यह सुनते ही कस्तूरी देवी सरकार के विरोध में नौकरी बचाने के कोशिश में साथियों के साथ धरने पर बैठी है। और बेटी से कहती हैं–''अरे हम ऐसे ही लड़ेंगे, जैसे इनके साथ मिलकर अंगरेजों से लड़े थे। इन्हें याद तो है न? यह कहो कि हम ही भूल गए थे कि ये हमारे फिरंगी हैं। हम हक की बात कहें तो ये लाठियाँ चलाते हैं। हमारे कपड़े फाड़कर हमें नंगे करते हैं। हवालातों में कुकर्म करने में हिचकिचाते नहीं। सच मानों फिरंगियों ने इतने जुल्म नहीं ढाए थे। चलो जुल्म ढाओ फिर भी हम लड़ेंगे। बेशक तुम हमारी देह को हमारी नहीं समझते तो फिर कोई इतना बता दे कि इस संसार में हमारा है क्या?लाली न जमीन, न जल, न हवा, न इज्जत, न आबरू! सब हमारे आसपास घिरे मर्दों का है। जब चाहें बख्श दें, जब चाहें उतार लें। पर हम फिर भी लड़ेंगे अपनी जान के लिए।''[50]

ऐसी स्थिति में धरने पर बैठनेवालों को षड़यंत्र से अस्पताल में दाखिल करने पर वहाँ नर्स व्दारा दी हुई गए दवाओं को खाने इन्कार करते हुए अपनी बेटी से कहती हैं कि ''लाली तू तो यह बता कि देश आजाद किसने मान लिया? औरतों की आजादी तो गुलाम पड़ी है। बस मर्दों का आजाद होना देश का आजाद होना है? स्वतंत्रता कब आएगी? वे तो तुमने भी गायों की तरह लाठियों से हाँक दी और खूँटों से बाँध दीं। अब उनका रस्सा कौन खोले?''[51]

5.7.5 सांस्कृतिक :

आत्मकथा कस्तूरी कुन्डल बसै में संस्कार, रीति रिवाजों के नाम पर जो आडंबर में खर्चा होता है, उसे लेखिका और उनकी माँ कस्तूरी देवी दोनों ध्वस्त कर देना चाहती हैं। इन संदर्भों में स्त्री शोषण को समाप्त करना चाहती हैं। अकेली बेटी की शादी में रीति–रस्म के नाम पर गाँव के सेठ–साहूकार रकम देकर ब्याज के चंगुल में उसे फँसाना चाहते हैं लेकिन वह आडंबर को नकारती है। समाज के लिए मिसाल बनकर सामने आती है। रीति–रिवाजों की जिस खरीद–फरोख्त से वह गुजरी थी, अपनी बेटी को उस रास्ते से नहीं गुजारना चाहती।

लेखिका भी जीवन के अपनी पढ़ाई काल में सीधा–साधा रहती थीं। जैसे कि–''चिकनी उजली साँवली लड़कियों का रंग–बिरंग चमकदार रेशमी समूह और मैत्रेयी खुरदरे कपड़े पहने

गँवई रूप की लड़की। कॉलेज में बदरंग धब्बे–सी कहाँ से आ गई? देखते ही लड़कियाँ नाक–भौंह सिकोड़ती। देखादेखी करनेवाली राजकुमारी भी पास से गुजर जाती। निकटता की किसी से उम्मीद नहीं थी। माहौल कंटीला–सा था।''[52]शादी के बाद आधुनिक पति के कारण आधुनिक स्त्री होने के लिए प्रयत्न करती है पार्टी में भी जाती है तो वहां अपमानित हो जाती है, और कहती है कि–''मैं शहरी और आधुनिक औरत नहीं बन सकती.... क्योंकि मेकअप मेरे बस का नहीं''[53] लेखिका इस बात को लेकर दुःख करती हैं और इसे इज्जत बढ़ाने की दौड़ में इज्जत उतर जाना कहती है। इसे वह एक तरह से सजा के रूप में महसूस करती थीं।

पति के प्रति प्यार, सेवा दिखाने के लिए स्त्रियों को संस्कृति के नाम पर हमारे समाज ने कुछ त्योहार व्रत निश्चित किया हैं। लेखिका पति की दीर्घायु के लिए करवाचौथ त्योहार में निर्जल उपवास पूरा दिन लेती है। वहीं मुसलमानों की स्त्रियाँ तो पति के लिए उपवास नहीं बल्कि हरेक सेवा करने के लिए हाजिर रहती हैं ऐसा प्यार और समर्पण है जहां करवाचौथ का चेहरा छोटा हो जाता है। लेखिका कहती हैं–''हमें अपनी निष्ठा और प्रीति भरी वफादारी को भूखे रहकर निभाना होता है। करवाचौथ के साथ पति की उम्र का चक्कर तो बेकार लगा दिया है।''[54] इसके बाद मैत्रेयी पुष्पा पुत्र के लिए व्रत, उपवास करती है दो बेटियों को जन्म देने के बाद। क्योंकि सभ्य और आधुनिक समाज में भी सिर्फ लड़कियों के माता–पिता को अपने विकास वैभव के बाद भी निस्संतान की तरह देखे जाते हैं। ''सभ्यता.... आधुनिकता के रंगमंच पर होते रूढ़ियों भरे नाटक!''[55] यही भारतीय गृहस्थों का संस्कार जन्म से लेकर मृत्यु तक पुत्र और पिंडदान से बँधा है। लेकिन लेखिका की माँ इस रूढ़ि का विरोध करती है। कहती हैं– बेटा हो भी जाए तो उसमें तेरा अपना हिस्सा क्या होगा? वह तेरे पति का होगा। क्या इसलिए, ही तू हर साल अपनी देह की चीर–फाड़ के लिए तैयार हो जाती है? मैत्रेयी से बढ़कर उनकी माँ रूढ़ियों को तोड़ने, और विकास में आगे बढ़ने में कई बार आगे हैं। उनकी माँ कहती हैं चली आ रही परंपराओं, रीति–रिवाजों में नाइंसाफ है, चली आ रही रिवाजों का जखीरा उनके द्वार पर पड़ा है। ये लोग जिसे अपराध कहना चाहिए, उसे जीवन–मूल्य समझ रहे हैं।

5.7.6 साहित्यिक :

साहित्य के मूल्य तथा जीवन दर्शन समाज से अभिन्न होते हैं। वास्तव में मूल्य विहीन समाज का कोई महत्व ही नहीं होता है। क्योंकि जीवन मूल्य ही साहित्य और समाज का केंद्रित कर गति प्रदान करते हैं। साहित्य में मूल्य का नीतिपरक होना अनिवार्य नहीं है। क्योंकि अनैतिक लगने वाली घटना भी साहित्य में कभी–कभी मूल्यवान हो सकती है। इसका विवरण डॉ. धर्मवीर भारती के अनुसार–''साहित्य की महत्ता और सामाजिक उपयोगिता इसी में है कि वह हमारी चेतना में बहुत गहरे उतरकर हमारी वृत्तियों का संस्कार करता है, उन्हें एक उदात्तता, सामाजिकता प्रदान करता है। वह चाहे किसी भी संकीर्ण मतवाद का प्रचार करे या न करे, वह किसी भी तात्कालिक समस्या का स्पष्ट समाधान दे या न दे, किन्तु यदि उसमें वह शक्ति है कि वह हमारी वृत्तियों को सुसंस्कृत बनाता है तो वह साहित्य कल्याणकारी है।''[56]

लेखिका अपने वैवाहिक जीवन के सफल–खुशहाल होने के बाद अपनी तीन–बेटियों को डाक्टरनियाँ बनाती हैं तो बेटियाँ उन्हें लिखने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। वे परिवार में पति के लिए अच्छी गृहिणी और बेटियों के लिए अच्छी माँ और शिक्षिका थीं। कहानियाँ लिखकर छपवाने के लिए संपादकों पास जाती तो वहां पर शोषण के लिए द्वार खुल जाते हैं। इतने में स्त्री सहसंपादक मिलती है तो लेखिका खतरों से बच जाती है। उस स्त्री सहसंपादक को अपनी गॉडमदर मानती है। वे ही लेखिका को लेखन के प्रारंभ के दिनों में हर संकट से बचाती रहती थीं। गॉडमदर स्वयं कहानीकार हैं उस लेखन कार्य के लिए अच्छी–खासी नौकरी छोड़ दी थी, फणीश्वरनाथ रेणु का मार्ग अपनाया था, लौ लगन से रचनारत हुई। उनसे मैत्रेयी पुष्पा प्रभावित होती है। वे मैत्रेयी के लेखन को लेकर प्रोत्साहन देती हैं। लेखिका उनके बारे में स्वीकार करती हैं कि ''यह बात मैं आज भी स्वीकार करती हूँ कि रचनात्मक कुशलता में उनका योगदान हो कि न हो लेकिन मुझे साहित्यिक दुनिया का ज्ञान कराने में उनके अवदान का कोई सानी नहीं।''[57] वे मैत्रेयी पुष्पा को साहित्यिक ज्ञान बढ़ाने की सूचना देते हुए कहती हैं कि ''अज्ञानी आदमी खाता और सोता है, दाता के बड़प्पन पर निछावर रहता है, नहीं सोचता कि बड़प्पन किन छोटों की चमड़ी से खींचे हुए तारों की खूबसूरत बनावट से बनता है। उनमें से आप भी एक हैं।''[58]

वे जब भी संपादकों से मिलने जातीं तो पति के कार से जाती हैं। एक दिन कार बाहर लाने के बाद अपमानित भी होती है। और समझती है कि जीवन मूल्य सिर्फ पति के मान–सम्मान के लिए है। लिखने के बारे में डॉक्टर की आपत्ति समझती है–''आह! क्या समझाना चाहते हो मुझे? अब तक सह संपादक जी के दुश्मन बने हुए थे। अब गॉडमदर...। सोचो, अब तक तुम्हारी ही बातें समझती रही है और पच्चीस साल में निपट जाहिर होकर अपने पति की इमेज पर गौरव से फूल चढ़ाती रही, जैसे यही मेरे लिए जीवन–मूल्य हो।''[59] गॉडमदर के साथ संवाद में चर्चा यही चलती थी कि साहित्य में स्त्री की स्थिति में बदलाव की बेहद जरूरत है। गाँव में औरत के अपने दायरे कहाँ तक हैं, कहाँ तक नहीं, की पड़ताल होनी चाहिए। मेरे पास गाँवों के ही अनुभव हैं। इस प्रकार सोचकर वे अपने निजी जीवन के अनुभवों और अपने जीवन में देखे लोगों की कहानियाँ उन्हीं घटनाओं में लिखती चली गईं। उसके बाद मन्नू भंडारी से मुलाकात, तथा उनके द्वारा 'हंस' संपादक राजेन्द्र यादव का परिचय होता है। वे लेखिका के प्रतिभा समझे गये पहचानते हैं। लगातार सूचनाएं, सलाह देकर उनके लेखन के विकास के लिए कारण बन जाते हैं। आज भी लेखिका उनका आभार व्यक्त करती है। और इस में उनका एक नया व्यक्तित्व और मूल्यबोध भी सामने आता है।

स्त्री जब अपनी आत्मकथा या साहित्य लिख रही है तो वह निजी कथा के साथ स्त्री की सामाजिक कथा भी लिख रही होती है। अतः रचना स्त्रियों की समुदायिक व्यथा–कथा का रूप ग्रहण करती है। इनकी रचनाओं में समय के अनुसार सामाजिक स्थितियाँ, स्त्री नैतिकता के ताने बाने, बंधनों में छटपटाने, चारों ओर घेराबंदी आदि, हिन्दी भाषी औरतें, और कुल मिलाकर प्रत्येक भारतीय स्त्री की स्थिति है। इसके अलावा वह संस्कृति जो लेखिका जीना चाहती हैं और दूसरी संस्कृति है वह समाज जो उसे अपने तरीके से जिलाना चाहता है। समाज जिस संस्कृति में जी रहा है वह लेखिका या स्त्री के लिए समस्याएँ खड़ी कर रही है और मुश्किल पैदा कर रही है।

हमारा समाज स्त्री को सामाजिक निर्मिति न मानकर ईश्वर प्रदत्त मानते हैं। लेखिका चाहती हैं कि स्त्री को ईश्वर प्रदत्त न माना जाय। स्त्री के बारे में बनाए सभी कानूनों, मान्यताओं और संस्कारों को अपरिवर्तनीय स्वाभाविक अनिवार्य और अपरिहार्य न माना जाय। इस तरह इनके लेखन में एक तरफ पुराने रूप, स्वरूप, मूल्य और आदतें बनाए रखने का

दबाव और दूसरी ओर पुराने से मुक्त होने की छटपटाहट है। वे परंपरागत स्त्री जीवन को अनेक अंतःसंघर्षों के बीच विकसित करते हुए परंपरा से नये जीवन मूल्य दिलाती हैं।

5.8 विद्रोही स्वर :

मैत्रेयी पुष्पा पितृसत्ता द्वारा पोषित सती–सावित्री की इस परंपरा को ध्वस्त कर देना चाहती है। लेखिका और उनकी माँ को गाँव के समाज में धर्म, परंपरा, कर्तव्य, मर्यादा के नाम पर शोषित होना पड़ता है। ग्रामीण स्त्री के–जीवन के कड़वे–मीठे सच को लेखिका ने न केवल अपने पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया बल्कि अपने निजी अनुभवों को बेबाकी से आत्मकथा के द्वारा सबके सामने रखा।

इनके ऊपर आरोप भी है कि वे 'गँवार लेखिका' है। लेकिन उनके अंदर गंवाई–गंवार होने का जरा भी हीनता बोध नहीं, बल्कि गंवाई–गंवार होने का गर्व है–''शहरी स्त्रियों से पहले ग्रामीण औरत को अपनी गुलामी का अहसास हुआ है..... गुलामी के प्रति अहसास ही प्रतिरोध का आरंभ है।''[60] गाँव और शहर की महिलाओं का संघर्ष अलग–अलग है। गाँव की महिलाएँ अपनी अस्तित्व की लड़ाई लड़ती है जबकि शहर की महिलाओं का संघर्ष व्यक्तित्व के लिए है। इसमें शक नहीं है कि मैत्रेयी पुष्पा अपने आपको गंवाई–गंवार मान लेती हैं। लेखिका के विद्रोही स्वभाव को लेकर रोहिणी अग्रवाल कहती हैं कि ''सचमुच अपनी नायिकाओं से भी अधिक तेजस्वी, विद्रोहिणी और आवेगमयी है मैत्रेयी पुष्पा।''[61] लेखिका की रचनात्मक ईमानदारी को अपनी आत्मकथा की निजी घटनाओं के साथ तुलना करते हुए वीरेन्द्र यादव उन्हें सराहते हैं कि–''मैत्रेयी पुष्पा के लेखकीय व्यक्तित्व का सर्वाधिक साकारात्मक पहलू यह है कि वे जिस स्त्री–संस्कार को अपने लेखन में केन्द्रीयता प्रदान करती हैं, वह कमोबेश उनके अपने अनुभव संसार में शामिल रहा है। कभी–कभी अविश्वसनीय व अतार्किक कहे जाने की जोखिम उठाकर भी वे जिन स्त्री–पात्रों को रचती रही हैं, वे जिस खाद–बीज से निर्मित हुए हैं, उसका पता हमें उनके इस आत्मकथात्मक उपन्यास से मिलता है।''[62] उनके पास पत्र भी आते हैं,उपन्यास पढ़कर लिखनेवालों से कि''आदरणीय लेखिका जी, आपकी आत्मकथा आ गई, उपन्यासों से ज्यादा भयानक... अब हमारा घर में हाल क्या होगा? हमारे पति पढ़े बिना तो मानेंगे नहीं।''[63]

मैत्रेयी पुष्पा अपनी आत्मकथा में अपने और उनकी माँ के द्वारा जो मानवहित के परंपरा है उन्हें तोड़ती नहीं है बल्कि जो स्त्री–विरोधी परंपरा, रीति–रिवाज, संस्कारा हैं, उनका प्रतिरोध करती दिखाई देती है। वह स्त्री–विरोधी पितृसत्तात्मक मूल्यों को ध्वस्त कर परंपरा को तोड़ती और नये मूल्यों को गढ़ती है।

5.8.1. सामंती परिवारिक नारी विरोधी मूल्यों का ध्वस्त :

कस्तूरी देवी समाज की एक भुक्त भोगी महिला हैं जो बचपन से साहसी है। वही आगे चलकर समाज परंपरागत की स्त्री विरोधी मूल्यों को ध्वस्त करती दिखाई देती है। संघर्ष करती है। सामाजिक लोक को तोड़ती है। माँ और अपने दोनों भाइयों के शोषण का शिकार होकर चंद रुपए में एक बूढ़े आदमी के साथ ब्याह–दी जाती है। वहां जाकर वह जोर अजमाया करती है। जब पति मर जाता है तो वह रोती नहीं तो गाँव में हल्ला है कि ''कस्तूरी इस गाँव में ऐसी पहली औरत है, जिसने पति की मौत पर रूदन नहीं किया। हाय, कठ करेज लुगाई। औरतों ने कहा और मर्दों ने च... च... च... करके आश्चर्य जताया।''[64] समाज की परवाह किये बिना ससुर से बातचीतकर गाँव पार कर नए सिरे से अपनी पढ़ाई आरंभ की। हरदिन ढाई कोस दूर पैदल चलकर पढ़ने का अपना फैसला लिया। स्कूल जानेवाली झोला लटकाएं औरत को भौचक होकर सबने देखा। वह इस कदर परेशान हुई कि किसी को तो क्या, रास्ते के कंकड़–पत्थर और चढ़ाव–उतार तक न देख पाती ठोकर लगी, मुँह के बल गिरी। झेंपती हुई स्त्री चोट और दर्द भूलकर चुपके से उठती, घूल झाड़कर धीमे से खड़ी होती। हँसते–मुस्कुराते बूढ़े, जवान और बच्चे। सब पागल समझते हैं। परंपरा को तोड़ना कोई फूल से सजी सेज नहीं होता है। अपमान, ठकराहट जरूर होती है। तभी कस्तूरी महिला मंगल में नौकरी पाकर नया मूल्य गढ़ती है कि नौकरी पाकर अपना स्वतंत्र, आर्थिक–निर्भर और सम्मानित जिन्दगी जी पाती है। अपनी बेटी, बूढ़े ससूर की देखभाल करती और दूसरे औरतों को स्त्री–आजादी, हक और आर्थिक स्वावलंबित जीवन को मार्ग दिखाती और उस स्थिति में पहुँचने के लिए उन्हें पढ़ाई के द्वारा मदद, नौकरी दिलाने के लिए सहायता करती है।

5.8.2 विवाह संस्था के नारी विरोधी मूल्यों का ध्वस्त : कस्तूरी देवी को विवाह बुरी चीज नहीं लगता। लेकिन ''यह औरत के लिए ऐसे बन्धन पैदा करता है, जो जीवन–भर कसे रहते हैं।

पति के रहने पर भी और न रहने पर भी। पति की पसंद–नापसंद दोनों औरत पर ही भारी पड़ती है।''[65] वे दहेज से शादी को मूल्य न समझकर पढ़ाई को समझती हैं। रीति–रिवाज के अनुसार पुरूष को साथ लेकर बेटी का सगाई–संबंध नहीं बनाती है। विधवा और स्त्री अकेली ''खुद जाती और संभावित समधी के द्वार पर पड़े खटिया–मूढ़ा पर मर्दों की बराबरी में बैठती। गाँव में उस समय तमाशा लगता। लुगाई आई है। लुगाई आई है।''[66] दहेज को समाज का कोढ़ समझती है। लेखिका पति–पत्नी के बीच असमानता की खाई को समाप्त कर समान अधिकार और कर्त्तव्यों के हक के लिए समाज में पुरूषवादी दृष्टिकोण से लड़ती है।

लेखिका आधुनिक पति के साथ डांस करती–आधुनिक वेश में बदल जाती है। डांस पार्टी में मन के मीत डॉ. सिद्धार्थ के आह्वान पर नाचने का जोखिम लेने को तैयार भी है–''शादी के बाद से मुझे मेरे हिसाब से कारावास मिला है जिसके लौह–कपाट मैं तभी से तोड़ने में लगी हूँ और देखना चाहती हूँ कि इस दुनिया के अलावा भी कोई दुनिया है।''[67]

यहां लेखिका विवाह व्यवस्था के प्रति विद्रोह करती है। जब उस स्त्री की पितृसत्तात्मक व्यवस्था में उपेक्षा की जाती है तब एक इंसान के रूप में वह भावनात्मक खालीपनपरपुरूष सिद्धार्थ भरता है। मैत्रेयी पुष्पा शरीर और मन को अलग नहीं मानती है। ''मैत्रेयी पुष्पा मन के धरातल पर उद्दाम स्वतंत्रता जीती स्त्री को तन के स्तर पर भी उन्मुक्त कर देना चाहती है कि तन–मन को अलग करके देखना आधा सच्च है।''[68] अपनी इच्छा शक्ति, जो अपने अंदर से नाचने को लेकर उठाती है तब वे सोचती हैं कि ''क्या अब मेरे मन में इसलिए वहीं विद्रोही कामना जाग उठी है कि चाहती हूँ, कह दूँ– मेरा कोई कदम गलत नहीं था। नाचना मेरी इच्छा का नतीजा था, मेरी अपनी निजी इच्छा।''[69]

5.8.3 पितृसत्तात्मक नारी विरोधी नैतिक मूल्यों का ध्वस्त :

रोहिणी अग्रवाल कहती हैं कि ''मैत्रेयी पुष्पा ने अबोध बचपन से ही कामविकृतियों के जिस सैलाब को झेला है, वह दैहिक शुचिता का पाठ पढ़ाकर उन्हें 'सती' कैसे बनाए भला? दूर तक फैली स्मृतियों की जड़ों को उखाड़ फेंकना इतना सरल नहीं होता, मैत्रेयी पुष्पा की विद्रोही भंगिमा का पहला बीज–तोता रटंत शास्त्र ज्ञान और संस्कार ग्रस्तता नहीं, अनुभवों की सख्त जमीन पर नंगें पांव चलने की जिद!''[70] स्त्री देह को अभिशाप से देखनेवालों से लेखिका पूछती है कि स्त्री के किसी कदम को देह से ही क्यों मापा जाता है। लेखिका की पीड़ाएँ

सामंती पुरूष समाज द्वारा अनेक है जहाँ शरीर की शुचिता का कोई अर्थ नहीं है। उनकी पीड़ाएँ, कष्ट, दुख आदि वैयक्तिक हैं जो माँ या समाज पुरूष मन के अंधेरे में पलती इस काम–विकृति की भले ही अनदेखी कर दे, पर विक्टिम स्त्री–मन कितनी ही कुंठाओं, वर्जनाओं, ग्रंथियों, असुरक्षाओं और हीनताओं से बिंध–नुचकर अपने ही आत्मसम्मान को रौंदता चला जाता है।

दिन–रात के उस शोषण से मुक्ति की मासूम इच्छा भी जो कुंआरे बदन पर जुगुप्सा भरी अनुभूति जगाती तो अठारह साल की उम्र में खुद आगे बढ़कर जब मां से अपनी ब्याह कर देने का आग्रह किया था।लेकिन बाड़े में बंद भेड़ बनने या वरण करने की लालसा नहीं थी लेखिका को। लेखिका पारंपरिक सामाजिक ढाँचे और सामंती मूल्यों को जबर्दस्त चुनौती देती है। जब स्त्री अपने बराबरी की हिस्सेदारी और आजादी के लिए खड़ी होती है तो पुरूषसत्तात्मक समाज और खोखला सामंती अहंकार कितने क्रूर रूप से विरोध करता है। शरीर शुचिता को लेकर ''त्रिया चरित्र कहो तो कह सकते हो। इस पौराणिक शब्द को मैंने गाली नहीं माना, इसे मैं सर्वाइवल ऑफ फिटेस्ट मानती हूँ। जिन्दगी को बचाकर रखने का तरीका।''[71] अनैतिक माने जानेवाले कोने–अंतरों को रोशनी में लाकर इस्मत चुगताई भी समाज के सामने रखती हैं। दकियानूस और कायरों में 'लिहाफ' से बाहर आते सच को 'सजा का फरमान' दिया। मगर उस सत्य से कचहरियाँ हार गईं। लेखिका अपने शरीर शुचिता को लेकर कहती हैं–''मुझे लड़की का शरीर दिया कुदरत ने, उस शरीर को झपटने, नोंच–बकोट जाने और बेइज्जत होने का दंड मैं पाती। आज तो मैं अपने तन से मनचाहा करती (लिखूँ या घर से बाहर निकलूँ) तभी सुनने–सहने को मिलता है।''[72]

लेखिका पारंपरिक नैतिक–बाड़े घर रूपी युद्ध स्थल में खड़े रहकर ही बाड़ को तोड़ने की ताकत पाती है और रास्ते निकालती है, फिर लौटना तो मुश्किल है लगभग असंभव। इस संदर्भ में हर स्त्री के लिए वह संदेश देती है कि ''मैं अपने मुक्ति–वृक्ष को और कहीं जाकर क्यों रोपूँ? छाया, ताजगी और ऑक्सीजन की जरूरत सबसे पहले मेरे घर को है। हाँ, ऐसा ही वृक्ष हर घर में हो, जिसमें स्त्री रहती है।''[73]

5.8.4 पितृसत्तात्मक नारी विरोधी संस्कारों का ध्वस्त : धार्मिक कर्मकांड हमारी संस्कृति में हिस्सेदारी पाए हुए हैं। संस्कृति को कायम रखने की जिम्मेदारी औरत के कंधों पर ही है

क्योंकि पर्व–त्यौहारों, वस्त्र–पोशाकों, खानपान और रहन–सहन में चूल्हे से चबूतरों तक का रखरखाव घर की औरत को ही सँभालना है। यदि वह इस सारे तामझाम से अलग होकर जीना चाहती है तो फिर उसे घर–बार छोड़कर साध्वी के वेश में ही बाहर आना होगा। सारे कर्मकांड पितृसत्ता के पक्ष में निभाए जाते हैं। व्रत–उपवास पुरूषों की उम्र और खुशी–खुशामद के लिए है। वस्त्र आभूषण का आदान–प्रदान स्त्री के श्रम का मूल्य है, जो पुरूष के कब्जे में ही रहता है। इस संदर्भ में कस्तूरी देवी की भी हिम्मत महानगरी संस्कृतियाँ ढोने वाली औरतों में भी नहीं दिखता कि ''लाली, ब्याह तो हो गया, पर तू नासमझ औरतों की तरह व्यवहार मत करना। पाँव–वाँव मत पूजना किसी के भी। सुन ले कि रोटी धुआई की रस्म, रस्म नहीं, तुझे चूल्हे–चौके से बांधने का महूरत निकलेगा।....सिंगार–पटार में मत लगी रहना...अपना आना–जाना। अपनी इच्छा से करना।''[74] और आगे कहती है बेटी से कि–''जेवर मत लाना, उनकी रखवाली कौन करेगा? चाँदी–सोने के छल्ला–चेन औरतों के लालच होते हैं, जो उसे ही पूँजी समझती हैं। तू पढ़ी–लिखी है, सनद सर्टिफिकेट की मालकिन। विद्या का खजाना तेरे हाथ है।''[75] संस्कृति को तोड़ना सांस्कृतिक अपराध है। पर्व–त्योहारों के प्रति उत्साह और इंसानियत के प्रति आस्था माँ–बेटी दोनों में पहले था तो व्रत–उपवास करते थे। कस्तूरी सुहाग के व्रतों में रेशम कुँवर की कहानी पढ़ती है। सती का अर्थ समझाती है और कहती है–''जलकर मर जाने का कैसा व्रत? भस्म हो जाना भी कोई धर्म है। मरने के बाद लोग पूजें''[76] यहाँसतियों की परंपरा, ध्वस्त होती दिखाई देती है।

मैत्रेयी पुष्पा भी कई सालों तक पुत्र जन्म के लिए, पति के लिए करवा–चौथ, पूजा–पाठ, व्रत–उपवास कर चुकी हैं। जैसे ही बेटियाँ समझाती हैं। वैज्ञानिक कारण, तब से घर में दो बेटियाँ और माँ करवा चौथ को बंद कर, व्रत–उपवास को छोड़ देती हैं और यहां तक की बिछिया उतार देती हैं। लेखिका को सुहागिन चिह्न काँच की चूड़ियाँ भी रास नहीं आई तो उनको भी निकाल देती हैं। तीनों औरतें घर में गुनाहगार बन गयी हैं। मैत्रेयी पुष्पा के पति बिछिया विसर्जन पर गुस्सा होकर कहते हैं कि ''पाँव की पहली उँगली घायल है तो दूसरी में पहन लो मगर पहने रहो। नहीं पहनना है तो सीधे कहो कि हस्बैड नाम से एलर्जी है।''[77] लेखिका मंगलसूत्र को लेकर अपने अभिप्राय जताते हुए प्रतिरोध करती है कि–''हाँ, तन मन मेरा था, बिछिया घायल उँगली अच्छी हो जाने पर भी नहीं पहनी। मंगलसूत्र वगैरह मुझे

सदा उस गाय के घटमल्ला (रस्सी में लकड़ी की मोटी कड़ी बांधकर गले में लटकाया जाता है) जैसा लगता है, जिसे मरखनी समझकर पहनाया जाता है।''[78]

पतिव्रता का लाइसेंस प्रदान करने वाले करवाचौथ जैसे त्योहार लोकाचार द्वारा हर साल नये तरीके से होते हैं। तो देवता माने जाने वाले चंद्रमाके बारे मोहिता वैज्ञानिक दृष्टि से अपनी माँ को समझाती हैकि–''चंद्रमा क्या है मम्मी? कंकड़–पत्थर भरा कोई ऊबड़–खाबड़ मैदान।''[79] करवा चौथ छोड़ने से पति तो गुस्सा हो जाते हैं। चंद्रमा और कंकड़–पत्थरों को पूजने की महान परंपरा ध्वस्त की जाती है।

****

संदर्भ ग्रंथ :

[1] आधुनिक साहित्य और अनुसंधान, डॉ. भ.ह. राजूरकर, पृ. 139

[2] भारतीय साहित्य कोश, डॉ. नरेंद्र, पृ. 94

[3] हिन्दी का गद्य–साहित्य, डॉ. रामचंद्र तिवारी, पृ. 392

[4] हिन्दी गद्य : विन्यास और विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ. 165

[5] हिन्दी का गद्य–साहित्य, डॉ. रामचंद्र तिवारी, पृ. 393

[6] हिन्दी दलित कथा–साहित्य अवधारणाएँ और विधाएं, डॉ. रजतरानी मीनू, पृ. 93

[7] हिन्दी दलित कथा–साहित्य अवधारणाएँ और विधाएं, डॉ. रजतरानी मीनू, पृ. 93

[8] दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, विमल थोरट, पृ. 24

[9] दलित अस्मिता–अक्टूबर–दिसंबर 2010, संपादक– विमल थोरट, पृ. 31

[10] दलित अस्मिता–अक्टूबर–दिसंबर 2010, संपादक– विमल थोरट, पृ. 35

[11] हिन्दी और मराठी का दलित साहित्यःएक मूल्यांकन (आत्मकथा के विशेष संदर्भ में), डॉ. सुनीता साखरे, पृ. 45

[12] हिन्दी और मराठी का दलित साहित्य : एक मूल्यांकन (आत्मकथा के विशेष संदर्भ में), डॉ. सुनीता साखरे, पृ. 45

[13] दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, विमल थोरट, पृ. 14

[14] हिन्दी समय काम से संपादक – अरूनेश नीरन (वेब पत्रिका)

[15] ऑनलाइन हिन्दी जर्नल, अगस्त 16, 2013

[16] http://mohallalive.com13 February, 2013

[17] कमलेश्वर के कथा–साहित्य में स्त्री–विमर्श – डॉ. करुणा शर्मा, पृ. 76

[18] हिन्दी का गद्य–साहित्य, डॉ. रामचंद्र तिवारी, पृ. 402

[19] हिन्दी का गद्य–साहित्य, डॉ. रामचंद्र तिवारी, पृ. 397

[20] मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, संपादक–विजय बहादुर सिंह, पृ. 282

[21] पुस्तक वार्ता, मार्च–अप्रैल–2013, संपादक–भारत भारद्वाज, पृ. 38

[22] पुस्तक वार्ता, मार्च–अप्रैल–2013, संपादक–भारत भारद्वाज, पृ. 37

[23] लगता नहीं है दिल मेरा– कृष्णा अग्निहोत्री, भूमिका से

[24] हंस, नवंबर 2009, राजेन्द्र यादव, पृ. 14

[25] हंस, नवंबर 2009, राजेन्द्र यादव, पृ. 15

[26] गद्य कोश, फरवरी 18, 2014, संपादक–ललित कुमार

[27] समकालीन कथा यात्रा, डॉ. शरद सिंह www.samakalinkathayatra.blogspot.in

[28] रसात्मक जिजीविषा और स्त्री विमर्श, रामचंद्र ओझा हंस (अक्षर प्रकाशन फरवरी–2013) पृ. 53

[29] मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ 267

[30] कस्तूरी कुंडल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 123

[31] कस्तूरी कुंडल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 123

[32] कस्तूरी कुंडल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 140

[33] कस्तूरी कुंडल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 105

[34] मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ 241

[35] आधुनिक हिन्सी उपन्यास–2, डॉ. नामवर सिंह, पृ. 23

[36] कस्तूरी कुंडल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 111–112

[37] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, भूमिका से

[38] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 14

[39] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 102

[40] कस्तूरी कुंडल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 44

[41] कस्तूरी कुंडल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 145

[42] कस्तूरी कुंडल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 195

[43] कस्तूरी कुंडल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 43

[44] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 123

[45] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 285

[46] कस्तूरी कुन्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 112

[47] मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम, डॉ. दया दीक्षित, पृ. 13

[48] कस्तूरी कुन्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 66

[49] कस्तूरी कुन्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 295

[50] कस्तूरी कुन्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ298

[51] कस्तूरी कुन्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 297

[52] कस्तूरी कुन्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 163

[53] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 51

[54] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 63

[55] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 95

[56] मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ. 107

[57] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 192

[58] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 195

[59] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 198

[60] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 243

[61] हंस, मई 2008, सं. राजेन्द्र यादव, पृ. 62

[62] हंस, अगस्त 2002, सं. राजेन्द्र यादव, पृ. 88

[63] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 330

[64] कस्तूरी कुंडल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 26

[65] कस्तूरी कुंडल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 64

[66] कस्तूरी कुंडल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 64

[67] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 15

[68] हंस, मई 2008, सं. राजेन्द्र यादव, पृ. 60

[69] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 14

[70] हंस, मई 2008, सं. राजेन्द्र यादव, पृ. 59

[71] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 350

[72] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 342

[73] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 342

[74] कस्तूरी कुंडल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 242

[75] कस्तूरी कुंडल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 259

[76] कस्तूरी कुंडल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 21

[77] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 244

[78] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 244

[79] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 245

अध्याय – 6

मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्य : शिल्प और शैली

6.1 शिल्प

6.1.1 लक्ष्य

6.1.2 देश काल वातावरण

6.1.3 विश्वसनीयता

6.1.4 कथानक और पात्र

6.1.5 कलात्मक भाषा

6.1.6 सांकेतिक भाषा

6.1.7 संवादों की भाषा

6.2 आत्मकथात्मक शैली

6.3 डायरी शैली

6.4 सामाजिक विद्रोह की भाषा शैली

6.4.1 निम्नवर्ग

6.4.2 मध्यवर्ग

6.4.3 उच्चवर्ग

6.5 सामाजिक व्यंग्य शैली

6.6 राजनीतिक व्यंग्य शैली

6.7 धार्मिक व्यंग्य शैली

6.8 मुहावरे

6.9 लोकोक्तियाँ और कहावतें

6.10 लोक भाषा शब्दावली (देशज शब्द)

6.11 संस्कृत शब्दावली

6.12 अपशब्द (गालियाँ)

6.13 अंग्रेजी शब्द

6.14 अरबी शब्द–फ़ारसी शब्द

मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्य : शिल्प और शैली

रचना का सृजन रचनाकार के अंर्तमन की उपज है। ''सृजन, किसी क्षण की उपलब्धि नहीं, दीर्घ साधना, तप की उपलब्धि है।''[1] 'सृजन' में 'अतिचेतना' की सर्वप्रमुख भूमिका होती है। रचना रचनाकार के लिए आत्मान्वेषण का साधन होती है। रचना में वह स्वयं अपने को उपलब्ध करता है। रचनाकार अपने व्यक्तित्व से, अनुभव और जीवन–दृष्टि से गुजरने के पश्चात ही रचना को रूप देता है। रचना के स्तर पर रचनाकार नितांत अकेला होता है। ''हर क्षण की अनुभूति स्तर दूसरे से भिन्न एवं नवीनता लिए होता है।''[2] भाषा अभिव्यक्ति का एक ऐसा समर्थ साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचारों को दूसरों पर प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार जान सकता है। भाषा का सार है संवाद भाषण नहीं। ''भाषा अपनी पूर्णता में किसी तरह की एकांगिता बर्दाश्त नहीं करती, और इसलिए हर तरह की अन्यायपूर्ण एकांगिता के भास्वर विरोध का हथियार बनती है। भाषा को व्यक्ति के अधीनीकरण के सांस्कृतिक षड़यंत्र का हथियार जब जब बनाया गया, भाषा गवाह है कि उसे निरस्त करने के लिए हथियार भी उसी से निकले''[3]

हमारी भाषा की महान ग्रंथों की सूची बनाई जाती तो सभी नाम स्वभावतः पुरूष लेखकों के होते हैं। पुरूष ही साहित्य में मूल्यांकन और चुनाव प्रस्तुत करते हैं। पुरूष ही महान जातीय साहित्य के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है।इससंदर्भ में अनामिका का कहना है कि–''भारतीय मनीषा में भाषा से स्त्री का जो अपेक्षित सा रिश्ता है, अगर उसी का बुद्धि मत्ता से विनियोग किया जाए तो भाषिक क्रांति के कई सूत्र वहाँ हमें मिल जाएँगे''[4] पुरूष प्रारंभ से भी समाज भूमिका में वर्चस्वशाली रूप में हैं। वह हमेशा ज्ञान, दर्शन और साहित्य के केन्द्र में रहे हैं।

स्त्री साहित्य और विमर्श को पश्चिम की नकल कहकर इसकी उपेक्षा की जाती है। कुछ भाषाविद इस निष्कर्ष पर पहुँचते हुए जान पड़ते हैं कि भाषा पुरूष की होती है। यह एक पुरूषवादी संरचना है। वे सहज ही यह मानते हैं कि ''पुरूष ही भाषा के निर्माण और आविष्कर्ता हैं। मनोविज्ञान और समाजशास्त्रीय दृष्टि से भाषा का अध्ययन करनेवालों ने भी भाषा के निर्माण में स्त्री की किसी तरह की भूमिका को अस्वीकार किया।''[5] भाषा इस दुनिया को वर्गीकृत और व्यवस्थित करने का माध्यम है। स्त्रियाँ अपने सत्य का निर्माण जिस रूप में

करती हैं या करने के लिए उत्प्रेरित किया जाता है उनमें भाषा के स्वैच्छिक नियमों की अहम भूमिका होती है। भाषा ही इस सत्य को मैनीपुलेट करने का माध्यम भी है।

ऐसी भाषा ही मैत्रेयी पुष्पा के प्रखर व्यक्तित्व की झलक समय–समय पर अलग–अलग संदर्भों में स्त्री–विमर्श परख लेखों व टिप्पणियों के जरिए बखूबी मिल जाती है। अपनी कहानियों, उपन्यासों के द्वारा स्त्री जीवन की विसंगतियों एवं विडंबनाओं की अंतरंग सच्चाइयों का बेबाक खुलापन वह अपने तर्कों की कसौटी पर जिस तरह कसती हैं, उससे पाठक अभिभूत हुए बिना नहीं रह सकता। मैत्रेयी पुष्पा के अनुभवों ने तर्कक्षमता को एक तीखी व पैनी दृष्टि प्रदान की है। यही वजह है कि लेखन के क्षेत्र में उनकी अलग पहचान है। वे अपनी कहानियों एवं उपन्यासों में लोक–चरित्रों के माध्यम से स्त्री–जीवन की सामाजिक छवियों को उभारा उनकी साँसों में उन गाँवों की स्मृतियाँ है, जिनके बीच उनके बचपन से युवावस्था तक की यात्राए शामिल रही हैं। अपने धारदार लेखन के द्वारा ग्रामीण स्त्री छवि को मनुष्य और स्त्रीत्व दिलाकर, हकदार, अस्मिता–अस्तित्व की पहचान बनाकर पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा स्त्री के लिए बनाए गए न्याय नियमों का विरोध कर विद्रोह की स्थिति पर पहुँचकर ध्वस्त कर देती हैं और अपने नये नैतिक मूल्य स्त्री जीवन मूल्य नये सिरे से रचती हैं। अपनीरचना मेंपात्रों के माध्यम से तीखी भाषा में पुरूष द्वारा किये जाने वाले कई तरह के शोषणका विरोध करती हैं, उस पर व्यंग्य करती हैं विद्रोह के स्तर तक पहुँचती हैं। लेखिका अपनी कहानियों व उपन्यासों में पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग ही नहीं किया है बल्कि व्यवस्था के विरोध में आक्रामक भाषा का प्रयोग भी करती हैं।वे अपने लेखन में पुरूषवादी दृष्टिकोण का निषेध करती हैं। मैत्रेयी पुष्पा के लेखन का लक्ष्य ही पितृसत्तात्मक व्यवस्था के असंगतिपूर्ण और अन्यायकारी रूप का अपने स्त्री–पात्रों के द्वारा विरोध करनाहै।इसे बदलने कीन्यायपूर्ण पहल करनी है।

6.1 शिल्प :

शिल्प किसी भी कृति को उसके युगबोध के साथ जोड़ता है। कृति में जो भाव वर्णित किया जा रहा होता है, उसे अधिक से अधिक स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत करना शिल्प कहलाता है। कलाकार न केवल भावों को अभिव्यक्ति करता है बल्कि वह व्यक्त के रूप को शिल्प व्दारा सुंदर भी बनाना चाहता है। ''अतः शिल्प का निर्धारण विषय–वस्तु तथा विधा–विशेष की प्रकृति

के अनुरूप होता है। शिल्प के अंतर्गत वे सभी उपकरण–बिंब प्रतीक उपमान संकेत आदि आ जाते हैं जिनकी सहायता से व्यंजित होती है। अतः शिल्प का संबंध वस्तु की समग्र रूप–रचना से है।''[6]

मैत्रेयी पुष्पा के शिल्प की बात की जाय तो–''मैत्रेयी पुष्पा ने किसी नये शिल्प के इजात करने की घोषणा करने की बात तो दूर, उसका संकेत भी नहीं दिया, लेकिन चाक में हमें एक खास प्रकार का नया शिल्प या शिल्पगत नया आकर्षण दिखाई पड़ता है।''[7] अपने एक वक्तव्य के दौरान लेखिका शिल्प के दृष्टिकोण से उनके लेखन की संकीर्णता के बारे में कहती हैं कि ''मुझे कभी नहीं लगा कि शिल्प खोजकर फिर रचना की जाए। मेरे खयाल में रचना का प्राण उसकी सहज अभिव्यक्ति में बरसता है। पात्र, परिवेश और भाषा का संयोजन एक दुसरे के साथ–साथ होता है। और हर रचना अपने कलेवर में इसी आधार पर अलग दिखाई देने लगती है। इससे भी ज्यादा प्रयोगशीलता को कहानी या उपन्यास की अंदरूनी तहों में जीवन के जज्ब होने की ऐसी प्रविधी मानती हूँ, जिस में बदलाव और विकास के बिंदु हासिल हों। पिछले दशक से लेकर अबतक ऐसे कई उपन्यासों से गुजारी हूँ, जो सिर्फ प्रयोगों के नाम पर सफलता अर्जित कर गए हैं, या करना चाहते हैं। सफलता और सार्थकता में वही फ़र्क है, जो शैली और कथ्य की प्रभावोत्पादकता में होता है। शैली को हम बदलते है, नहीं बदलते तो दोहराव के शिकार होते है। कथ्य जीवन–मूल्यों का ही रूप है, संवेदना और संभावना व्दारा अवनी रचनात्मकता बनाए रहने वाला तत्व भी यात्रा का प्रस्थान–बिंदु बनता है तो कभी सफर का लक्ष्य है। गाँव की खेरापतिन दादी विव्दान लगती है, क्योंकि गीत–कथाओं को समय की विषमताओं के बरक्स खड़ा करके गीत सुनती है। मैं यही कह सकती हूँ कि मेरे आस–पास कलावती चाची जैसे पात्र हैं, उनमें तस्लीमा जैसा साहस, सिमोन द बाऊआर जैसी बेबाकी और इस्मत चुगताई जैसी पैनी और गहरी नजर वाला जज्बा है, वे ही मेरी संकल्प–दृढ़ता को बनाए हुए शिल्प को बाहर नहीं अंदरूनी धड़कन के रूप में देखती हैं।''[8]

मैत्रेयी पुष्प की भाषा सहज–सरल भाषा है जहाँ हर सरल व्यवहारिक शैली के कारण हर कोई इन रचनाओं को पढ़ते हैं। इस कारण से लेखिका के पाठक गण भी बहुत हैं। प्रयोग और शैली इनके लेखन की विशेषता है। लखनऊ के 'कथाक्रम' में एक बार डॉ.नामवर सिंह ने शैली–प्रधान उपन्यासों को उत्कृष्ट उपन्यासों की श्रेणी में रखा था।

6.1.1 लक्ष्य :

रचना प्रक्रिया लेखक के जीवन अनुभवों को विशिष्टता प्रधान करता है। हर क्षण अनुभूति का स्वर दूसरे से भिन्न एवं नवीनता लिए होता है। कभी कविवर भवानी प्रसाद मिश्र ने कहा था–"जिसका दुःख लिखना है, उसका दुःख जानो तो।"[9] मैत्रेयी पुष्पा भी अपने लेखन में यही शर्त लेकर आयी हैं। शास्त्र सत्य को नहीं बल्कि लोक सत्यको लेकर आती हैं। लेखक होने केलिए अनुभव भले ही बुनियाद का काम करें, किन्तु इन अनुभवों को समिचित परिप्रेक्ष्य देना सबसे बड़ी चुनौती है। लेखिका ने अपनी कथाओं में यह परिप्रेक्ष्य रचा है। वे जितने अनुभव प्रगल्भ है, उतनी ही विचार–विमर्श भी। मैत्रेयी पुष्पा के यहां आँसू सूख–सूखकर निपट चिंनगारियों में बदल चुके हैं। यही कारण है कि उनकी कथाओं का वातावरण बहुत गर्म है। उनमें इतनी लड़ाइयाँ हैं, इतनी बहसें हैं, इतनी हार–जीत हैकि वह सब सुख के ऊपर भारी पड़ता दुःख और दुःख को चकमा देकर उठ खड़ा होता सुख चढ़ा–उपरी किए रहते हैं। मैत्रेयी पुष्पा का कथा–शिल्प इसी व्दंव्द का रहस्य लिए है।

स्त्री के पित्रुसत्तात्मक व्यवस्था असंगतिपूर्ण और अन्यायों के प्रति आधुनिक स्त्री के रूप में स्त्री इसे मंजूर करे या इसे बदले और न्यायपूर्ण बनाने की पहल करे। मैत्रेयी पुष्प का अगर कोई लक्ष्य है तो यही है। उनके लेखन का सच आँखों–देखा सच है। उनके लेखन इन्हीं चिंताओं से जन्म लेता है और उनके लिए गए अनुभव इसकी गवाही देते चलते हैं।

6.1.2 देश काल वातावरण :

मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में बुंदेलखंड का परिवेश, आजादी के बाद का देश का वातावरण दिखाई पड़ता है। प्रेमचंद आजादी के पहले और रेणु आजादी के तत्काल बाद के लोकांचलों के रचनाकार हैं। रेणु की आंचलिकता, उन जैसे देश काल वातावरण व परिवेश को आगे लेकर चलने वाली है मैत्रेयी पुष्पा। मुख्य रूप से 'इदन्नमम' की कथा विन्ध्य की उपत्यकाओं में आजादी के बाद की तीन पीढ़ियों का विस्तार लिए हुए है। इसके बावजूद विंध्या और बुन्देखंड के लोक–जीवन,बोली–बानी और रूप–रस–गंध को त्रासद व दारुण जीवन–स्थितियाँ इसमेंअभिव्यक्ति पायी है। "सामंती भाव–भूमि पर केन्द्रित पिछड़े ग्राम्य समाज की किसान जाती के जीवन को आधार बनाकर जो नारी–विमर्श मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है पिछड़े हुए भारतीय समाज की कई गुन्थियों एवं रूढ़ियों से टकराता है।"[10]

लेखिका ने उरई ,कालपी,एटा,झांसी आदि के आस–पास की बुन्देली इलाक़ो ंको अपने साहित्य का देश,काल औोर वातावरण बनाया है। झुलानट की शीलो देश की आजादी के पचास वर्ष की यानी पचास वर्षों के जनतान्त्रिक भारतीय समाज में जन्मी,पली और बढ़ी औरत है। इसलिए वह अपने व्यक्तित्व और अधिकार को स्थापित करना अच्छी तरह जानती है।

6.1.3 विश्वसनीयता :

मैत्रेयी पुष्पा के परिवेश और ग्रामीण समाज को उसके पूरे खुरदरे यथार्थ के साथ वैसे ही खुरदरी भाषा के सहारे, जीवंत रूप में प्रस्तुत कर देती हैं। चाहे मंदाकिनी के 'बाउजी' हो उसके ममहर परिवेश के अक्कड किसान, सभी अपने मौलिक जीवंत रूप में प्रस्तुत है, कुसुम की व्यथा नारी की परम्परागत नियति है, जो पर्याप्त संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत की गई है। राजनीतिक नेताओं और माफिया ठेकेदारों के चरित्र भी उपन्यास में पर्याप्त विश्वसनीयता के साथ अंकित है।

'इदन्नमम' के बाद 'चाक', 'झूलानट' में भी खेती–किसानी से जुड़े जाटों का ही चित्रण किया गया है। आज की बदलती हुई परिस्थितियों में यह चित्रण पर्याप्त विश्वसनीय भी है। पर इन दोनों उपन्यासों का केन्द्रीय विषय ग्रामीण परिवेश में उभरी नारी चेतना है। 'चाक' की सारंग नारी संहिता की समस्त मान्यताओं को चुनौती देती हुई न केवल श्रीधर से देह संबंध स्थापित करती है, बल्कि पुरुष सत्ता को चुनौती देने के लिए खडी होकर प्रधान बन जाती है। इस से यह विचार उभरता है कि राजनीतिक सत्ता प्राप्ति से ही पुरुष का शोषण और अत्याचार समाप्त हो सकता है।

नवें दशक के बुन्धेलखंड और ब्रजक्षेत्र के एक पिछले गाँव के यथार्थ, स्त्री के अपने अधिकारों के प्रति सजगता और विद्रोह तथा परपुरुष संबंध का अधिकार–किसी एकल विजन का बोध करने में असमर्थ है। कथा संसार की विश्वसनीयता और औचित्य भी कभी बाधित है। 'झूलानट' में सास–बहु के संबंध के चित्रण के साथ–साथ शीलो के रूप में एक जाट युवती के परंपरागत मूल्यों को चुनौती देने वाली स्त्री–संहिता को नकारने और विद्रोह की मुद्रा में तन कर खड़े होने का चित्रण भी किया गया है।

गोपाल रॉय कहते हैं कि ''इन उपन्यासों की तुलना में 'अल्मा कबूतरी' अधिक नयी और सशक्त रचना है। भारतीय समाज इतना विशाल और वैविध्यपूर्ण है कि सजग और

संवेदनशील उपन्यासकार केलिए कथ्य के अभाव में चमत्कारपूर्ण शिल्प और अचेतन–अवचेतन की भूल –भूलैया में भटकने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैत्रेयी पुष्प ने इस तथ्य को अपने इस नये उपन्यास व्दारा सिद्ध कर दिया है।''[11] बुंदेलखंड क्षेत्र में बसने वाले कबुतरा जाति के जीवन को उपन्यास का विषय बनाया है, जो अपने वंश–परंपरा रानी पद्मिनी और झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की अन्गरक्षिका झलकारीबाई से जोड़ते हैं। और उनकी अपमान, विवशता और पीड़ा भरी जिंदगी को जीवंत पात्रों के अदभुत कथासंसर में बदल दिया है। इसके साथ ही लेखिका ने समानंतर 'सभ्य' समाज से, जिन्हें वे 'कज्जा' कहते हैं, उनके टकराव, संघर्ष और पराजय को भी अत्यंत विश्वसनीय और मार्मिक रूप से प्रस्तुत किया है। 'अल्मा कबूतरी' हारे हुए व्यक्तियों की कथा है। देश की आजाद के इतने साल में भी सम्मानजनक नागरिकता पाकर भी वे आजादी का अर्थ नहीं जानते हैं। सभ्य समाज की नजरों में उपेक्षा अपमान और घृणा का पात्र वरन पुलिस के अत्याचार का सबसे नरम चारा भी बना दिया था। पर जीविकोपार्जन का कोई सम्मान जनक साधन न उपलब्ध होने के कारण इनके पुरुष अपराध कर्म और स्त्रियाँ देह व्यापर के लिए विवश होती हैं। आजादी पाकर इतने साल होने के बाद भी इनकी नयी पीढ़ी को सम्मानपूर्ण जीवन का कोई विकल्प नहीं दिया गया है। इस उपन्यास में लेखिका इस कटु यथार्थ को गहरी संवेदना और जबरदस्त सर्जनात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है। ''इसमें लेखिका अल्मा की कहानी को रोमांचक और चटक बनाने के प्रयत्न में कला–संयम भी उसके हाथ से तनिक छूट गया है। एक स्त्री लेखक का बोल्डनेस तो है, जो कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग आदि के प्रसंग में कभी उछाला भी जाता, पर इसका कोई सौन्दर्यशास्त्रीय औचित्य भी है, यह संदिग्ध है। अधिक से अधिक इसे नारी संहिता के प्रति आधुनिक स्त्री का विद्रोह ही माना जा सकता है।''[12]

लेखिका अपने उपन्यासों में विंद्य और ब्रज–अंचलों के यथार्थ चित्रण को विश्वसनीय बनाने केलिए उन अंचलों में प्रचलित बोलियों के ठेठ शब्दों, मुहावरों और लहजों का मानक हिंदी में प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया, है जिसके फलस्वरूप उनके उपन्यासों की भाषा खुरदरी और यतकिंचित ऊबड़–खाबड़ भी हो गयी है। यह खुरदरापन उनकी भाषा को एक ताज़गी प्रदान करता है। इनकी औपन्यासिक भाषा की एक उल्लेखनीय विशेषता ग्रामीण और निम्नवर्गीय स्त्रियों की भाषा को जस का तस प्रस्तुत कर देना भी है। 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास

में उनके कथा शिल्प और भाषा दोनों में निखार आया है, इसलिए वह उनका अब तक का सर्वश्रेष्ट उपन्यास है।

6.1.4 कथानक और पात्र :

कथ्य को प्रस्तुत करने केलिए जीवन–सन्दर्भों या प्रसंगों की जो श्रृंखला लेखक तैयार करता है, वही कथानक कहलाता है। कथानक के सन्दर्भों या प्रसंगों और उनके माध्यम चरित्रों के जीवन एवं व्यक्तित्व का निचोड़ या निष्कर्ष कथ्य होता है। कथ्य और कथानक के संबंध की स्वाभाविकता सौंदर्य निर्धारित होता है।

'इदन्नमम' में मुख्य कथानक के साथ–साथ उपन्यास में कुछ उपकथानक भी हैं। आजादी के पहले और बाद के हिन्दू–मुस्लिम संबंधों में आती खटास और अलगाव, आजादी के बाद की भारत की पतनघाती भ्रष्ट राजनीति और नौकर शाही, ग्रामीन विकास, परंपरागत ग्रामीण समाज और विकास के नाम पर लगी चली आती सामाजिक विसंगतियाँ, जमींदारों और जागीरदारों के जबड़ों से मुक्त होकर छुटभैये राजनेताओं और असंख्य ठेकेदारों–दलालों के चंगुल में फसता लोक–समाज जातियों की राजनीति, आरक्षण, शहरों से चलकर गॅ़वई जीवन में सेंध लगाती आक्रामक और घृणित सांप्रदायिकता की विकृति और उसे फायदा हुआ अवसाद यहाँ खूब है। चरित्रों की अंतर्विरोधी विविधता और रंगीन चित्रण करने में अत्यंत सक्षम लेखिका ने हिन्दू मुस्लिम संबंधों की सघनता और नये राजनीतिक माहोल में उसकी विकृतीऔर त्रासद परिणति को मार्मिक ढंग से 'इदन्नमम' के साथ–साथ 'गुडिया भीतर गुडिया' में भी वर्णन इसका करती है। 'चाक' उपन्यास में भी अनेक पात्र या चरित्र हैं। कथानक में पात्रों, चरित्रों की भीड़ है, ऐसा लगता है कि गाँव के सभी टोलों और टोलों के सभी घरों के लोग कथा में पात्र बनकर आ गए हैं। प्रायः सभी प्रमुख पात्रों के जीवन से जुड़ी एक कथा है। उन सारी कथाओं को अत्यंत मनोयोग और संयम से गूँथ कर पूरे उपन्यास की कथा तैयार की गयी है। उपन्यास के कथानक से अनेक कहानियाँ निकाली जा सकती हैं, जैसे रेशम की कहानी, सारंग की कहानी सबसे लम्बी है, गुलकन्दी की कहानी, रंजीत की, बाबा की, प्रधान फतेसिंह की, थानसिंह की, लैंगसिरी की, बिसुन्देवा की, चन्दन की, कैलासी सिंह साधुजी की, डोरिया और श्रीधर प्रजापति की कहानी आदि–आदि। ''लेखिका ने इन तमाम कहानियों को गुम्पित करने का अदभुत कौशल दिखाया है। कौशल इस बात में है कि कहानियों को कहाँ, किस

प्रकार गुँथा गया है, यह दिखाई नहीं पड़ता है, यानी जोड़ या सिलाई का स्थान नजर नहीं आता।''[13]

'चाक' उपन्यास में गाँव की घटनाओं को कथा प्रवाह का रूप देने और उसे अबाध गेट से क्रमशः आगे ले चलने की अदभुत क्षमता है मैत्रेयी पुष्पा में। भाषा के स्वरुप और गति को समझने केलिए कथा प्रवाह पर नजर डालना जरुरी है। सारंग, श्रीधर, रंजीत, प्रधान जी, बाबा, गजाधर सिंह, आदि के अंतर्जगत में लेखिका ने इस तरह प्रवेश किया है, लगता हैकि यह उसके लिए एकदम सहज है। एक खूबी यह है किपात्रों के अंतर्जगत में प्रवेश कर के कहीं रह नहीं जाती, बल्कि निकल कर समाज को बताती है कि किस पात्र के अंतर्जगत में क्या है? अंतर्जगत और बाह्यजगत के अंतस्संबंध और अंतक्रिया का चित्रण कुशलता से किया है। इसके लिए हम 'चाक'उपन्यास उदाहरण के रूप में ले सकते हैं–''गाँव की सहज सरल दिनचर्या में अचानक धमाका हुआ, धरती, हिल उठी। रात–दिन काँप गए। हाय–हाय, त्राहि–त्राहि के भयानक दर्दभरे कोलाहल में डूब गयी गँवई धरती... लेकिन कुछ घड़ियों के उफान के बाद ठंडी शांती की फरेबी परतें ...धीरे–धीरे उतरने लगीं!''[14] यह रेशम की हत्या से उत्पन्न वातारण का चित्रण है।यह केवल वहां का वातावरण नहीं बल्कि गाँव के नये चरित्र का भी संकेत देता है। गाँव की सहज, सरल दिनचर्या में धमाका उठा यानी गाँव के लोगों के चरित्र में सहजता और सरलता नहीं रही। मैत्रेयी पुष्पाके साहित्य, उन के पात्रों की चरित्रता के बारे में राजेंद्र यादव कहते हैं कि–''मैत्रेयी पुष्पा न वक्तव्य देती है, न भाषण। वह पात्रों को उठाकर उनके जीवन और परिवेश को पुरी नाटकीयता में देखती हैं। संबंधों के बीहड़ों में धीरे–धीरे उतरना उन्हें बेहद पठनीय बनाता है।''[15]

6.1.5 कलात्मक भाषा :

मैत्रेयी पुष्पाकी भाषा की कलात्मकता, भाषा कौशल उनके शिल्प में चार चाँद लगा देता हैं। वे रससिध्द कथाकार हैं। युवती कदमबाई जब अपने पति से मिलने के लिए सांझ–सकारे जाती है, उस समय की भाषिक छवियाँ चित्रमय बन पडी हैं–''गेहूँ के पौधे हरे थे और घने भी एक दूसरे से भिड़े हुए। कदम की छातियों से ओढनी की तरह लिपट गए। वह जहाँ खडी थी,पौधे भी खड़े थे। लेट गई तो संग बच गए। ठंड और नरम...कदमबाई सुख–सेज पर पौढी थी। चन्द्रमा माथे पर था,सारा रंग सुनहरा हो चला। सरग से उझकती तरइयाँ, कदमबाई लजा

गई। झींगुर शोर मचाने पर तुले थे, कदम कैसे बरजे? भजनी जिठानी और मलिया काका महल के व्दार पर व्दारपाल की तरह खडे थे। अब काहे का डर? झींगुरी– टिटहरी जोर से गाओ। वह निश्चिंतभाव से लेट गई। हवा का झोंका आया और उसने पास खडे पौधे ओढ़ लिए। पौधों पर ओस थी। कदम के बदन पर मोती बिखर रहे थे। जुगुनू बाहों–जाँघों पर चमके, चन्द्रमा आकाश में तैरता हुआ पास आता गया।''[16]

कलात्मक भाषा पूरे अभिव्यंजना कौशल से मौलिक उदभावनाओं में बात का मर्म खोलती है। जैसे कि ''प्रधान काका को देखते ही मन हिलोरी–सी उठी और पलकों में बूँदे उलझने लगीं। वह एकटक देखती रही काका की ओर ज्यों पुतलियों पर सागर थमा हो।''[17]

6.1.6 सांकेतिक भाषा :

''सांकेतिकता रचनाकार की रचना–प्रक्रिया का अभिन्न अंग बनकर उभरती है। यह जीवन के असत्य पक्ष,ह्रासोन्मुख अन्धशक्तियों, कटु–प्रसंगों तथा विद्रोह की अभिव्यक्ति का माध्यम बनकर लेखिका की संवेदनशीलता के साथ मलकर कहानी में संप्रेषित होती है।''[18]सांकेतिक भाषा के लिए उदहारण के रूप में चाक में देखा जा सकता है कि–''श्रीधर लालटेन लिए बाहर निकले कि रंजीत भैया की राह में जहां तक उजाला कर सकें करे।''[19] यहाँ लालटेन, रात और उजाला तीनों व्दंव्दार्थक है और प्रतीकात्मक संकेत से यह अर्थ निकलता है। श्रीधर रंजीत का अज्ञान यानी रूढ़ी से उत्पन्न अन्धकार उसकी चेतना को प्रकाशित करना चाहते हैं।

6.1.7 संवादों की भाषा :

'इदन्नमम,चाक', 'अल्मा कबूतरी', 'कही ईशुरी फाग', 'कस्तूरी कुंडल बसै', 'गुडिया भीतर गुडिया', 'गुनाह–बेगुनाह' आदि उपन्यास, 'फैसला', 'तुम किसीकी हो बिन्नी' आदि कहानियों में अनेक नाटकीय प्रसंग और उनकी जरूरतों के छोटे–छोटे वाक्यों वाले संवाद भरे पड़े हैं। ऐसे संवादों में बऊ–मंदा की बातें, मंदा–कुसुमा की बातें और सारंग–रंजीत की बातें या सारंग–श्रीधर का वार्तालाप, 'कही ईशुरी फाग' की ईशुरी–रजऊ, रजऊ–सास; 'अल्मा कबूतरी' के कदमबाई–मंसाराम, अल्मा–राणा, अल्मा–रामसिंह;'तुम किसकी हो बिन्नी' कहानी में डॉक्टर–आरती गुप्ता, दादी–बिन्नू की संवाद। दादी–बिन्नू की संवाद इस प्रकार है कि–''दादी,मेरी माँ सौतेली है? रात को दादी के पास सोते समय बिन्नी ने अनायास ही

पूछा!चल!किसने कही जे बात तोसे? 'मगना ने' 'झूठी है मगना' मगना कहती है कि तेरी माँ डायन है, पेट में ही बच्चों को मार डालती है।''[20] दादी का चेहरा रात के अंधियारे में सफेद फक्क पड़ गया। सुन्न हो गयी एक पल को। फिर बिन्नी के सर पर हाथ फेरते हुए पुचकारते हुए, मगना के साथ रहने से मना करती है।

'इदन्नमम' की कुसुमा और चचेरे असुर दाऊ जू के बीच संवाद है कि–''कुसुमा अकेली सीता जू धरती में समा गयी थीं। हम तुम्हें भूमि–समाधि नहीं लेने देंगे। देह धरी है तो देह का हक्क भी होता है कुसुमा। देह की जरूर भी। दाऊ जू, तुमने तो पूरे सुखसागर का सत्र निचोर कर घर भर लिया! मरम छू लिया दाऊ जू। यह ककरा भरी छत नरम गदेला हो गयी। पोर–पोर से ने निचुरता है। पगलू, हमनें तो अब जाना है कि औरत जैसी होती है। सारे भार को फलों की तरह समेटती हुई इमरतदान देती है आदमी को।''[21]

6.2 आत्मकथात्मक भाषा शैली :

आत्मकथात्मक भाषा शैली में लेखक निजी न होकर उसके सृजित पात्रों की है। जहाँ कथागत अंतरवस्तु प्रथम पुरूष में ही प्रस्तुत की जाती है। स्त्री–आत्मकथा में 'मै'। खुद लेखिका के साथ–साथ घर, रिश्ते में कोई भी हो सकता है। ऐसी आत्मकथात्मक शैली में मैत्रेयी पुष्पा ने अपने दोनों आत्मकथाओं को और लगभग सारी कहानियाँ 'मैं' प्रथम पुरूष की शैली में लिखा है। जैसे कि 'तुम किसकी हो बिन्नी'; 'मुस्कराती औरतें', 'रिश्ते का नक्शा' आदि है। उपन्यासों में भी आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया गया है– 'चाक' की सारंग गुरुकुल में पढ़ते समय जिन घटनाओं का सामना करती है। और जो विद्रोह भावनाएँ उस के अंदर से फूटती हैं लेखिका उस को अपने खुद की भी मानती हैं। उनकी आत्मकथा का पहला भाग 'कस्तूरी कुन्डल बसै' का 'मैं' तीन व्यक्तियों को अभिव्यक्त करता है। उसमें तीन पीढ़ियों की कहानी कही गयी है– कस्तूरी देवी की माँ, कस्तूरी देवी और उनकी बेटी आत्मकथा लेखिका मैत्रेयी पुष्पा है। माँ–बेटी की तनावपूर्ण द्वन्द्व गाथा ही इसके केन्द्र में है। यह कहानी स्मृतियों, कल्पनाओं और किंचित अनुभवों की मदद से रची है और ठोस जीवन–सत्य इसके केन्द्र में है। दूसरा भाग 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में लेखिका समूचे समय और उसे रचने या

विकृत करने वाले चेहरों के साथ है। इस आत्मकथा के प्रकाशन माहौल में आग सी लग गई थी।

'तुम किसकी हो बिन्नी' कहानी में बिन्नी की माँ लड़कियों को जन्म देने के कारण परिवार, समाज में अपमान का सामना करती है। वह लेखिका 'मैं' का संबोधन बिन्नी की मम्मी बनकर करती है–''सामाजिक परिवेश कँटीला–सा हो चला। तीज–त्योहार चिढ़ाते–बिराते से निकलने लगे। कलेजे में ही हीनता की हूक–सी उठती, जो बेचारगी में पलट जाती। राखी हाथ में लिये बेटियां कैसी बेअर्थ लगती स्वत्वहीन, लाचार! संसार की किसी अमूल्य निधि से वंचित! दुर्लभ रिश्ते से कटी हुई.....नाते–रिश्तेदारों और आपसी मेल–जोलदारों में चर्चित यह एक बात उनके कलेजे को निरंतर उधेड़ते रहती कि–बेटे को जन्म नहीं दे सकी। इसी अधूरेपन के अहसास तले दबी वे हर गली, हर मोड़ और हर उत्सव से आँखे चुराकर चलने लगीं।''[22]

उनके उपन्यसों की नायिकायें पित्रृसंत्तात्मक और सामाजिक रूढ़ियों, संस्कारों परूष सामंती स्त्री जीवन मूल्यों पर प्रश्न करती हैं, और उन सारे नियमों के विरोध में आवाज उठाकर विरोध और विद्रोह करती हैं। उन सारी स्त्री–पात्रों को लेखिका अपनी आवाज़ देती हैं। जैसे कि चाक की– रेशम, सारंग, बड़ी बहु, इदन्नमम् की प्रेम, कुसुमा, मंदा; 'कही ईशुरी फाग' की ऋतु 'अल्मा कबूतरी की' अल्मा, कदमबाई 'गोमा हँसती है' की गोमा, 'रास' कहानी की जयमंती, 'केतकी' कहानी की केतकी, 'फैसला' कहानी की वसुमती आदि। 'पगला गई है भागवती' की भागवती। उपन्यास 'झूलानट' की शीलो, अगनपाखी, विजन, गुनाह–बेगुनाह आदि भी आत्मकथात्मक भाषा शैली में लिखे गये हैं।

6.3 डायरी शैली :

डायरी एक व्यक्ति का दैनिक घटना के संदर्भ में अपने मन की उधेड़–बुन व्यक्त करने के लिए सर्वोत्तम माध्यम है। इस डायरी में गुप्त बात भी होती है, खेद करनेवाली बात, हर्ष–मग्न करती हैं कुछ से खीझ उत्पन्न होती है, कुछ से वितृष्णा। हर घटना काल और स्थान की सीमा में बँधी होती है। इसलिए डायरी लेखक घटना के खाास तिथि और स्थान भी अंकित करना आवश्यक समझता है। ''साहित्यकारों द्वारा लिखी जानेवाली डायरियों में अंकित

तिथियाँ, स्थान और घटनाएँ काल्पनिक भी हो सकती हैं और सत्य भी।''[23] इस डायरी शैली में कहानी और उपन्यास दोनों को लिखा जा सकता है। इन दोनों उपन्यास और कहानियों में कहीं बीच–बीच में उपयोग किया जाता है। यहां लेखिका अपनी कहानी 'ताला खुला है पापा' में 'बिन्दो' द्वारा लिखी हुई डायरी के एक दिन का वर्णन है–''मुझे बुखार आ गया। साइकिल चलाना मुश्किल है। अरविन्द की साइकिल पर ही गई थी। दूसरे दिन अरविन्द साइकिल लेकर आया तो अम्मा ने चुपके से मेरा हाथ दबा दिया– मत जा। पापा बोले, क्या हर्ज? कब तक स्कूल छोड़े बैठी रहेगी? साइकिल पर थे हम। वह सीट पर, मैं आगे डेडे पर। बिन्दो! ''हाँ।'' मैने गर्दन घुमाकर देखा। वह कुछ नहीं बोला। मैं चाहता हूँ, तुम्हें बुखार चढ़ा रहे। तुम मेरे दुश्मन हो। हालाँकि मुझे उसका कहा बड़ा अच्छा लगा था। अरे, बैर जितना ज्यादा होता है उतना ही प्यार.......(दिनांक 7–2)''[24]

मैत्रेयी पुष्पा की 'फाइटर की डायरी' भी डायरी खुद की भी है और जहाँ लेखिका हरियाणा पुलिस एकेडमी के ए.डी.जी. साहब के द्वारा मधुबन करनाल मेंबुलाई गई थीं । वह जून की गर्म दोपहर भी, तारीख 24–06–08। वहाँ लगभग दो–ढाई महीने लेखिका दिल्ली से जाकर करनाल में विकास नारायण राय (डी.जी.) की मेहमान थीं। वहीं लेखिका ने पुलिस प्रशिक्षण के लिए आई लड़कियों से बातचीत की, अनौपचारिक कक्षा भी उनके लिए ली थीं। ''आत्मकथा के दो भाग लिखनेवाली मैत्रेयी पुष्पा के संघर्ष का माथा इन लड़कियों की आत्महंता स्थितियों और उनका सामना करने के साहस के सामने झुक गया।''[25]ये बातें खुद लेखिका अपनी 'फाइटर की डायरी' की भूमिका में लिखती हैं। उन सारे सिपाही लड़कियों का संघर्ष और साहस सुनकर लेखिका ने यह किताब डायरी शैली में लिखी थीं। दिनांक–19–7–2008 जय हिन्द! कहकर वह लड़की खड़ी हो गई। मैं रीना। ज्योति की तरह हम जिद नहीं कर सकते थे मैम। जिद करने का समय या माहौल तब होता है, जब सामने वाला हमसे ताकतवर हो। यहाँ तो पापा शराब में धुत और भाई हैंडीकेप्ड। ऊपर से एक लड़के ने भाई के ऊपर केस लगा दिया तब, जब वह प्लस टू का आखिरी पेपर दे रहा था। इतनी परेशानियों में कोई भी नार्मल नहीं रह सकेगा। लड़कियाँ घर–परिवार में होनेवाली रंजिश का शिकार होती हैं, इसलिए उन पर बंधन लगा दिए जाते हैं। मेरा भी पढ़ना छुड़ा दिया गया। गाँव में दसवीं तक स्कूल था। जींद शहर जाने में खतरे दिखते थे। मैं सोचती,

सभी लड़कियाँ आराम से घर में रहती हैं, माँ–बाप की आँखों के सामने सुरक्षित रहकर शादी करके ही गाँव बाहर जाती हैं। मैं क्यों रोती हूँ?

मैं जिद में नही, खतरों से गुजरने के लिए अकेली ही जींद पढ़ने जाने लगी। वहाँ देखा, खेल का अलग महत्व है। हमारे पास मैदान तो दूर खेत भी नहीं कि प्रैक्टिस कर सकें। जितना जींद में सीखा था, वही पुलिस के सलैक्शन के लिए हमारे पास था। किसी तरह खेत में प्रैक्टिस करने गई। पाँव में ठूँठ पड़ गया। मांस फट गया। चलना मुश्किल। अब हाई जम्प और रेस कैसे होगी? लेकिन उस समय मुझे अनुभव हुआ कि लड़की में इच्छा–शक्ति हो तो उसे कोई कहीं से रोक नहीं सकता। मैम, मैंने अपने आपसे ही जिद की है, किसी दूसरे से नहीं।''[26]

लेखिका इन सिपाही लड़कियों को देखकर अचंभित होकर कहती हैं–''मैं कितना भ्रम में थी, सिपाही–लड़कियों की सूझ–बूझ और चेतना संपन्नता देखकर मैं हतप्रभ रह गई। गाँवों से आइ इन लड़कियों ने आखिर कितना संघर्ष किया है कि इनके अनुभव विचार बनकर बोल रहे हैं। इनकी आँखों में भावात्मक ऊष्म की चमक है और इनके चेहरे लगाव से लबरेज हैं।''[27]

6.4 सामाजिक विद्रोही भाषा शैली :

मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य का मूल विषय है नारी के विरोध में होने वाले हर प्रकार के शोषण, अत्याचार का विरोध कर उसको मानव का दर्जा दिलाना और परंपरागत जीवन मूल्यों से हटकर नारी के लिए नारी द्वारा नवीन मूल्यों का गढ़ना है। सादियों से लेकर वर्तमान समय तक नैतिकता से लेकर हर प्रकार के जितने भी मूल्य गढ़े गएहैं पुरुषों द्वारा ही गढ़े गए हैं। मैत्रयी पुष्पा अपने साहित्य में स्त्री पत्रों द्वारा इन सबका विरोध करती हैं। विरोध करने के क्रम में इनकी भाषा सामाजिक साहित्यिक नियमों के विरोध की भाषा बन जाती है। ग्रामीण रेशम के शब्द इसका एक उदाहरण है।''हाँ मैं पेट से हूँ अम्मा'' सुनकर बूढ़ी की आँखे फटी रह गईं। बोल बंद हो गया साँस रूक सकती होती तो उसी दम रूक जाती। कुलच्छिनी बहु ने अपने पाप की कटार हुकमकौर के सीने चला दी। कौडी सी आँखे निकालकर देखती रह गई– मेरे बेटा की मौत से दगा करनेवाली हरजाई बदकार! तेरा मुँह देखने से नरक मिलेगा, खेती जलेगी, अकाल पड़ेगा। गंगा में सौ अस्नान करो तो भी यह महापाप छूटना नहीं। स्त्री

जीवन में पतिव्रत–धर्म को तोड़नेवाली औरत के लिए दण्डविधान.. पर रेशम ठहरी अपनी मर्जी की मालिक और मुँहजोर। सास से गुँथ पडी क्यों दोगे सजा? पाप मैंने किया है कि पाप तुम करोगे'...कड़े रूख के साथ मिसमिसाई, 'रंडी मेरे पूत की चिता तो सीरी हो जाने देती।' रेशम भोले भाव बोली, अम्माँ तुम तो बिरथा ही दाँत किटकिटा रही हो। तुम्हारे पूत की चिता ठंडी हो जाने से क्या मेरी देह की आग बुझ जाती? जीतों–मरतों का भेद भी भूल गई तुम? बेटा के संग मैं भी मरी मान ली?''[28] इस प्रसंग में सास पितृसत्तात्मक भाषा बोलती है तो रेशम, पुरूष और पुरूष व्यवस्था को चुनौती देती हुई मर्दवादी भाषा बोलती जो पुरूष व्यवस्था को चोट है। रेशम के मुँह से जो शब्द निकलते हैं। वह मर्दवादी शब्द है। मर्दों वाली भाषा मेंस्त्री और विधवा स्त्री का प्रश्न स्त्री की मुक्ति के प्रश्न से जुड़ा हुआहै।

'इदन्नमम' की कुसुमा भी सामाजिक स्त्री नियमों का अतिक्रमण करती है। जब उसका पति उसकी उपेक्षा करता है, अपमान करता है दूसरी औरत को घर में लाकर रखता है तब वह घर में अकेली रहती है। इस निराशा में चचेरी ससुर दाऊजी प्रेम दिखाता है। दोनों की नजदीकियाँ शारीरिक संबंध में बदल जाती हैं और बात, बच्चा जनने तक बढ़ जाती है। वह उस संतान को लेकर पति के घर आती तो उसे सुनना पड़ता कि वह संतान अवैध संबंध दाऊ से जन्मा है। उस को ''कुसुमा का चेहरा विद्रूप हो आया। कड़वाहट हलक तक भर आयी।तब कुसुमा इस प्रकार जवाब देती है–''हमारे कुँवर तो नहीं ब्याह की संतान, यह बात तो हम गा–गाकर कह रहे हैं।.... पर बैन, तुम अपनों का सबूत दे दो कि तुम्हारे सात खसम से ही जायिंदा है। कोई कसौटी हो तो दिखा दो घिस कर। रही हिम्मत बाँट की बात, सो निसाखातिर रहो, हम तुम्हारा कुछ नहीं बँटायेंगे। हमारे कुँवर के पिता का तो तुम्हारे हिस्से से कई गुना बड़ा हिस्सा है, घर में और खेत में। फिर छोटे हिस्से पर क्यों जायेंगे हम?''[29]

चाक की नायिका सारंग भी जब अपने बेटे को दिल्ली भेजने के लिए तैयार होती है तब उसका पति उसका हक मारता हुआ मनमर्जी करने पर उतर आता है। लेकिन सारंग को बेटा से दूर रहना पसंद नहीं । पति उसकी बात नहीं मानता है और जिद्दी बन जाता है। तब सारंग गुस्सा में प्रतिरोध की मूर्ति बन जाती है। लेखका लिखती हैं–''पिटकर दोगुनी ताकत का अनुभव हुआ सारंग को, बुरी तरह लपक पड़ी हाथ पाँवों में, पागल की भाँति दौड़कर खूँटी से बंदूक उतारी और बिजली की सी फुर्ती से चला दी दोनाली–धाँय–धाँय! यह भी न सोचा

कि निशाना किधर.... घर–आंगन थर्रा गया। चिड़िया–परेवा फड़फड़ा उठे। असल मर्द है तो छू चंदन को! छू? रणचंडी बनी खड़ी है सारंग।''[30]

ऐसे ही सामाजिक विद्रोह की भाषा में व्यक्त करनेवाली भुनव मोहनीभी है जो 'अगनपाखी' की नायिका है। पति के पागलपन के कारण वह उसके पास नहीं जाती है। उस समय माँ, मौसी, नानी उसे समझाते हैं तो भुवन गुस्सा में कहती है कि ''डुकरिया, तू मरने पर तुली रहती है। नाक नहीं बची तो जिंदगी का भी क्या करेगी? ला घोट दू तेरा गला। कहकर भुवन नानी की गर्दन कसली–मरजा। किसी का क्या जाएगी। ले मरमर–कहकर दो तीन झटके दिए।''[31]

'अल्मा कबूतरी' में मंसाराम की पत्नी आनंदी भी सामाजिक विद्रोह की भाषा में पति को डांटती है। 'झूलानट' की शीलो भी जब पति शहर में दूसरी स्त्री के साथ रहते हुए घर आकर शीलो को अकेले में बात करने के लिए माँ से विनती करता है तो वह सास से कहती है कि ''अम्मा पहले अपने बेटा को जेठ–बहु का कायदा समझा दो। अब अकेले में मिलने का मतलब बिना ब्याहे शीलो बालकिशन के साथ और सुमेर भी बिना ब्याहे दूसरी स्त्री के साथ रह रहे थे। तब जमीन जायदाद की बात आती है तो शीलो उत्तर देती है– जमीन–जायदाद की बात यह रहने दो कि यह मामला तो अब भी हमारे–तुम्हारे बीच ही है। बाबूजी! बालकिशन सिर्फ अपने हिस्से का मालिक है। वह कौन होता है हमारे–तुम्हारे हिस्से में टांग अड़ाने वाला? बिल्कुल ऐसे ही, जैसे तुम्हारी वह बिचारी कोई नहीं होती हमारे–तुम्हारे बीच। ये जर–जमीन के मामले बड़े कठिन हैं बाबूजी।''[32]'मैंने महाभारत देखा था' कहानी की नायिका 'ब्रजवाला' का पिता पीकर उसकी माँ को मारता रहता है और चार बेटियों की शादी को लेकर गालियाँ बकता रहता है। यह सब बचपन से देखते आ रही ब्रजेश एक दिन गुस्सा में आकर अपने पिता को मारना वर्णन करते हुए कहती है कि–''बाप को पकड़ लिया और ऐसे पटकने लगी, जैसे वॉलीबाल उछाल–उछालकर पटक रही हूँ। इतना मारा कि वह जमीन पर लेट गया। मां इतनी डरपोक कि मुझे ही रोक रही थी। बस मैं चीख पड़ा कि तू कायर है मम्मी, सो पिटती चली आ रही थी। तूने ही इसे हक दे दिया कि यह मनमानी करे।''[33]

6.4.1 निम्नवर्ग :

निम्नवर्ग की स्त्री की भाषा के बारे में अनामिका इस प्रकार स्पष्ट करती हैं कि ''एक बड़ी चुपचाप सी सहमति सबके मन में इस बात को लेकर बन गयी स्त्री दिखती है कि बोलती सिर्फ दूसरे–तीसरे दर्जे की स्त्रियाँ हैं क्योंकि बोलने की जरूरत ही सिर्फ उन्हें पड़ती है जिनकी रूमानियत भरी रहस्यमयी चुप्पी का घेरा लोगों का ध्यान खींचने में समर्थ नहीं हो पाता। यानी कि एक खास तरह की कमी एक खास तरह का खोट, एक खास तरह की अतृप्ति जो Castration complex से भी नीचे की चीज है, उन्हें बोलने को विवश करती है। पद्रमिनी नायिका को बोलने की क्या जरूरत। भट्टिनी को बोलने की क्या जरूरत। बोलती है निऊनियाएँ, प्रौढ़ाएँ, वेश्याएँ, विषकन्याएँ, रणचण्डियाँ और दासियाँ जिन बेचारियों का बोले बिना काम नहीं चलता। और जो भाषा वे बोलती हैं चटक, पुष्ट, जीवंत और धारदार–उसमें लोकजीवन अपनी पूरी ऊर्जस्विता और बाँकपन के साथ, अपने सब रंगों में सहज उजागर होता है।''[34] ऐसे लोगों के लिए ठेठ भाषा का प्रयोगबहुत बड़ा रोल अदा करती है।

मैत्रेयी पुष्पा भी बुन्देलखंड तथा ब्रजक्षेत्र की बोलियों की विशेषज्ञ तथा सिद्धहस्त प्रयोक्ता हैं। सादगी और सरलता उनकी भाषा की प्राण सखियाँ हैं। इनकी अधिकांश नारियाँ मध्यवर्ग या निम्न मध्यवर्ग की होती हैं। जो वे गाँव की ठेठ भाषा बोलती हैं। गाँव–घर की भाभियों, चाचियों, बुआओं की गालियाँ, उलाहने, कहावतें, किस्से, गीत, पहेलियाँ और ताने भाषा से एक ऐसी जोरदार होली खेलती हैं कि 'धोबिनिया धोये आधी रात' वाला आलम हो जाता है। 'मन नाँहि दस–बीस' कहानी में बेटा नपुंसक होकर बच्चे नहीं हुए तो सास ने बहु चंदना को दोष देती है तो चंदना सास को ही बेटा के बारे में नामर्द दोष देती है इस प्रसंग की भाषा इस प्रकार है–

''हमारे ही करम खोटे थे सो ब्याह लाएं छिनाल को। सास की कर्कश वाणी सुनकर मैं सन्न रह गयी। रोष पर वश नहीं रहा मेरा। मैं काँप उठी थी। क्रोध से मुट्टियाँ भिंचने लगीं और एक साँस में ही सत्य को उगल बैठी–अपने पुत्र के विषय में आप सब अच्छी तरह जानते हैं। फिर भी मुझपर तोहमत! है पिता बनने योग्य आपका पुत्र? मैं सास के समक्ष खड़ी पूछ रही थी। रंडी, हमारे लड़के को नपुंसक बताती है। घाट–घाट का पानी पीकर सती–सावित्री बन रही है। जा उसी यार के पास, मर्द तो वह है। सास क्रोध का लावा उगल रही थी।''[35]

मैत्रेयी पुष्पा जनजातियों की तीखी भाषा का भी प्रयोग करती हैं।'अल्मा कबूतरी' में अपनी भाषा को पात्रों व्दारा व्यक्त करती है। जब राणा को आनंदी जो मंसाराम की पत्नी कुत्ता से नुचवाती है तो उसे डरपोक कहकर गालियाँ देती है कि–''नुचे–चिंथे बच्चे को खटिया पर बेहोश–सा पड़ा देखकर किसी माँ की जो हालत हो सकती है, वही कदमबाई की थी। डेरों पर हलचल मच गई। उस समय वहाँ सरमन, दूलन, खुरदा और मलिया जैसे मर्द नहीं थे, औरतें ही चिड़ियों की तरह दुःख में कचपचाने लगी। दूलन की बहु ने कुत्ते को लाश हो जाने का श्राप दिया। सरमन की औरत ने मंसाराम को देखते हुए कहा–लोग हमारे दुखों का तमाशा देखते हैं और दिलासा देते हैं।

भजनी मुँह सिलकर दनादन लाल मिर्च पीसने पर जुटी थी। सारा गुस्सा लोढे पर कसे हाथों में था। संतोले की बहु ने जरूर हाथ फटकारे–कदम जिज्जी, वीरदेव, सत्यानास कर देंगे अन्यायियों का। सुनते हैं कि कुत्ता राणा को चींथ रहा था, इनकी लुगाइयाँ हँस रही थीं। रंडी हमसे इतनी डरने लगीं कि हमारे बालकों की हत्या पर उतर आईं।''[36] मैत्रेयी पुष्पा जनजाती स्त्री का क्रोध, यातना और घृणा को आत्मसात कर लेती हैं। मध्यवर्ग के संस्कारों को तोड़कर स्त्री पर होनेवाले अत्याचारों के विरूद्ध बोल उठती है।

6.4.2 मध्यवर्गः

मध्यवर्ग की नारी निम्नवर्ग की स्त्री जैसी खूँखार नहीं होती है। पुरूष रचित सामाजिक मूल्यों को, परंपराओं को संस्कारोंनिर्वाह करती है। मध्यवर्ग की स्त्रीयाँ यातनाएँ, जुल्म, शोषण सहते हुए भी सामाजिक संस्कार, परंपराओं को नहीं तोड पाती हैं। वह यथानुसार निर्णय लिये बिना ही उनके सारे निर्णन पुरूष हितों में तबदील कर डालती हैं। 'विजन' की नेहा की माँ निम्न मध्य वर्गकी है तो नेहाके ससुरालवाले उच्च मध्यवर्ग के हैं। दोनों अपने जीवन में मन मार के जीने वाली स्त्रियाँ हैं। नेहा एक कुशलचिकित्सिका होने पर भी शादी के बाद पति प्यार तो करता है मगर डॉक्टर के रूप में निस्सत्त की स्थिति एकदम सुन्न जैसी है। वह अपने आप में ही सोचती रहती है अपने आप में बोलती रहती है किन्तु मुखर नहीं हो पाती।

नेहा के मन में आता, अजय से पूछे– मैं राजा की रानी, फिर मेरी पदवी नीची कौन कर देता है? चोट इसलिए भी ज्यादा लगती है कि राजा के मुँह से दिलासा के दो शब्द तक नहीं निकल पाते। अजय ही मेरी जिन्दगी के दुखमय नाटक के नायक.... नेहा ने सोचा और

अपनी हर आद से, हर हरकत से, हर संकेत से पति को दोषी ठहराया। अब की बार भी खरखराते गले से बोली, 'ज्यादा शहादत न दिखाया करो। डोंट बी अ मार्टियर' कहते हुए होठों में ऐंठन सी पड़ी, अजय ने देख लिया.... चुप रह नहीं पाई मुँह से निकाल बैठी 'तुम्हारे पापा पर मुझे तरस आता है। सच अ हेल्पलैस मैन'.... 'पापा की बात छोड़ो नेहा। मैं तो जानता हूँ कि तुम कितनी सधी हुई सर्जन हो।..... डॉक्टर नेहा खत्म होती जाती जा रही है अजय.... आजिज दिखाकर आज ही देर मत कर डालो प्रेम की इतनी समझ! मगर प्रेम का साहस नहीं। साहस की कमी से प्रेम क्या, संसार भी खत्म हो जाये अजय। ....कॉन्फ्रेंस में जाकर मूड बदला जा सकता है, जीवन का ढर्रा नहीं''[37] लेखिका पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग करती है शहरी, वैज्ञानिक मध्यवर्गी लोगों की भाषा को उसीरूप में अभिव्यक्ति करती हैं। मैत्रेयी पुष्पा अपनी कहानियाँ 'बोझ' और 'तुम किसकी हो बिन्नी' में भी शहरी मध्यवर्ग की ही भाषा पात्रों के अनुकूल प्रयोग करती है जैसे कि पति–पत्नी दोनों नौकरी करते हैं बच्चों की देखभाल के लिए उनको क्रैशर में डालते हैं तो बच्चे आपस में रोते एक दूसरे से बातें कर रहे हैं। बहुत ही प्यारी और तोतली भाषा इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है–

'डबडबाई आँखों से ही उसने पूछा, तुम्हाला नाम क्या है? परछान्त.... अरून..... छिन्हा।' बोलने में सुबकियाँ व्यवधान डाल रहीं थीं, गोलू का बताया पूरा नाम अक्षय की समझ में नहीं आया। 'औ.... तुम्हारा'? 'अच्छय' 'बस अच्छय' 'मेरा तो कितना बरा नाम। परछान्त अरून छिन्हा' नाम बताते समय गोलू ने अपनी दोनों नन्ही बाँहे हवा में पसार दीं, 'इत्ता बरा' आखों में झिलमिलाते बिन्दुओं के साथ दाँतों की दूधिया पाँत मकई के दोनों की तरह खिल पड़ी। अक्षय ने हाथ बढ़ाया, ''हाथ मिलाओ फ्लैंड।''[38]

'तुम किसकी हो बिन्नी' कहानी में भी शहरी मध्यवर्ग की भाषा का पात्रानुकूल उपयोग किया है। मिसेस आरती गुप्ता को तीसरी बार भी बेटी होती है। वह होश में आती है नर्स उन्हें बधाई देती है उसकी प्रतिक्रिया का वर्णन लेखिका एकदम सटीक भाषा में वर्णन करती हैं कि–

''अब तीन वे यथार्थ की पहली सीढ़ी पर कदम रखते ही चीख उठीं 'नहीं ऽऽऽ ई.... नहीं ऽऽ' क्या हुआ आपको आरती क्या कर रही हैं आप? देखो, रूको हाथ–पाँव मत मारो, स्टिच टूट जाएगा! तेज ब्लीडिंग हो जाएगा। ज्यादा खून गिरना अच्छा नहीं– 'हेवी–ब्लीडिंग

इज वेरी डेंजरस' नर्स समझाने लगी पर कहाँ सुना मम्मी ने। गिरजी के रोगी की तरह हाथ–पाँव अकड़ा दिये और सचमुच खून की तेज धार बही, बिस्तर पर लाल पोखर–सी भर उठी। डॉक्टर! डॉक्टर! बेड नं 6 नर्स बच्चे को गोद में संभाले ही डा. भार्गव के पास दौड़ी''[39] यहाँ भाषा पात्र और परिवेश के अनुसार है।

6.4.3 उच्चवर्ग :

निम्न और उच्चवर्ग के लोग आवश्यकतानुसार भाषा का प्रयोग तोड़–मरोड़ कर करते हैं।वे उत्पीड़न, शोषण, जुल्म, तबाहों को सहन न करके तुरंत प्रतिरोध कर विद्रोह की स्थिति में आ जाते हैं। उच्च वर्ग की आभा पेशे से एक कौशल, समर्थवान डॉक्टर थीं, जो दिल्ली महानगर में उच्च वर्ग संस्कारों से पली बड़ी थी। उसकी शादी मध्यवर्ग छोटे शहर के कुशल डॉक्टर मुकुल से होती है। दोनों नौकरी करने के साथ खुशी से जी रहे थे। एक पिता दाम से दबाए, दूसरा हक की मार मारे। बूढों की दुनिया में आभा और मुकुल का हंस–युग्म लहुलुहान घायल हो रहा है।

'बड़े बाप की बेटी हेकड़ी दिखाएगी और हम सहते जायेंगे? कितनी मिन्नतें कितनी विनती.... महारानी के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी', मुकुल जो कुछ सपने में भी नहीं सोचते थे, गुस्से में वह कुछ भी कह गए हैं, आभा समझ रही थी। मुकुल तुम मेरी बात समझोगे कभी? बड़े बाप की बेटी होना गुनाह है? मैं क्या करूँ तुम्हारे हिस्से छोटा बाप आया। प्लीज अण्डरस्टैंड माय प्लाइट (मेरी मुश्किल समझो) आभा का स्वर ऊँचा नहीं उठा। 'हाँ, यह क्यों नहीं कहती कि मेरे माँ–बाप का सम्मान करना तुम्हें भारी पड़ता है।' 'मुकुल, अपनी बात तुम कहो जैसे अपनी मुश्किल मैं कह रही हूँ पिता के पीछे छिपकर तीर चलाने से फायदा नहीं होगा। तुम अपने लोगों से बेजार हो, पत्नी को दबोचने लगे। ''मुकुल.... ऐसी उम्मीद हरगिज नहीं थी। नंबर वन का टैलेंट लेकर तुम घटियापन की बातें सोचते हो छिः''[40] यहाँ पति और सास ससुरों के दबाओं का तिरस्कार है।

6.5 सामाजिक व्यंग्य शैली :

पुरूषानुकूल आचार–विचार को जहाँ स्त्री अपनीभाषा द्वारा अनुकूल करके अपने हित में बिना किसी बाहरी दबाव के अपना लिया है। ऐसे आचारों को उपहास व्यंग्यात्म भाषा में

अभिव्यक्त करने कीप्रतिभा मेंलेखिकामाहिर हैं। जब कबूतरी जाती की भूरीबाई का पति मर जाता है तो पति का संकल्प जो बेटा रामसिंह को पढ़ाकर कज्जा लोगों के समान उनके विकास स्तर तक पहुँचाना था। उसके लिएउसकोकई लोगों के साथशारीरिक संबंध में आना पढ़ता है। उस समय वहकहती हैकिविद्यारत्न के आगे शरीर कुछ नहीं है। कबूतरी समाज मेंपति नहीं रहने परभी दूसरे पुरूष से संपर्क रखना अपराध है। उसकेलिए पंचायत भूरीबाई कोजल समाधिकीसजा देतीहै–। इस संदर्भ में लेखिका पुरूष की जो षड़यंत्रकारी मानसिकता हैंस्त्री के प्रति घृणा, क्रोध कोरेखांकित करतीहैं।उनकेवाक्य विशेष ध्यान देने योग्य है जिसमें बताया गया है कि एक निडर स्त्री से पूरे का पूरा पुरूष समुदाय कितना भयभीत है ''भूरी कहा करती थी–तेरे मन कछु और है, कर्ता के कछु और! तीन–चौथाई रास्ता पूरा किया होगा कि सामने से तीन सिपाही रात की गश्त पर चले आ रहे थे। कंधों पर बंदूकें, हाथों में टार्चें! बूटों की मार्च करती आवाज। 'कौन है' का हुंकार मारता स्वर। सजा देनेवालों की बाँहें यकायक थरथराई। टाँगे भी काँपने लगीं, कुछ न सूझा, भूरी को बोझ की तरह पटक दिया। गीदड़ की तरह सरपट भागे। मैदान खाली हो गया। पुलिसिया! लहँगा उठाने के बदले जिंदगी दे गए। भूरी कृतज्ञ सी उठकर बैठ गई। बिरादरी का बिरादरी तक ही रहा कि भूरी को दिया छेक दो, मैं तो खुद ही जाति तोड़ देना चाहती थी रे... मुझे क्या गम?''[41] भूरीबाई के एक–एक शब्द से व्यंग्यात्मकता झलकती है।

6.6 राजनीतिक व्यंग्य शैली :

देश की असरवादी,भ्रष्टलोलुप, राजनीति का यथातथ्य अंकन अल्मा कबूतरी उपन्यास का बेहद सशक्त पक्ष है। लेखिका ने श्रीराम शास्त्री के माध्यम से राजनीति का व्यंग्यपूर्ण चित्रण किया। यह डाकू श्रीराम की ताकत का ही कमाल था कि उसे प्रसाद के रूप में मिनिस्टरी मिली। समाज विरोधी माने जाने वाले तत्व सत्ता के साम्राज्य में घुसबैठ बना चुके हैं। वह राजनैतिक लोगों के काले चेहरे चमकाने में मदद की है। बदले में धर्मधुरीनों ने श्रीराम को अपनी पार्टी का टिकट दिया और जीत जाने पर प्रदेश के मंत्री पदवी दिये।

''श्रीराम जानते हैं– बंदूक की नली से निकली ताकत से उनके गिरोह ने गाँव बीहड के इलाके ही नहीं, जिला शहर और कमिश्नरी स्तर के शहरों तक को हिला डाला था। अब

तो राजधानी पर दस्युराजों का कब्जा है। मुख्यमंत्री जगदीश्वर सिंह से उनकी मुलाकात 'ताकत' के लेनदेन पर ही हुई थी। अब यह दूसरी बात है कि पार्टी एजेंडा के अनुसार ताकत के ऊपर धर्म के चंदन का जो लेप चढ़ा हुआ है, उसी के हिसाब से श्रीराम शास्त्री अपने माथे पर रोली का लंबा तिलक खींचकर जय श्रीराम बोलते हैं।''[42]

श्रीराम शास्त्री को पदवी प्यारी है, मगर कागज–पत्तरों का हिसाब समेटने में लाचार। विधानसभा में उद्घाटन भाषण पढ़ डाला। लोग हो–हो करके हँसे। उन्होंने सोचा मार लिया मोर्चा आगे पढ़ते गए। श्वान निद्रा वको ध्यानम्, पंडित लोकमन का मूलमंत्र। कुछ दिन बीमारी का बहाना झांसी चले गए तो वहाँ संतोले की बहु पूछ लेती है कि ''लला, पुलिसियों को इतने दिन धमकाया बड़े से बड़े डकैत को भरमा लिया और ये लोग तुम्हारे कब्जे में नहीं आ रहे? ये उनसे भी ज्यादा चालबाज और खूँखार हैं? श्रीराम चुप–चुप रहते। अपने सवालों के जवाब संतोले की बहु खुद ही खोजती रही। कितने दिन चलता झाँसी रहकर? सत्र शुरू होता, आना पड़ता। कैसा आसान था डकैत जीवन! जो हो, वही दिखो''[43]

'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी में लेखिका स्त्री आरक्षण के नाम पत्नियों को पंचायत चुनाव में खड़ाकर पति लोग प्रचार–प्रसार के होड़ में आमने–सामने आकर अधिकार पाने की प्यास में एक दूसरे को सुशीला देवी का पति प्रीतम सिंह, कोमला देवी का पति धनपाल गाली–गलौज, कट–मर लड़ रहे तो उनकी अधिकारिक, सामंतवादी पुरूष लड़कियों को बेखातर कर उनकी पत्नियाँ घर छोड़कर जाने से इस घटना से व्यंग्य इस प्रकार है कि–''दोनों आपस में कट–मर रहे हैं, पर जुबान से गालियाँ। छोटी जाती के साथ औरतों को जोडकरी ही निकल रही है। ढेड चमार, भंगी, मैतर और अपनी माँ–बहनों को संग–संग रूई की तरह धुन रहे हैं। घरवालियों के नाम पर दोनों के घर सूने थे। ठकुराइन अपनी ननद के यहाँ थी तो धनपाल की दुल्हन अपने मायके बहने के ब्याह में चली गई थी, दो दिन पहले ही। सवेरे की पौ फटते–फटते गाँव में हल्ला हो गया। जो सुनता वह दौड़ने लगता वारदात की जगह। हाहाकार–सा मचा हुआ था। प्रीतम सिंह के दरवाजे के आगे चौक में दोनों लाशें एक–दूसरे केउपर गिरी हुई धरती पर बिखरे खून में लथपथ थीं।''[44]

यहां जो पुरूष अधिकार पाने के लिए स्त्री को वस्तु के रूप में उपयोग करना चाहता है उसे व्यंग्य किया। यह व्यंग्य पुरूष सत्ता और राजनीतिक सत्ता के धोखेबाजी को स्त्री दूसरे

स्त्री के लिए शत्रु न बनकर होशियारी से अपने पुरूषों सामंती मूल्यों को और राजनीतिक चालाकियों को समाधान दिये हैं। कहानी 'रिश्ते का नक्शा' में भी गाँव के पंचायत राजनेताओं की निर्णय को एक विवाहित बेटी नकार कर पंचायत नीति–रीति को लेखिका इस संदर्भ में व्यग्य करती है। विधवा माँ की अकेली संतान बेटी थी तो माँ मरने के बाद खेत, घर लड़की को देने के लिए पंचायत, उस गाँव की नीति नहीं तो वह बेटी उस पंचायत और प्रधान और पुरनियों को नकार कर धमकी देती है ''मैं तो बस इतना चाहती हूँ कि मेरे खेत यहां है, तो घर भी यहीं होना चाहिए। मेरा दिल चाहे तब आ जाऊँ यह बात तुम्हारी पंचायत क्यों नहीं मानना चाहती? यहि नहीं मानती तो मैं इस पंचायत के फैसले को नहीं मानती... कह देना कि गांववालों से, मेरी जगह–जमीन के बारे में सोचना, भूल जाएं। मेरे कौन होते हैं?... बता देना कि जमीन के सारे हक मेरे पक्ष में हैं। कागज इसका सबूत हैं।''[45]

इसी प्रकार 'फैसला' कहानी में भी सामंती पुरूष राजनीज्ञ जो पंचायत को चलाते आ रहे हैं चाहे वह पति भी क्यों न हो उन्हें आरक्षण के द्वारा अधिकार पाकर पछाड़ खिलाई थीं। प्रधान बनकर ब्लाक प्रमुख का चुनाव लड़ रहे अपने पति को, बहुत सोच–समझकर अपना वोट पति को नहीं देती है। यहां पर भी सामंती पुरूष व्यवस्था राजनीतिज्ञों को राजनीतिक व्यंग्य किया है ।

इसी प्रकार 'आरक्षित' कहानी में भी बाप–बेटा अपनी–अपनी पत्नियों को पंचायत प्रधानिन बनाने के लिए पर्चे भरे और एक दूसरे से चालाकी चलाने शुरू किया। प्रचार के लिए अपनी पत्नियों को लेकर गये और चुनाव के नतीजा आया तो पता चला कि ''गाँव में हल्ला हो गया–मटल्लू जीत गए। अतरलाल और नवाब सिंह के साथ पिंकू हार गए। सास–बहू खड़ी कर दीं, दोनों ने अपने ही वोट काटे।''[46] यहां पर भी लेखिका ने पुरूष अहंकारी व्यवस्था जो बाप बेटा को भी आपस में मार–पीट करने पर तुली हुई है। पत्नियों को माध्यम से अधिकार पाना चाहे थे उन्हीं के द्वारा लेखिका ने पुरूष सामंती व्यवस्था पर, चालाक राजनीति पर घोर रूप में व्यंग्य किया है।

'चाक' उपन्यास में गाँव में सारंग का पति और गाँव का प्रधान विपक्ष वालों से रुपिये लेकर सारंग को देता है। उस समय सारंग अपने ससुर गजाधर सिंह, श्रीधर मास्टर, कैलाश सिंह आदि की मदद लेकर चुनाव में पति और उनके पक्षवालों को पछाड़ खिलाती है। गाँव

की प्रधानिन बनती है। जहाँ बहुत सी स्त्रियाँ पुरूष अहं की बली चढ़ा दी जाती है। यहाँ भी लेखिका अहंकारपूर्ण सामंती पुरूष सत्ता का घोर व्यंग्य किया है। अपने ही पति और कई सालें से गाँव के प्रधान के रूप में कार्य कर रहे पुरूषवादी अहंकारियों पर घोर व्यंग्य किया ह।

6.7 धार्मिक व्यंग्य शैली

हर शोध–प्रतिशोध, सामाजिक हित के लिए स्त्री को पुरूष द्वारानिर्मित धार्मिक बंधनों में जीवन केप्रत्येक संदर्भ में,यहाँ तक किमरने तक बांधकर रखा जाता है। इन्हींपरंपराओं और संस्कारों, रीति–रिवाजों का भी मैत्रेयी पुष्पा अपनी विशेष भाषा शैली में विरोध करती हैं। व्यंग करती हैं।

जब कबूतरी स्त्रियाँ दारू बनाकर जीवन बितारही हैं तो गैरकानूनी काम समझकर पुलिसवाले उनके घरों में हमलाकर उन्हें गाली देते हैं। उनकी स्त्रियों का बलात्कार करते हैं, बंदूक चलाते हैं यहाँ तक नहीं देखते कि वे गर्भवती हैं। जैसा मन चाहे वैसा व्यवहारकरते हैं। पुलिस वाले कई प्रकार से उन्हें यतनाएँ देते हैं। गोली चलाकर उनकी हत्या कर खेतों में फेंक दिया जाता है। कज्जा जाती के लोगों को लाश का पता चलता है तो वह कबूतरी को गाली देकर लाश खेतों में से निकालने के लिए कहते हैं। उस समय लेखिका कदम बाई के माध्यम से अपनी खूंखार भाषा की अभिव्यक्ति करती हैं–''औरतें लाश कैसे फूँके? धर्म में मनाही है।.. फसल खराब हो रही है मादरचो.. रपट करूँगा कि तुमने औरत मारकर फेंकी है।

कदमबाई बाहर को उझकी। होठों ही होठों में बुदबुदाई– रे... रपट से कौन–सा नया कहर टूट पड़ेगा? सब तो गुजर गया। अगर भीखम गोमता और राणा गुदड़े–चिथड़े बीनकर अब तक आ गए होते तो हम तुझे पहले फूल का मद पिलाकर मार न डालते और जुमनी के संग ही फूँक देते।''[47] एक अन्य प्रसंगों में जब श्रीराम शास्त्री का दहन संस्कार अल्मा द्वारा हो रहा है। इस प्रसंग को मैत्रेयी पुष्पा ने समाज के लोगों की जो नाटकीय मानसिकता है उसको अत्यंत रोचकता के साथ प्रकट किया है–''भाई, औरतों का मरघट में आनेवाला यह नया चलन अच्छा नहीं। कच्चे मन की होती हैं। इस लड़की को देखकर अच्छे–अच्छों की छाती फट जाए। देखो, कैसे देख रही है, जैसे रास्ता न पा रही हो। भटक हुई हिरनी... आसपास भी कोई नहीं? निपट अकेली है? भीड में भिन–भिन जैसा धीमा शोर उभर रहा है। श्रीराम शास्त्री

की चिता से ज्यादा उनकी पत्नी ने लोगों का ध्यान खींच रखा है। अरे भाई क्या देरी है, चिता को आग नहीं दे रहा कोई। पंडित से कुछ कह रही है। क्या कह रही होगी? आगे से पीछे तक सूचना वाक्य आया– कह रही है, शास्त्री जी का अपना कोई नहीं। हाँ होगा कहाँ से, डकैत रहे थे। डकैतों का कुटुंब परिवार न हो तो डाका किसके लिए मारें? ये तो बेचारे सन्यासी डकैत थे। ब्याह भी अब किया। औलाद भी नहीं हुई। यकायक भिनभिनाहठ बंद हो गई। जन समूह स्तब्ध रह गया। लोगों की आंखे अंधी या नजर झूठी?

अल्मा ने आहिस्ता आहिस्ता अग्निमुख उठा लिया और अनवरत गूँजती मंत्रध्वनि के बीच श्रीराम शास्त्री की 'चंदन चिता' को अग्नि समर्पित कर दी। पवित्र वैदिक क्रिया का ध्वंस! पंडित का स्वर–प्रवाह जहाँ की तहाँ जम गया। वे अवाक् विमूढ़ स्थिर ऑखों एक–दूसरे को देखते हुए... कपालक्रिया के मंत्र भूल गए। होश आया तो धर्म–अधर्म और पाप–पुण्य के दलदल में फँसे आदमी की मर्मांतक पीड़ा उनके चेहरों पर पुत गई। राजयोग और धर्म संकट, श्रीराम शास्त्री की दाहक्रिया का घोर अपमान...विवर्ण मुख ब्रह्मण अपराधबोध से तिलमिलाए, मगर चिल्ला न सके।''[48] मैत्रेयी पुष्पा भारतीय धार्मिक परंपरा के अनुसारस्त्री को पति के साथ सति होने के पुरूषसत्तात्मक, क्रूर, भयंकर परंपरा को भी खड़े हाथों लियाहै। 'अगनपाखी' उपन्यास में बहुत ही नाटकीय ढंग में इसकावर्णन किया है। पुजारी के द्वारा देवी लीला के नाम से भुवन–मोहिनी को सती होने से बचाती है। प्रसंग का वर्णन इस प्रकार है–

'भुवन जिठानी के संग मंदिर की ओर पूजा के लिए बढ़ रही थी। पैदल जाना निश्चित किया था। राह चलते लोग ठिठक गए। उसने दाएँ–बाएँ गौर नहीं किया, चाल तेज थी, तेज होती गयी। शीतल गढ़ में दौड़ने का अभ्यास किया था, काम आया कि हवा पाँवों में बँध गयी। जिठानी पीछे–पीछे थी। हाथ में पूजा की थाली लिये हुए। वह सीधी मूर्ति के सामने... नियमित रूप से सुबह आने वाले भक्तों ने देखा, भुवन देवी दुर्गा के चरणों में सिर रखकर जार... जार रो रही है। पुजारी जी मंत्र पढ़ने लगे। सती की पूजा में घर की कोई सामग्री नहीं लगेगी। जिठानी गर्भगृह के बाहर खड़ी रही। मंदिर में पुजारी की इच्छा चलती है; उसका प्रबंध चलता है। दखल कौन दे सकता था? पुजारी जी ने संपन्न की और भुवन को उठाया, उठो तुम्हारा समय आ गया। पुजारी का अपना गोपनीय द्वार, जैसा कि पुजारियों का होता है,

आम लोगों से अलग रास्ते से भुवन के साथ निकल गए। इसी गोपन–कार्य को लोगों ने कहा– देवी की लीला''[49]

'इदन्नमम' उपन्यास में नायिका मंदा द्वारा उसकी बऊ की अंधभक्ति पर मंदा कई तरह से प्रश्न उठाती है, संदेह करती है उन सारे पवित्र कहने वाले जिस तरह पुरूष सामंती व्यवस्था में अपने जीवन को बली चढ़ा चुकी है। इसके साथ वह विरोध भाव भी बऊ के साथ जताती है कि ''नहीं बऊ नहीं। हम नहीं मानते। माता सत्यवती का अपनी बहुओं को वंश चलाने की खातिर–ऋषि व्यास के सामने नंगी अवस्था में खड़ी कर देना हम घोर अपराध मानते हैं। कुंती का परपुरूषों (इंद्र, अग्नि, वरूण) से पुत्र प्राप्त करना केवल इसलिए कि वंश का नाश न हो जाय, कतई उचित नहीं और अर्जुन द्वारा स्वयंवर करके लाई गयी द्रौपदी को अपने पाँचों पुत्रों में बाँट देना तुम्हें अच्छा लगा होगा बऊ, हमें तो एक औरत के प्रति दूसरी औरत का घोरतम अन्याय और कुकर्म लगा। और द्रौपदी किसी निरीह और बेचारी स्त्री से भी ज्यादा दया की पात्र लगी हमें। दुर्योधन के एक अभद्र वाक्य पर उसने जो–जो प्रण ले डाले, वे नाटक के बनावटी संवाद लगे। यदि ऐसा ही था तो उसी दिन कुंती का विरोध क्यों नहीं किया? क्यों नहीं कहा कि पाँच पतियों में मुझे बांट देने का अमानुषिक निर्णय आपने क्यों लिया? वापिस लो अपने वचन को। शायद द्रौपदी यह भली भांति जानती थी बऊ कि माता कुंती अपने पुत्रों को रूष्ट नहीं करना चाहेंगी और इस इच्छा को तोड़ने का दुस्साहस वह भी नहीं जुटा सकती। सो हम कहते हैं बऊ, पुरानी परंपराओं की जो थेथी और दुखदायिनी नीति है, उसकी अन्धभक्ति न करो।''[50] यहां लेखिका सीता और राम के बीच संबंध को भी प्रश्न करती है कि अगर सीता अकेले रहने के कारण अग्नि परीक्षा की जरूरी पड़ी तो राम के लिए क्यों नहीं और सबूत क्या है वह साक्ष्य सीता मांगना चाहिए था इस प्रकार स्त्री के लिए सामंती अहंकार पुरूष व्यवस्था से बनाये गये सारे नैतिक्ताओं को अपनी नायिका मंदाकिनी द्वारा विरोध, प्रश्न करवा कर एक प्रकार से रामायण, महाभारत, पुराण जैसे डोंग, थोथे धर्म ग्रंथों के लिए उस पुरूष सत्ता के लिए घोर व्यंग्य करती है।

'बिछुड़ गए' कहानी में चंदा की पुत्री शादी के पूजन की कोई रस्म होने के बावजूद घर से बाहर निकलती है तो तब वह धार्मिक रूढ़ियों को तोड़कर धार्मिक अंध–रूढ़ियों से व्यंग्य करती है। इसी प्रकार धार्मिक रूढ़ियों को विधवा जीवन में शांति भी रूढ़ियों को और

संस्कारों का अतिक्रमण कर बिन्दी, लगाकर, बिछुए पहनकर दूसरे पुरूष के साथ रहने लगती है, 'उज्रदारी' कहानी में भी घोर धार्मिक और सामाजिक व्यंग्य है।

6.8 मुहावरे :

विशेष अर्थ को प्रकट करने वाले वाक्यांश को 'मुहावरा' कहते हैं। मुहावरा पूर्णवाक्य नहीं होता है, इसीलिए इसका स्वतंत्र रूप से प्रयोग नहीं किया जा सकता मुहावरा कोश शब्द समूह नहीं होता। वह तो अर्थ की दृष्टि से सशक्त तथा स्वतंत्र इकाई होती है। किसी कथन, वक्तव्य या वाक्य को पूर्ण बनाता है। मुहावरा का प्रयोग करना और ठीक–ठीक अर्थ समझना बड़ा ही कठिन है। इसीलिए इसका नाम मुहावरा पड़ गया। मैत्रेयी पुष्पा महावरों को रचना में जीवंत लाने के लिए प्रयोग कर पाठकों के ऊपर गहरा प्रभाव डालती हैं। मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य में प्रयूक्त मुहावरे इस प्रकार हैं–

बेतवा बहती रही : 'जीभ तालू से ही चिपकना'; 'बहती नाक वाली उम्रं'; कुम्भाकर्ण नींद;'आत्मा को तिजाना'; 'गले नहीं उतारना'; 'सीने पर भारी पत्थर–सा'; 'तीरों के मुख झुका लेना'; 'कलेजा का तीर निकालना', 'पानी सिर से ऊपर उठना'; 'सर्पीली काली सड़क'; 'दुर्गन्ध भभकना'; 'खूँटे बाँधे ढोर–सा'; 'बन्दर–बाँट में जुटना'; 'उँगरियन पै नचा रहे, घग्घी बांधना, 'कच्ची उम्र', 'धुंधले कुहासे–सी मुख होना'; 'होंठ सिये रहना'; 'मुँह खोले रहना'; 'सारे रंगों पर कालिख पुत जाना'; 'शरीर से प्राण उड़ जाना'; नथुने फूलना', 'विषैले तिक्त घूँट पीना'।

उदाहरण केलिए ***'जुबान काबू में रखना'*** को लेखिका उर्वसी का पुनःविवाह प्रस्तावना जब अपने भइया अजीत लाते हैं तो अपना बेटा देवेश को ंअकेला छोड़कर जाना नहीं चाहकर भइया के विरोध में मुँह खोलती है। तब मुवरा में प्रयोग इस प्रकार है–''बेटी की जात...जुबान काबू में राखें चाहिए।''[51]

इदन्नमम : 'आग लगे मोरी बूडी छाती को'; 'कलेजा गुडमुड होना'; 'सब हमारे कपाल का खेल है'; 'अंगारे राख के नीचे नहीं, उनके कलेजे में दहके हैं'; 'दिमाग में सक–सुबह का कीडा रेंगना'; 'आँखों से चिनगारियाँ छूटने लगना'; 'नाक फूल उठना'; 'मन में कँटीला द्रव खौलना'; 'हिम्मत हार बैठना'; 'मुँह में पित जैसी कडवाह घुल जाना'; 'कँटीली नजर से देखना'; 'मन दरपन सौ साफ है'; 'कलेजा मुँह को आना'। उदाहरण कलिए–'' '***सब हमारे कपाल का***

खेल है''[52]को लेकर जब बऊ अपनी निस्सहाय स्थिति के व्यक्त निस्साहय समय में प्रयोग किया है।

चाक :'सीने में फिर तुफान घिरना'; 'चोला छोड़ देना'; 'मैं गंगा कैसे नहा जाऊँ?'; 'छाती पर हथोडा का प्रहार'; 'दबे पाँव घर से निकलना'; 'स्नेह पापशंकी'; 'उल्टे पाँवों भागना'; 'नाक में दम कर डालना'; 'ऊँट पहाड तले आना'; 'पराई आग में कौन हाथ जलाए'; 'हिम्मत मत हारना'; 'दाँतों तले उँगली दबाई'; 'जान हथेली पर रखना'; उदाहरण केलिए यहाँ ''***मुँह पर तितलियाँ उड़ना***''[53]–लियां जाए तो जब पति से सारंग गुस्सा होकर बंदूक उठाती है तो रंजीत और दलवीर, दोनों भाईयों के मुँह पर तितलियाँ उड़ रही हैं–भय से या आश्चर्य के कारण।

अल्मा कबूतरी : 'कान दीवार पर टाँगना'; 'आँखे देखते मक्खी निकालना'; 'दिन डूब जाना'; 'कलेजा बड़ा पकना'; 'चांद को चूम लेना'; 'कलेजा मुँह को आना'; 'उल्टी गंगा बहाना'; 'सॉपिन की जीभ जैसी लपटे'; ''***मरे हाथी सवा लाख का है***''[54]**–**इसमें लेखिका चुनाव में सूरजभान हारने से भी राजनेता का महत्व को समझाने के संदर्भ में उपयोग किया हैं।

झूलानट : 'डूबते–डूबते किनारा ढूँढ लेना'; 'मन मारना'; 'जान मुँह को आना'; 'राह का कांटा बनना'; 'सींग पैना कर खड़ी हो जाना'; 'लाखों की जायदाद पर दाँत गाडे बैठना'; 'माथा ऊँचा हो जाना'; 'रंग में भंग'; 'खुशी पर पाँव रखना'; 'हाथ अंगारे पर धरना';''***पाँवों में हवा बाँधना''***[55] **–**इसका प्रयोग बालकिशन जब घर से भागकर जोगी बनकर इस संसार के सारे रिश्तों को झूठा समझ कर भागने के समय प्रयोग किया है।

कहीं ईशुरी फाग :'साँस फूलना'; 'आग में घी का काम करना'; 'भभक उठना' ***'अपना रंग दिखाया'***[56] यह मुहावरा का प्रयोग रज्जो के भाई ने जब अपनी बहन के कष्ट काल में अपनी असली स्वभाव को दिखाये तो उस समय किया गया है।

अगनपाखी : 'शरीर में काँटे खड़े हो जाना'; 'घबराहट का खोता फहा'; 'स्वर्ग सिधार हो जाना'; 'कटे पर नमक चिटकना'; 'दुनिया से विदा लेना'; 'शरीर में पंख निकल आना'; 'खजाना हाथ लग जाना'; 'करेला चबाया–सा मुँह बनना'; 'हाथ पीले कर लेना'; ***'जिन्दगी से हाथ धो बैठना''***[57]**–**इसका प्रयोग लेखिका दाँगी की बेटी कुमुद के नाम पर हर साल चार–छः लडकियाँ अपना सतीत्व बचाती हुई, जन्दगी से हाथ धो बैठती हैं। उससंदर्भ मे प्रयोग किया गया है।

त्रिया–हठ : 'पसीने में नहाना'; 'मुँह छोटा होना'; 'जी घिनियाना'; 'रोटियों के लाले पड़ना'; '; 'कलेजा आर–पार होना'; 'घडियाली आँसू' ।उदाहरण के लिए ***'रहस्य घिर आना'*** मुहावर को देखने से यहां का संदर्भ है कि उर्वसी का बेटा देवेश अपनी माँ की हत्या के बारे में मीरा जिज्जी से बात–चीत करते समय हत्या का अनुमान जताते हुए कहता है कि ''हत्याके साथ सवाल जुड़ जाते हैं,जो कि मौत के साथ नहीं होते।नहस्य घिर आते हैं।''[58]

कस्तूरी कुंडल बसै :'कोप के घोड़े पर सवार करना'; 'कोल्हू का बैल'; 'कान बिछा देना'; 'आगबगूला होना'; 'नाक नचाना'; 'जुबान पर मिर्च का चूरा फैलना'; 'बिल्ली मारे पहली रात'; '***करेला चबाया–सा मुँह बनाना***'[59] इसका प्रयोग लेखिका तब किया हैं जब वे अपने गलीवाले पुरुषों से 'हँसकर बात करना जानकर अपने पति करेला चबाया–सा मुँह बनाए रहते हैं।

विज़नः'रात–दिन एक करना'; 'आँखों से उठनेवाली चिनगारियाँ'; 'सीताई आदर्श'; 'बेसिर–पैर–की बातें'; 'मरी चमगादड़ की तरह ओंधी पड़ना'; 'मनहूसियत छा जाना'; 'बगावत होठों पर आना'; 'हाथ–पाँव ठण्डे हो जाना'; 'माथा कूटना' ***''मीठे झरने में नहाना''***[60] मुहावरा को लेखिका तब प्रयोग किया जब आभा की शादी की बात को लेकर आभा के पापा मीठे झरने में नहा रहने के समय है।

गुड़िया भीतर गुड़िया :'आजिज आना'; 'उल्लू बनाना'; 'पानी में आग लगाना'; 'कलेजा बर्फ होना'; 'अँगूठे पर नचाना'; 'पिंड छुडा लेना'; 'दिल भर आना'; 'मुँह में दही जमना'; 'शेखचिल्ली का सपना'; 'दिल में ढोल–नगाडे बजना'; 'निगाहों में निगल जाना'; 'जी खट्टा सा हो जाना'; उदाहरण केलिए ''***कुएँ के मेंढक***''[61] मुहावराका प्रयोग लेखिका जब इल्माना का जामिया मिलिया छोड़ चुकी थीं, तब इल्माना मैत्रेयी पुष्पा को कुएँ के मेंढक की उपाधि देती हैं।

गुनाह–बेगुनाह :'रीढ़ सीधी रखकर चलना'; 'मुँह बिचक देना'; 'कुछ ताक पखकर चल देना'; 'मनहूस नरक'; 'प्यास पानी होने लगना'; 'कलेजे में अँगीठी दहकना'; 'औंधे मुँह गिरना'; 'हिम्मत पस्त होना'; 'पहाड़ घर में उठाना'; 'दिल भर आना'; 'आँखों से ओझल होना'; 'कलेजा छलनी हो जाना'; 'तन बदन में आग लग जाना'; 'नौकरी से हाथ धो लेना'; 'रंग में लाल भभूका होना'; 'धड़कन रूक जाना'; 'घर को मरधट बनाना'; 'कलम का भूत चढना'; 'नाक–मूँछ की उद्दंडताएँ'; 'बांछे खिल जाना'; 'नाक में दम कर देना'; 'खाप के कहर में फँस जाना'; 'रह–घोटं पाना'; 'कोढ़ में खाज'। ***''आँखों का कांटा''***[62] इसका प्रयोग लेखिका कॉनिस्टेबल

इला थाने में न्याय के साथ मुजिरिम के पक्ष में खडी हो जाती है, तो अफसर की आँखों का कांटा बनने के संदर्भ में किया है।

गोमा हँसती है :'भूतों से पूत माँगना'; 'जी हरिया आना'; 'सिर पर आसमान उठाना'; 'सूरज नारायण पूरब में मूँदना'; 'सेर पर सवा सेर'; 'चूल्हा ठंडा पड़ना'; 'बात को पीना'; 'कलेजा खाक हो जाना'; 'छाती में ईंदन स्वाह होना'; ***'पेट में घुटने दिये रहना'***[63] का प्रयोग शांति विधवा होकर जेठ–जिठानियों के साथ रहने के समय उनके अन्यायो को लेकर कई दिन पेट में घुटने दिये रही थी तो उस समय किया गया है।

पियरी का सपना :'बिगुल बजाना'; 'काली रंगत चढ़ना'; 'आँखों में फांकें'; 'रेत में नाक रगडाना'; 'भिड काटते रहना'; 'आँखे निकल आना'; 'उत्साह कफूर हो जाना'; 'कलेजा बाँधकर पुकारना'; 'बदन में तेल बढ़ना'; 'आंखों में रात कटना'; 'आंखे अठखेलियाँ करना'; 'मौका हाथ आना'; 'भुतमुन्ना बांधना'; 'बेहाथ हो जाना'; ' 'होश उड जाना'; 'हलक सूखना'; 'जुबान पर लकवा चढ़ना'; ***'हाथी डुबान पानी'***[64] का प्रयोग जब अवधबिहारी अपनी पत्नी को पंचायत द्वारा दिया गया दंड से बचाने के वास्ते रात के समय में गाँव से भगा ले जाते समय बीच में एक नदी पार करना होता है। तब अवधबिहारी नदी को देखकर डर के मारे हाथी डुबान पानी कहता है।

6.8 लोकोक्तियाँ और कहावतें :

ऐसी अवसरोचित टिप्पणी को लोकोक्ति कहते हैं, जो बँधे हुए शब्दों में किसी वांछित या अवांछित स्थिति के संबंध में समाज के चिरसंचित अनुभव, ज्ञान या दृष्टिकोण की परिचायकहो। अनेक लोकोक्तियाँ पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथाओं पर आधारित होती हैं, अनेक लोगों के क्रियाकलापों के निष्कर्ष के रूप में होती हैं, कुछ व्यंग्य प्रधान होती है, कुछ आदर्शों के लिए प्रेरणा स्वरूप होती है, कुछ सीखे देनेवाली या दिशा–निर्देश करने वाली होती हैं, कुछ तथ्यों का खंडन या मंडन भी करती है आदि आदि।

डॉ. बदरीनाथ कपूर के अनुसार ''लोकोक्ति के लिए कहावत या सूक्ति का प्रयोग भी होता है। कथा की संकेतक लोकोक्ति को हम कहावत कह सकते हैं। सभी लोकोक्तियों को कहावत नहीं

कहा जा सकता। 'सूक्ति' सुंदर उक्ति या आदर्श उक्ति को कहते हैं। 'सुभाषित आदर्श सूक्ति का पर्याय है।''[65]

बेतवा बहती रही :

'नये बछड़ों की तरह सींगों को पैना करके खड़े हो जाना'; 'दुर्गणों के सम्मोहन को त्याग देना ही तो बैराग है'; 'अहं का नाश ही सच्चा सन्यास है'; 'रात के अंधियारे में जगवौ बुरौ हो है बहु'; 'जब तक रोटी नहीं छुओगी, तब तक जा घर की बेटी हो'; 'जब रोटी छुओगी तब पाँव छुइयो'; 'जनी की जात तौ अगिन–परिच्छा देत–देत जिन्दगी काटत है'; ***''खचडी और घी की तरह मिल जाना''***मीरा की शादी में मीरा और उसकी बुआ जो छोटी दादी आजी की बेटी के परिवार वाले के बीच सारा वैमनश्य दूर हो जाकर शुभमुहूर्त में दोनों घरों के मिलन को वाक्य में प्रयोग किया गया है ''उदय, दादी, उर्वसी और आजी के कलेजे परस्पर खिचडी और घी की तरह मिल गये हैं।''[66]

इदन्नमम :

'स्थार जिनावर तक अपनी जाति का शिकार नहीं करते, मगर आदमी केवल आदमी को ही खाना चाहता है'; 'मूल–ब्याज का हिसाब–किताब भी सोभा नहीं देता ठाकुर रघुवंसियों को अहीर यदुबंसियों को'; 'गुंडई की खिलाफत में लोग बोलते नहीं'; 'अहीरों को दान–पुन्न लेना सोभा नहीं देता। दच्छिना नहीं सोहता यादवों को'; 'हद है तिल का ताड़ बनाते हैं लोग'; 'आक्रोशभरी भूखी निगाह बड़ी खूँखार होती है'; 'बन्दर के हाथ में उस्तरा पकड़ा देना'

''पराई जिम्मेदारी बज्जुर से भारी होती है।'' जब मंदा की दादी ने मंदा को पुलिस वालों से बचाके रखने हेतु गनपत दादा के घर में छुपाती हैं। दादा और पुलिस के बीच रात भर बात–चीत चलती है तो मंदा समझ जाती है कि ''दादा को चैन नहीं हैं पराई जिम्मेदारी बज्जुर से भारी होती है।''[67]

चाक : 'औरत और जमीन बिना मालिक की नहीं रहतीं'; 'चोरी और सीना जोरी दोहरा अपराध'; 'बलि के बकरे को खूब खिलया–पिलाया जाता है'; 'सैयाद कबूतरों को दाना डालकर जाल में फँसाता है'; 'शिकारी हिरण को मीठा संगीत सुनाकर रिझाता है'; 'निरासा से झुको मत, उसके आगे सीना तानकर खड़े हो जाओ'; 'दुश्मन को अंत तक खदेड़ते रहना चाहिए, न मालूम बकरी सा बैरी कब शेर बनकर आ जाए'

(–) 'जंग का सिपाही सदा जीतता ही नहीं। गिरता है, घायल होता है और खेत रहता है।'

(–) 'मूरख लोगों के मुँह लगना सबसे बड़ी बेवकूफी है।'

(–) 'डोर छू लेने से पतंग अपनी नहीं हो जाती'

(–) 'लुगाई से किसी तरह हार गए तो... चुल्लू भर पानी न मिलेगा डूबने को।'

(–) ***''इतना लाड लडानेवाले ज्यादा दिन संग नहीं रहते''*** रेशम का पति करमवीर जब भी सैन्य में से छुट्टी पर आता है तो पत्नी के लिए दुनिया भर की चीजें बैग भर लाता है। पत्नी को बहुत लाड़–प्यार करता है तो करमवीर की माँ गाली देते हुए कहती है कि ''इतना लाड लडानेवाले ज्यादा दिन संग नहीं रहते।''[68]

अल्मा कबूतरी :

(–) 'दूर–दूर रहकर कोई आदमी किसी को नुकसान नहीं पहुँच सकता डंक मारने के लिए नजदीक से नजदीक आना पड़ता है।'

(–) मिलकर रहना ही बचा लेता है आदमी को।

(–) ताकत से तकदीर बने न बने, सत्ता बनती है। सत्ता के बिना पत्ता नहीं हिल सकता।

(–) ईश्वर का सहारा मान लेने से मन बदल जाता है, मुसीबतों से ही आत्महत्या से बचना चाहिए।

(–) 'ईश्वर का सहारा मान लेने से मन बदल जाता है, मुसीबतों से ही आत्महत्या से बचना चाहिए।'

(–) ***''खुद को भय के हवाले करना ही नाश की निशानी है।''*** इस लोकोक्ति का प्रयोग लेखिका तब किया जब अल्मा श्रीराम शास्त्री के पास भेजी जाती है। वह श्रीराम शास्त्री को मारने या वहां से भाग जाने केलिए सोचते हुए अपने पापा की कही हुई बातें याद करती है कि ''पद्मिनी जौहर व्रत नहीं किया है, बल्कि उसने पाप को देह से गुजारकर विद्रोही लोगों को जन्म दिया। जिनके मन में प्रेम और हार्दिकता होती है, वे जिंदा रहने के लिए मौत से लड़ जाते हैं। लोगों को बचाने के लिए मरने से डरते नहीं। उन प्रेरणापूरित बातों में यह भी बात है कि खुद को भय के हवाले करना ही नाश की निशानी है।''[69]

झूलानट :

(–) छिंगुली उँगली से तेज की लौ निकलेगी, जो इस संसार दुराचारियों को भसम कर देगी – वे सीधी बैकुंठ जाएगी।

(–) मूढमति सर्वनाश हो जाएगा।

(–) बिना मर्द के घर की बड़ी–बूढ़ी मर्द की तरह ही शक्की हो जाती है।

(–) आदमी के कान बड़े बच्चे होते हैं, आँखे एकदम झूठी'

(–) बड़ा–बूढ़ा अपने मकसद और सच्चाई से लगन लगाए रहे तो मौत भी लौट जाती है।

(–) औरत में इतना साहस होता है कि उसके पसीने की बूँद गिरे तो रेगिस्ता में हरियाली छा जाए, आँखे से आँसू गिरे तो बेलों पर फूल खिल जाएँ।

(–) सुख के दिन ज्यादा नहीं होते हैं।

(–) जौन जनी का आदमी छोड़ जाए, वो बामन की संगत करे, वेद पुरानों में लिखा है। अपना तुपना मिलना पाप की बात नहीं है, पुन्न की रीति है।

(–) हीरे के बिना जौहरी की भी क्या औकात?

(–) अंधेरी रात के बाद दिन आता है।

(–) धर्म पैसे का जरिया है और राजनीति पैसे का खजाना

(–) मौत का विश्वास करना मौत होता है।

(–) बली की बगल में बैठकर कोई बलवान नहीं हो जाता।

(–) ***''भैंस–बैल के संग जुतने वाले को लोग जानवरों से अलग करके देखना भूल जाते हैं।''***

इसका प्रयोग वाक्य में तब किया जाता है, जब बालकिशन बारहवी कक्षा में फेल हो जाता है। हमेशा 'बालकिशन लला' पुकारने वाली अपनी शीलो भाभी एक दिन बालू–बालू कहने लगती है। वह उपेक्षित पात्र बनने से बालकिशन सोचता है कि ''बी.ए. पास कर चुका होता, तो यही शीलो भाभी गरम दूध का गिलास लेकर हाजिर हुई होतीं। भैंस–बैल के संग जुतने वाले को लोग जानवरों से अलग करके देखना भूल जाते हैं।''[70]

अगनपाखी :

(–) 'बातें तो सभी साधारण ही हुआ करती हैं, मौका और माहौल ही उन्हें खास बना देता है।'

(–) 'भाइयों में आपसी नाश की निशानी होती है।'

(–) 'हाथ पर हाथ धरकर दुख कौन न कर ले, पर काम तो हाथ पर हाथ धरकर नहीं होते।'

(–)'***'बिटिया की खबर लाना गाय को लोआ देने जैसा पुन्न है।''***[71] इस लाकोक्ति का संदर्भ हैभुवन की शादी के बाद उसे देखने ससुराल जाने के लिए किसी को पास समय नहीं रहने के कारण भुवन की नानी बाग में काम करनेवाले नौकर से कहने के संदर्भ में इस लोकोक्ति का प्रयोग किया गया है।

त्रिया–हठ :

(–) आधा अधूरा ज्ञान खतरनाक होता है।

(–) भले खोटा सिक्का हो, रहता तो अपने हाथ में ही है।

(–) हिम्मत औरत के मन में होती है, जूतों में नहीं।

(–) ''***ब्याह का संबंध आदमी–औरत की रजामंदी पर चलता है।***'जब बैरागी उर्वसी के साथ शादी करने की सोचने के बावजूद नहीं होने की बात को देवेश सेकहते हुए उसे समझाता है कि ''ब्याह का संबंध आदमी–औरत की रजामंदी पर चलता है। बाकी सब फालतू बातें हैं।''[72]

कस्तूरी कुंडल बसै :

(–) शेर का बच्चा भी कुछ दिन तक अपनी माँ का लाया शिकार ही खाता है।

(–) जिन्दगी फूलों की सेज नहीं है।

(–) कूपमंडूक की तरह पड़े रहने से रोशनी के दर्शन कम नहीं होंगे।

(–) सौभाग्यवती ही सुहाग का आशीर्वाद देंगी। उनका रूतबा देवियों का रूतबा है।

(–) '***नाइंसाफी को बर्दाश्त करना ही हमारी अशिक्षा है।***इस लोकोक्ति का संदर्भ है कि जब मैत्रेयी पुष्पा स्कूल में अपने प्रिंसिपल द्वारा अपमानित की जाती है। एक दिन अपनीमाँ को स्कूल ले जाकर प्रिंसिपल के सामने संकट के समय काम आनेवाले संवाद 'रानी रूपमती' नाटक में जो बोल चुकी थी उन बातों को क्रोध में आकर जोर से कहने लगती है कि ''इस नाइंसाफी को बर्दाश्त करना ही हमारी अशिक्षा है।''[73]

विज़न :

(–) मौत अमृतमयी होती है।

(–) अँधेरे के खिलाफ लड़नेवाले मौत से नहीं डरते।

(–) भाईचारा ही सहयोग का मूल है।

(–) 'लोक कल्याण' पधान वस्तु है, यह जिससे सजता है, वही सत्य है।

(–) ''***बुझता दीया भभककर जलता है।'*** इसका संदर्भ है कि योग्य डॉक्टर नेहा शादी कर ससुराल जाने के बाद वहाँ अस्पताल में अपने ससुरजी उसे रिशप्शनिस्ट के रूप में रखकर नालायक जैसा व्यवहार करते हैं। यही बात अपने पति से कहती है। तब पति अजय अपनी पत्नी को कहता है कि ''बुझता दीया भभककर जलता है। रोशनी भी करता है।''[74]

गुड़िया भीतर गुड़िया :

(–) जगह न बदलने का स्वभाव तो जानवर रखता है।

(–) पानी प्यासों के लिए होता है।

(–) अधूरा काम करने वाले हार जाते हैं।

(–) शिक्षा विद्या के फूल खिलाए।

(–)***'' औरत और मर्द होना चाँद सूरज होना है। रात और दिन का फर्क ''*** इस लोकोक्ति का संदर्भ यह है कि जब मैत्रेयी पुष्पा की सहेली इल्माना को पढ़ाई के वास्ते अलीगढ़ भेजने के लिए अपनीमाँ अनशन कर देती है और अपनी बेटी को समझाती हैं कि ''औरत और मर्द होना चाँद सूरज होना है। रात और दिन का फर्क।''[75]

गुनाह–बेगुनाह :

(–) गुल खिलाएगी, तभी तो गुलशन मिलेंगे।

(–) मर्द के एक हाथ में औरत के लिए सौगात है तो दूसरे हाथ में कोड़ा।

(–) मजबूरी के सामने रास्ता बनता है।

(–) जातियों का विधान तोड़ना–जोड़ना गुरूओं के भी बस का नहीं।

(–) जमीर बेचो या जिस्म, बात एक ही है।

(–) कौआ को हंस थोड़ी ही बन जाएँगे।

(–) ***''गृहस्थी औरत के सुख का खजाना होती है।'***इस लोकाक्ति का संदर्भ हैरेशम का पिता अपनी बेटी के साथ बलत्कार करता है। उसकी माँ के दिल में पति के प्रति नफरत होने पर भी कहती है कि 'गृहस्थी औरत के सुख का खजाना होती है।'' फिर ऐसे देखती है जैसे रेशम उस ''गृहस्थी को उजाड़ने का कारण हो गई।''[76]

चिन्हार :

(–) हमारी मांसपेशियाँ जिस अभ्यास को कुछ दिन कर ले उसे आदमी ता जिन्दगी नहीं भूलता।

(–) ''***कच्ची उमर कुम्हार की गीली मिट्टी की तरह होती है।''*** इस लोकोक्ति का संदर्भ यह है कि छवीली जब सात साल की थी तब उसके माता–पिता एक दुर्घटना में मर जाते हैं। गाँव में रहने वाले उसके काका–काकी अपने पास रखकर पढ़ाते है उस समय धीरे–धीरे उनके राह में चलने की आदत डलती है। वाक्य में प्रयोग है कि ''कच्ची उमर की गीली मिट्टी की तरह होती है। बस उसी के चलते धीरे–धीरे छवीली काका–काकी के मोह में बंध गयी।''[77]

ललमनियाँ :

(–) मौत का खौफ सब डरों से भारी होता है।

(–) रोजी का ठौर भगवान का ठौर है। (–) ''***औरत की गरिमा आढ़–मर्यादा से ही है।''*** इस लोकोक्ति का प्रयोग जब बसुमति पंचायती चबूतरे पर बैठकर दो व्यक्तियों के बीच न्याय देकर घर आती है तो पति कहता है कि ''पंचायती चबूतरे पर बैठती तुम शोभा देती हो? लाज–लिहाज मत उतारो! कुल–परंपरा का ख्याल भी नहीं रहा तुन्हें? औरत की गरिमा आढ़–मर्यादा से ही है।''[78]

गोमा हँसती है :

(–)बदनामी बाघ से ज्यादा भयानक होती है।

(–) पेड़ ज्यों–ज्यों बड़ा होता है, पत्तियाँ नीचे को झुकती जाती है।

(–) कलजुग में सज्जन न हो तो परलय हो जाय।

(–) बूढ़ा सुआ और बिर्द्ध आदमी रस की बात भूल जाता है।

(–) आदमी को जी छोटा नहीं करना चाहिए।

(–) ''***भगवान के दर्शन होने पर आदमी जगत–माया भूल जाता है।''*** इस लोकोक्ति का प्रयोग तब किया गया कि जब बेतवा नदी का बाढ़ के समय चौथे दिन अँधियारे–भरे भोर की वेला में राहत कैंप वालों की मदद केलिए हैलीकॉप्टर द्वारा कुछ पैकेट गिराये जाने पर लोग कुछ देर

के लिए बाढ़ को भूल, देवताओं के विमान को देखते रह जाते हैं। वाक्य का प्रयोग है कि ''भगवान के दर्शन होने पर आदमी जगत–माया भूल जाता है।''[79]

पियरी का सपना :

(–) समाज को व्यवस्थित रखने का सेहरा पति के सिर है।

(–) बच्चों के लिए सबका दिल नरम होता है।

(–) दिमाग खाली घर शैतान का अड्डा होता है।

(–) मीठा बोलनेवाली औरत फरेबिन मानी जाती है।

(–) मुस्कराते रहनेवाला आदमी किसी की बात पर ध्यान देने की जहमत नहीं उठाता।

(–) आदमी छोटी जगह में रहकर शालीनता की इबारत भूल जाता है।

(–) ***''ब्याह में देरी ही आदमी को चरित्र से गिरा देती है।***''[80] इस लोकोक्ति का प्रयोग गुल्लू के पापा अपने बेटे की शादी में देर होने से आने वाला नष्ट को अपने पत्नी को समझाने का संदर्भ का है।

कहावतें

बेतवा बहती रही :

'जैसो करो हतो तैसो ही फल मिलौ'; 'अन्न–दान महादान'; 'बेटी पराये घर की अमानत'; 'धूल में अटा हीरा'; 'पानी के बगूले सी फूटना'; 'साथ खाने से प्रेम बढ़ता है'; 'बैर का बीज पनपकर बृद्ध विष–वृक्ष बन जाना'; 'पानी के बगूले सी जिन्दगी'; 'दूध का दूध और पानी का पानी निथारने

वाला'; 'दूसरे के द्वारे कुत्ता की सी जिन्दगी काटना; उदाहरण के लिए ***'सिर पर कौवा बैठना'*** का प्रयोग लेखिका ने जब उर्वसी का पति सर्वदमन की मृत्यु का टेलीग्राम आने के संदर्भ में किया गया जैसे ''किसी ने ऐसे ही तो नहीं...शायद सिर पर कौआ बैठ गया हो, तब भी तो ऐसी खबर भेज देते हैं।''[81]

इदन्नमम :

(–)'भूँकने दो कुत्तों की तरह। हाथी को तो अपनी ही चाल चलनी होती है।' (–)'मियाँ–बीवी राजी और करेगा काजी' (–)'तोता की तरह उड़ गया मोरा लाल' (–)'जर–जोरू इकट्ठी मत होने दे। नास की निसानी है' (–)'डार–डार– पात–पात' (–)'बार–सिंगार, बार–जंजार'

(–)''बैठे–बैठे खाते हुए तो राजा–महराजाओं के खजाने खाली हो जाते हैं।'' (–)''खत्ती–खास रिता जाती है'' (–)''राजहठ पर किसी का वश नहीं।'' (–)''जैसा बोया तैसा फल चाख रहे हैं'' ''पिरभुआ की बात और कुत्ता की लात'' उदाहरण केलिए ***''बिना साहस की संवेदना रीढ़ विहीन देह की तरह हुई।''*** वाक्य का प्रयोग महाराज के उपदेश देने के संदर्भ में हुआ है कि ''मेल और संवेदना बड़ा ही शुभ लक्षण है। लेकिन साथ में आपदाओं से लडने का जुझारूपन भी तो चाहिए। बिना साहस की संवेदना रीढ़ विहीन देह की तरह हुई।''[82]

चाक :

(–)''बैयर घी का मटका होती है, आदमी की आँच पाए भसम उसी को होना पड़ता है''

(–)''ऊपरी लड़ाई के संग भीतरी जंग।''

(–)''राजनीति और रंडी किसी की सगी नहीं होती''

(–)''जिस घर में बाल–बच्चा हो, उस घर का चूल्हा ठंडा नहीं रह सकता।''

(–)''अंगूठा टीपना पत्थर की लकीर तो नहीं''

(–) ***''कुत्ते को थोडी सी मांस–मज्जा लगी हड्डी मिल गई, बस हो गया निहाल। शेर तो पूरा का पूरा सियार पाकर भी हाथी के शिकार को निकल पडता है।***''[83] इसका संदर्भ यह है कि प्रधान फत्तेसिंह जब रंजीत से कुँवरपाल को चीनी का कोटा सँभालने को देने की बात करते हुए कहता है। नशे में दुत्त रंजीत अपनी पत्नी सारंग से यही बात कहते हुए इस कहावत का प्रयोग करता है।

अल्मा कबूतरी :

(–)'जले हुए बदन पर कोडा फटकार देना'; 'अम्मा ततैया की खाई सी नाचे लगी।'; (–)'तीसरी पीढ़ी पर दादा–दादी का असर ही आता है।' (–)'नेता लोगों से दुश्मनी राजाओं से बैर लेने के मुकाबले ज्यादा खतरनाक है।' (–)'सत्ता की कुर्सी आदमी का ईमान नहीं परखती, विधाको की गिनती करती है।' ***''तेरे मन कछु और है, कर्ता के कछु और''***[84] इस कहावत का प्रयोग भूरी बाई को बदचलन के नाम पर अपने कबूतरा पंचायत के लोग जलसमाधी केलिए उठा ले जाते है उस समय सामने से तीन सिपाही रात की गश्त पर आने से सजा देने वाले वहाँ से भाग जाते हैं, तो तब किया गया है। क्योंकि मनुष्य जो सोचा है, कर्ता उससे अलग सोचकर भूरी बाई को मृत्यु से बचाया हैं।

झूलानट :

(–)'औरत की आंखों में उल्लू की पुतलियाँ होती है।'

(–)''होते–होते सिफर हो गई कीमत (–)''सबर का फल मीठा होता है।''

(–)''निरबंस आदमी अधबीच लटका रहता है।

(–)''तूत कपूत हो जाएगा, माता कुमाता नहीं होती।

(–)हाथ कंगन को आरसी क्या?

(–)बेटी का बाप–नाथा हुआ बैल।

(–)''सूरत से तो भोले पेट में दादी''

(–) ***''बारह वर्ष बाद घूरे के भी दिन फिरते हैं।''*** [85] इस कहावत का प्रयोग जब शीलो को छोड़कर सुमेर चला जाता है तो उसके सास बहू को दिलासा देने केलिए कहा करती है।

कही इशुरी फाग :

(–)''हाथी के दाँत खावे के और, दिखावे के और।''

(–)''जिनकी आँखे नहीं होतीं, कान तेज हो जाते हैं। कान नहीं काम करते तो सूँघने की शक्ति बढ़ जाती है।''

(–)जहाँ चाह वहाँ राह।

(–)डरनेवालों के लिए हर जगह डाकू हैं।

(–)जिस चीज को छिपाकर रखो, उसके पीछे आदमी का ध्यान ज्यादा रहता है।

(–)मन–मन भावे, मूँड हिलावे।

(–)धोबी के कुत्ता की, जो घर का न घाट का

(–)साँप की तरह उठते हैं, अजगर की तरह गिर जाते हैं।

(–)जा को राखै साइयाँ, मार सकै ना कोय

(–)शोक को जितना खींचो, उतना ही बढ़ता जाता है।

''पान के पाँवों से नहीं कुचलते। दोष लगता है।'' [86] जब ऋतु और माधव पी. एच.डी. के क्षेत्र कार्य केलिए निकलते हैं तब पान के खेतों में जाने से उन्हें ऐसा लगता है कि कोई कहा हो कि पान को पाँवों से नहीं कुचलते। दोष लगता है।

अगन पाखी :

(–)'पूत कौ पूत करेजे कौ टूक। धिय कौ पूत हरामी कौ मूत'

(–)'ईंट का जवाब पत्थर से'

(–)''हमारी बिल्ली हम से ही म्याऊँ''

(–)जब कौआ मोती चुगे और हंस लंघिन मार जाए

(–)आग होती है तो धुआँ उठता है।

(–)जिन्दगी और मौत अपने चाहे नहीं मिलती।

(–)''बीमारी बढ़ती है ताड की तरह, घटती है तिल–तिल''

''भाइयों में आपसी दुश्मनी नाश की निशानी होती है।'' [87] इस कहावत का प्रयोग जब भुवन ने बिरजू और लल्लू के सामने चंदर का बेइज्जत करता है उस समय किया गया है।

त्रिया–हठ :

(–)''नेता बनी हो और भेस सुहागिनों का''

(–)अगर धागा टूट जाता है, मोती बिखर जाते हैं

(–)छाती पर दलना ही कपूत का काम है।

(–)पराए चूतरों के गू हो लला, अपनी पोंद भिडाएँ क्या होता है? सत्ता सेर।

(–) ***''छाती पर मूँग दलना ही कपूत का काम''*** [88] इस कहावत का प्रयोग करने का संदर्भ है कि उर्वसी की माँ अपनी बेटी की शादी के लिए अपने पैंजना बेटे से बचा लेती है। क्योंकि अजीत की क्षमता को कमतर आँका था कि वह कामयाबी के लिए पैदा ही नहीं हुआ, छाती पर मूँग दलना ही कपूत का कामहै।

कस्तूरी कुंडल बसै :

(–)पर पाँचों उँगलियाँ बराबर नहीं होती और न सब धान रूपए के

(–)''राजा का राज चला जाएगा तो भी मरा हाथी सवा लाख का।''

(–)''राजा की रानी एक, बान्दी हजार।''

(–)''लुगाई के नाक न हो तो गू खा ले।

(–)शेरनी भूख से तड़पेगी तो घास नहीं खा लेगी।

(–)चिडियाघर की जानवर शहर में कैसे रहे।

(–) ***"पराए गाँव की घोड़ी और स्त्री दोनों से ही बचकर रहना चाहिए।"*** इस कहावत का संदर्भ है कि मैत्रेयी पुष्पा के विवाह के समय दुल्हन वाले बारात बनकर आने पर उस गाँववाले दुल्हन को घोड़ी पर बिठाने से गाँव के बच्चे घोड़ी की पूँछ ऐसी मरोडी की घोड़ी गाँव की दिशा छोड़कर नदी की ओर भगने लगी। दुल्हन लगाम साधने पर भी बरजोर घोड़ी सधे नहीं अनिष्ट होते–होते बचे थे। तब नंबरदार ने दुल्हन को राज की बात बताते हैं कि "पराए गाँव की घोड़ी और स्त्री दोनों से ही बचकर रहना चाहिए। क्योंकि दोनों ही अपने आपको रानी से कम नहीं समझती हैं।"[89]

विज़न :

(–)भीड के सागर पर यह बालू का पुल

(–)भंगी बनकर कमाओ तो राजा बनकर खाओ भी।

(–)टूटे नाखून को जड़ से काट देने के सिवा चारा भी क्या होता है?

(–)बिगडी हुई गाय को मालिक कसाई के हवाले कर देता है।

(–)भरी थाली को लात मारने वाले शेखचिल्ली होते हैं।

(–)कानी के ब्याह को सौ जोखिम (–)तू डाल–डाल, मैं पात–पात

(–)कौडियों की चीज अशर्फियों के दाम

(–)'***मुल्ला की दौड मस्जिद तक***'इस कहावत का संदर्भ है कि जब डॉ. नेहा का विवाह अजय से तैय करने के समय अजय के अयोग्य होने और उनके पापा डॉ. आर.पी. शरण के चालाकीपन को लेकर डर के मारे नेहा भगने के लिए सोचती है। लेकिन ऐसे करने के लिए हिम्मत नहीं कर पाती है। तब इस वाक्य का प्रयोग किया गया है–"भागे कहाँ?कहाँ–भागे नेहा?मुल्ला की दौड मस्जिद तक।"[90]

गुडिया भीतर गुडिया :

(–)चौपाया बनते–बनते, कहीं दो टाँगों पर चलना न भूल जाए।

(–)औरत और मर्द होना चाँद सूरज होना है। रात और दिन का फर्क।

(–)बेटी सौ साठ, तबहूँ बबा की नाठ

(–)यथा राजा तथा प्रजा।

(–)नानी के नक्श धेवती में

(–)''छोत का मुँह कीचड़ में रगड़ना।''

(–)पीडावाली दांत को बार–बार जीभ छूती है।

(–)घोड़ी नाची तो अपनी शोभा को।

(–) ***''माय मरी तब जानियो, जब रोबत आबै धिय।''*** इस कहावत का प्रयोग लेखिका की माताजी की मृत्यु के संदर्भ में किया गया है। उनकी माँ के द्वारा कही हुई कहावत को याद करती हैं कि ''माय मरी तब जानियो, जब रोबत आबै धिय। इसका अर्थ है–माँ का मरना तब है, जब उसकी बेटी रोती आए।''[91]

गुनाह–बेगुनाह :

(–)न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी।

(–)''***आँख ओझल सो पहाड़ ओझल।''*** इला अपने नौकरी के कारण घर से बाहर रहते हेए भी सुरक्षित है। उस संदर्भ में इला की माँ उसके पापा से इला की शादी के बारे में कहती है कि ''आँख ओझल सो पहाड़ ओझल। अर्थ है कि दूर रहते हुए शादी की जल्दीबाजी से बच जाती है।''[92]

गोमा हँसती है :

(–)मेरे पूत की बडे–बडे आँखें; (–)सैंया बिन ना सासरौ, मइया बिन प्यौसार

(–)कुत्तों के भौंकने का मलाल माना तो हाथी चल दिया

(–)हाथी डोले गाँव–गाँव, जाकौ हाथी, त कौ नाम(–)''***अब अलग बजाओ बंसी।''***

इस कहावत का प्रयोग तब किया गया जब शांति विधवा होने के बाद जेठ–जिठानी के अन्यायों के कारण उनसे अलग रहने का निश्चयकर तैयारियाँ करते हुए भोलाराम को बुलाकर सोने–चांदी को बेचकर पैसे लाने के लिए कहती है तो वह कहता है कि ''अब अलग बजाओ बंसी।''[93]

पियरी का सपना :

(–)आंखें बेशरम हो तो घूँघट की क्या लाज.

(–)हम तो करिया अक्षर भैंस बराबर

(–)कूढ़मगज औरतें और चौपट सरकार, ऐसे ही तो होगा सत्यानाश।

(–)बेटा जाये खुशी कि बेटा ब्याहे खुशी

(–)गुलाब का फूल और गरीब का दिल टूटने से कोई बचा ले, उसका लोहा माना जा सकता है। (–)''***बैल ब्यायेगा नहीं तो बूढ़ा भी न होगा।''*** इस कहावत का प्रयोग इस संदर्भ में हुआ है जब गुल्लू के पिता का एकमुश्त तर्क था कि–''बैल ब्याहेगा नही ंतो बूढ़ा भी न होगा। गुल्लू बारहवीं कक्षा में पढ़ते न पढ़ते पूरे चौबीस बरस का हो गया है, मां को वह स्कूल में पढ़ता बच्चा लग रहा था।''[94]

6.9 लोक भाषा या (देशज शब्द)

मैत्रेयी पुष्पा अपने उपन्यासों एवं कहानियों में बुन्देलखंड लोक भाषा की शब्दावली को अधिक रूप में प्रयोगकर अपने कथा साहित्य को उस आंचलिक ठेठगाँव की सजीवता से सजा लेती है। अपनी भाषा शैली से रोचकता बढ़ाती हैं। इस तरह उनकी रचना को एक तरह से खुराख ही मिल जाता है। लोक भाषा या देशजशब्दों का प्रयोग उनकी रचनाओं में निम्न प्रकार से हुआ है–

बेतवा बहती रही : बिट्टी, जैहौ, कारज तौ, बिटिया, माईं खटोला, मोंडी, राछरी, लरका, घरौंदे, रीता पछ; उमथाना, फक्क, हालत, गौना, बकसियाँ, कौडे, सखिया, अजी, डुकरिया, बखरी, सिर्रिन, जिरजिर कलेऊ, कलछोंही, मातौन, लोगन पंगत, मूसर, जुगिया, कछोटा, जई, निराट, ठाडी, ढिबरी, आले, छिछली, खपच्चीनुमा सीट

इदन्नमम : गैल, स्यात, नाँखती, हटोका, खेस, नोंने, ज्वानी, पुतरिया, हती, ओंछ, पनारे डुकरो, हलफ, रच्छ्या, नातर, कथरी मोंडा, उमाना, पीक, तपैदिक भडिया, खपरैल, बेहया, नुगरिया भीत, विरथ, हींसा, छिदमी, किरेसर, कैथ, घौला–गगरी तबिजिया, जलधरा, छेंक, वीतरागिनी, छुतैली, सोलिंग, गनीमत

चाक : सेगवार, हौल, सलवटे, भौमाता, सकल, कलप, गरून, तोसक, बिजुरी, भकुराई, बिढौरा, कौडी सी आंखें, सीरी, बिरथा, पीहर, खपच्ची, अमा, फस्सा, मिंडी अद्धा, खैरियत, बंजमारे, व्वार (जुगाली) बेसाओ, साबितरी, टेंटुआ, लाडो, बखस, सक्का, चकरोड, चीकट तैमद, गेंडा चेंदी (जड); बेसींग–बिजार (सांड), इलम, नैमाई, लीचडपन, नफा, फिजूल, कोंका, दुवारी, चिलम, छटाँक भर धिंगरई, लखाई (नजर), पिलान, छोरी, समूटा (चूहा), ऐना (आइना) भोरे (धोखे), हिन्नी (हिरनी)

अल्मा कबूतरी : लहकाई, चुटइया, जुनवा, कोऊ, आवत, घुल्ला, घोरे, टोरे डुरियाता, खिदमतगार, नमकहरामी, डिंगरी, लुगाई, सलीता चबैना, शर्तियाँ, गुदडियो, घुट्टी, नकचढ़ हौलदिली

झूलानट : झींका, कुभाखा, लुखरा, जोरू, गुलाल, अरदासी, जेंवेंगी बल्लम का फल, करकेंटा, पनिया, सूँतने हाजत, फारगती, पिचका सरिया, पाजेबों, खबाएँ, लाँघिन (भूखे) जुदा, इम्तहान, ताबेदार सिंकाई, पाजी, बमकना, मुआयन, गोंद, पीपरा, पुल्टिस, गाँगिन, तिडी–बिडी, चुहल, 'हल्दी अळरम–शटरम' लानत, चुगतखोर, बमका, लाल ईंगुरी बन्दी, रीझ हील–हुज्जत, अठैन (असगुन), हींडना, बालम, पटेक्षेप पहडे, डबला (मल्सा) 'चाशनी–भरी–बाते' ढहनाती, ढिबरी नासूर, मवाद, खौफजदा, औंधा

कही ईशुरी फाग : पाछू–पाछू, तरियाँ, अरटि, गुलाँटे, खीझ, चिमानी (चुपचाप) चकफेरी, पनइयाँ, झोंसवे, गुझिया, लुचई, सलेटी ऊटपटांग, लुटियाँ, नाऊ, ढरक, गालन, तलहटी, अय्याशी

अगनपाखी : पैनिया, पनका, गूजर, परजा, लोच, हुकुमउदूली नंगधडंग, चिल्लपों, कुडरी, अँजुरी, सूम, हाथों में कचारा, (ब्याह की काली चूडियाँ); बरौनियाँ, दायजा, गऊ, कुखियाँ धराशायी, नाती–नतूले, जंवाई, गुन्नियाँ, गोड, मामूतियाँ खुरपेंचिन, न्यारी, खुदकरा, शिकवा, गुडहल फूल, जथ्थे कुदजेहन, नखदंत,

त्रिया–हठ : स्लवदों, एकसार, दस्तबंद, रून–झुन, लिड़इया (गीदड़), आबोहका सुराही गर्दन, आमूलचूल बदलाव, लहदड, सैरगाह, गिलाह 'चिरचिट–सा चिपट', गुइयाँ, दिलजोइयाँ, टाँक–बिट्टा, खटराग न्योता, तगडी, निराई, बेंदगापन, लहजा, घाघ, सेंटना, लंगोरियाँ, उचटना, डाँग

कस्तूरी कुंडल बसै : रंघैरी, लौट, लैस, औहतिया, नाँठ, चिकोटी, पिया, उमगति, गलबहियाँ, जाइन्दा, बाजबहार, गंडधुवना हथलगुन, गडन्न, कोरचा, थुक्का, गुझिया, खाई

विज़न : लौह–इस्पाती, बरगद, संगदिल, पायरिया, परनाल, झाईं

गुडिया भीतर गुडिया : लिवास, काफूर, सुलहनामे, बतंगड, शिकवे, नकसुरी, नोनुटू चँदोब नजर

गुनाह–बेगुनाह : तजरूबे, नकेल, कोंच, नजारा, फख़, जिबह, गुड्डी, किरदार, ड्योडी, अबोहवा

चिन्हार : गेंगरीन, न्यौरियाँ, भनक, चमट्टा, मसखरी, इकलाइ, छज्जे जोरू, मलूक, काल–कवलित, छरहरी, बाई, काईं, धूसरित चिन्हार, लरिका, नातर, निकरी, खबाय निछद्रद्रर, जुगाड, हरखू कद्दावर, छदाम सूधरे, अगवानी, इजाफ, चिरौरी, गौना, पनीली

ललमनियाँ : आलोंड़न, पिरमुखिनी, ढिंग, धरियाँ, छान–छप्पर खरंजा, कोये, छीछालेदर, खाक, पुतरिया, शावक नेठम, डुग्गी, छिटंकी, उचटा, नाँखना, बेडा, विसल, तमसे गदीले, चाटुकार, मातौन, बेहूदे चित्र, गुडहली, हौदेदार धोंकनी, पिचकती, खटोले, कूढ़मगज, उत्फुल्ल चकरधिन्नी, डोलची, हेजदार, टोंटियां छिमाई, कनकटे, खोखा, छिटंकी, ज्यौनार, कलछोंहे

गोमा हँसती है : लिड़इया, टेंटुए, लिडौरी, पंचा, चक्कू, गुंजलक, लडदार, मूँड धींगामुश्ती, जाइंदा, घिची, गरियना, पुटियाना, चाँपो फरेब, तादाद, निरीत, रसद, सलोनापन, रवस्ता, मयस्सर, करतब, मूँड–मुडाय, कलछौंहा, 'घूरा पूजन', सप्तखप्पर छोकरा, फर्राटेदार, पुडिया, आनाकानी, कुपित, निरखना, नूरानी, ढुरऊ, सलाखों, घाटा, बागडबिल्लू, सफाचट लनैनी, सपेलुआ, बालिश्त, मातहती, निढाल, छाक, अजस मुछीका, भूमर, कन्नी, बदफरोस, डलियाँ, उबटन छिनाये, गेंदुआ, चनकटे, लोखरा, घरनी, सकेरना इल्लत, पतियारा

पियरी का सपना : बेतरतीब, किलोल खच्चर (चैनी शब्द), एकमुश्त उजड्ड, पलोथन पीटने, अर्दली, हलकान, ठलुआ भितरघात, ऐंड, फिरी फंड, खामखाह, खासा, उधेड़बुन रिवाडी, चवन्नियाँ, छुछक, छल्ला मूँड़, परकाला, भेकहबक, बागी, फरेबिन, पीपनी कलछोंहा

6.10 संस्कृत शब्द :

मैत्रेयी पुष्पा ने इंटर तक दयानंद सरस्वती द्वारा स्थापित कन्या विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त की थी जिस के कारण वे संस्कृत श्लोकों से भलीभांति परिचित हैं। अपने साहित्य में कई संदर्भों में संस्कृत शब्द, श्लोकों का प्रयोग करके स्थिति की सच्चाई, कमी या व्यंग्य को कहानी, उपन्यास और लेखों में प्रकट करती हैं। यहाँ उनके द्वारा प्रयोग किये गये संस्कृत के शब्द निम्न लिखित हैं–

बेतवा बहती रही : 'यथा गंगा तथेयं च... अस्था दर्शन मात्रेण पापोधाः यान्ति संक्षमम्।', अग्नि साक्षी, क्षब्ध, शुष्क, वाक् क्षोब, प्रतीक्षा, क्षत्र, 'कार्तिके वाय माघे, पेडच स्नाने प्रकुर्वन्ति, ते मुक्ता पाप बन्धनात' (पृ. 99) निर्निमेष, पाषाण विक्षिप्त, क्षीण, महाप्रयाण, तक्षक।

इदन्नमम : 'ओउम भूर्भुवः स्वः अग्नि ऋषि पवमानः पंचजन्य
पुरोहितः तमीमहे महागयम् स्वाह
ठदं अग्ने पवनाय इदन्नमम्'।।
अग्नि नक्षत्र।।

चाकः त्राही–त्राही, सकल

अल्मा कबूतरी :न्वानी गृहणानि नरोपणि...; वासंती जीर्णानि यथा विहाय
क्षिति जल पावक गगन समीरा, पार्थिव, कत्था(388)

गुडिया भीतर गुडिया : ''पुरूषस्य भाग्यं, त्रियाचरित्रं... किमडनि न जानाति।''

6.11 अपशब्द (गालियाँ) :

व्यक्ति अपने भीतर के आक्रोश, गुस्सा और घृणा को व्यक्त करने के क्रम में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है जो सामान्यतः व्यवहारिक व मानक भाषा में स्वीकार्य नहीं है। इसको समाज में गालियाँ और सुसभ्य भाषा में अपशब्द कहा गया है। मैत्रेयी पुष्पा ने जगह–जगह अपना गुस्सा और प्रतिरोध को व्यक्त करते हुए इनका प्रयोग किया है जो इस प्रकार है–

इदन्नमम् : बेडिनी, रंडी, ठगिनी, बेध्या, कपटी, ढोंगी, स्वार्थी, पापी, पिरूआ, साले मांस के लोथड़े

चाक : हराम की औलाद, दगाबाजी, लोंडिया (हरामी) राच्छसी, छिनाल, पोच (कमजोर), कुतिया और कमीन, साले, दूता–चुगली, आदमखोर बाघ राला! लुगाई का भडुआ (407); 'राजनीति भी साली रंडी–बेसा से कम नहीं।' बेसरम कहीं की। जुलूस में जाने की जिद (428) ''बेह, रॉंड, अऊती, निपूती' (249); छिनट्टा, ''वो SSS, सारंग का मुतमुन्ना (हरामी)। बानबिधा कुत्ता'' (231)

अल्मा कबूतरी : बेटीचोद, मादरचोद, लौड, 'माँ का कूँदा' (कबूतरी की बोली) बेटी के लबडे, 'अबे अम्मा के ढल्ला' ''कबूतरा साले लुगाइयों के संग मौज करते हैं, बच्चे पैदा करते हैं।'' (47) ''सालो बेचो दारू! थपलाओ मद रंडियो'' (44), 'साले चेले–चिंडाले' ''आजकल के लड़के कुत्तों से ज्यादा वफादार और भूखे हैं।'' (344)

झूलानट : लुच्ची, घाव करेदने की आदत है रंडी–राँडों को।, भडुआ, केंचुआ साँड, पतुरिया, साली ढोंगिन, पूतना, सूर्पणखा, राक्षसी

कहीं इशुरी फाग : बदतमीज, बदमाश, गुंडे, 'जरत लूघरा', 'बहन के लौडे' छिनट्टा 'नासपरे'

अगनपाखी : चुडैल ''भट्टी छोत, बाप–भइया नही ंतो ऐसी मर्दमार भईं जा रही है कि मर्द डरे।'' (36) बहन चोद, बेटी चोद, कुलक्षिणी

कस्तूरी कुंडल बसै : सौत, खानगी

विज़नः जल्लाद कसाई, हरामजादी, ब्लडी बगार, यू बास्टर्ड 'खाली खसम को छोड़ आई तो हर मर्द की दुश्मन हो गई। (176) हराम खोर।

गुडिया भीतर गुडिया : डायन, डकिनी, बदकार, हत्यारी, कलकिनी

गुनाह–बेगुनाह : कुल्टा, वेश्या, कॉलगर्ल्स, निपूती

6.12 अंग्रेजी शब्द : (विदेशी शब्द)

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा साहित्य में विदेशी भाषा जैसे अंग्रजी, फारसी व अरबी भाषा के शब्दों का प्रयोग नित्य आदत के तौर पर किया है। दैनंदिन जीवन में व्यक्ति जिस प्रकार इस भाषा का, शब्दों के प्रयोग का आदि हो गया है। इसी प्रकार मैत्रेयी पुष्पा के पात्र इसका प्रयोग करते हैं। जो इनके साहित्य में, भाषा में प्रवाहमयता लाती है। मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य में प्रयोग विदेशी भाषा के शब्द निम्न लिखित हैं।

बेतवा बहती रहीः होस्टल, बस स्टैंड, रैलवे स्टेशन, कॉलेज गेट, पेट्रोल, मोटरसाईकिल, 'सर्वदमन इज नो मोर'; पोस्टमार्टम; इन्टैसिटव केयर; बोतल स्टैंड; ग्लूकोड ड्रिप; विजिटर्स; प्लास्टर; सस्पेंड; ट्रैक्टर, रजिस्टर, कैंसर, ब्रेन–हेम्बरेज 'टिटनैस', केबिन; ब्लड टेस्ट, अल्ट्रासाउंड; एक्सरे; लेबोरेटरी; रिपोर्ट; किडनी फेलियर; 'वन आफ द बैस्ट नैफ्रोलोजिस्ट'।

इदन्नमम :टाउन–एरिया चैरमन, अस्पताल, चीफ, अफसर, ब्लास्टिंग फॉरवर्ड, इन्फैक्शन, कलक्टर, फाइल, केस, स्टे, जन्टलमैन 'टू इन वन' रेडियो, क्रैशर, स्टीयरिंग, एक्सीलेटर

चाक : हैडकांस्टेबिल, ट्यूब्वेल, टेलीविजन, सेक्रेटरी, बी.डी.ओ; ए.डी.ओ; टी.ए; बिल, इंजीनियर; एम.एससी (एजी.) पोस्ट ऑफिस, मिडवाइफ, हाईकोर्ट, सुप्रीमकोर्ट, रिकॉर्ड, प्रिंसिपल कमेटी चैरमन, कंट्रोल, वेयरहाउस इंस्पेक्टर, वेकेंसीज फॉमरिजेक्ट; इण्टरव्यू, सस्पेंड

अल्मा कबूतरी :वारंट, लैसेंस, बीडियो के बंडल, सिगरेट, रेडियो, फॉफिट, इंजक्शन, पार्टी एजेंडा, सर्वेंट क्वार्टर, सरकिट हाउस

कहीं ईशुरी फाग : थीसिस, इण्टर यूनिवर्सिटी कम्पटीशन, पैट्रोमैक्स, सिंथैसाइसर इंटोडैक्सन, आई कोन फोर्ड, ग्रीन रूम, अमेरिकन साइल डीलर, अडवांस, डीलिंग, 'हापर सैकेन्डरी, डिजाइनर रिसर्च, ग्रांट, गाइड, डिपार्टमेंट, कमांडर, पब्लिक

त्रिया–हठ : 'हैडमिस्ट्रेस, ब्यूटीशियन, मेकअप, करियर, टीपिंग स्पेशलिटी, वोट बैंक, फस्ट क्लास, पोजीशन, इंटरव्यू, नेशनल ग्रासलैंड, पर्सनल लोन गारंटी, 'हिस्ट्रीसीटर', ड्राइक्लीनर, उचक्का

कस्तूरी कुंडल बसैः कॉलेज कारीडोर, मैनेजमेंट कमेटी, 'कैम्प फायर प्रोग्राम', कमेंट्स, प्राइमरी स्कूल, नोटिस, प्रिंसिपल, साइकिल, किलोमीटर, कैप्शन को–एज्युकेशन, रेस्टीकेशन, इनफीरिआरिटी स्टूडेंट यूनियन, डीसीप्लिन, द, स्टेट्स ऑफ वुमैन इन मोडरन लिटेरेचर, अनफेयफुल गॉय, एप्लीकेशन, स्टेशन, 'क्वाइट कैपेबिल', ईगो, क्रिमिनल चार्ज, स्ट्रगल, 'वाक आउट' ''आफ्टर आल यू आर प्रौग्रेसिव मदर्स डॉटर''

विज़न : मशीन, इंजन, इंटर्नशिप, हाउस जॉब, मैटरनिटी, पेइंग पेशंट, 'ए फॉर एबिलिटी', 'बी फर बिहेवियर', 'सी फर कॉपटेंस', रिटायर 'बिहेवियर कॉम्पिटेंस शिट', 'प्रायवेट प्रैक्टिस' एक्जाइमर, टेकनीक, मॉडर्न टेकनीक, एब्सोल्यूटली, कॉन्फ्रेंस, मार्टियर, ऑत्थलमालॉजी रैटिना विक्ट्रक्टॉमी, सक्सैसफुल, हार्ड वर्क, आई बैंक्स, कॉर्निया ग्रापिटंग, पेशेंट्स, स्लाइड्स, कैटरैक्ट स्क्विंट ऑपरेशन, ग्रेटफुल, फॉरेन बॉडी ऑपरेशन, कॉम्प्लीकेटेड सर्जरी, इनक्वायरी, 'फ्रस्टेटिड वुमैन', गायनोकोलोजी 'कंसल्टेशन फीस' मेडिकल इंस्टिट्यूट, कैटरैक्ट 'दे सैटस्फाइ देयर ईगो बिहाफ ऑफ वुमैन' सुपरलेटिव कमेंट्स, वंडरफुल, एक्सीलेंट, स्पेशलिस्ट, एथिक्स, कल्प्रिट, एंडोल्यूमानेटर ऑटो क्लेव, सिंपेथिटिक, ऑप्थलिमक स्कोप, कार्डियक अरेस्ट ब्रेन–वाइरल

गुड़िया भीतर गुड़िया :पॉलिटिक्स, होपलेस केस, इंटरव्यू काल, लिंग्विस्टक, अरेंजमन्ट पॉश कॉलोनी, स्टाफ क्वार्टर, प्रायवेसी, स्टेट्स एक्पोरियम पीडियटिक्स, ब्रेव मदर, हायजीनिक, बी करेजियस, कॉन्फिडेंस, एक्सापीरियंस, गॉडमदर, सिनॉप्सिस, 'मास्टर और सर्वेंट रूल' रिसोर्स, 'सर्वाइविल ऑफ फिटेस्ट'

गुनाह–बेगुनाहः कोर्टकेस, लाकअप, ड्यूटी, पुलिस मेडल, सप्लाई, ट्रैवल एजेंसी, काम्प्रोमाइजिंग, गैंग रेप, कमांडोज, इंस्पेक्टर, रिपोर्टर, फटबाल, कैप्टेंसी, एकेडमी, वूमेन सेल, डेमोक्रेसी, टार्चर, क्रियेट, ब्लैकमैल, ब्रेक लॉ एंड ऑर्डर' कूरियर, ऐक्सीडेंट, इमरजेंसी, डिक्टेटर, 'डबल मर्डर' रिकॉर्ड, एंट्री, सस्पेंड, पावर, हाईकोर्ट, सैल्टूट, क्राइम रिपोर्ट, प्रमोशन, हेड कांस्टेबल, स्पोर्ट्स, अचीवमेंट, टूर्नामेंट, थर्ड डिग्री जनरल इलेक्शन, रैम्पलिंग, मोबाइल, कम्पूटर, इंटरनेट मशीनरी ग्लोबल, मदर इंडिया

कहानी संग्रह

चिन्हार : प्रोफेसर, टूयूशन, टूयूबवेल, ट्रांसफर, डेवलपमेंट, ऑल–विपेज

ललमनियाँ :जीप, सर्चलाइट, रजिस्टर, फैमिली, सिस्टर, कंट्रीब्यूशन, स्टैडर्ड, भूनिफार्म, 'ओ आलमाइटी गॉड' बेडरूम, ड्राइंगरूम, एफ्रिन, पेशेंट, वोट, लिफाफा, राइफल, डिविजन पोस्ट–आफिस, रस्टीकेट, एबाउट टर्न, मिडवाइफ, डाइरिया कांस्टपेशन, पोलियो, फैमिली प्लानिंग, थर्मस स्टैचू, फोटोग्राफर, मास्टर, क्लीनिक, फीट्स टेस्ट कंग्रेच्यूलेशन्स, फीमेल–चाइल्ड, काम्पोज, डिफिकल्ट ओनेस्टी, नाइट बलब,

गोमा हँसती है : हैलीकॉप्टर, गैस एजेंसि, रिजर्व कम्पार्टमेंट, रेल, मानिटर, टेलीविजन, फंड, स्टेज, साइकिल पंक्चर, टेस्ट

पियरी का सपना : पैरासाइट, रीजनल डाइरेक्टर, चैस्टिटी बैल्ट, अलबम, डायवोर्सी, गोल्ड मेडल, लेस्बियन, वो, बॉक्सिंग, डाक्टरेट डिग्री, सकिंग पंप, सेप्टिक टैंक, 'इनकम टैक्स' फार्महाउस, बेसिक नीड्स, सैकड़ों रिक्रूयूट्स, जनरल रोल कॉल

6.13 अरबी और फ़ारसी शब्दः

तत्सम, लौकिक भाषा, विदेश अंग्रेज़ी भाषा के शब्दों के साथ–साथ मैत्रेयी पुष्पा ने अरबी और फ़ारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया है जैसे–

अजान, मस्जिद, फ़ाख्ता, फजीहत, फासला, रूक़्क़ा, ज़हमत, महफूज़, मयस्सर, हिफाजत, हजामत, नसीहत, हिफाजत, मुखातिब, नफरत, खासा, इजाजत ;

पिस्सू, गोश्त, नमाज़, तुनक़मिज़ाज आदि

****

संदर्भ ग्रंथ :

[1] कामायनी–रचना प्रक्रिया के परिप्रेक्ष्य में, हरीश शर्मा, पृ. 6–7

[2] नयी कहानी की रचना प्रक्रिया, डॉ. सुमन मक्कड़, पृ. 12

[3] मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 62

[4] स्त्रीत्व का मानचित्र, अनामिका, पृ. 163

[5] स्त्रीत्व का मानचित्र, अनामिका, पृ. 164

[6] सुधा सिंह, इंटरनेट से

[7] नयी कहानी की रचना प्रक्रिया, डॉ. सुमन मक्कड़, पृ. 29

[8] उपन्यास की महान परंपरा, खगेंद्र ठाकुर, पृ. 157

[9] मेरे साक्षात्कार, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 21

[10] मैत्रेयी पुष्पा स्त्री होने की कथा, विजय बहादुर सिंह, पृ. 62

[11] आधुनिक हिंदी उपन्यास, नामवर सिंह, पृ. 18

[12] हिन्दी उपन्यास का इतिहास, प्रो. गोपाल राय, पृ. 389

[13] हिन्दी उपन्यास का इतिहास, प्रो. गोपाल राय, पृ. 390

[14] उपन्यास की महान परंपरा, खगेंद्र ठाकुर, पृ. 157

[15] चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 7

[16] झूलानट, मैत्रेयी पुष्पा, भूमिका से

[17] अल्मा कबूतरी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 350

[18] इदन्नमम, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 403

[19] नयी कहानी की रचना प्रक्रिया, डॉ. सुमन मक्कड़, पृ. 9

[20] उपन्यास की महान परंपरा, खगेंद्र ठाकुर, पृ. 167

[21] ललमनियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 120

[22] इदन्नमम, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 76

[23] ललमनियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 122

[24] हिन्दी का गद्य साहित्य, डॉ. रामचंद्र तिवारी, पृ. 242

[25] गोमा हँसती है, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 73

[26] फाइटर की डायरी, मैत्रेयी पुष्पा, भूमिका से

[27] फाइटर की डायरी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 17

[28] फाइटर की डायरी, मैत्रेयी पुष्पा, भूमिका से

[29] चाक', मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 18–19

[30] इदन्नमम, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 269–145

[31] चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 412

[32] अगनपाखी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 79

[33] झूलानट, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 108

[34] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 133

[35] स्त्रीत्व का मानचित्र', अनामिका, पृ. 163–64

[36] चिन्हार, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 64

[37] चिन्हार, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 64

[38] अल्मा कबूतरी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 85

[39] विजन, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 18

[40] ललमनियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 84

[41] विजय, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 107

[42] अल्मा कबूतरी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 76

[43] अल्मा कबूतरी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 350

[44] अल्मा कबूतरी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 358

[45] गोमा हँसती है, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 29

[46] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 32–33

[47] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 145

[48] अल्मा कबूतरी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 47

[49] अल्मा कबूतरी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 89–90

[50] अगनपाखी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 170

[51] इदन्नमम, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 269–270

[52] बेतवा बहती रही, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 83

[53] इदन्नमम, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 84

[54] चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 412

[55] अल्मा कबूतरी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 270

[56] झूलानट, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 152

[57] कही ईशुरी फाग, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 232

[58] अगन पाखी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 120

[59] त्रिया–हठ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 32

[60] कस्तूरी कुन्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 247

[61] विजन, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 90

[62] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 174

[63] गुनाह–बेगुनाह, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 155

[64] गोम हँसती है, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 105

[65] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 127

[66] हिंदी मुहावारे और लोकोक्तिकोश, डॉ. बदरीनाथ कपूर, भूमिका से

[67] बेतवा बहती रही, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 132

[68] इदन्नमम, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 36

[69] चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 17

[70] अल्मा कबूतरी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 368

[71] झूलानट, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 33

[72] अगन पाखी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 82

[73] त्रिया–हठ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 72

[74] कस्तूरी कुन्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 127

[75] विजन, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 46

[76] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 66

[77] गुनाह–बेगुनाह, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 31

[78] चिन्हार, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 26

[79] ललमनिया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 11

[80] गोम हँसती है, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 41

[81] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 168

[82] बेतवा बहती रही, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 62

[83] इदन्नमम, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 180

[84] चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 272

[85] अल्मा कबूतरी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 76

[86] झूलानट, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 29

[87] कही ईशुरी फाग, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 64

[88] अगन पाखी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 28

[89] त्रिया–हठ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 51

[90] कस्तूरी कुन्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 234

[91] विजन, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 125

[92] गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 127

[93] गुनाह–बेगुनाह, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 170

[94] गोम हँसती है, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 16

[95] पियरी का सपना, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 168

उपसंहार

जीवन मूल्य मानव सभ्यता के विकास के साथ बनते, विघटित होते, नवीन रूप लेते रहे हैं। नारी जीवन मूल्य की बात की जाय तो वह पिछली सदी से ही चर्चा का विषय रहा है। इससे पहले आचार संहिता का सार व भार नारी केंद्रित मूल्यों से जुड़ा था। नारी को मनुष्य कम आचार संहिता और सारे मूल्यों का गठित पुंज माना जाता था।

समाजिक सांस्कृतिक, धार्मिक मूल्यों का कर्ताधर्ता पुरुष है तो नारी इस मूल्यों के भार को ढोने वाली, कठपुतली रही है। नारीवाद के माध्यम से इन मूल्यों को तोड़ने का प्रयास किया गया। पितृसत्तात्मक व्यवस्था और परंपरागत मूल्यों पर प्रश्न चिह्न लगाया गया।

सीमोन द बोआर, क्लाराजेटकिन आदि ऐसी पाश्चात्य वैचारिक विश्व से जुड़ी रचनाकार हुई है जिन्होंने सारे विश्व की नारियों के सीने में दबी चिंगारयिों को हवा दिया।

भारतीय संदर्भ में इसकी बात की जाय तो ब्रह्म समाज, आर्य समाज व प्रर्थना समाज के माध्यम से भारतीय नारी की दयनीय दशा में थोड़ा बहुत परिवर्तन की आशा नज़र आने लगी। साहित्य में आदर्श के माध्यम से नारी को स्थान मिला। प्रेमचंद के साहित्य में इसका एक रूप मिलता है। प्रगतिवादी विचारों और यथार्थवाद ने नारी केंद्रित विचारों को आगे बढ़ाया। इसके चलते कई स्त्री रचनाकारों ने अपनी चेतना को अभिव्यक्ति दी।

'समकालीनता' मनुष्य को प्रासंगिक बनाये रखती है। आधुनिकता के समान ही समकालीनता एक मूल्यपरक दृष्टि है परंतु इसमें समय की अनिवार्यता आवश्यक है। आधुनिकता वस्तुतः एक प्रक्रिया है जिसमें मूल्य चेतना विद्यमान रहती है। आधुनिकता का चिंतन सबसे अधिक वर्तमान के लिए होता है। समकालीनता परंपरा और आधुनिकता के बीच की कड़ी है, जो नवीन मान्यताओं को प्राचीन से जोड़ने का कार्य करती है। 'समकालीनता' नव लेखन के संदर्भ में प्रयुक्त परिचित शब्द है। समकालीन शब्द एक विशेषण है, जो युग की विशेषताओं को स्वर देने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। ऐसा कुछ भी जो नवीन व अपने युग के मूल्यों को अभिव्यक्त करते हुए युगीन समस्याओं से जूझने का प्रयास करता है, समकालीन कहलाता है। समकालीनता परंपरा और आधुनिकता के बीच की कड़ी है, जो नवीन मान्यताओं को प्राचीन से जोड़ने का कार्य करती है। समकालीन कथा–साहित्य में जीवन–यथार्थ का कोई

भी अंग अनछुआ नहीं रहा है। आज के मनुष्य ने जिस–जिस रूप में जिन्दगी को देखा, भोगा, उन सबका प्रामाणिक दस्तावेज समकालीन साहित्य प्रस्तुत करता है।

साहित्य में स्त्री–जीवन के जो कोण ढके–मूँदे, अंधकार में रहे हैं, उन्हें स्त्री की कलम ने उद्घाटित किया है। सदियों से नखशिख, सद्यस्नाता स्त्री का वर्णन व अध्ययन करते आ रहे पुरुष को लगता है कि समकालीन स्त्री लेखन खतरनाक है, कयोंकि इससे उनकी सोच पर प्रश्न चिह्न लगेगा जिससे नया बवंडर मच जाएगा।

हिन्दी कथा साहित्य स्त्रियों के परिवर्तन की नयी श्रृंखला को जन्म देता है। नारी मुक्ति के इर्द–गिर्द रचा गया कथा–साहित्य स्त्री–विमर्श का साहित्य माना जाता है। मूलतः स्त्रीवाद एक ऐसा आंदोलन है, जो नारी को उसके अधिकारों के प्रति सचेत करते हुए अपने लिए सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक क्षेत्रों में संपूर्ण स्वतंत्रता और समानता की मांग करता है। 'पुरूष के लिए नारीत्व अनुमान है, परंतु नारी के लिए अनुभव।' पुरूष साहित्यकारों द्वारा स्त्री के बारे में लिखा गया है कि उसमें अनुभव की प्रामाणिकता, अभिव्यक्ति का अभाव है।

महिलाओं को उत्पीड़ित करने के लिए परिवार, जो समाज का एक छोटा अंश है उसके माध्यम से दबाया जाता है। पितृसत्तात्मक धर्म ने इसमें खास भूमिका निभाई जो मानता है कि औरत भी प्रकृति का हिस्सा है तथा उस पर पुरूष का दबाव व नियंत्रण होना जरूरी है। 'पुरूष के द्वारा नारी का चरित्र अधिक आदर्श बन सकता है, परंतु अधिक सत्य नहीं, विकृति के अधिक निकट पहुँच सकता है, परंतु यथार्थ के अधिक समीप नहीं।' पश्चिम में स्त्री–विमर्श से उद्भव 'स्त्री–मुक्ति आंदोलन' के माध्यम से स्त्रियों ने अपने लिए पितृसत्तात्मक समाज द्वारा बनाई गई सीमाओं का अतिक्रमण करना प्रारंभ किया और पुरूष सत्ता वाले मानदंडों को तोड़कर स्त्री जाति के विश्वव्यापी संघर्ष को रूपायित किया। आधुनिक समय में हिन्दी साहित्यकारों की दृष्टि के अनुसार प्रत्येक देश की परिस्थिति के अनुरूप ही वहाँ के समाज के निर्माण होते हैं। जब स्त्री और पुरूष की उत्पत्ति एक ही बदन से हुई है, तब दोनों के अधिकार बराबर क्यों नहीं? इस तरह के प्रश्न ही इस व्यवस्था पर दिखाई देते हैं, जो पुरूषवादी व्यवस्था पर चोट करती है। 'स्त्री–विमर्श' स्त्री–अस्मिता का आंदोलन है। स्त्री–विमर्श अपनी मूल चेतना में स्त्री को पराधीन बनाने वाली पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था

का विश्लेषण करता है। यह स्त्री को दोयम दर्जे का प्राणी मानने का विरोध करता है और स्त्री को एक जीवंत मानवीय इकाई समझने का संस्कार देता है।

हिन्दी कथा–साहित्य में एक नई स्त्री–चेतना का उदय समकालीन उपन्यास–साहित्य में स्त्री–लेखिकाओं द्वारा एक महत्वपूर्ण आयाम बनकर उभरा है। समकालीन उपन्यासों में आम आदमी के साथ स्त्री का चित्रण गंभीर बहस का विषय रहा है, क्योंकि नारी समाज के सामने बहुत सारे चुनौतियाँ रही हैं। स्वयं भुक्तभोगी होने के कारण अपनी वैचारिक स्थिति को लेखिकाओं ने बहुत प्रामाणिकता के साथ रखा है। सहानुभूति की जगह स्वानुभूति का प्रश्न ज्यादा प्रासंगिक है। अब नए युग की स्त्री ने अपनी बेचारगी को पूरी तरह तिलांजलि दे दी है, आज वह स्त्री–सशक्तिकरण (वीमेन एंपावरमेंट) के समस्त प्रयत्नों से न केवल भली–भाँति परिचित है अपितु प्रत्येक दृष्टि से उसमें अपनी सक्रिय भागीदारी निभाती है। कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा आदि की पीढ़ी के बाद मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यासों में नारी स्वातंत्रता का अर्थ अलग तरह से खोजा। मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मद्गल, नासिरा शर्मा, प्रभा खेतान आदि रचनाकारों के साहित्य में स्त्री जहां अपनी पहचान खोजती नज़र आती है, वहीं दूसरी ओर वह 'स्त्री मुक्ति के नए औजार' खोजने में भी जुटी हुई है।

समकालीन कहानी के संदर्भ में समसामयिक परिस्थितियों का अवलोकन करने के बाद, यह स्पष्ट हो जाता है कि 1965 ई. के बाद बदली परिस्थितियों का प्रभाव कहानीकारों पर पड़ा था। यह स्वाधीनता प्राप्ति के बाद स्वाधीनता के सपनों से मोहभंग का दौर था। वे स्वतंत्र भारत का क्रूर यथार्थ अपनी आंखों से देख रहे थे। उनमें नई दृष्टि इन्हीं खंडित परिस्थितियों से पनपी है। एक तरह से यह समकालीन कहानी के आविर्भाव का कारण भी हुआ था। डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय ने समकालीन कहानी को 'विद्रोही कहानी' अथवा 'विरोध की कहानी' कहा क्योंकि समकालीन सृजन मूलतः स्थापित व्यवस्था का विरोध है। वर्तमान व्यवस्था की स्थापित मान्यताओं और मर्यादाओं का ध्वंस ही समकालीन कहानी का मुख्य स्वर है।

समकालीन कहानियों में महिला कहानीकारों की उपस्थिति एक सार्थक और विचारोत्तेजक हस्तक्षेप है। इनकी कहानियों में मुख्यतः नारी के विविध रूपों का चित्रण हुआ है। साठोत्तर काल की लेखिकाओं का दायरा बहुत बड़ा है। वे पुरूष द्वारा थोपी गई नैतिकताओं को नकारते हुए नयी नैतिकता तैयार करती हैं। इस धारा को बढ़ाने वाली

कहानीकारों में कृष्णा सोबती, मणिका मोहिनी, निरुपमा सेवती, मृदुला गर्ग, मंजुल भगत, कृष्णा अग्निहोत्री, मेहरून्निसा परवेज, नमिता सिंह, कमल कुमार, नासिरा शर्मा, सूर्यबाला, इन्दुबाला आदि नई कहानी की दूसरी पीढ़ी की कहानीकार हैं।

मैत्रेयी पुष्पा अपनी कहानियों में संदर्भित विषय को सूक्ष्मता में जाकर परखने और उसकी विडंबनाओं को जकड़ने में सक्षम कहानीकार सिद्ध होती हैं। इनकी स्त्री केवल मध्यवर्ग की ही नहीं है, वरन् निम्न–वर्ग की स्त्री की कसक और पीड़ा को भी इन्होंने व्यक्त किया है। इस तरह समकालीन महिला कहानीकारों द्वारा महिला लेखन किया गया है। नई पीढ़ी की नये कहानीकारों में और भी नाम हैं जो अपने लिखने की प्रक्रिया में हैं। अपनी जगह बनाने के लिए सक्रिय हैं, उनमें प्रभा खेतान, नमिता सिंह, सुशीला टाकभौरे, प्रतिभा कटियार, वंदना तिवारी, कुसुम भट्ट; सारा राय, दूर्वा सहाय, जया जादवानी, दीपक शर्मा, माधुरी छेड़ा, अलका सरावगी; मधु कांकरिया; मृदुला सिन्हा; डॉ. अहिल्या मिश्र; पुष्पा भारती, कविता; कुमुद लता, रेखा सिंह आदि की भी चर्चा अधिक उल्लेखनीय हैं।

आधुनिक समालोचना के संदर्भ में 'मूल्य' शब्द की चर्चा प्रायः सुनी जाती है। मानव–जीवन के सम्यक और सुचारू रूप से परिचालित करने के उद्देश्य से विद्वानों ने जीवन के कुछ मापदंडों का निर्धारण किया और उन्हीं के आधार पर 'मूल्य' की अवधारणा अस्तित्व में आई। इस दृष्टि से मूल्य का अर्थ मानव–जीवन के संदर्भ में ही महत्व रखता है। मूल्य मानव जीवन को स्थायी नहीं बनाता है बल्कि उसे अन्य अनेक महत्वपूर्ण उपादानों से उत्कृष्ट भी करता है। जिसके बल पर सामाजिक व्यवस्था संचालित होती है।

मूल्य विकास की स्थिति सामाजिक आचरणों तथा क्रियाओं द्वारा होती है। यह प्रकृति का नियम है जैसे–जैसे समाज सुसंस्कृत या सुशिक्षित होता गया वैसे–वैसे वह प्रबुद्ध होता गया, व्यक्ति बौद्धिक होता गया और बुद्धि–तर्क के आधार पर धार्मिक, सामाजिक, नैतिक मान्यताओं को कसने लगा। यही कारण था कि प्रभुता के कारण परंपरागत जीवन–मूल्य गतिशील होते गये। भारतीय दर्शन के अंतर्गत पुरूषार्थ को ही जीवन–मूल्य के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। पाश्चात्य चिन्तकों ने भी मानव जीवन–मूल्यों की विविध व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं, जिनमें धर्म, व्यवहारिकता, सुखवादिता, फलवादिता, वैज्ञानिकता तथा प्रकृतिवादिता आदि विभिन्न दृष्टिकोणों से जीवन–मूल्यों का स्वरूप–निर्धारण करने का प्रयत्न किया है। वर्तमान

समय में 'मूल्य' शब्द का अर्थ व्यापक हो गया है। इसका प्रयोग वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक और धार्मिक स्तर पर संपूर्ण मानव व्यवहार के मानदंड के रूप में किया जाता है।

समस्त राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक संस्थायें, जो मानवीय सभ्यता और संस्कृति के उपादान हैं, सभ्यता और संस्कृति की भिन्नता के अनुरूप ही व्यक्ति के जीवन–मूल्य में भी अंतर पाया जाता है।

सामाजिक कार्यकलाप ही नए जीवन मूल्य की संरचना करते हैं। ये मूल्य जो स्त्री के लिए पितृसत्तात्मक व्यवस्था में निर्णय लिए गये हैं कहीं पर भी स्त्री से पूछकर नहीं बनाये गये हैं। पुरुष वर्चस्व का यह रूप राजनैतिक, आर्थिक, बौद्धिक और नैतिक हो सकता है। नारी के संदर्भ में भी ऐसी ही स्थिति रही। समाज मूल्यों के नाम पर उसे नैतिकता के पाठ पढ़ाता रहा और वह इन्हें मूक भाव से पढ़ती रही। पुरूष एक प्रतिशत भी नहीं बदला जबकि वह चाहता है नारी को बदलना चाहिए। यह दोहरा मानदंड जीवन मूल्यों में आघात है। एक स्त्री क्या चाहती है? यह एक बहुत बड़ा प्रश्न है। इस प्रश्न का उत्तर सभी अपने–अपने ढंग से देते हैं। जब भी स्त्री ने अपने अस्तित्व से जुड़े प्रश्न का उत्तर देना चाहा तो उसे यह कहकर झिड़क दिया गया कि 'बहुत बोलने लगी हो', 'अपनी जबान पर लगाम दो'। नारी को पुरूष ने उन समस्त गतिविधियों से दूर रखा जो उसकी चेतना का वर्धन कर सकते थे। पितृसत्ता एक सामाजिक घटना है, जो हजारों साल से चली आ रही ऐसी व्यवस्था है, जिसमें स्त्री की अधीनस्थता सर्वविदित है। पुरूष की सांस्कृतिक सत्ता ने स्त्री को वह सामाजिक सुविधा नहीं दी, जो पुरूष को परंपरा से मिलती रही है। सामंती आधार पर हमारी व्यवस्था विकसित हुई है जो वह यथास्थितिवाद को बनाए रखने में विश्वास रखती है। सामंती व्यवस्था में व्यक्ति प्रमुख नहीं होता, केवल संस्था और व्यवस्था होती है। नारी के साथ भी ठीक यही स्थिति थी।

आजादी के बाद भारतीय संविधान के अंतर्गत स्त्री को राजनीतिक अधिकार तो प्राप्त हो गए लेकिन नारी समाज द्वारा उस पर लगाये गए नैतिक बंधनों के भार से छुटकारा नहीं मिला। आज की चेतना संपन्न नारी वैचारिक संपर्क, सांस्कृतिक संगति और सूचना माध्यमों से जिन मूल्यों को ग्रहण कर रही है, उसे जीवन में भी व्यवहरित करने केलिए प्रयासरत्त है।

मैत्रेयी पुष्पा स्त्री को इंसान का दर्जा दिलाने की पक्षधर है। वे अपनी कहानी संग्रह 'गोमा हँसती है' की भूमिका में लिखती हैं "अपनी इच्छाओं को कुचलकर जीने का विधान हमें स्वीकार नहीं। हमारा मन, जो कहता है, पाँव जहाँ ले चलते हैं, इन्द्रियाँ जिस सुख की आकांक्षा करती हैं, मनुष्य होने के नाते वे हमारे कुविचार–कुचेष्टाएँ नहीं ,जन्मसिद्ध अधिकार हैं, जबकि कायदे से तो हमें अपने शील और पवित्रता की रक्षा में नैसर्गिक इछाओं का दमन और अपने अंतर्मन को ध्वस्त करते रहना चाहिए। इसी विनाश के धरातल पर हमें जीने की मोहलत दी जाती है, क्योंकि परिवेश से सुलह ही हमारी सुरक्षा है और चेतना की मृत्यु ही हमारा जीवन।" मैत्रेयी पुष्पा सब आदर्श उद्‌बोध गीतों को स्त्री को कमजोर करनेवाले साधन मानती है, परंतु उससे ज्यादा ताकतवर वे लोक गीत हैं जिनमें ग्रामीण स्त्रियाँ जीवन की व्याख्या खुद करती हैं। हो चुके अन्यायों, क्रूर, व्यवहारों और मान्यता प्राप्त बेईमानियों पर उबल उठते हैं।

महादेवी वर्मा ने भारतीय–मूल्यों के अनुसार हमारा मार्ग भी प्रशस्त किया है। इसके पूर्व भक्तिकाल में मीराबाई, सहजोबाई आदि ने भी अपनी भक्तिमय रचनाओं के माध्यम से मानव मूल्यों को ऊपर उठाकर, उसका उदारीकरण किया है। आधुनिक युग में सुभद्रा कुमारी चौहान, कात्यायनी, गगन गिल, रमणिका गुप्ता, स्नेहमयी चौधरी, शकुंतल माथुर एवं आज की अनेक नवोदित कवयित्रियों ने गिरते मानवीय मूल्यों पर गहरी चिंता व्यक्त की है। भारत में आम आदमी का जीवन मूल्य धर्म से संबंधित है। दूसरे जीवन मूल्य है रोजी रोटी का। रोजी–रोटी कमाने के बाद ही उसे भगवान की याद या मंदिर, मस्जिद की याद आती हैं। भरे पेट से ईश्वर की याद आना प्रतिफल है।

भारत में न नकारनेवाली सच्चाई है कि नारी चुप रहकर कष्ट और दुःखों में स्वयं को भक्ति का रंग लगा लेती है। यह पुरूष की दृष्टि में स्त्री का बड़े सम्मान जनक जीवन मूल्य हैं। परिवार में स्त्री को सांस्कृतिक लक्ष्मण रेखा के गिरोह में रखे जाने के बावजूद वह पुरुष के साथ बिखराव या अलगााव नहीं चाहती बल्कि समन्वय ही चाहती है।

पुरूष अपनी स्थितियों से परे जाकर आरोपित सीमाओं का अतिक्रमण कर सकता है, पारंपरिक भूमिका को चुनौती दे सकता है। पुरूष की सांस्कृतिक सत्ता ने स्त्री को वह सामाजिक सुविधा नहीं दी, जो कि पुरूष को परंपरा से मिलती रही। समाज द्वारा यह अपेक्षित भी है। यह तो इतिहास में पहली बार घट रहा है कि स्त्री पितृसत्ता को नकार रही है, उस

सत्ता द्वारा आरोपित भूमिकाओं के प्रति सवाल उठा रही है। वह वस्तु से व्यक्ति बनने की प्रक्रिया में है। स्त्री तो स्वयं एक तरल स्थिति में है। उसके पास कोई ठोस निर्धारित जानकारी और सबूत नहीं है। विदेशी प्रभाव से शैलीगत, विधागत, भावगत जो बदलाव आए उनके द्वारा हिन्दी कथा साहित्य के महिला कथाकार अपने लेखन के इतिहास को एक अगला मोड़ देकर विवेक के साथ कदम उठाने लगे। यह एक विकल्पों की तलाश का इतिहास है।

हिन्दी साहित्य के वरिष्ठ कथाकार और स्त्री आलोचक मैत्रेयी पुष्पा का समूचा लेखन इस बात का प्रमाण है कि उनके यहाँ विचारों का आधार सतर्क निर्भीकता लिए हैं। उनमें सड़ी–गली पुरातन और मानव विरोधी मान्यताओं का सीधा विरोध तो है ही, साथ ही नए और खुले विचारों का स्वागत भी उन्होंने किया है। वे निर्भीक लेखिका होकर अपनी कमजोरियों, अंतरंगताओं व स्नेह के प्रगाढ़न को अपनी लेखनी के जरिए अभिव्यक्त करते हुए उन तमाम खतरों से खेल जाती है, जिसकी कल्पना मात्र से आम स्त्रियों के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। वे अपने लेखन की प्रेरणा और नकल रेणु से स्वीकारने की बात अपना पहला उपन्यास 'बेतवा बहती रही है' कि संदर्भ में मानती हैं। उनके समान नायिका के साथ न्याय न करने की बात को लेकर दुःखित होती है। एक मानवतावादी होने के नाते वह समाज में स्त्री समानता और आत्मनिर्भरता की बात कहती दिखाई देती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा का कथा सहित्या सिर्फ साहित्य भर न रहकर उसमें नारी मूल्यों का व्यापक विवरण भी है। पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री केलिए जिस प्रकार के मूल्यों का निर्धारण करके उन्हें एक कटपुतली बनाकर रखने की साजिश की है, मैत्रेयी पुष्पा उन तमाम रूढिवादी एवं परंपरावादी मूल्यों को ध्वस्त कर नये मूल्यों को गढ़ते नजर आती है।

उनका व्यक्तित्व अन्यों के समान होने पर भी कुछ भिन्न दिखाई पड़ता है। उनके इस निर्भीक और स्वभिमानी व्यक्तित्व के पीछे उनकी माँ का प्रभाव है। जिन्होंने जीवन पर्यंत जिंदगी से लड़ना सीखा, अपने–आपको सशक्त बनाते हुए मजबूत करती रही। अपनी बेटी मैत्रेयी पुष्पा को भी उन्होंने यही सब कुछ दिया जिसका फलस्वरूप आज उनके रचनात्मक व्यक्तित्व में हम देख सकते हैं।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास, कहानी और आत्मकथाओं में नारी को सिर्फ गृहस्थी या पुरुषवादी समाज के पैरोंतले रहने वाली स्त्री की तरह न दिखाकर स्वतंत्र, निडर और

स्वावलंबी स्त्री के रूप में प्रस्तुत किया है। जो आज के आधुनिक स्त्री की आवश्यकता है। डॉ. बाबा साहेब अंबेड़कर ने जिस कल्पना और आशा के साथ स्त्री सशक्तिकरण की बात कही थी वह इनकी रचनाओं में सिद्ध होते दिखाई देती है।

किसी भी रचना केलिए भाषा एवं शिल्प की आवश्यकता होती है। पाठक को बांधे रखने केलिए उनकी अपनी भाषा का प्रयोग हर समय सफल सिद्ध होता है। यह काम मैत्रेयी पुष्पा ने किया है। उनकी रचनाओं में कहीं शुद्ध देहाती, गाँव–कसबे की भाषा का प्रयोग मिलता है तो कहीं आधुनिक शहरी भाषा का भी प्रयोग होता है। इसी में उनकी सफलता छुपी है।

मैत्रेयी पुष्पा की नायिका पुरूषवादी पदावली का भरोसा नहीं करती बल्कि अपनी 'स्वतंत्रता' के नए अर्थ को खोजती है और स्त्री जीवन के अंधकार को दूर करते हुए एक नया प्रकाश फैलाते दिखाई देती है। यह प्रकाश जितना स्त्री–आजादी के लिए विद्रोह का है, उतना ही उस नई सामाजिक संरचना का भी है। जिसमें वर्चस्वकारी ताकतें मर्यादित की जा सकेंगी और सामाजिक संबंधों का आधार लिंगभेद से न होकर मानवतापरक और सहज होता है। मैत्रेयी पुष्पा का लेखन इसी रूप में स्त्री–विमर्शवाद का अतिक्रमण करता है।

मैत्रेयी पुष्पा अपने आरंभिक उपन्यासों में पात्रों द्वारा स्त्री की दशा को दिखाती हैं, बाद में स्त्री पात्र चेतना के द्वारा लड़ाई लड़ना सीखती है, जूझती है आखिर में परिवार, समाज में रहकर ही विद्रोह करती है और नये नैतिकता के द्वारा समाज में बदलाव लाती है।

मैत्रेयी पुष्पा जैसी विमर्शवादी लेखिका का हृदय उस समूचे लेखन से अलग है, जो स्त्रीवाद के नाम पर किया जा रहा है। मैत्रेयी पुष्पा स्त्रीवादी लेखिका नहीं हैं। वे उस न्यायसंगत सामाजिक और पारिवारिक जीवन की माँग कर रही हैं, जहाँ पुरूष शासक नहीं, स्त्री का सखा हो। इनके उपन्यास उन तमाम भारतीय स्त्रियों को लेकर लिखे गये हैं जो सनातन पुरूष–प्रधान व्यवस्था में सदियों से अधिकार–वंचित और काम शोषित रहती आई हैं।

मैत्रेयी पुष्पा स्त्री के लिए प्रेम को एक नैसर्गिक चीज मानती है। जो हरेक इन्सान में जन्म से ही समाया हुआ है। इदन्नमम की नायिका मंदा बाल्यावस्था के प्रेम को आजीवन निभाती है। पढ़ाई के चलते दूर चले जाने पर भी उसी का इंतजार करती रहती है यहां तक कि उसी को अपना जीवन साथी मान कर चलती है। 'अगन पाखी' की भुवन मोहिनी अपने भतीजे के साथ प्रेम करनेवाली साहसी स्त्री के रूप में दिखाई देती है, 'अल्मा कबूतरी'

उपन्यास की नायिका अल्मा, 'गुनाह–बेगुनाह' उपन्यास में भी इला, चाक की सारंग, 'झूलानट' की शीलो प्रेम को शाश्वत मूल्य के रूप में देखती हैं। संस्कृति, परंपरा के घूँघट में जो स्त्री मन और शरीर के बंधनों में फंसी हुई है उन्हें तोड़ देती हैं और स्वतंत्रता दिलाती हैं।

विधवा होने के बाद पारिवारिक, सामाजिक रूढ़ियाँ जो विधवा के जीवन में थमा दिये गये थे उन सभी का लेखिका खंडन करती है। और अपनी नायिका को फिर से औरत रूपी जीवन की आकाँक्षा, खान पान, वेष–भूषा, शारीरिक इच्छाएँ आदि जो स्त्री जीवन में महत्व रखती हैं उन सभी के लिए स्वेच्छा देती है।

लेखिका स्त्री के लिए स्वतंत्रता चाहती है और कहती हैं कि स्त्री शरीर की यौवनिकता पुरूष को स्वामी मानकर उसके अनुसार तबाह करने, वंश चलाने के लिए नहीं बल्कि स्त्री अपनी सहज प्रकृति प्रजनन शक्ति को अपनी इच्छा के अनुसार माँ बनकर अपने स्त्रीत्व की, ममत्व की भावना को महत्व देने में ही स्त्री की स्वतंत्रता है।

आज भी ग्रामीण भारत में दलितों के रूप में अनगिनत कदमबाई, राणा, अल्मा, भूरी बाई, रामसिंह, मलिया जैसे पात्र मिल जाते हैं। राणा को स्कूल में अपमान, निरुत्साह मिलता है। पानी तक पीने नहीं देते हैं। यह आज के वैज्ञानिक, तकनीकी युग की सच्चाई है।

मैत्रेयी पुष्पा के तमाम नारी–पात्र अपनी सशक्तता के लिए प्रसिद्ध हैं। वे बदलाव का माध्यम बनने की कोशिश करते हैं। सामाजिक रूप में दरअसल जब तक लौंगसिरी, कलावती, रेशमी, सारंग जैसी स्त्रियों को श्रीधर, भंवर, स्कूली बच्चे, गजाधर सिंह (ससुर) जैसे सहयोगी पुरूष नहीं मिलेंगे तब तक वैसा सभ्य समाज बन ही नहीं सकता, जिसमें स्त्री–पुरूष में तुलना का संतुलन हो या सामाजिक न्याय सभी के लिए हो।

मैत्रेयी पुष्पा की स्त्रियाँ काम–काज वाले संसार से चलकर आती है। इन कामगार स्त्रियों की मुक्ति उनके काम–काज रोजमर्रा के संघर्षों से जुड़ी है। वह चाहे 'इदन्नमम्' की मंदा हो या 'चाक्' की सारंग, 'अल्मा कबूतरी' की अल्मा, कदम या भूरी बाई हो। ये वे स्त्रियाँ हैं जो जीवन के प्रत्यक्ष कुरूक्षेत्र में हैं। लेखिका सोचती है कि 'मैं चट्टानों से टकरा–टकराकर पानी की तरह रास्ता बनाने निकली हूँ।' इनकी नायिका भी संकल्पबद्ध है जहाँ व्यवस्था चट्टान की तरह खड़ी हुई वहां वह उससे टकराकर अपनी राह निकाल लेती है।

मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम', 'चाक' और 'अल्मा कबूतरी' उपन्यासों में नारी स्वतंत्रता, नारी–मुक्ति, नारी–शक्ति के विकास और उसकी राजनीतिक सत्ता कायम करने के संघर्ष का साक्षात्कार होता है। इन उपन्यासों में चित्रित संस्कृति तथाकथित 'भारतीय संस्कृति' यानी यथास्थिति की रक्षा करने के लिए अतीत का गौरव–गान करने वाली संस्कृति नहीं बल्कि पिछड़ेपन और शोषण–उत्पीड़न से मुक्त मानवीय संबंध की स्थापना करने वाली आधुनिक संस्कृति है। राजनीति स्त्रियों के लिए सर्वाधिक उदासीन क्षेत्र है, क्योंकि हमारी सरकार सबसे पहले व्यक्तिगत सत्ता का शासन है। महिला पात्र को राजनीतिक तौर पर सशक्त बनाना समय के साथ चलना है।

मैत्रेयी पुष्पा संस्कृति के बारे में कहती हैं कि 'संस्कार शब्द अपने आप में इतना गरिमापूर्ण है कि जिसे धारण करके मनुष्य अपनी अंदरूनी कलुशताओं पर विजय पा सकता है। सदियों से यह मान्यता रही है कि संस्कारी लोग सुसंस्कृत समाज के हिमायती होते हैं। क्या यहां व्यहारगत संस्कार को देखा जाना जरूरी नहीं है। अब आजाद देश में लोकतांत्रिक व्यवास्था से उम्मीद रखते हुए तो लगता है कि हमारे संस्कारों में कही गड़बड़ है।' लेखिका महिमा नहीं चाहती हैं, बल्कि जगह चाहती हैं, जो मनुष्य के लिए जरुरी है। क्योंकि स्त्री भी मनुष्य है। देवीदृसती वाला संस्कार जितना पवित्र और पूज्य है, उतना ही औरत को अपाहिज बनाने का कारण है। अपाहिज करते–करते यह संस्कार स्त्री का ख़ात्मा कर डालता है, क्योंकि निष्क्रिय बनाना इस संस्कार का काम है।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में विवाह व्यवस्था के विरोध में विद्रोह करने वाली नायिकाएँ हमें दिखाई देती हैं। वह विवाह या पुरूष को नकारने वाली विद्रोहिनी नहीं है। वह चाहती हैं पति एक सच्चा साथी और उसे समझने वाला हो लेकिन पुरुष पति बनकर उस पर अधिकार जमाना चाहता है। उसे गुलाम बनाकर उसकी स्वतंत्रता का हनन करना चाहता है। यहां स्त्री पति और विवाह व्यवस्था का विरोध कर स्वतंत्र जीवन जीने केलिए कितने ही संघर्षों करते हुए, झूझते हुए आगे बढ़ने लगती है।

मैत्रेयी पुष्पा की नायिकाएँ अपनी नैतिकता खुद बनाती है। उनकी नायिकाएँ दूसरों के फैसलों को अपने शरीर पर नहीं लादती। वह स्वयं अपने मन से निर्णय लेना जानती है। लेखिका अपनी नायिकाओं के बारे में लिखती हैं कि–'मेरी नायकाएं कमजोर नहीं हैं। वे अपनी

उसी ज़मीन पर खड़े होकर लडाइयाँ लड़ती हैं, जिसमें उनकी जड़े है। मेरी नायिकाओं ने अगर देह की परिधी को लांघा है तो सिर्फ देह से साकारात्मक मूल्यों को बचाने के लिए, उन्होंने अपनी देह की कीमत पर सच्चाई को मरने नहीं दिया।'

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नायिका अपने हक के लिए लड़ती है, अन्याय के विरोध में लड़ती है और उसके ऊपर मढे गये सारे सांस्कृतिक रीति–रिवाज, परंपराओं को धार्मिक संस्कारों को कुछ हद तक ढोती दिखाई देती है। वह उन सबके खिलाफ खड़ी होती है। उनका विद्रोह भी करती हैं जैसे 'बेतवा बहती रही' की बरजोर सिंह की मां, चाक की सारंग और रेशम, अल्मा कबूतरी की अल्मा, भूरीबाई, कदमबाई, झूलानट की शीलो, 'अगनपाखी' की भुवन आदि।

मैत्रेयी पुष्पा अपनी कहानियों में नारी जीवन मूल्य के संदर्भ में कई प्रश्न उठाती हैं। सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, मानसिक ऐसे सामान्य तौर पर मानव मूल्य, स्त्री जीवन के लिए अवश्य मांगकर स्त्री जीवन में स्थापित करना चाहती हैं। स्त्री को वस्तु से व्यक्ति बनाने की चाह रखती हैं। मैत्रेयी पुष्पा अपनी कहानियों में नारी की स्वतंत्रता की पक्षधर दिखाई पड़ती हैं। वे नारी को अस्तित्व से व्यक्तित्व तक ले जाने केलिए प्रयत्नशील है। परंपरागत रूप से चली आ रही पुरूष सत्ता के द्वारा स्त्री के लिए बनाई गई जीवन मूल्यों से प्रतिरोध करती हैं इनकी नायिका। स्वतंत्रता, आर्थिक आत्मनिर्भरता, शिक्षा–सामाजिक जागृति, परिवेशगत परिवर्तन, पारिवारिक संबंध, समाज में संघर्ष करती, टूटती–बिखरती तो, कहीं अपने–आपको स्थापित करती नारी का रूप कहानियों में उभरता है। मैत्रेयी पुष्पा उस वर्ग की नारी के प्रति ध्यान दिया है जिसको अधिकांश लेखिकाओं ने ध्यान नहीं दिया था। उसमें उन्होंने ग्रामीण परिवेश में पली बढ़ी हुई नारी को अपनी कहानियों का पात्र बनाकर उन्हीं की भाषा में उनकी जीवन व्यथा, सुधारवादी रूप, विद्रोही रूप, विद्रोही रूप से आत्मसात करती नारी पात्र को चित्रित किया है।

मैत्रेयी पुष्पा 'बेटी' कहानी में स्त्री शिक्षा से वंचित मुन्नी द्वारा शिक्षा के महत्व को समझाती है और वह शिक्षा को स्त्री का प्राथमिक हक और जन्मसिद्ध अधिकार मानती हैं, क्योंकि शिक्षा के द्वारा स्त्री ज्ञान प्राप्त कर अपना व्यक्तित्व बना सकती और अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़ सकती है। आर्थिक रूप से पिछड़ी होने के कारण अधिकतर स्त्रियाँ अभावग्रस्त

जीवन बिताती हैं। इसलिए स्त्री को समाज, परिवार में अपने मूल्य स्थापित करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। उसके लिए उत्तम माध्यम शिक्षा है। शिक्षा के बिना अधिकार प्राप्त करना, मूल्य स्थापित करना संभव नहीं है। शिक्षित होकर आर्थिक आत्मनिर्भरता को सब तक पहुँचाने की आवश्यकता है। स्वावलंब होने वाली स्त्री ही जीवन के प्रत्यक्ष कुरूक्षेत्र में लड़ती रहती है। मैत्रेयी पुष्पा समर्थ वर्ग की स्त्री को स्वयं संघर्ष करने की सलाह देती है।

मैत्रेयी पुष्पा अपनी कहानियों के द्वारा स्त्रियों को सामाजिक, आर्थिक समानता के साथ–साथ मानवीय अधिकारों को दिलाने का प्रयास करती है। उनकी कहानियों में आर्थिक स्वावलंबी नायिका हमें 'रास' कहानी की जैमंती, 'राय प्रवीण' की नायिका सावित्री; 'बहेलिये' की नायिका गिरजा आदि के रूप में दिखाई देते हैं।

हमारे देश में जाति–प्रथा का खामियाजा स्त्री भुगतती है। स्त्री अपने स्त्री होने के कारण मर्दों के हमले झेलती है। स्त्री को घर रूपी बंधन में हिंसा, अपमान, नीचा दिखाना पितृसत्तात्मक समाज का लक्षण है। वही दलित स्त्री को अपमान और हिंसा के साथ–साथ मृत्यु होने तक उसे अपमान करना, शोषण का शिकार बनाना, समाज में असमानता की भावना उत्पन्न करना जातिगत विषमता का लक्षण है।

सवर्ण परिवार में औरत को घर के भीतर रखकर अपना मान बढ़ाया जाता है, इज्जत बचाई जाती है। सवर्ण जाति की स्त्री की समस्या एक दबी–कुचली जाति की दलित स्त्री की समस्या से बहुत भिन्न है। सवर्ण स्त्रियों की लड़ाई केवल पितृसत्ता का विरोध कर अपना हक पाने तक ही है। मगर दलित स्त्री की लड़ाई शारीरिक, मानसिक, श्रम, विद्या विज्ञान, व्यक्तित्व के विरोध में होने वाले निरंतर आक्रमणों से है।

स्त्री के लिए खोखली एवं जर्जर मान्यताएं आज दकियानूसी कही जाती हैं। मैत्रेयी पुष्पा अपनी कहानियों में स्त्री विरोधी मूल्यों पर आधारित खोखली मान्यताओं का विरोध करती दिखाई देती हैं। धर्म में स्त्री केलिए जो कुछ बताया गया है उसे मैत्रेयी पुष्पा 'श्रृंखला की कड़ियां' मानती है। उनकी कहानियों में वे सहज रूप से समाज में धार्मिक, सांस्कृतिक परंपरा और संस्कारों का वर्णन करते हुए विशेष संदर्भों में अपनी स्त्री–पात्रों द्वारा तर्कसंगत विद्रोह करती दिखाई देती हैं। 'फैसला' कहानी की बसुमति, 'मैंने महाभारत देखा था' की ब्रजेश, 'केतकी' कहानी की केतकी आदि इसका उदाहरण है।

मैत्रेयी पुष्पा अपनी आत्मकथा में कहीं सामाजिक मूल्यों में हस्तक्षेप करती हैं तो कहीं उसके समर्थन की मुद्रा में खड़ी हो जाती है। आत्मकथा के बहाने इन्होंने नए मूल्यों को गढ़ा है। लेखिका उन्हीं मूल्यों को स्वीकार करती है, जो वर्तमान संदर्भों में भी प्रासंगिक हों। मैत्रेयी पुष्पा को ''पहला और बुनियादी रोड़ा मिलता है संस्कारों के रूप में। सभी संस्कार नहीं अपितु वे संस्कार जो अपना स्वरूप गवां चुके हैं, वीभत्स बन चुके हैं और समाज में सड़े–गले विचारों की दुर्गन्ध फैलाते रहते हैं।

कस्तुरी कुंडल बसै' स्त्री के हक में कस्तूरी और मैत्रेयी का अविश्रांत युद्ध है। दूसरा भाग 'गुड़िया भीतर गुड़िया सभ्यता में निहित असभ्यताओं का एक ऐसा दर्दनाक दस्तावेज है, जिसके पन्ने सदाचार के खून से लाल हैं, लेकिन जिसकी लाली (मैत्रेयी पुष्पा) एक नए सूर्योदय की अरुणिमा की ओर इशारा करती है' स्त्री को अपने 'स्व' को स्थापित करने के लिए इस समाज से लड़ना होगा। लेखिका की आत्मकथा समाज को यही संदेश देती है। इनकी आत्मकथा मूल्यों की नहीं बल्कि जीवन मूल्यों की बात करती है। ऐसे मूल्य, जो जीवन को गतिशीलता दे, न कि उसे जड़ बनाएँ। वे इस आत्मकथा में ऐसे ही मूल्यों के स्वीकार और अस्वीकार के प्रश्नों से उलझती हैं–उनकी आत्मकथा में सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, साहित्यिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक मूल्य के रूप को देखा जा सकता है।

पितृसत्ता द्वारा समाज में स्त्रियों पर थोपी गई बहुत सारी अनैतिकताएँ एक शाश्वत मूल्य बनकर सामने आती हैं। इस नये मूल्य की स्थापना बेशक त्रिया चरित्र से अपमानित की गई स्त्री करती है। उनका लेखन जो परंपरागत सामाजिकताओं, अत्याचारों के कठघरे में खड़ाकर उनके स्त्री–विरोधी चेहरे को बेनकाब करता है, किंतु मैत्रेयी पुष्पा यहीं रूक या थम नहीं जातीं वे स्त्री के उस पौरूष और सक्रिय प्रतिवाद को भी दर्ज करती हैं, जिसके बगैर नई सामाजिक संरचना एक लेखिका की कोरी बकवास भर बनी रहेगी। सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक चरित्रों का यह नवनिर्माण हिन्दी कथा साहित्य क्षेत्र में दुर्लभ अविस्मरणीय और योगदानकारी है।

****

आधार ग्रंथ

उपन्यास

रचना	लेखक	प्रकाशन
1. अगन पाखी	मैत्रेयी पुष्पा	वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, व्दितीय संस्करण–2003
2. अल्मा कबूतरी	मैत्रेयी पुष्पा	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण–2001
3. इदन्नमम्	मैत्रेयी पुष्पा	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण–1999
4. कही ईशुरी फाग	मैत्रेयी पुष्पा	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण–2004
5. गुनाह–बेगुनाह	मैत्रेयी पुष्पा	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण–2012
6. चाक	मैत्रेयी पुष्पा	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण–1997
7. झूलानट	मैत्रेयी पुष्पा	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण–2001
8. त्रिया हठ	मैत्रेयी पुष्पा	किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण–2006
9. बेतवा बहती रहे	मैत्रेयी पुष्पा	किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण–2006
10. विजन	मैत्रेयी पुष्पा	वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, संस्करण–2002

कहानी संग्रह

रचना	लेखक	प्रकाशन
1. गोमा हँसती है	मैत्रेयी पुष्पा	किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2006
2. चिन्हार	मैत्रेयी पुष्पा	आर्य प्रकाशन मंडल, नई दिल्ली, त्रुतीय संस्करण–2004
3. पियरी का सपना	मैत्रेयी पुष्पा	समायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2012
4. ललमनियाँ	मैत्रेयी पुष्पा	किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1996

आत्मकथा

रचना	लेखक	प्रकाशन
1 कस्तूरी कुन्डल बसै	मैत्रेयी पुष्पा	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण–2002
2. गुड़िया भीतर गुड़िया	मैत्रेयी पुष्पा	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण–2008

स्त्री विमर्श

रचना	लेखक	प्रकाशन
1. आवाज	मैत्रेयी पुष्पा	समायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2012
2. खुली–खिड़कियाँ	मैत्रेयी पुष्पा	समायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2005
3. चर्चा हमारा	मैत्रेयी पुष्पा	समायिक प्रकाशन,नई दिल्ली,

प्रथम संस्करण–2011

4. तब्दील निगाहे	मैत्रेयी पुष्पा	किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2012
5. सुनो मालिक सुनो	मैत्रेयी पुष्पा	वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–2006

रिपोर्ताज

रचना	लेखक	प्रकाशन
1. फाइटर की डायरी	मैत्रेयी पुष्पा	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण–2012

साक्षात्कार

रचना	लेखक	प्रकाशन
1. मेरे साक्षात्कार	मैत्रेयी पुष्पा	किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण–2010

संदर्भ एवं सहायक ग्रंथ सूची

रचना	लेखक	प्रकाशन
1.अम्बेडकरवादी स्त्री चिंतन	तेजपाल सिंह	स्वराज प्रकाशन,दिल्ले प्रथम संस्करण–2011
2. आदमी की निगाह में औरत	राजेन्द्र यादव	राजमल प्रकाशन,दिल्ली प्रथम संस्करण–2001
3. आधुनिकता के आईने में स्त्री–संघर्ष	डॉ. अहिल्या मिश्र	गीता प्रकाशन, हैदराबाद प्रथम संस्करण–2013
4. आधुनिकता के आईने में दलित	सं. अभय कुमार दुबे	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण–2008

5. आधुनिक हिन्दी उपन्यास–2	डॉ. नामवर सिंह	राजमल प्रकाशन,नई दिल्ली प्रथम संस्करण–2010
6. आधुनिक महिला लेखन (कहानी)	रमणिका गुप्ता	नवलेखन प्रकाशन, हजारीबाग(बिहार)प्रथम संस्करण–1995
7. आधुनिक साहित्य और अनुसंधान	डॉ. भ.ह. राजूरकर	नेशनल पब्लिशिंग,हाउस,नईदिल्ली प्रथम संस्करण–1997
8. उपन्यास और वर्चस्व की सत्ता	वीरेन्द्र यादव	राजकमल प्रकाशन,नईदिल्ली प्रथम संस्करण–2009
9. उपन्यास की महान परंपरा	खगेंद्र ठाकुर	स्वराज प्रकाशन,नई दिल्ली प्रथम संस्करण–2011
10. उपनिवेश में स्त्री	प्रभा खेतान	राजकमल प्रकाशन,नईदिल्ली प्रथम संस्करण–2003
11. औरत के आस–पास	डॉ. उर्मी शर्मा	अनंग प्रकाशन,दिल्ली प्रथम संस्करण–2001
12. औरत के हक में	तसलीमा नसरीन	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण–2005
13. कथा साहित्य के सौ बरस	विभूति नारायण राय	शिल्पायान प्रकाशन,दिल्ली तृतीय संस्करण–2011
14. कमलेश्वर के कथा–साहित्य में स्त्री–विमर्श	डॉ. करुणा शर्मा	नवचेतन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–2011
15. कामायनी–रचना प्रक्रिया के परिप्रेक्ष्य में	हरीश शर्मा	अमित प्रकाशन, गजियाबाद, संस्करण–1990
16. कृष्णा सोबती कृत 'ऐ लडकी' में नारी चेतना	डॉ. गरिमा श्रीवास्तव	संजय प्रकाशन,नईदिल्ली प्रथम संस्करण–2003
17. तार सप्तक के कवियों की समाज चेतना	डॉ.राजेन्द्र प्रसाद	वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–1997

18. दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर	विमल थोरत	अनामिका पब्लिशर्स डिट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली प्रथम,संस्करण–2008
19. नयी कहानी की रचना प्रक्रिया	डॉ. सुमन मक्कड	श्याम प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण–2013
20. नारी का मूल्य	शरत चंद्र	अंटेल पब्लिकेशन, दिल्ली, संस्करण–2001
21. नारी अस्मिता की परख	डॉ. दर्शन पांडेय,	संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2004
22. भारतीय साहित्य कोश	डॉ. नगेन्द्र	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1997
23. भारतीय भाषाओं में महिला–लेखन	आशारानी व्होरा	श्री नटराज प्रकाशन,नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2005
24. भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास	पुष्पपाल सिंह	राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2012
25. मानव मूल्य और साहित्य	डॉ. धर्मवीर भारती	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–1990
26. मैत्रेयु पुष्पा–स्त्री होने की कथा	सं. विजय बहादुर सिंह	किताबघर, प्रकाशन,नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2011
27. मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम	डॉ. दया दीक्षित	विकास प्रकाशन,कानपूर, प्रथम संस्करण–2013
28. लगता नहीं है दिल मेरा	कृष्णा अग्निहोत्र	समामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2010
29. श्रृंखला की कड़ियाँ	महादेवी वर्मा	भारतीय भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण–1977

30. समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ	डॉ. पुष्प पाल सिंह	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1997
31. समकालीन हिन्दी नाटक	डॉ. हर्षबाला शर्मा	शिवालिक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2010
32. समकालीन हिन्दी कहानी	सं. डॉ.एन. मोहनन	शिल्पायान प्रकाशन, दिल्ली संस्करण–2011
33. साठोत्तरी हिन्दी कथा–साहित्य' नारी विमर्श	प्रो. अनिता नेरे	शांति प्रकाशन, रोहतक–हरियाणा, प्रथम संस्करण–2015
34. साठोत्तरी हिन्दी कहानी–मूल्यों की तलाश	वासुदेव शर्मा	शारदा प्रकाशन, रोहतक–हरियाणा, प्रथम संस्करण–1986
35. स्वतंत्रोत्तर पहिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी संदर्भ	कल्याणी कुसुम सिंह	कल्याणी कुसुम सिंह प्रकाशन, पटना प्रथम संस्करण–2007
36. साहित्य से संवाद	डॉ. गोपेश्वर सिंह	मेधा बुक्स प्रकाशन, दिल्ली संस्करण–2005
37. स्त्री मुक्ति और कविता	संपादक प्रमीला के. पी.	मिलिंद प्रकाशन, हैदराबाद प्रथम संस्करण–2006
38. स्त्री लेखन : स्वप्न और संकल्प	रोहिणी अग्रवाल	राजमल प्रकाशन,नई दिल्ली प्रथम संस्करण–2011
39. स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक	मृणाल पांडे	राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1987
40. स्त्रीत्व का मानचित्र'	अनामिका	सारांश प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–1999
41. स्त्री लेखन और समय के सरोकार	हेमलता महिश्वर	नेहा प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण–2006
42. स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार	डॅ. वैशाली देश पांडे	विकाश प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण–2007

43. हिन्दी का गद्य–साहित्य — डॉ. रामचंद्र तिवारी — विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी सप्तम संस्करण–2009

44. हिंदी मुहावरे और लोकोक्तिकोश — डॉ. बदरीनाथ कपूर — लोकभारती प्रकाशन, इलहाबाद, चतुर्थ संस्करण–2007

45. हिन्दी दलित कथा–साहित्य अवधारणाएँ और विधाएं, — डॉ. रजतरानी मीनू — अनामिका पब्लिशर्स एंड डिट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली

46. हिन्दी कथा–साहित्य : पाठ के विविध आयाम — राजेश राव — स्वराज प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण–2013

47. हिन्दी उपन्यास का इतिहास — प्रो. गोपाल राय — राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली प्रथम संस्करण–2005

48. हिन्दी और मराठी का दलित साहित्य : एक मूल्यांकन (आत्मकथा के विशेष संदर्भं) — डॉ. सुनीता साखरे — अमन प्रकाशन, कानपूर, प्रथम संस्करण–2008

पत्र–पत्रिकाएँ

पत्रिका	संपादक	प्रकाशन
1. अपनी माटी, रविवार, अगस्त–03, 2014	सं. ललित कुमार	वेबपत्रिका
2. ऑनलाइन हिन्दी जर्नल, अगस्त 16, 2013	डॉ.मनीषकुमार मिश्रा	वेबपत्रिका
3. कथन–जनवरी–मार्च, 2004	रमेश उपध्याय	शब संधान प्रकाशन, नई दिल्ली.
4. गद्य कोश, फरवरी 18, 2014,	ललित कुमार	वेबपत्रिका

5. गोदारण, अंक–7, जनवरी–2009	भरत सिंह	अलीगढ
6. दलित स्मिता–अक्टूबर–दिसंबर 2010	विमल थोरट	इंडियन इंस्टीयूट ऑफ दलित स्टटीस, नई दिल्ली
7. पुस्तक वार्ता, मार्च–अप्रैल–2013,	भारत भारद्वाज	वेब पत्रिका
8. mohallalive.com	अविनाश	वेब पत्रिका
9. युद्धरत आम आदमी, फरवरी 2011	रमणिका गुप्ता	वेब पत्रिका
10. समकालीन कथा यात्र.	डॉ. शरद सिंह	वेब पत्रिका
11. समकालीन साहित्य समाचार	सत्यव्रत	किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली
12. हंस, नवंबर 2009,	राजेन्द्र यादव	वेब पत्रिका
13. हिन्दी समय.काम	अरूनेश नीरन	वेब पत्रिका
14. विविध संवाद, त्रैमासिक पत्रिका	सुरेन्द्र बीनू	बरेली